महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा की पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध विषय

"मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन"

: अनुसंधित्सु :

यादव पुष्पा जगदीश प्रसाद

हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

: निर्देशक :

डॉ. शन्नो पाण्डेय

वरिष्ठ प्राध्यापिका

हिन्दी विभाग, म. स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा

: जून २०१३ :

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

की पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि

हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोध विषय

"मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन"

: अनुसंधित्सु :

यादव पुष्पा जगदीश प्रसाद

हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा

: निर्देशक :

डॉ. शन्नो पाण्डेय

वरिष्ठ प्राध्यापिका

हिन्दी विभाग, म. स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा

: जून २०१३ :

Date – .06.2013

Dr. Shanno Pandey,
Assistant Professor,
Department of Hindi,
The M.S.University of Baroda.

Resi., E-17, Indraprasth society,
T.P.13, B/h. Keya motors,
Chhani canal road,
Chhani jakat naka,
Vadodara.
Mob. 09328197463

Certificate From The Guide

This is to certify that **Yadav Pushpa Jagdishprasad** has registered her name under me for the Ph.D degree of The M.S.university of Baroda on 19.11.2008 and he had kept all the necessary four terms. There is no due as such and has paid all the necessary fees.

Signature of the Guide
Dr. Shanno Pandey
Assistant Professor
Department of Hindi
The M.S.University of Baroda

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय
बड़ौदा

प्रमाण पत्र

दिनांक :

प्रमाणित किया जाता है कि **पुष्पा जगदीश प्रसाद यादव** द्वारा महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौद की पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु गठित शोध प्रबंध - **"मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन"** मेरे मार्गदर्शन में सम्पन्न हुआ है। यह शोधकार्य सर्वथा मौलिक एवं महत्वपूर्ण है। यह शोध प्रबंध तकनीकी दृष्टि से उपयुक्त तथा उपादेय भी है। अतः मैं संस्तुति करती हूँ कि इस शोध प्रबंध को हिन्दी पी-एच.डी. हेतु परीक्षण को अग्रसरित किया जाय।

:: निर्देशक ::

डॉ. शन्नो पाण्डेय

वरिष्ठ प्राध्यापिका

हिन्दी विभाग, म.स.विश्वविद्यालय, बड़ौदा

॥ प्राक्कथन ॥

हमारे यहाँ कहा गया है - “काव्य शास्त्र विनोदेन कालोगच्छति धीमताम्” और “साहित्य संगीत कलाविहीनः । साक्षात पशुःपुच्छ विषाणहीनः ।” काव्य और शास्त्र का आनंद लोकोत्तर है । जिसने इस आनंद का अनुभव किया है उसे अन्य दुन्यवी या भौतिक चीजों की एषणा नहीं रहती । वह सदैव आनंद के क्षीर सागर पर डोलता - लहराता रहता है । गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कही क्हा था कि जिसने काव्य और शास्त्र दोनों को पढ़ा है, उसका भाग्य सर्वश्रेष्ठ है, जिसने केवल काव्य को पढ़ा है, शास्त्र नहीं उसके भाग्य को हम मध्यम प्रकार का कह सकते है, किन्तु जिसने केवल शास्त्र पढ़ा है और साहित्य या काव्य नहीं, उसका भाग्य तो मंदातिमंद है । अतः परिपूर्णता तो काव्य और शास्त्र दोनों के अध्ययन अनुशीलन से आती है, यह तो असंदिग्ध रूप से हमारी चेतना का विस्तार होता है । हम जीवन और जगत की परिपूर्णता को प्राप्त करते है । एक व्यक्ति बिना कुछ पढ़े-लिखे एक जिंदगी में कुछेक जीवानुभवों को प्राप्त कर सकता है, परंतु काव्य या साहित्य के अध्ययन के द्वारा वह देश-काल की सीमाओं को त्यागकर विश्वभर के लोगों के जीवानुभवों से साक्षात्कार कर सकता है । यह मैं इसलिए लिख रही हूँ कि मेरी आलोच्य लेखिका मैत्रेयी पुष्पा संस्कृत की विदूषी होने के नाते काव्य और शास्त्र उभय के अनुभवों से समृद्ध और संपन्न है ।

आदिवासियों का एक अस्त्र है “बूमरेंग” इसे चलाने पर वह अस्त्र निर्धारित लक्ष्य को सर करके पुनः चालक के पास आ जाता है । मैत्रेयी ने भी शास्त्र से बूमरेंग का काम लिया है । ऐसे अनेक कारणो से मैत्रेयी पुष्पा मेरी प्रिय लेखिका रही है । एम. ए. की कक्षाओं में मैने कई-कई बार देसाई सर और डॉ. भरत मेहता साहब (गुजराती विभाग) के मुँह से मैत्रेयी की चर्चाओं को सुना है । तभी से मैंने अपना मन बना लिया था कि यदि अवसर मिला तो मैं अपना पी-एच.डी. उपाधि हेतु शोधकार्य मैत्रेयी पुष्पा को लेकर करूँगी । शौधकार्य के धैर्य, लगन और उसकी विषय प्रतिश्रुतता को जाँचने-परखने का सद्भाग्य से इस निकष पर मैं खरी उतरी और अंततः “मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन” विषय को लेकर मेरा नामांकन दि. १९-११-२००८ को संपन्न हुआ ।

पंजीकरण पूर्व पाण्डे मेडम ने मुझे कुछ शोध प्रबंधों को देख जाने का परामर्श दिया । हंसा मेहता लाईब्रेरी में जाकर मैंने हिन्दी के कुछ प्रकाशित लब्ध प्रतिष्ठित शोध-प्रबंधों को जाँचने - परखने का उपक्रम किया । उसके उपरांत उन शोध-ग्रंथों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने मुझे शोध-विधि और शोध-प्रक्रिया के कुछ महती तत्वों से अवगत कराया । “नामूलमलिख्यते” के सिद्धांत को समझाया । शोध-प्रबंध और किसी विषय पर लिखे स्वतंत्र ग्रंथ में क्या अंतर है यह भी स्पष्ट किया । संदर्भ संकेत या पाद टिप्पणी को

लेने की पद्धति को समझाया । शोध-प्रबंध में "उपसंहार" और "ग्रंथानुक्रमणिका" की उपादेयता को बताया ।

सन् २००६ में महाराजा सयाजीराव विश्व विधालय के हिन्दी विभाग से मैंने एम.ए की उपाधि प्रथम श्रेणी में आकर उतीर्ण की तदुंपरात जीविका को ध्यान में रखते हुए बी.एड कर लेना उचित समझा । अतः सन् २००८ मैंने इसी युर्निवसिर्टी से बी.एड. की उपाधि को ८१% तथा मेथड़ (हिन्दी) मे एवोर्ड के साथ संप्राप्त किया । इतनी व्यावहारिकता को साध लेने के उपरांत मैं अपने पसंदीदा क्षेत्र में (शोधक्षेत्र में) अपनी पसंदीदा लेखिका पर कार्य करने को सन्नद्ध हुई । मार्गदर्शक के चुनाव का और उनकी सहमति का महाप्रश्न सामने आया । अंततः इस महाप्रश्न का समाधान डॉ.शन्नो पाण्डेय के रुप में मेरे सामने आया । प्रथमतः तो वे कई-कई बार नकारती रही, शायद यह उनका अपना तरीका था, शोधकर्ता के धैर्य, लगन और उसकी विषय प्रतिश्रुतता को जाँचने-परखने का सदभाग्य से इस निकष पर में खरी उतरी और अंततः "मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन" विषय को लेकर मेरा नामांकन दि. १९-११-२००८ को संपन्न हुआ ।

समकालीन हिन्दी लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा एक बहुप्रतिष्ठित, बहुचर्चित एवम् बहुपठित लेखिका के रुप में जानी जाती है । लेखिका का जीवन ही संघर्ष की एक अनवरत यात्रा है । पारिवारिक, सामाजिक, पितृसत्तात्मक, व्यवस्था की उपज ऐसे कई प्रकार के संधर्षो से शैशवकाल से ही माँ-बेटी (कस्तूरी और मैत्रेयी) को दूपरदू होना पड़ा है । जिसे हम "कस्तूरी कुंडल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" में दृष्टिगत कर चुके थे । जीवट, जुझारुपन, अपराजेय आस्था और जिजीविषा मानो मैत्रेयी के पर्याय बन चुके हैं । साहित्य के लिए भी लेखिका को कम संघर्ष नहीं करना पड़ा । पिछले दो दशकों में मैत्रेयी ने अपने लेखकीय व्यकित्व को एक ऐसा रुप दिया है, जिसके कारण लेखिका कई समकालीन लेखिकाओं के लिए भी हसद और इर्ष्या का कारण बन चुकी है । मैत्रेयी के साथ (कुछ हद तक प्रभा खेतान के साथ भी) बहुचर्चित वे साथ बहुविवादित विशेषण भी जुड़ जाता है । अतः दो लेखिकाओं पर हिन्दी साहित्य के "गोशिपजगत" में सबसे ज्यादा विवाद हुए है, फतवेबाजी हुई है । इसके कई कारण हैं । दोनों लेखिकाओंनें कम समय में अपना साहित्यक कद इतना बढ़ा लिया है कि कुछ लोगों को वह असंभव-सा लगता है । यहाँ पिछली सदी के महान वैज्ञानिक एवम् चिंतक आईनस्टाईन की निम्नलिखित सूक्ति वाकय मेरी स्मृति में बरबस उभर आई है – In the middle of difficulty lies opportunity – अर्थात् जहाँ अनेक मुसीबतें होती हैं, वहाँ उन्हीं मुसीबतों से कोई रास्ता भी निकलता है । अतः दोनों लेखिकाओं के लेखन का समयपट संक्षिप्त-सा जरुत लगता है, परंतु उनेक अध्ययन-अनुशीलन और संघर्ष का रस्ता बड़ा दीर्ध रहा है । जिस पर चलते हुए उन्होंने जीवानुभवों की पूंजी को अर्जित किया है । दोनों के लेखन का प्रारंभ कविता से हुआ है । प्रभाजी तो अपनी अन्य साहित्यिक कृतियों के

साथ कविता में भी कलम चलाती रही है । प्रभाजीने लोहा मनवाया है । परंतु मैत्रेयी अपने लेखकीय जीवन के प्रारंभ में ही समझ गई कि कविता उनका क्षेत्र नहीं है । उनकी ऊर्जा को कथा-साहित्य का रस्ता ही माफिक आ सकता है । और उसके पीछे कुछ हद डॉ. राजेन्द्र यादव भी जिम्मेदार हैं । मैत्रेयी पुष्पा को, उनकी ऊर्जा को देखते हुए, उनके बुंदेखण्ड़ी ग्रामीण जीवन के अनुभवों को देखते हुए दिशा-निर्देश करने का श्रेय हंस संपादक राजेन्द्र यादव को जाता है । "छी-छी अंगूर खट्टे हैं ।" वाली उकित को सार्थक करनेवाली हिन्दी की कतिपय लेखिकाओं को रोजन्द्र यादव सदी के "खलनायक" भले लगते हों पर नायकों के साथ खलनायकों की भी एक निश्चित भूमिका रहती है । भला "रावण" के बिना रामायण और "दुर्योधन" के बिना महाभारत की कल्पना की जा सकती है ? यह अकारण नहीं है कि दोनों ही महाकाव्यों दोनों के संहार के बाद फीकापन आ जाता है । यहाँ यादवजी की तुलना रावण या दुर्योधन से करने की हमारी मंशा नही है, क्योंकि हमारे लिए तो वे समकालीन हिन्दी जगत के खलनायक नहीं अपितु नायक हैं । आज नहीं तो कल लोगों को स्वीकार करना पड़ेगा कि नारी लेखिकाओं और दलित लेखिकों की एक समूची पीढ़ी को तैयार करने का सारस्वत कर्म यादवजी ने किया है जो उनको भारतेन्दु, प्रेमचंद तथा डॉ. सुरेश जोशी (गुजराती) के समीप ला खड़ा करता है ।

अन्य क्षेत्रों की भाँति साहित्य और कलाएं भी संयोग के तत्व के महत्व को नकार नहीं सकते । राजेन्द्र का दिशा- निर्देश न मिलना तो मैत्रेयी भी शायद लीज-लिजी भावुकता वाली एक छायावादी कवयित्री –मंचीय कवयित्री बनकर रह जाती । इतनी बड़ी, इतनी महान लेखिका न बन पाती । यह अकारण नहीं है कि हिन्दी कथा जगत के बहुत से सुधी-आलोचक मैत्रेयी को प्रेमचंद के बाद की एक सशक्त लेखिका मानते हैं । जिसने ग्रामीण जीवन की ज़मीनी हकीकत को दस्तावेज़ी रुप दिया है ।

मैत्रेयी की नारी गुप्तजीवाली अबला नारी नहीं है, प्रसादजीवाली श्रद्धा या देवी भी नहीं है, वह एक मानवी नारी है । अपनी तमाम तमाम अशिक्तयों और सशक्तियों के साथ । "इदन्नमम्" की "मंदा" हो या "चाक" की "सारंग" या "अल्माकबूतरी" की अल्मा इन नारियों ने बेचारगी के अभिशाप को ऊखाड फेंका है । कुछ काव्य पंक्तायाँ स्मृतिपटल पर उभर रही हैं – "बेचारा शब्द लब्जे हमदर्दी नहीं / गाली है, गाली है, गाली / नही बनूँगा बेचारा / क्योंकि" बेचारा बनना टूटना हैं / और मैं ही टूट गया तो कितने ही टूट जाएगें बनने से पहले ।" (बिजली के फूल पृ. १६) मैत्रेयी की नारियाँ भी टूटना नहीं जानती, खूब लड़ती है, संघर्ष करती हैं । परिस्थितियों का सामान डटकर करती हैं । और जीवन के कुरुक्षेत्र को पीठ नहीं दिखाती । यही कुछ बातें है, जिसके कारण मैं पुष्पा यादव, इस मैत्रेयी पुष्पा के पीछे पागल हुई जा रही हूँ । और बता दूँ ? मैत्रेयी पुष्पा भले ही बाह्मण कुल में पैदा हुई हों उनका शैशव और किशोरावस्था की परवरिश तो यादव परिवार में ही हुई है । कई उच्चकुलीन संभ्रात परिवारों के बड़े कटु अनुभव बालिका या किशोरी पुष्पा को हुए हैं ।

ऊपर हम बता चुके हैं कि हिन्दी के फतवावादी गोशिपनुमा आलोचनाओं में मैत्रेयी पुष्पा और प्रभा खेताना दोनों के संदर्भ में बहुत कुछ भला–बुरा कहा गया है । महात्मा गांधी विश्वविधालय के कुलपति तथा समकालीन कथाकार डॉ. विभूति नारायण राय (भूत की प्रेमकथा के लेखक) ने तो "छिनाल" तक कह ड़ाला । उनका कथन है "इधर की लेखिकाओं में यह होड़ मची हुई है कि कौन कितनी बड़ी छिनाल है और उनकी आत्मकथाआँ को "कितने बिस्तर में कितनी बार" जैसे शीर्षक देने चाहिए" । भले ही उन्होंने किसी का नाम नही लिया परंतु इनका इशारा स्पष्टतया कृष्णासोबती, मैत्रेयी पुष्पा तथा प्रभाखेतान की ओर है । इस बात का जब बबाल हुआ तो उन्होने अपने लीपा पोतीनुमा प्रत्युतर भी दिए, क्षमायाचना भी की, पर तीर जो निकल चुका उसका क्या ? कोई कौंचपक्षिणी आहत और लहूलूहान हुई उसका क्या ? वस्तुतः बकौल राजेन्द्र यादव के ये लोगों की बौखलाहट है । उनकी मर्दवादी सोच है । नारी के विषय में अभी तक पुरुष लेखक बेबाकी से लिखते रहे । ऋषभचरण जैन से जनेन्द्रकुमार, निर्मलवर्मा, कृष्णा बलदेव वैद, मुरली मनोहर जोशी महेन्द्र भल्ला वग़ैरह जो लिखते रहे तब किसी की भौंहें नहीं तनीं और जब नारियाँ उनके द्वारा सुनिश्चित दायरों से बाहर निकल नारी मन की बात वर्जनाओं को नकारते हुए लिखने और कहने लगीं तो उनका लेखकीय साहस चूक गया और बौखलाहट में तबदील हो गया। किसी को छोटा बनाना हो, करारा जवाब देना हो तो कला और साहित्य में (बल्कि किसी भी क्षेत्र में) बड़ी-रेखा को खींचना पड़ता है, न कि किसी भी रेखा को काटना । कइयोंने तो यहाँ तक कहा कि मैत्रेयी का लेखन यादवजी का लेखन है। यादवजी की दृष्टि हो सकती है। दिशा-निर्देश हो सकते हैं, पर मैत्रेयी- मैत्रेयी ही है।

यादवजी स्वयं कई बार कह चुके हैं कि उनका लेखक अब चूक गया है । न लिखने के कारणों की बड़ी लंबी चौड़ी बहसें वे चालते रहे हैं । ऐस एक चूका हुआ लेखक "इदन्नमम्" और "चाक" जैसी रचनाओं को कैसे लिख सकता है ? और यदि लिख सकता तो क्या उनको अपना नाम न देता ? प्रेमचंद मटियानी और रेणु के बाद मैत्रेयी की गणना एक सशक्त लेखिकाओं में होती है, यही लोगों को काटने को दौड़ रहा है । जो भी हो इतना तो निश्चित है कि समकालीन नारी-विमर्श मैत्रेयी पुष्पा और प्रभा खेतान के बिना अधूरा है । अपने यहाँ कहा गया है "गद्यं कवीनां निकषम् वंदति" अर्थात् गद्य कवियों की कसौटी है । हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि मैत्रेयी प्रथमतः कविता (पद्य) लिखती थी किन्तु बाद में अपने अनुभवों तथा कुछ हितैषियों के परामर्श से वह गद्य तथा कथासाहित्य की ओर उन्मुख हुईं। फलतः उनके इस प्रकथानात्मक गद्य में हमे कविता अपने पूरे लालित्य के साथ उपलब्ध हो रही है । उपन्यासों के गद्य में यदि काव्य (कविता) ढूँढ़ना हो तो मटियानी, निर्मलवर्मा, अज्ञेय, जैनेन्द्र आदि के कथात्मक गद्य को देखा जा सकता है । इनेमें मैत्रेयी पुष्पा का नाम भी शामिल किया जा सकता है । कुछ लोग समझते हैं कि गद्य लिखना बड़ा आसान है, परंतु यह उनकी भूल है । हां, सामान्य

सतही गद्य लिखना आसान है, परंतु काव्यात्मक गद्य लिखना टेढी खीर है । बात जब गद्य की खूबसूरती की चल पड़ी है, ते डॉ. राजेश जोशी की निम्नांकित गद्य पंकितयाँ देखिए, जिन्हें वे निशाचर की उक्तियाँ कहते हैं –

"रात और दिन बनानेवाले की खोपड़ी अगर सीधी होती और ठीकठाक काम कर रही होती तो उसने राते जागने और भटकने के लिए बनायी होती और दिन सोने के लिए । जिसने रतजगे नहीं किए रात का आसमान नहीं देखा, आसमान में तारे नहीं देखे, गश्त करनेवाले सिपाहियों से बहाने नहीं बनाए । आधी रात के बाद, लौटने पर जिसके घर के दरवाजे अंदर से बंध नहीं हो गए जो रात गुजारने के लिए कभी ना कभी स्टेशन नहीं गया, जिसने स्टेशन जाकर रात में गुजरनेवाली रेल-गाड़ियो से झाँकते मुसाफिरों को हाथ नही हिलाएँ, प्लेटफोमॅ की चाय नहीं पी, उसके सामने लेखक या कलाकार बनने के अलावा, दुनिया के हर काम के रस्ते खुले हैं ।"

(किस्सोकोताह : पृ :.३५)

आत्मकथाओं के उपरांत मैंने उन आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्यमें मैत्रेयी के उपन्यासों "इदन्नमम्", "चाक", "झूलानट", "बेतवा बहती रही", "विजन", "कहीं ईसुरी फाग", "अल्मा कबूतरी"... का गहन अध्ययन और अनुशीलन किया है ।

शोधप्रबंध के सुचारु संगठन हेतु मैंने उसे निम्नलिखत सात अध्यायों में विभक्ति किया है ।

(१)	प्रथम अध्याय :	विषय-प्रवेश
(२)	द्वितीय अध्याय :	हिन्दी आत्मकथा परिभाषा, विभावना और विकास
(३)	तृतीय अध्याय :	"कस्तूरी कुंडल बसै", का विश्लेषणात्मक अध्ययन ।
(४)	चतुर्थ अध्याय :	"गुड़िया भीतर गुड़िया" का विश्लेषणात्मक अध्ययन ।
(५)	पंचम अध्याय :	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन ।
(६)	षष्ठ अध्याय :	आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यासोंका विश्लेषण एवम् मूल्यांकन ।
(७)	सप्तम् अध्याय :	उपसंहार ।

हमारा यह शोध प्रबंध मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों पर है । अतः प्रथम अध्याय में हमने उपन्यास विषयक कई जरुरी मुद्दों की पडताल की है; जिनमें उपन्यास की

परिभाषा उसके विभिन्न रुपबंधो की यात्रा, पूर्वप्रेमचंदकाल, प्रेमचंदकाल, प्रेमचंदोत्तरकाल, स्वातंत्र्योत्तरकाल, साठोत्तरी उपन्यास, समकालीन उपन्यास तथा हिन्दी उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा का योगदान आदि आदि की गणना कर सकते हैं । उपन्यास की परिभाषा के निष्कर्ष के रुप में व्याख्यायित किया गया है कि उपन्यास एक यथार्थधर्मी विधा है । यथार्थधर्मिता उसका प्राणत्व है । हिन्दी कथा- साहित्य में प्रेमचंद का स्थान मेरुदंड के सामन है । फलतः औपन्यासिक विकास की चर्चा के नाना सोपानों में प्रेमचंद के नाम को केन्द्र में रखा गया है । हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है । अतः सन् १८७८ से १९१८ तक (पूर्व प्रेमचंदकाल), १९१८ से १९३६ (प्रेमचंद काल) और १९३६ से आधावधि तक के काल को प्रेमचंदोतर काल के नाम से अभिहित किया गया है । पुन : यह प्रेमचंदोत्तरकाल, स्वातंत्र्योत्तरकाल, साठोतरी उपन्यास, समकालीन उपन्यास आदि में विभक्त हुआ है । इनमें पीछे की दो संज्ञाएँ काल-विषयक विभावना को लेकर चलती हैं । साठोत्तर उपन्यास सन् ६० से लेकर सन् ८०-८५ तक माना जाता है, किन्तु यहाँ एक तथ्य ध्यातव्य रहे कि साठोत्तरी उपन्यास उक्त कालसीमा का उपन्यास तो होगा पर इतने मात्र से वह साठोतरी उपन्यास नहीं हो जाएगा । उसमें साठोत्तरी मानसिकता और चेतना का होना निहायत जरुरी है । सन् ८५ से अधावधि तक के उपन्यास समकालीन उपन्यासों के अतर्गत आते हैं, किन्तु यहाँ भी ध्यान रहे उनमें समकालीन चेतना का होना अत्यंत आवश्यक रहेगा । हमारा शोध- प्रबंध मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों पर है और उसकी विशद चर्चा परवर्ती अध्यायों में होगी अतः यहाँ बहुत संक्षेप में मैत्रेयी पुष्पा के योगदान को रेखांकित किया गया है ।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का अध्ययन एवम् अनुशीलन हमें उनकी आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में करना है । अतः दूसरे मुद्‌दों की पड़ताल की है । दूसरे अध्याय में हमने आत्मकथा- विधा की पड़ताल की है । यह आवश्यक इसलिए हो गया है कि साहित्य की अन्य विधाओं पर तो काफी कुछ लिखा गया है, परंतु आत्मकथा विधा पर बहुत कम लिखा गया है । अतः इस अध्याय मैं हमने आत्मकथा की परिभाषा को देते हुए उसकी विभावना को स्पष्ट किया है । यहाँ हमने आत्मकथा लेखन के भयस्थानों को भी संकेतित किया है और प्रमाणित किया है कि आत्मकथा लेखन किसी नट के रस्सी पर चलने से कम मुश्किल नहीं है । इसी अध्याय के अंतर्गत हमने आत्मकथा साहित्य की विकासयात्रा को भी निरुपित किया है । तदुंपरात मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं "कस्तूरी कुंडल बसै" ओर "गुड़िया भीतर गुड़िया" पर बहुत संक्षेप में प्रकाश डाला है, क्योंकि परवर्ती अध्यायों में उसकी विशद् चर्चा होनेवाली है ।

तृतीय और चतुर्थ अध्याय में हमने मैत्रेयी पुष्पा की दोनों आत्मकथाओं "कस्तूरी कुंडल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" पर क्रमशः विचार किया है । यहाँ इन दोनों आत्मकथाओ का विशद् विश्लेषण और अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । आत्मकथाओं के सभी अध्यायों का सार संक्षेप देते हुए उनमें निहित घटनाओं और स्थलों का विशदब्यौरा

प्रस्तुत किया है । ये आत्मकथाएँ वह जमीन है, जहाँ से मैत्रेयी पुष्पा का कलाकार एक आकार ले रहा था । दोनों आत्मकथाओं को देख जाने पर सहज ही यह प्रतीति होती है कि जीवट, जूझारुपन लगन, धुन, जिजीविषा, प्रभुति में मैत्रेयी यदि बीस है तो कस्तूरी (मैत्रेयी की माँ) इक्कीस ठहरती है । कस्तूरी चाहती थी कि उनकी बेटी पढ़ लिखकर आला अफ़सर बने , परंतु मैत्रेयी का ध्यान पढ़ने-लिखने के बदले इत्तर प्रवृतियों में अधिक रहा । कस्तूरी चाहती थी कि उसकी बेटी अपनी तमाम शक्ति पढ़ने में लगा दे और जीवन में एक निश्चित मकाम हासिल करने के बाद ही शादी ब्याह जैसी बातों पर विचार करें । बर अक्स इसके मैत्रेयी का ध्यान शुरु से ही लड़कों की ओर ज्यादा रहा और शादी की ललक भी उसे ज्यादा रही । कस्तूरी चाहती थी कि मैत्रेयी खेरापतिन दादी, लौंगसीरी बीबी और कलावती चाची जैसी स्त्रियों से दूर रहे । जबकि मैत्रेयी का मन इनमें ही सबसे ज्यादा रमता था । मैत्रेयी के कथा साहित्य में जो लोक-साहित्य, लोक-कथाएँ, लोकगीत और मिट्टी की गंध हमें उपलब्ध होती है, उसकी जमीन यहाँ से तैयार हो रही थी । ऊपर हमने बताया है कि माँ बेटी की प्रवृतियाँ, सोचने की दिशाएँ विपरीत रही हैं । इसके पीछे कई मनोवैज्ञानिक कारण हैं । उन कारणों की चर्चा हमने यथेष्ठ स्थान पर की है । इन आत्मकथाओं के विश्लेषण से यह प्रमाणित होता है कि इनके तीन चतुथाँश हिस्सेमें इन घटनाओं का ब्यौरा है जिनसे मैत्रेयी अपने जीवानुभवों की पूंजी कतरा... कतरा इकट्ठा कर रही थीं और एक चतुथाँश अंश में मैत्रेयी के कुछ उपन्यासों की भूमिका भी र्निदिष्ट की गयी है ।

पंचम् अध्याय मैं हमने मैत्रेयी के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक एवम् बहुआयामी अध्ययन प्रस्तुत किया है । इन उपन्यासों में “इदन्नमम्”, “चाक”, “अल्मा कबूतरी”, “विज़न”, “बेतवा बहती रही”, “कही ईसुरी फाग”... आदि की परिगणना कर सकते हैं, किन्तु इनमें भी “इदन्नमम”, “चाक”, “अल्मा कबूतरी” जैसे उपन्यासों को विशेष रुप से लिया गया है । उक्त आत्मकथाओं में भी इन उपन्यासों की निर्माण प्रक्रिया के संदर्भ में काफी कुछ बताया गया है । “इदन्नमम्” वह उपन्यास है, जिससे मैत्रेयी पुष्पा की पहचान हिन्दी की एक सशक्त लेखिका के रुप में होती है । “इदन्नमम्” के समांतर ही सुरेन्द्रवर्मा का “मुझे चाँद चाहिए” उपन्यास आया था । आलोचकों ने इन दोनों उपान्यासों में निरुपित नारी – विमर्श को लेकर पर्याप्त चर्चा की है । हालांकि इन दोनों उपन्यासों की जमीन अलग-अलग है । रचनाकारों के दृष्टिकोण भी अलग-अलग है । अतः इन दोनों को एक लाठी से हाँकना उपयुकत नहीं होगा । हालांकि अनेक प्रतिष्ठित लेखकों ने “इदन्नमम्” के उक्त उपन्यास की तुलना में इक्कीस ही ठहराया है । “इदन्नमम्” के संदर्भ में डॉ. राजेन्द्र यादव की निम्न लिखित टिप्पणी को अनदेखा नहीं किया जा सकता –

“बऊ (दादी), प्रेम (माँ) और मंदा.. तीन पीढियों की यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानांतर भी रखती है और एक-दूसरे के विरुद्ध भी । बिना किसी बड़वोले वक्तव्य के मैत्रेयी ने गहमागहमी से भरपूर इस कहानी को जिस आयासहीन ढंग से कहा

है, उसमें नारी –सुलभ चित्रात्माकता भी है और मुहावरेवार आत्मीयता भी । हिंदी कथा रचनाओं की सुसंस्कृत सटीक और बैरंगी भाषा के बीच गाँव की इस कहानी को मैत्रेयी ने लोक-कथाओं के स्वाभाविक ढंग से लिख दिया है, मानो मंदा और उसके आस-पास के लोग खुद आपनी बात कह रहे हों- अपनी भाषा और लहजे में, बुदेलखंड़ी लयात्मकता के साथ ... अपने आसपास घरघराते क्रेशरों और ट्रेकटरो के बीच । मिट्टी पत्थर के ढोकों या उलझी डालियों और खुरदुरी छाल के आसपास की सावधान छँटाई करके सजीव आकृतियाँ उकेर लेने की अद्‌भूत निगाह है मैत्रेयी के पास लगभग "रेणु" की याद दिलाती हुई । गहरी संवेदना और भावनात्मक लगाव से लिखी गई यह कहानी बदलते उभरते "अंचल" की यातनाओं, हार-जीतों की एक निर्व्याज गवाही है... पठनीय और रोचक ।" (राजेन्द्र यादव "इदन्नमम्" के द्रितीय मुखपृष्ठ से)

मैत्रेयी का दूसरा उपन्यास "चाक" सचमुच में ही पाठकों के चित को चाक करने में सक्षम है । ग्रामणी जीवन में जो टुच्ची राजनीति घुस गई है, उसका गहरा रंग भी यहाँ दृष्टिगोचर होता है, पर इसके साथ ही साथ चलती है ग्रामीण जीवन में पलनेवाली प्रेम-कहानियाँ । जिनमें "सारंग" और "श्रीधर" की प्रेमकहानी पाठक के दिलो-दिमाग पर छा जानेवाली है । प्रेमचंद के बाद नगरीय जीवन के उपन्यासों का जो सिलसिला शुरु हुआ था, वहाँ ग्रामीण जीवन की मस्ती रसभरी कहानियाँ, लोक-गीत और लोक-गीत और लोक-कथोओं की लयात्मकता एक सिरे से गायब थी । जो बाद में "रेणु" के कारण आपूर्त हुई थी, रेणु की इसी परम्परा को "चाक", "अल्मा कबूतरी", "कही ईसुरी फाग" जैसे उपन्यासो में मैत्रेयी ने आगे बढ़ाया है । "बहुत पहले डॉ. रांगेय राधव ने" कब तक पुकारू ? में "करनटों" के जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया था । लगभग उसी प्रकार का प्रयास मैत्रेयी ने अल्मा-कबूतरी में किया है जिसमें बुंदेलखण्ड के ग्रामणी इलाकों के कबूतरा जन जाति के लोगों से पाठकों का परिचय करवाया है । इस प्रकार के उपन्यास ही मानवीय अनुभवों और मानवीय चेतना को एक व्याप देते हैं । जहाँ पाप-पुण्य के सतहीं ख्याल पानी के बुलबुलों की भाँति फूट जाते हैं ।

षष्ठ अध्याय में हमने यह दिखाने की चेष्टा की है कि किस तरह मैत्रेयी जी के उपन्यासों में उनके जीवनानुभव गूंथित-अनुगूंथित हुए हैं । उपर्युकत आत्माकथाओं में वर्णित जीवन संघर्ष और उनमें रसा-बसा जीवानुभव यहाँ मैत्रेयी की सहायता में आया है । थोड़े से वर्षों में मैत्रेयी जी ऐसे-ऐसे बृहदकाय, उपन्यास कैसे लिख गयीं उसका प्रत्युत्तर हमें यहाँ उपलब्ध होता है । लेखक दो तरह के होते हैं । एक वह जो जैसे-जैसे अनुभव प्राप्त होते हैं, उनको उपन्यासों और कहानियों में ढालते जाते है । प्रेमचंद, नागार्जुन, मटियानी आदि लेखक इसी प्रकार के है, दूसरा लेखक इसी प्रकार का हैं, दूसरे लेखन के मैदान में उतरते हैं । रेणु और मैत्रेयी इस कोटि में आते हैं । प्रस्तुत अध्याय में हमने यह विश्लेषित करने का प्रयास किया है कि देशकाल या परिवेश, चरित्र घटनाएँ जो आत्मकथाओं में वर्णित हुई हैं । उनके उपन्यासों में कलात्मक ढंग से संयोजित हुई हैं ।

आत्मकथाओं में जिया हुआ जीवन मैत्रेयी की बहुत बड़ी पूंजी है, जिसे उन्होंने अपने उपन्यासों में निवेशित की है ।

सप्तम् अध्याय "उपसंहार" का है । जिसमें हमने समग्र शोध-प्रबंध के सार-संक्षेप को प्रस्तुत करते हुए शोध-प्रबंध पर आधारित कतिपय निष्कर्षों को रखा है । यहाँ बहुत संक्षेप में शोध-प्रबंध की उपादेयता को दर्शाते हुए भविष्यत् संभावनाओं को भी संकेतित किया है ।

यह शोध-प्रबंध हमने हमारी मार्गदर्शिका डॉ. शन्नो पाण्डेय द्वारा निर्देशित शोध-प्रक्रिया और शोध-प्रविधि के अनुसार संपन्न किया है । प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में प्रास्ताविक के भीतर अध्यायगत मुद्दों का उल्लेख किया गया है । अध्याय के अंत में समग्रावलोकन की प्रक्रिया द्वारा अध्यायगत निष्कर्ष निकाले गए हैं । यह अध्यायगत निष्कर्ष शोध-प्रबंध के निष्कर्षों तक पहुँचने में सहायक होते हैं । अध्याय के अंत में हमने संदर्भानुक्रम रखा है, जिसमें लेखक का नाम, पुस्तक का नाम और पृष्ठ संख्या दर्ज किए गए है । शोध-प्रबंध के अंत में कुछ परिशिष्टों के अंतर्गत हमने सहायक ग्रंथ सूची-ग्रंथानुक्रमणिका (Bibliography) को प्रस्तुत किया है । जिसमें हमने यथासंभव सहायकग्रंथों के संस्करण भी दिए हैं । यहाँ पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख भी हुआ है, जिनका प्रयोग शोध-प्रबंध में हुआ है और जिन्होंने हमारी सोच और बौधिक परिपक्वता को रचा है ।

अंततः यह शोध-प्रबंध विद्वत्जनों के सम्मुख रहा है । हमारी सीमाओं –मर्यादाओं और अल्पज्ञता से हम अभिज्ञ है । अतः गलतियों और दोषों के लिए पहले से ही क्षमाप्रार्थी हैं ।

हमारी परम्परा में माता-पिता का स्थान सर्वोपरि है । मुझमें जो कुछ भी है, वह पाथेय है जो मुझे मेरे माता-पिता की ओर से मिला है । माता-पिता के ऋण से उऋण होना सौ जन्मों में भी संभव नहीं है । अतःयहाँ इस गुरुकार्य के निमित मैं अपने माता-पिता के आर्शीवादों की कामना करती हूँ ।

माता-पिता के पश्चात दूसरा स्थान हमारे गुरूओं का है । यहाँ मैं अपने उन तमाम गुरूओं के ऋण को स्वीकार करती हूँ, जिन्होंने मेरे मानसपट के निर्माण के किसी न किसी तरह का योगदान दिया है । यहाँ में गुजराती विभाग के विद्वान प्राध्यापक डॉ. भरत महेता साहब तथा हमारे विभाग के पूर्वअध्यक्ष प्रो. पारुकांत देसाई साहब को भी स्मरण करना चाहूँगी क्योंकि मुझे मैत्रेयी तक पहुँचाने में, मेरे मन में मैत्रेयी के साहित्य के प्रति जो ललक जागी और मैत्रेयी की ओर मेरा जो खिंचाव हुआ उसमें किसी-न किसी तरह का उनका योगदान रहा है ।

किन्तु इन सब में अपनी मार्गदर्शिका डॉ.शन्नो पाण्डेय का विस्मरण भला कैसे कर सकती हूँ ? उनेक बारे में वर्णन करने लिए शब्द भी शायद कम पड़ जाए । उनके निर्देश, प्रोत्साहन तथा कभी-कभी सख्त लगनेवाली पर अनुसंधित्सुओं के लिए उपयोगी ऐसी फटकार के बिना यह सारस्वत कार्य संभव नही था । उनके मुझ पर अनगिनत उपकार हैं । उनकी शिष्य वत्सलता से सभी परिचित हैं । उनके साथ बिताए शोधकार्य के अमूल्य क्षण मुझे हमेशा याद रहेंगे । यहाँ मैं तहेदिल से उनके प्रति आभार व्यकत करती हूँ ।

यह शोधकार्य कला-संकाय के हिन्दी-विभाग में संपन्न हुआ है । अतः विभागाध्यक्षा प्रो. शैलजा भारद्वाज को भी मैं अपना धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ । उन्होंने सदैव मुझे प्रोत्साहित किया है । विभाग के अन्य प्राध्यापक-प्रध्यापिकाओं में डॉ. कल्पना गवली, डॉ. दक्षा मिस्त्री,डॉ. ओमप्रकाश यादव, डॉ. एन.एस.परमार , डॉ.कनुभाई निनामा, डॉ.माया प्रकाश पांडे, डॉ. अनीता शुकला, डॉ. मनीषा ठक्कर तथा डॉ.जाड़ेजा साहब के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ ।

इस शोधकार्य के दौरान मुझे कई साथी-संगाथी भी मिले, जिनके साथ साहित्यिक चर्चा, विचार-विमर्श संगोष्ठियाँ में भाग लेना जैसी कई महत्वपूर्ण कार्य मैंने हँसी-खुशी किए, भला उन दोस्तों को मैं कैसे भूल सकती हूँ ? उनके साथ गुजरे, ये अमूल्य क्षण आजीवन मेरे स्मृतिपटल पर अंकित रहेंगे । उनमें सगीता चौधरी, कविता ठाकुर, स्मिता पालवा, गौतम पाटणवाडिया, निमिषा मिस्त्री, डॉ. रुपेश प्रजापति, गीता परमार, अपूर्वा जादव, अमीषा शाह, अमित विश्वकर्मा, कमलजीत सिंधा (संस्कृत विभाग) रेणू राजपूत, सचिन पटेल, परेश मकवाणा आदि का भी मैं धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ ।

म.स.विश्वविधालय की बी.एड. विभाग में कार्यरत डॉ.जयश्री दास, डॉ.छाया गोयल, प्रो.डी.आर.गोयल सर जिन्होंने मुझे शोधकार्य करने के लिए प्रेरित किया उनका भी मैं धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ । हमारे विश्वविधालय के सिंडीकेट सभ्य डॉ. दिनेशसिंह यादव का भी मैं आभार प्रकट करती हूँ । अंत में मराठी विभाग के डॉ. संजय करंदीकर सर का भी मैं धन्यवाद ज्ञापित करना चाहती हूँ ।

इस गुरुकार्य को पूर्ण करते हुए मुझे मेरे घर-परिवार का बहुत सहयोग मिला । मैं मेरे भैया भाभी और छोटी बहन पिंकी का भी आभार प्रकट करती हूँ । बुलबुल सी चहकती मेरे कलेजे की टुकड़ी, वर्षा की रिमझिम नन्ही बूंदो की तरह “नन्हीं रिमझिम” जिसे देखकर मेरी थकान दूर हो जाती है, उसको भी मैं यहाँ याद करना चाहूँगी । मेरे छोटे चाचा सत्यदेव यादव जिनका स्वप्न था “शोधकार्य” करना जो कि किन्ही कारणवश अधूरा रह गया और उनका यह स्वप्न परमपिता परमेश्वर की असीम अनुकंपा से मैंने पूर्ण किया अतः मैं मेरे छोटे चाचा का तहेदिल से शुक्रिया अदा करना चाहूँगी ।

मेरा यह शोधकार्य विश्वविद्यालय रिसर्च फेलोशीप की आर्थिक सहायता से संपन्न हुआ है। अतः इस प्रक्रिया से जुड़े सभी व्यक्तियों का मैं ऋण स्वीकार करती हूँ। अंत में समकालीन कवियों में सुविख्यात ऐसे सुकांत भट्टाचार्य की निम्न लिखित काव्यपंक्तियों के साथ विरमना चाहूँगी

"है महाजीवन यह कविता अब-
और नहीं,
अबकी बार लाओ कठिन कठोर गद्य
मिट जाए पद लालित्य की झनकार
गद्य के कठोर हथोड़े से करो वार
कविता भी स्निग्धता का अब कोई प्रयोजन नहीं कविते !
आज तुझे छुट्टी दी-
भूख के राज्य में पृथ्वी गद्यमय है
पूर्णिमा का चाँद मानो झुलसी हुई रोटी।
(मैंने अभी-अभी सपनों के बीज बोऐ थे। से साभार)

विनीत

पुष्पा यादव
शोध-छात्रा हिन्दी विभाग
म.स.विश्वविधालय.
बड़ौदा -३९०००२१.

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय	:	विषय प्रवेश.. १
द्वितीय अध्याय	:	हिन्दी आत्मकथा परिभाषा, विभावना और विकास ४०
तृतीय अध्याय	:	"कस्तूरी कुंडल बसै का विश्लेषणात्मक अध्ययन"....... ८३
चतुर्थ अध्याय	:	"गुड़िया भीतर गुड़िया" का विश्लेषणात्मक अध्ययन १२४
पंचम अध्याय	:	"मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन" १९५
षष्ठ अध्याय	:	"आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन" ३१०
सप्तम् अध्याय	:	उपसंहार...३६८

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय : विषय प्रवेश.. १

- ❖ प्रास्ताविक
- ❖ उपन्यास की परिभाषा
- ❖ उपन्यास के विभिन्न रूपबंध
- ❖ हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा
- ❖ हिन्दी उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा का योगदान
- ❖ निष्कर्ष
- ❖ संदर्भानुक्रम

द्वितीय अध्याय : हिन्दी आत्मकथा परिभाषा, विभावना और विकास ४०

- ❖ प्रास्ताविक
- ❖ आत्मकथा विधा : तत्व एवं अभिलक्षण
- ❖ आत्मकथा साहित्य की परंपरा
  - (क) हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाएँ
  - (ख) तत्कालीन नेताओं की आत्मकथाएँ
- ❖ समकालीन हिन्दी लेखिकाओं द्वारा प्रणीत आत्मकथाएँ
- ❖ नारी शिक्षा और नवजागरण - महात्मा गांधी के राजनीति प्रवेश के उपरांत हुए नारी सुधार विषयक आंदोलन
- ❖ महात्मा गांधी द्वारा सुधार प्रयत्न
- ❖ महिला संगठनों द्वारा सुधार प्रयत्न
- ❖ संवैधानिक सुधार प्रयत्न
- ❖ विविध क्षेत्रों की प्रथम महिलाएँ - नारी जागृति और कुछ लेखिकाएँ
- ❖ नारी जागृति विषयक पुस्तकें शिक्षा और नारी - विमर्श
- ❖ नारी - विमर्श और लेखिकाओं की आत्मकथाएँ
- ❖ निष्कर्ष
- ❖ संदर्भानुक्रम

तृतीय अध्याय : "कस्तूरी कुंडल बसै का विश्लेषणात्मक अध्ययन"....... ८३

- ❖ प्रास्ताविक
- ❖ कस्तूरी कुंडल बसै
- ❖ रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे
- ❖ उलट पवन कहाँ राखिये।
- ❖ जिह तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम
- ❖ तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा
- ❖ हम घर साजन आए
- ❖ दुल्हनियाँ गाओ री मंगलाचार
- ❖ कैसे नीर भरे पनिहारी?
- ❖ पानी में अगन जरै
- ❖ जो घर जारै आपनो......
- ❖ विश्लेषणात्मक दृष्टिपात
- ❖ संदर्भानुक्रम

चतुर्थ अध्याय : "गुड़िया भीतर गुड़िया" का विश्लेषणात्मक अध्ययन.... १२४

- ❖ गुड़िया भीतर गुड़िया
- ❖ काहे री नलिनी तु कुम्हलानी
- ❖ तेरा झूठा मीठा लागा
- ❖ जो पै पिय के मन नहिं भायी
- ❖ एक सुहागिन जगत पियारी
- ❖ जियरा फिरे उदास
- ❖ धिय सबै कुल खोयो
- ❖ तृषावंत जो होगया......
- ❖ मोरा मन मतबारा
- ❖ अखियाँ जान सुजान भई
- ❖ कहूँ रे जो कहिबे की होय
- ❖ मच्छी - रुखां चढ़ गई
- ❖ काजल केरी कोठरी
- ❖ पति संग जागी सुन्दरी
- ❖ यह तन जारों, मसि करों
- ❖ धरती बरसै, अंबर भीजै
- ❖ अन्तर भीगी आत्मा
- ❖ तन छूटे मन कहाँ समाई
- ❖ हम न मरहिं मारहि संसारा

❖ गुड़िया भीतर गुड़िया की विश्लेषणात्मक विवेचना
❖ निष्कर्ष
❖ संदर्भानुक्रम

पंचम अध्याय : "मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन" १९५

❖ प्रास्ताविक
❖ बेतवा बहती रही (१९९३)
❖ ईदन्नमम् (१९९४)
❖ चाक (१९९७)
❖ झूला नट (१९९९)
❖ अल्मा कबूतरी (२०००)
❖ अगनपाखी (२००१)
❖ विज़न (२००२)
❖ कहीं ईसुरी फाग (२००४)
❖ त्रिया हठ (२००५)
❖ गुनाह बेगुनाह (२०११)
❖ निष्कर्ष
❖ संदर्भानुक्रम

षष्ठ अध्याय : "आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन" ३१०

❖ प्रास्ताविक

(अ) कस्तूरी कुंडल बसै

❖ कस्तूरी कुंडल बसै में अभिव्यक्त कुछ विचार सूत्र

(आ) गुड़िया भीतर गुड़िया

❖ गुड़िया भीतर गुड़िया से निःसृत कुछ विचार सूत्र
❖ आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास
(1) स्मृतिदंश
(2) बेतवा बहती रही
(3) ईदन्नमम्
(4) चाक
(5) झूला नट

(6) अल्मा कबूतरी
❖ अन्य उपन्यास
❖ निष्कर्ष
❖ संदर्भानुक्रम

सप्तम् अध्याय : उपसंहार..३६८

❖ मूल्यांकन और उपसंहार
❖ परिशिष्ट
❖ ग्रन्थानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

प्रास्ताविक

यह तो एक सर्व – विदित एवम् सर्वग्राहय तथ्य है कि न केवल हिंदी साहित्य में, बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य में उपन्यास विद्या का आगमन 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हुआ है। उपन्यास कथा साहित्य का प्रकार है और जहाँ तक कथा साहित्य का संबध है, प्राचीनकाल से संस्कृत साहित्य में पंचतत्र, हितोपदेश, कथा सरित सागर, दशकुमार चरित आदि के रूप में हमें वह प्राप्त होता है। किन्तु जिसे आज "उपन्यास कहा जाता है उसका उस प्राचीन संस्कृत साहित्य के कथा साहित्य से कोई विशेष तालमेल नहीं बैठता है। वस्तुतः यह विद्या अंग्रेजी के "Novel" से अवतरित हुई है। हिन्दी साहित्य में हमें उपन्यास 19 वीं शताब्दी के आठवें या नवें दशक में सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। इस प्रकार देखा जाय तो हिंदी उपन्यास विद्या का इतिहास सौ-सवा सौ वर्षों से ज्यादा नहीं है। हमारे शोधप्रबंध का संबंध हिन्दी की समकालीन बहुचर्तित उपन्यास लेखिका मैत्रेयीपुष्पा के उपन्यासों से है। इधर मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा, दो खण्ड़ों में आयी है – "कस्तूरी कुण्डल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया"। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में हमारा उपक्रम मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का अध्ययन उनकी इन दो आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में करने का रहेंगा, क्योंकि प्रत्येक रचनाकार के जीवन में जो घटित होता है, उसकी गूंज कहीं - न - कहीं उनके कृतित्व में श्रृतिगोचर होती है। अतः प्रस्तुत अध्याय में हम उपन्यास को आधुनिक संदर्भो में परिभाषित करने का प्रयत्न करेंगे। विभिन्न औपन्यासिक आलोचकों ने उपन्यास की जो नाना परिभाषाएँ दी हैं, उन पर संक्षेप में दृष्टिक्षेप किया जाएगा। अतः उपन्यास की कुछेक अंग्रेजी परिभाषाओं पर विचार करने के उपरांत हम हिन्दी आलोचकों की परिभाषाओं पर भी विचार करेंगे। जैसे-जैसे उपन्यास विद्या का विकास होता गया वैसे – वैसे उपन्यास के विभिन्न प्रकार या रूपबंध भी हमारे सामने आते गये। उन पर भी संक्षेप में विचार किया जाएगा। हमारा शोध-प्रबंध मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास से सम्बद्ध है और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास हमें 20 वीं शताब्दी के अंतिम दशक में उपलब्ध होते हैं।

अतः प्रारंभ से लेकर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास में आगमन तक के औपन्यासिक विकास को भी, उसके विभिन्न सोपानों को चिन्हित करने का हमारा प्रयत्न रहेगा। हिंदी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव प्रेमचंद से प्राप्त हुआ। हिंदी उपन्यास में मानव चरित्र की पहचान करानेवाले वे पहले उपन्यासकार हैं, फलतः अधिकांश औपन्यासिक आलोचकों ने हिंदी उपन्यास की विकासयात्रा को निर्देशित करते हुए उसके विभिन्न कालखण्ड़ों को उनके ही नाम से अभिहित किया है, यथा – पूर्व प्रेमचंदकाल, प्रेमचंद काल, प्रेमचंदोत्तरकाल आदि-आदि। सन् 1947 में हमारा देश स्वाधीन हुआ। यह एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना है। जिसके प्रभाव से साहित्य भी अछूता नहीं रहा है। अतः 47 के बाद के सन् 60 तक के कालखण्ड़ को स्वातंत्र्योत्तर काल कहा गया है। स्वाधीनता से हमारे देश के लोगों को बहुत बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ थीं। परंतु आज़ादी के कुछ ही वर्षों में उन अपेक्षाओं पर पानी फिर गया और हमारा लोकतंत्र और हमारे नेता प्रजा की अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरे। अतः 60 के बाद के उपन्यासों में एक विशिष्ट मोड़ आता है, जिसके कारण हिन्दी साहित्य में 60 के बाद भी सभी विद्याओं को साठोत्तरी उपन्यास, साठोत्तरी कविता, साठोत्तरी नाटक के रूप में आलोचकों ने दिखाने का प्रयत्न किया है। यह साठोत्तरी उपन्यास काल लगभग सन् 1980 या अधिक से अधिक 1985 तक माना गया है। उसके बाद इधर के 15-20 वर्षो के उपन्यास साहित्य को समकालीन उपन्यास की संज्ञा दी गयी है। जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है। हमारा प्रयास मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों को उनकी आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का है। अतः बहुत संक्षेप में हमने पुष्पाजी के उपन्यासों का ब्यौरा भी यहाँ प्रस्तुत किया है, जिससे हिंदी उपन्यास साहित्य में उसके योगदान को लक्षित किया जा सके। प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम उपर्युक्त मुद्दों की छानबीन और पड़ताल का रहेगा। प्रस्तुत अध्याय के अंत में कतिपय निष्कर्षो को रखने का भी प्रयत्न होगा। संदर्भ संकेत को सूचित करने के प्रायः दो ढ़ंग हैं। एक में संदर्भ या पाद टिप्पणी को प्रत्येक पृष्ठ के नीचे दर्ज किया जाता है। दूसरी विधि में प्रत्येक पृष्ठ के नीचे संदर्भ संकेत न देते हुए उसे अध्याय के अंत में प्रस्तुत किया जाता है। हमने अपने शोध प्रबंध में इस दूसरी विधि का अनुसरण किया है।

उपन्यास की परिभाषा :-

उपन्यास इस नये युग की नयी विद्या है । यद्यपि उसकी परिगणना कथा साहित्य के अंतर्गत होती है, और हमारा प्राचीन कथा साहित्य काफी समृद्ध और सम्पन्न है, तथापि इस नयी विद्या का उस प्राचीन कथा साहित्य से कोई विशेष निस्बत नहीं है । उपन्यास और प्राचीन कथा साहित्य में कई दृष्टियों से अंतर है । मुख्य अंतर तो यह है कि जहाँ प्राचीन साहित्य सामंतवादी समाज की देन है, वहाँ यह नव्यत्तर साहित्य विद्या आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की देन है। उसमें कथा प्रायः देवी-देवताओं, राजा-महाराजाओं, राजकुमार-राजकुमारियों तथा श्रेष्ठीजनों के आस-पास केन्द्रित होती थी ; वहाँ उपन्यास में समाज के सभी वर्ग के लोगों की उपस्थिति होती है । इस लिए तो आंग्लविवेचक राल्फफोकस महोदय ने अपने औपन्यासिक आलोचनात्मक ग्रंथ का नाम "Novel and the People" रखा है । उपन्यास मूलतः पश्चिम की देन है । वहाँ भी उसका उद्‌भव "रेनेसा" के बाद ही हुआ है ।[1] यूरोप में जब गद्य तर्क-बितर्क, विमर्श आदि के उपर्युक्त हुआ तब वहाँ "Novel" का आविर्भाव हुआ । जान बनियन कृत अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास "द पिलिग्रम्स प्रोग्रेस" सन 1678 में मादाम द लफायेत कृत फ्रेंज का प्रथम उपन्यास "द प्रिन्सेस आफ क्लेबस" सन 1678 में, एरेडिश चैब कृत प्रथम रूसी उपन्यास "जर्नी फ्रोम पिट्स-बर्ग टु मोस्को" सन 1790 में जेम्स फेनीमोर-कूपर कृत प्रथम अमेरीकी उपन्यास "द पायोनियर्स" सन 1823 में प्रकाशित होता है ।[2] हमारे यहाँ 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नव जागरण के पश्चात समाज के ढाँचे में जो परिवर्तन हुए उसके परिणामस्वरूप उपन्यास का आर्विभाव हुआ, जो अंग्रेजी के "Novel" से प्रभावित है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवासदास कृत "परीक्षागुरू" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है ।[3] स्वयं लेखक ने इसे अंग्रेजी चाल की नयी पुस्तक कहा है ।[4] "परीक्षागुरू" का प्रकाशन वर्ष सन 1882 का है, अतः इधर जो नयी खोजें हुई हैं, उसके आधार पर डॉ.गणपति-चंद्रगुप्त, डॉ.सुरेश सिन्हा, डॉ.पारुकान्त देसाई आदि विद्वानों ने पंड़ित श्रद्धारामफुल्लोरी कृत "भाग्यवती" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना है ।[5] अभिप्राय यह कि 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हिन्दी में उपन्यास मिलने लगा है । भारतीय भाषाओं में भी लगभग इसके कुछ वर्षो पूर्व से उपन्यास मिलते हैं । भारतीय

भाषाओं में सर्वप्रथम हमें टेकचंदठाकुर कृत "आलालेर घरेर दुलाल" नामक बंग्ला उपन्यास सन 1857 में प्राप्त होता है। उसके कुछ महीने बाद बाबा पद्दमनजी कृत मराठी उपन्यास "यमुनापर्यटन" प्राप्त होता है। सन 1868 के आसपास नंदशंकर तुलजा शंकर मेहता कृत "करणघेलो" उपन्यास उपलब्ध होता है। अन्य भारतीय प्रथम उपन्यासों में ए.के.गर्नी कृत "कामीनीकांतर" असमिया उपन्यास वैकंटरत्नम् पंतुलकृत "महाश्वेता" नामक तेलुगु उपन्यास वेदेनायकम् पिल्लई कृत "प्रताप मुदलियर-चरितम्" नामक तमिल उपन्यास आर्चे डिकनके. कोशी द्वारा प्रणीत "पुलेली कंचु" नामक मलयालम उपन्यास आदि की परिगणना कर सकते है।[6] किन्तु यहाँ हमारा लक्ष्य उपन्यास की विकासयात्रा को निरूपित करना नहीं है, क्योंकि उस मुद्दे पर हम परवर्ती पृष्ठों में आ रहे है। यहाँ हमारा लक्ष्य उपन्यास को परिभाषित करने का है, हालांकि यह कार्य थोड़ा कठिन है। क्योंकि उपन्यास साहित्य की सभी विद्याओं में सर्वाधिक जटिल और लचीली विद्या है। उसने प्रायः गद्य के तमाम रूपों को अपने में आर्विभूत कर लिया है। फिर भी यदि हम परिभाषित ही करना चाहें तो उपन्यास विषयक जो परिभाषाएँ आंग्लविवेचकों ने दी है। उन पर बहुत संक्षेप में दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। आंग्लविवेचकों की परिभाषाओं को हम प्रथमतः विवेचित करते है, क्योंकि मूलतः इस विद्या का आर्विभाव पश्चिम में ही हुआ है। यहाँ कतिपय परिभाषाओं को सामने रखकर उनको विश्लेषित करने का हमारा प्रयास रहेगा –

(1) सर्वप्रथम हम न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में दी गयी परिभाषा को लेते है – Novel is a fictional prose of considerable length, in which actions & characters are proffessing to represent those of reyal life, are portrayed in a plot"[7] अर्थात उपन्यास प्रकथानात्मक गद्य की वह विद्या है जिसमें अपेक्षाकृत विस्तार के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाली घटनाओं और चरित्रों को एक कथाश्रृंखला में बांधा जाता है। प्रस्तुत परिभाषा में कुछ मुद्दे साफ हुए है। एक तो यह कि उपन्यास गद्य की विद्या है। दूसरी बात यह कि उसका एक विशिष्ट आकार-प्रकार होता है। तीसरी यह कि उसमें निरूपित घटनाएँ वा प्रसंग वास्तविक होने चाहिए। चौथी यह कि उसमें निरूपित पात्र भी वास्तविक एवम

स्वाभाविक लगने चाहिए । इन सब बातों को एक निश्चित Plot (कथानक श्रृंखला) में प्रस्तुत किया जाता है । हिन्दी में कथावस्तु और Plot में अंतर निर्धारित नहीं किया गया है। किन्तु अंग्रेजी आलोचना में कथावस्तु (Story) और Plot को उपन्यास के विभिन्न तत्त्वों के अंतर्गत रखा गया है। आंग्लविवेचक , E.M.Forster ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है – "A King died and then the queen died is a story, while a king died and then the queen died out of grief is a plot."[8] अभिप्राय यह कि Plot में कार्य-कारण श्रृंखला नियोजित रहती हैं। उपर्युक्त परिभाषा में इसे भी व्याख्यायित किया गया हैं, कि उपन्यास केवल कथावस्तु नहीं है पर उसकी विभिन्न घटनाओं को लेखक कार्यकारण श्रृंखला में आबद्ध करता है।

(2) उपर्युक्त परिभाषा के पश्चात आंग्लभाषा के मूर्घजन्य आलोचक राल्फ फॉक्स महोदय की परिभाषा को यहाँ उद्‌घृत किया जा रहा है – "A novel is not merly a fictional prose, It is a prose of man's life, The first art to attempt the man as a whole and give his expressions."[9] अर्थात उपन्यास केवल प्रकथानात्मक नहीं है। वह मानवजीवन का गद्य है। उपन्यास वह पहली कला है जिसमें मनुष्य को उसकी समग्रता के साथ चित्रित किया जाता है। उसमें मानवीय भावनाओं का चित्रण रहता हैं । प्रस्तुत परिभाषा में राल्फ फॉक्स महोदय ने निभ्रॉंत तरीके से स्पष्ट किया है, कि उपन्यास की भाषा मानव जीवन की भाषा होगी। सरल शब्दों में कहें तो उपन्यास की भाषा पात्रों की भाषा होगी, अर्थात-बोलचाल की भाषा, Spoken language होगी । श्रीमती इरावाल्फ फर्टे ने भी उपन्यास की भाषा के संदर्भ में यही बात कहीं है।[10] एक और महत्वपूर्ण बात यहाँ आलोचक महोदय ने कही है - वह यही कि उपन्यास में मानवचरित्र की यथार्थ छबि प्रस्तुत होनी चाहिए। मनुष्य में अच्छाइयाँ भी होती है और बुराइयाँ भी मनुष्य के ये दोनों रूप उसके चरित्र चित्रण में आने चाहिए।

(3) प्रोफेसर Herbert.J.Mullar ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है – "Novel is Typically Representation of human experience, whether ideal or

libral, and therefore it is a comment upon life."[11] अर्थात उपन्यास में मूलतः मानव जीवन के अनुभवों का चित्रण रहता है । यह चित्रण यथार्थवादी भी हो सकता है और आदर्शवादी भी और इसलिए हम उपन्यास को मानवजीवन पर की गयी टिप्पणी कह सकते है । प्रस्तुत परिभाषा में Herbert महोदय ने भी मानवजीवन के अनुभवों के चित्रण की बात कहीं है, यद्यपि वे कहते है कि मानवजीवन का ये निरूपण दोनों ढंग से हो सकता है । आदर्शवादी ढंग से भी और यथार्थवादी ढंग से भी । अतः उपन्यास में मानवजीवन के चित्रण का गंभीर विश्लेषण रहता है । आंग्ल आलोचक, पोप का कथन है – "Study of man is a man". अर्थात मानवजीवन का अध्ययन करना हो तो किसी मनुष्य को सामने रखकर उसका अध्ययन किया जा सकता है । पोप महोदय की बात को हम उपन्यास के संदर्भ में भी कह सकते है कि किसी देशकाल के मनुष्य का वास्तविक अध्ययन करना हो तो उस देशकाल पर आधारित उपन्यास का अध्ययन करना चाहिए । कदाचित् इसीलिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते थे कि उत्तर-भारतीय ग्रामीणजीवन को यदि आप जानना चाहते है तो प्रेमचंद से बढ़िया दूसरा कोई परिचायक नहीं हो सकता ।[12]

(4) अंग्रेजी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के जनक हेनरी जेम्स महोदय ने उपन्यास को इस प्रकार परिभाषित किया है –"A Novel in it's broddest definition a personal, direct experiences of life." अर्थात उपन्यास अपनी व्यापकतम् परिभाषा में मानवजीवन के वैयक्तिम एवम प्रत्यक्ष अनुभवों का यथार्थ चित्रण है । जेम्स महोदय की इस परिभाषा में उन्होंने दो बातों पर विशेषजोर दिया है । - एक तो यह कि उपन्यासकार उपन्यास में जिन अनुभवों का वर्णन करता है वे अनुभव उसके अपने होते है । अर्थात किसी दूसरे के नहीं या सुने सुनाये हुए नहीं और दूसरी बात यह कि ये अनुभव प्रत्यक्ष अनुभव होते है । परोक्ष नहीं । अर्थात कहीं पढ़े हुए या किसी द्वारा सुने हुए नहीं । दूसरे शब्दों में कहें तो वे यहाँ पर First hand अनुभवों की बात करते है । Second hand or third hand नहीं । इसके द्वारा हेनरी जेम्स महोदय यह कहना चाहते है कि उपन्यासकार जिस जीवन का चित्रण कर रहा है । उसको उसे प्रत्यक्षदर्शी अनुभव होना चाहिए । उसमें निरूपित

पात्रों (लोगों) से उसका नजदीकी सरोकर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो हिन्दी आलोचक जिसे भोगा हुआ यथार्थ कहते है उसका वर्णन यहाँ होना चाहिए। प्रेमचंद, रेणु, नागार्जुन और मटियानी जैसे लेखकों में हमें यह जमीनी रिश्ता दृष्टि-गोचर होता है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का यदि हम समग्रावलोकन करें तो एक तथ्य हमारे सामने आये बिना नहीं रहता है। लगभग तमाम विद्वानों ने एक स्वर और सूर में कहा है कि उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण होना चाहिए और यह चित्रण जितना ही यथार्थ होगा उपन्यास उतना ही श्रेष्ठ होगा। उपन्यास में जीवन की हूबहू, तस्वीर उभरकर आनी चाहिए। उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक को यह एहसास बराबर होना चाहिए कि वास्तविक जीवन ऐसा ही होता है। यदि उपन्यास को पढ़कर ऐसा प्रतीत हो कि यह तो किस्से कहानियों में ही होता है, वास्तविक जीवन में ऐसा कुछ नहीं होता, तो उस उपन्यास को हम सफल उपन्यास नहीं कह सकते। इस प्रकार उपन्यास की कला वास्तव की कला है, यथार्थ की कला है और जो उपन्यासकार जीवन में जितना ही ज्यादा गहरा उतरा होता है वह उतना ही सफल उपन्यासकार हो सकता है। जीवन के सीधे प्रत्यक्ष अनुभवों के बिना उपन्यास को लिखना संभव ही नहीं है। इस प्रकार उपन्यास एक यथार्थधर्मी विद्या प्रमाणित होती है।

उपर्युक्त आंग्ल विवेचकों की परिभाषा के बाद हम हिन्दी के विद्वानों की कतिपय परिभाषाओं पर भी विचार कर लेते हैं-

(1) सर्वप्रथम हम बाबू श्यामसुंदरदास की परिभाषा को लेते है। उन्होंने उपन्यास को परिभाषित करते हुए कहा है कि "उपन्यास, मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"[13] डॉ.साहब की प्रस्तुत परिभाषा में उन लोगों के प्रश्न का उत्तर है जो यह कहते हैं कि उपन्यास यदि यथार्थ का ही चित्रण है तो उसमें उपन्यासकार के रचनाकर्म का क्या? तो फिर हम उपन्यासकार को एक सृजक या सृष्टा क्यों कहें? उन्होंने इसी बात का मानों उत्तर दिया है कि उपन्यास में वास्तविक जीवन का चित्रण होता है परंतु उसकी कथा काल्पनिक होती है। मुंशी प्रेमचंद ने जब गोदान लिखा होगा तो उनके सामने कोई होरी या धनियाँ नहीं रहे

होंगे-बल्कि उन्होंने होरी जैसे और धनियाँ जैसे कई लोगों को देखा होगा और उसके आधार पर उन्होंने होरी या धनियाँ की मूर्ति को तराशा होगा। अभिप्राय यह कि जीवन वास्तविक है पर उसे काल्पनिक कथा के माध्यम से लेखक प्रस्तुत करता हैं और इसी अर्थ में वह कला है। राल्फ फॉक्स महोदय ने बहुत स्पष्ट तरीके से कहा है कि उपन्यास वह पहली कला है जिसमें मनुष्य को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का अर्थ ही यथार्थता के साथ प्रस्तुत करने का है।

(2) दूसरी परिभाषा हम उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की दे रहे है। प्रेमचंदजी ने उपन्यास को पारिभाषित करते हुए लिखा है-"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानवचरित्र के रहस्यों को समझना और उस पर प्रकाश डालना ही उपन्यासकार का कार्य है।[14] इस परिभाषा में प्रेमचंदजी स्पष्ट करते हैं कि उपन्यास कथामात्र नहीं है। उपन्यास में मानव चरित्रों का चित्रण होना चाहिए। "मानव चरित्र" से प्रेमचंदजी का अभिप्राय मनुष्य का यथार्थ चित्रण से है। मनुष्य में अच्छाइयाँ भी होती है और बुराइयाँ भी होती है। अच्छे से अच्छे मनुष्य में बुराइयाँ हो सकती है और बुरे से बुरे मनुष्य में अच्छाइयाँ हो सकती है। राल्फ फॉम्स महोदय इसी बात को मनुष्य का समग्र चित्रण कहते है। दूसरी बात और बडी महत्वपूर्ण बात प्रेमचंदजी यहाँ यह कहते है कि यह मानवचरित्र का चित्र है। चित्र कभी 100 प्रतिशत मूल के बराबर नहीं होता है। चित्र प्रयत्न है। प्रेमचंदजी इसके द्वारा यह कहते है कि उपन्यासकार भी मानवचरित्र का चित्र बनाता है यह उसका प्रयत्न है, जितना ही ज्यादा वह उसके करीब जाएगा उतना उसे सफल माना जाएगा और इसीलिए यह कला है। तीसरी बात प्रेमचंदजी कहते है कि उपन्यासकार का कार्य इस मनुष्य के चरित्र का उद्घाटन है। इस प्रकार प्रेमचंदजी ने पहली बार हिन्दी उपन्यास को मानवचरित्र के साथ जोड़ा है। इसीलिए प्रेमचंदजी मानते है कि उपन्यासकार को मनुष्य के व्यवहार के मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए।

(3) तीसरी परिभाषा हम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की लेते है। उन्होंने उपन्यास की बडी संक्षिप्त सी परिभाषा दी है-"उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने

का प्रयास रहता है ।[15] यहाँ आचार्य द्विवेदीजी बिल्कुल स्पष्टता से कहते है कि उपन्यास में संसार का वास्तविक यथार्थ चित्रण होना चाहिए । समाज में अच्छे लोग भी होते हैं, बुरे लोग भी होते है और उपन्यास में उनकी अच्छाइयाँ और बुराइयों का लेखाजोखा होता है ।

(4) चौथी परिभाषा हिन्दी साहित्यकोश की है । उसमें बताया गया है – "यह शब्द "उप" (समीप) तथा "न्यास" (थाती) के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ (मनुष्य के) निकट रखी हुई वस्तु अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है ।[16] यहाँ भी वही बात कही गयी है कि उपन्यास में जीवन सा यथातथ्य चित्रण होता है । उपन्यास को पढ़कर यह प्रतीति होनी चाहिए कि यह हमारी ही कहानी है । "हमारी" शब्द का अर्थ यहाँ व्यापक रूप से लेना है । नागार्जुन जब "वरूण के बेटे" उपन्यास लिखते है, उसमें बिहार के मछुआरों के जीवन का चित्रण मिलता है । कोई कहे कि यह हमारा जीवन थोडी है? तो यहाँ अभिप्राय यह है कि उपन्यास में निरूपित जीवन समाज के किसी-न-किसी वर्ग से सम्बद्ध होता है ।

(5) पाँचवी परिभाषा हम द्विवेदीजी के शिष्य डॉ.एस.एन.गणेशन की लेते हैं । उन्होंने उपन्यास को परिभाषित करते हुए लिखा है-"उपन्यास मनुष्य के सामाजिक, वैयक्तिक अथवा दोनों प्रकार के जीवन का रोचक साहित्यिक रूप है जो प्रायः एक कथासूत्र के आधार पर निर्मित होता है ।[17] यहाँ पर डॉ.एस.एन.गणेशन ने यह स्पष्ट किया है कि उपन्यास में या तो सामाजिक यथार्थ होता है, या वैयक्तिक यथार्थ होता है । सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का प्राधान्य रहता है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से वैयक्तिक यथार्थ का प्राधान्य होता है । परंतु, जो श्रेष्ठ प्रकार के उपन्यास होते है जिनको हम "क्लासिक" उपन्यास या "Apic novel" कहते हैं, वहाँ पर ये दोनों प्रकार के यथार्थ का चित्रण मिलता है । मुंशी प्रेमचंद कृत "गोदान" इसका श्रेष्ठ उदाहरण है । दूसरी बात डॉ.गणेशन यह कहते हैं कि उपन्यास कला साहित्य का प्रकार होने के कारण उसमें रोचकता होनी चाहिए । यदि रोचकता नहीं होगी तो उपन्यास की पठनीयता में व्याघात होगा । तीसरी और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि

उपन्यास किसी कथा सूत्र (Theme) को लेकर चलता है। उपन्यासकार का लक्ष्य केवल कथा कहना नहीं है। उपन्यासकार का दायित्व थोडा और ऊँचा है। वह अपने उपन्यास के द्वारा कुछ कहना चाहता है। समाज को कोई संदेश देना चाहता है। उपन्यास के कथासूत्र या theme में ही यह संदेश होता है। जैसे "निर्मला" उपन्यास में लेखक दहेजप्रथा तथा अनमेलविवाह के दुष्परिणामों को रेखांकित करते है, तो "गोदान" उपन्यास में लेखक कृषकों की दयनीय अवस्था के मूलभूत कारणों की पड़ताल करते है।

इसी प्रकार उक्त परिभाषाओं से भी यही प्रमाणित होता है कि उपन्यास एक यथार्थधर्मी विद्या है। उपन्यास में समाज या व्यक्ति के यथार्थ जीवन को चित्रित किया जाता है। उपन्यास को यथार्थ पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए उसमें देशकाल, कथोपकथन, भाषाशैली आदि उपन्यास के अन्य तत्त्वों का चित्रण भी यथार्थ ढंग से किया जाता है।

उपन्यास के विभिन्न रूपबंधः-

उपन्यास में मूलतः मानवजीवन या समाज जीवन का चित्रण होता है। उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है। अतः कथा तो उसकी रीढ है। प्रारंभिक उपन्यास कथावस्तु प्रधान ही होते थे। परंतु ज्यों-ज्यों उपन्यास का विकास होता गया, त्यों-त्यों उसके विभिन्न प्रकार या रुपबंध सामने आये। उपन्यास के इन विभिन्न रुपबंधों पर हम संक्षिप्त में विचार करेंगें।

(1) **सामाजिक उपन्यास**:- हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ ही सामाजिक उपन्यासों को लेकर हुआ है। पंडित श्रद्धारामफुल्लोरी कृत "भाग्यवती" हिन्दी का प्रथम उपन्यास है, जिसमें नारीशिक्षा की बातों को निरुपित किया गया है। उपन्यास में कथा होती है, तो पात्र होते हैं और ये पात्र आकाशगामी तो नहीं होते? उनका कोई न कोई समाज होता है। अतः उपन्यास मूलतः तो सामाजिक ही होता है। परंतु बाद में दूसरी प्रवृत्तियों की प्रधानता के कारण उसके कुछ नये रुपबंध सामने आये। यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य रहेगा कि गुजराती का प्रथम उपन्यास "करण घेलो" ऐतिहासिक उपन्यास है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ

जहाँ सामाजिक उपन्यासों से हुआ है, वहाँ गुजराती उपन्यास का प्रारंभ एक ऐतिहासिक उपन्यास से हुआ है । सामाजिक उपन्यासों में समाज के प्राण-प्रश्नों की और समाज की विभिन्न समस्याओं की चर्चा केन्द्र में रहती है । नवजागरण के कारण अनेक समस्याएँ लेखकों के सामने आयीं जैसे नारीशिक्षा की समस्या, दहेजप्रथा की समस्या, अनमेलविवाह की समस्या, जात-पाँत की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या आदि-आदि । अतः प्रेमचंद पूर्वकाल के सामाजिक उपन्यासकारों ने इन मुद्दों को लेकर उपन्यासों की रचना की थी । बाद में प्रेमचंद ने सामाजिक उपन्यासों को उनका वास्तविक गौरव प्रदान किया था । वस्तुतः सचमुच के सामाजिक उपन्यास हमें प्रेमचंद से ही मिलते है । हिन्दी के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में हम "परीक्षागुरु", "सौ अजान एक सुजान", "स्वतंत्ररमा परतंत्र लक्ष्मी", "सेवासदन", "गोदान", "निर्मला", "रंगभूमि", "कर्मभूमि", "गिरती दीवारें", "बूँद और समुद्र", "अमृत और विष", "लोहे के पंख" आदि की गणना कर सकते है ।[18]

(2) **<u>ऐतिहासिक उपन्यासः</u>**- जहाँ उपन्यास की कथावस्तु के केन्द्र में कोई ऐतिहासिक वृत्तांत होता है तो उसे हम ऐतिहासिक उपन्यास कह सकते है । ऐतिहासिक उपन्यास की कथा ऐतिहासिक होती है । उसके पात्र भी ऐतिहासिक और विख्यात होते है । यद्यपि यथार्थ पृष्ठभूमि के निर्माणहेतु उपन्यासकार उन ऐतिहासिक पात्रों में कुछ काल्पनिक पात्रों को मिला देते हैं । यहाँ किसी को प्रश्न हो सकता है कि "इतिहास" और "ऐतिहासिक उपन्यास" में क्या अंतर है? इतिहास जहाँ शुष्क नीरस तथ्यों से भरा हुआ होता है । वहाँ ऐतिहासिक उपन्यासकार उसको कथारुप देते हुए उसमें रोचकता उत्पन्न करते है । ऐतिहासिक उपन्यासों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री जिसे "इतिहास रस" कहते है ।[19] उसकी सृष्टि होती है । इतिहास में लेखक ऐतिहासिक तथ्यों के साथ छेड़खानी नहीं कर सकता । यथातथ्यता उसका मुख्य गुण है । जबकि ऐतिहासिक उपन्यासों में मूलकथा को हानि न पहुँचाते हुए कुछ तथ्यों में परिवर्तन किये जा सकते है । ऐतिहासिक उपन्यासों में 70-80 प्रतिशत इतिहास और 20-30 प्रतिशत कल्पना होती है । ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि के लिए

उपन्यासकार को इतिहास का भलीभाँति ज्ञान होना चाहिए और कई बार उसे ऐतिहासिक तथ्यों की खोज के लिए उपन्यास की सृष्टि के पूर्व भरपूर शोध-कार्य (Research) भी करना पड़ता है । प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा के संदर्भ में कहा जाता है कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि के पूर्व वे कई-कई वर्षो तक उपन्यास विषयक सामग्री की खोज में लगे रहते थे। इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध आंग्ल उपन्यासकार जायसकैरी कहते है – "Mr.Cary explained that he was now 'Plotting' book. There was research yet to be done. Research, he explained, was sometimes a bore, but it was necessary for getting the political and social background of his work right."[20] अर्थात ऐतिहासिक उपन्यास के लिए इतिहासपरक तथ्यों के आविष्कार हेतु शोधकार्य करना ही पडता है । फिर भले ही उसमें बोरियत का अनुभव हो । ऐतिहासिक उपन्यासों का उद्दभव भी पूर्व प्रेमचंदकाल से हो गया था । परंतु पूर्व प्रेमचंदकाल के उपन्यास सचमुच के ऐतिहासिक उपन्यास न होकर ऐतिहासिक रमाख्यान "Histrotical Romances" है ।[21] वस्तुतः वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात भी प्रेमचंद युग में वृंदावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे लेखकों से हो गया था । पूर्व प्रेमचंदकाल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयराम-दासगुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा, बलदेवप्रसाद मिश्र, आदि मुख्य हैं ।[22] किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है उसके उपन्यासों को ऐतिहासिक रमाख्यान कहना ही उचित रहेगा । वास्तविक ऐतिहासिक उपन्यास हमें प्रेमचंद तथा प्रेमचंरोत्तर युग में प्राप्त होते है । प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकारों में हम वृंदावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ.भगवती शरण मिश्र, डॉ.शिवप्रसाद सिंह आदि की गणना कर सकते है । और उनके चर्चित उपन्यास क्रमशः इस प्रकार हैं – विराटा की पद्मिनी; मृगनयनी; झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई; जय सोमनाथ; वैशाली की नगरवधू; सोना और खून; बाणभट्ट की आत्मकथा; चारुचंद्रलेख;

अमीता दिव्या; सिंह सेनापति; जय योध्देय; पहला सूरज; पीताम्बरा; गुरु गोविंदसिंह; नीला चाँद ।

(3) **मनोवैज्ञानिक उपन्यासः**- मनोवैज्ञानिक उपन्यास होते तो सामाजिक उपन्यास ही है । परंतु उनमें प्रायः मनोवैज्ञानिक समस्याओं, मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों और मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरुपण होता है । सामाजिक उपन्यासों में जहाँ सामाजिक समस्याओं का विस्तार होता है, वहाँ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार अपने उपन्यास में मनोवैज्ञानिक स्थितियों और मनोवैज्ञानिक क्षणों को तलाशते है । डॉ.देवराज उपाध्याय ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के संदर्भ में लिखा है- "यदि किसी उपन्यास में घटना या अनुभूति के आत्मनिष्ठरुप को अभिव्यक्ति पर आग्रह पाएंगे तो उसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहेंगे ।"[23] यहाँ डॉ.देवराज इस बात पर जोर देते हैं कि सामाजिक उपन्यास में समाज के बाह्य यथार्थ का चित्रण होता है, जबकि मनोवैज्ञानिक उपन्यास में किसी घटना में अंतर्निहित आंतरिक यथार्थ को विशेषतः लिया जाता है । डॉ.पारुकांत देसाई ने इस संदर्भ में लिखा है-"हिन्दी उपन्यासों का विकास क्रम घटना से चरित्र और चरित्र से व्यक्ति और व्यक्ति से मन की तरफ होता गया है । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अचेतन मन की अछूति अनचिन्ही गहराइयों एवम् जटिलताओं की परतों को उधेड़ना का कलात्मक उपक्रम रहता है । इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उपन्यास के अन्य प्रकारों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण नहीं होता । इसके बिना तो अच्छे उपन्यास संभव ही नहीं । परंतु मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में तो उपन्यासकार का मुख्य प्रतिपाद्य ही मनोवैज्ञानिक वस्तु पात्र एवम क्षण है । जिन बाह्य घटनाओं और संघर्षो का चित्रण सामाजिक उपन्यासकार अंत्यंत विस्तार के साथ करता है, हो सकता है, मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार उन्हें छोड़ दे या अंत्यंत संक्षेप में उनका वर्णन कर दें ।[24] मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंद युग में जेनेन्द्र एवम् इलाचंद्रजोशी द्वारा हो गया था । परंतु उनका अधिक विकास प्रेमचंदोत्तर युग में हुआ है । प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में हम जैनेन्द्रकुमार, इलाचंद्रजोशी, डॉ.देवराज, अज्ञेय, डॉ.रघुवंश, उषा प्रियवंदा, कृष्णासोबती, राजकमल चौधरी, रमेश बक्षी, निर्मल वर्मा आदि की

गणना कर सकते है और उनके चर्चित उपन्यासों में क्रमशः निम्नलिखित उपन्यासों का उल्लेख कर सकते है – त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी, मुक्ति-बोध, दशार्क, प्रेत और छाया, जहाज के पंछी, भीतर-बाहर, भीतर का घांव अजय की डायरी, शेखर एक जीवनी भाग : 1, 2, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी, तंतुजाल, पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, सूरजमुखी अंधेरे के, मित्रो मरजानी, मछली मरी हुई, अट्ठारह सूरज के पौधे, बैसाखियों वाली इमारत, वे दिन, लालटीन की छत आदि-आदि ।

(4) **समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यासः**- उपन्यास के रुपबंधों के संबंध में एक रोचक तथ्य यह हैं कि उपन्यास के प्रायः रुपबंध उनके अलग अलग तत्त्वों से निष्पन्न हुए है । समाजवादी या मार्क्सवादी उपन्यास का संबंध विचारधारा या जीवनदर्शन से है । इन उपन्यासों में समाजवादी-मार्क्सवादी जीवन दृष्टि को केन्द्र में रखा जाता है । जिस प्रकार जहाज का पंछी उड़कर पुनः जहाज पर ही आ जाता है ठीक उसी प्रकार मार्क्सवादी समाजवादी उपन्यासकार पात्र निरुपण में कथोपकथन में विचारदृष्टि के निरुपण में किसी न किसी तरह से मार्क्सवादी विचारधारा को ले आते है । अतः वे उपन्यास का विषय वस्तु ही ऐसा चुनते है जिसमें उनको अपने विचारों की प्रस्तुति के लिए पूरी गुंजाईश रहती है । मार्क्सवादी विचारधारा सर्वहारा की विचारधारा है । अतः दलित, पीड़ित, शोषित वर्ग की और इन लोगों की विशेष सहानुभूति होती है और इसमें वे कुछ ऐसे तेजस्वीपात्र रचते हैं जिन के द्वारा मार्क्सवादी विचारधारा प्रस्तुत होती रहती है । उदाहरणतया गोदान के प्रोफेसर मेहता, वरुण के बेटे की माधुरी, बलचनमा का बल-चनमा आदि-आदि । मार्क्सवादी लेखक मानते हैं कि धर्म और शास्त्र के नाम पर दलितों ओंर नारियों का शोषण हुआ है । अतः वे इन दोनों को नकारते है, बल्कि धर्म का तो वे अफीम का नशा कहते है । दलितों के साथ वे नारियों को भी शोषित वर्ग में ही रखते है और उनकी शिक्षा तथा अधिकार के लिए वे निरंतर लड़ते रहे है । वस्तुतः समान कार्य के लिए समान प्रकार का वेतनमान की माँग मूलतः मार्क्सवादियों की ही माँग थी । जिसके फलस्वरुप इस संदर्भ में अब कोई भेदभाव नहीं बरता जाता । मार्क्सवाद श्रम के महत्त्व को मानता है और

श्रमिकराज्य की कल्पना करता है । धर्म, शास्त्र, परंपरा और रुढ़ियों के नाम पर जहाँ भी किसी मनुष्य का शोषण हुआ है । मार्क्सवादी विचारक उनका विरोध करते है । हिन्दी के मार्क्सवादी उपन्यासकारों में यशपाल, राहुल सांस्कृत्यायन, डॉ.रांगेय-राघव, नागार्जुन, आदि मुख्य हैं और उनके उपन्यास क्रमशः इस प्रकार है-"दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, झूठा-सच, जय यौध्येय, सिंह सेनापति, कब तक पुकारुँ, बलचनमा, वरुण के बेटे, इमरतियाँ आदि-आदि ।

(5) **पौराणिक उपन्यासः**- जहाँ किसी उपन्यास की कथा-वस्तु को पुराणों से लिया जाता है, वहाँ पौराणिक उपन्यास की सृष्टि होती है । दूसरे शब्दों में कहें तो पौराणिक उपन्यास की कथावस्तु पौराणिक वृत्तांत पर आधारित होती है । यहाँ एक स्पष्टता करना बहुत आवश्यक है कि इतिहास और ये दो अलग-अलग विभावनाएँ है और इस लिए ऐतिहासिक उपन्यास भी अलग होते है और पौराणिक उपन्यास भी अलग होते है । ऐसा इस लिए कहना पड़ रहा है कि हिन्दी के बहुत से विद्वान पौराणिक उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यास के खाते में डालते रहे है । डॉ.रामदरश मिश्र ने अपने आलोचना ग्रंथ "हिन्दी उपन्यास एक अंतयात्रा में डॉ.नगेन्द्र कोहली के "दीक्षा और अवसर" आदि उपन्यासों को ऐतिहासिक उपन्यास के वर्ग में रखा है ।[25] वस्तुतः उपर्युक्त दोनों उपन्यास "रामायण" के वृत्तांत पर आधारित है । बाद में डॉ.कोहली ने रामायण की कथावस्तु को आगे बढ़ाते हुए "संघर्ष की ओर" तथा "युद्ध" नामक और दो उपन्यास लिखे है । इस प्रकार रामायण की कथावस्तु को लेकर उन्होंने चार उपन्यासों की रचना की है । बाद में महाभारत के वृत्तांत को लेकर उन्होंने महासमर भाग 1 से 8 की रचना की है । स्वयं डॉ.नरेन्द्र कोहली ने अपने उपन्यासों को पौराणिक उपन्यासों की संज्ञा दी है ।[26] वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासों और पौराणिक उपन्यासों में उतना ही अंतर है जितना इतिहास और पुराण में है । हमारा इतिहास अभी तीन साढे तीन हजार साल पुराना है । उसके पहले की घटनाओं को हम पुराण कहते है । अब तो Mythology के रुप में एक अलग शास्त्र ही विकसित हो चला है । भविष्य में रामायण या महाभारतकाल पर वैज्ञानिक तरीके से इतिहास परक खोज हो और उनकी ऐतिहासिकता साबित हो जाय तब हम उसको इतिहास कहेंगे अन्यथा

उनकी गणना पुरानकाल में ही होगी । इतिहास का एक अहम लक्षण है उसकी काल क्रमिकता वहाँ पर घटनाओं की कालक्रम को श्रृंखलाबद्ध तरीके से प्रस्तुत करना पड़ता है । वहाँ पर वर्षो और तारीखों का महत्त्व होता है जबकि पुराणों में कालक्रमिकता विषयक कोई विभावना नहीं है । दूसरे ऐतिहासिक घटनाओं में तार्किकता होती है जबकि पुराणों के प्रायः चमत्कारपूर्ण घटनाओं को स्थान दिया जाता है । अभिप्राय यह है कि इतिहास और पुराण में दो अलग विभावना है और इसलिए पौराणिक उपन्यासों को ऐतिहासिक कहना उचित नहीं है । अब किसी को यह प्रश्न हो सकता है कि उपन्यास तो यथार्थधर्मी विद्या है फिर पौराणिक कथावृत्त उसमें किस प्रकार आ सकता है? उसका उत्तर यह है कि पौराणिक उपन्यास भी उपन्यास होता है, वह पौराणिक आख्यान नहीं है अतः उसे भी यथार्थ की कसौटी पर खरा उतरना होता है । अतः पौराणिक उपन्यासकार चमत्कारपूर्ण घटनाओं तथा मिथक कथाओं की व्याख्या उनका अर्थघटन वैज्ञानिक तर्क संगत यथार्थ तरीके से करते है ।

उदाहरणतया डॉ.नरेन्द्र कोहली ने रामायण पर आधारित पौराणिक उपन्यासों में संपूर्ण अहिल्या कथा को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है । अहल्या आघात के कारण संज्ञा शून्य और विक्षिप्त सी हो गयी है । मानों पत्थर की शिला बन गयी है । उसी तरह उनकी उपन्यासमाला के हनुमानजी भी उड़कर नहीं, अपितु समुद्र के स्थितया[27] भाग से संतरण करते हुए लंका पहुँचते है । भीम हनुमान प्रसंग को भी उन्होंने अपनी महाभारत उपन्यास माला में तर्क संगत रुप से प्रस्तुत किया है । उपन्यास में भीम को उस प्रकार का स्वप्न आता है । चर्चित पौराणिक उपन्यासों में "व्यम रक्षा": (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) अनामदास का पोथा (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी) प्रथम पुरुष (भगवती चरण मिश्र) सुतोवासोपुत्रोवा (डॉ.बच्चन सिंह) तथा डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामायण एवम महाभारत के वस्तु पर आधारित पौराणिक उपन्यास आदि की गणना कर सकते है ।

(6) **आंचलिक उपन्यासः**- जो उपन्यास किसी अंचल विशेष से सम्बद्ध होता है उसे आंचलिक उपन्यास कहा जाता है । अब यहाँ प्रश्न यह होता है कि अंचल या

प्रदेश विशेष तो प्रत्येक उपन्यास का एक अनिवार्य तत्त्व होता है, तो क्या प्रत्येक उपन्यास आंचलिक होगा? वस्तुतः सन 1954 में फणीश्वरनाथ कृत उपन्यास "मैला आँचल" के प्रकाशन के पश्चात ही प्रस्तुत रुपबंध का नामकरण हुआ है। स्वयं रेणुजी ने पंथजी की एक कविता का हवाला देकर अपने उपन्यास को आंचलिक कहा है। वस्तुतः प्रत्येक उपन्यास में वातावरण या "देशकाल" का तत्त्व होता है। देशकाल में दो बातें होती हैं – देश अर्थात प्रदेश अर्थात कोई स्थान विशेष और काल अर्थात समय। अतः यह तत्त्व तो सभी उपन्यासों में होता है। परंतु आंचलिक उपन्यास में यह तत्त्व अन्य तत्त्वों की तुलना में अपेक्षा कृत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जहाँ पर किसी अंचल विशेष का चित्रण उसकी समग्रता में होता है, वहाँ उसे आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाएगी। "समग्रता से" के पीछे हमारा अभिप्राय यह है कि उसमें उस अंचल की तमाम छोटी से छोटी ओर बड़ी से बड़ी विशेषताओं को चित्रित किया जाएगा। अर्थात वह अंचल, उसके लोग, उसकी विभिन्न टोलियाँ, विभिन्न जातियाँ, उनकी बोली ठोली, उनके विश्वास – अविश्वास उनकी मान्यताएँ, तीज-त्योहार, खेत-खलिहान, मैले-ठेले, नदी-निर्झर, वन-उपवन आदि तमाम बातों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्योरें ऐसे उपन्यासों में दिये जाते है। यहाँ भाषा भी मानक हिन्दी रहकर आंचलक बोली के रुप में आती है। केवल लेखकीय टिप्पणियाँ मानक भाषा में हो सकती है। गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि आलोचक उमाशंकर जोशी ने मैला आंचल उपन्यास की आलोचना करते हुए उसमें निरुपित विभिन्न टोलियों के लोगों की बोलियों के लगभग डेढ़ सौ अलग-अलग टोन की चर्चा की है।[28] इस तरह देखा जाय तो आंचलिक उपन्यास में उपन्यास का नायक वह अंचल विशेष ही होता है। "मैला आंचल का नायक पूर्णिया जिले का "मेरी गंज" गाँव ही है। अंग्रेजी के Hardy इत्यादि के "Novel's of local colours" को हम आंचलिक उपन्यास के समीपवर्ती मान सकते है। गुजराती में ऐसे उपन्यासों को "जनपदीय नवलकथा" कहते है। पन्नालाल पटेल, ईश्वरपेटलीकर तथा झवेरचंद मेघाणी के कुछ उपन्यासों को हम इस कोटि में रख सकते है। आंचलिक उपन्यास को लेकर एक धाँधली हिन्दी उपन्यास आलोचना क्षेत्र में चली है। "मैला आँचल" के बाद जो भी

उपन्यास ग्रामीण पृष्ठ भूमि को लेकर आये है उनको आलोचकों ने आँचलिक उपन्यास की कोटि में रख दिया। वस्तुतः आंचलिक उपन्यास और ग्रामभीतीय उपन्यासों में अंतर करना होगा। मैला आँचल के पूर्व भी कई उपन्यासों में हमें ग्रामीण पृष्ठभूमि उपलब्ध होती है तो क्या उन सभी उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास कहा जाएगा? केवल उन उपन्यासों को ही आँचलिक कहना चाहिए जिनमें अंचल विशेष उसकी तमाम विशेषताओं के साथ उभरकर आता है। चर्चित आंचलिक उपन्यासों में "मैला आँचल" परती परिकथा (फणीश्वरनाथ रेणु) वरुण के बेटे, (नागार्जुन) हौलदार चौथी मुट्ठी, चिट्ठी रसेन, (मटियानी) सागर लहरें और मनुष्य (उदयशंकर भट्ट) जंगल के फूल (राजेन्द्र अवस्थी) अलग वेतरणी (शिवप्रसाद सिंह) काशी का अस्सी (काशीनाथ सिंह) आदि की गणना कर सकते है।

<u>हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा :-</u>

हमारी आलोच्य उपन्यास लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का प्रथम उपन्यास "स्मृतिदंश" सन् 1990 में प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः उसे उपन्यास न कहकर "उपन्यासिका" कहना उचित होगा।[29] जो हो, उनका लेखन सन् 1990 से शुरु हो गया था। अतःहम यहाँ बहुत संक्षेप में सन् 1990 तक के औपन्यासिक विकास का विहंगावलोकन प्रस्तुत करेंगे। हिन्दी का प्रथम उपन्यास "भाग्यवती" (पंड़ित श्रद्धारामफुल्लौरी) सन् 1878 में प्रकाशित हुआ था। इस प्रकार सन् 90 तक लगभग हिन्दी उपन्यास के 110 वर्ष हो जाते हैं। हिन्दी उपन्यास के विकास में मुंशी प्रेमचंद के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। अतः हिन्दी उपन्यास के विकास को चिन्हित करते हुए आलोचकों ने प्रायः विभिन्न कालखण्डों में प्रेमचंद का नाम केन्द्र में रखा है, जैसे पूर्व प्रेमचंदकाल (1878 से 1918) प्रेमचंदकाल (सन् 1918-1936) तथा प्रेमचंदोत्तर काल (सन् 1936 - अध्यावधि) प्रेमचंदोत्तर काल को पुनः आलोचकों ने अपनी सुविधा के लिए स्वतंत्रता पूर्वकाल (1936-1947) स्वात्र्यंत्तोत्तरकाल (1947-1960) साठोत्तरी काल (1960-1980) तथा समकालीन उपन्यास (1980 - अद्यावधि) आदि कालखण्ड़ों में विभक्त किया है।

पूर्व प्रेमचंदकाल : पूर्वप्रेमचंदकाल में हमें सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, तिलस्मी तथा अनूदित उपन्यास मिलते हैं। पूर्व प्रेमचंदकाल के सामाजिक उपन्यासकारों में पंडित श्रद्धारामफुल्लौरी, लाला श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट मेहता लज्जाराम शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय, ठाकुर जगमोहन सिंह, मन्नन द्विवेदी आदि की गणना कर सकते है। और उनके चर्चित उपन्यासों में क्रमशः "भाग्यवती", "परीक्षागुरू", "सौ अजान एक सुजान", "स्वतंत्र्य रमा परतंत्र लक्ष्मी", "त्रिवेणी", "ठेठ हिन्दी का ठाठ", "श्यामा स्वप्न", "रामलाल" आदि का उल्लेख कर सकते हैं। ये उपन्यास औपन्यासिक कला की दृष्टि से स्थूल कथावस्तु प्रधान एवम् अपरिपक्व हैं। औपन्यासिक कला का समुचित विकास अभी तक नहीं हुआ था। ये उपन्यास औपन्यासिक कला की दृष्टि से स्थूल कथावस्तु प्रधान एवम् अपरिपक्व हैं। औपन्यासिक कला का समुचित विकास अभी तक नहीं हुआ था। उपन्यास का समुचित कलात्मक विकास प्रेमचंद के द्वारा हुआ। प्रस्तुत कालखण्ड़ में सामाजिक उपन्यासों के अलावा ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये। परंतु उनको ऐतिहासिक उपन्यास न कह कर ऐतिहासिक रमाख्यान कहना अधिक उचित होगा।[30] इसका कालखण्ड़ के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गंगा प्रसाद गुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा, बलदेव प्रसाद मिश्र, बाबू ब्रजनंदन सहाय, मिश्रबंधु आदि प्रसिद्ध हैं। उनके चर्चित उपन्यासों में क्रमशः तारा, नूरजहाँ, नूरजहाँबेगम वा जहाँगीर, अनारकली, लालचीन, वीरमणि आदि की गणना कर सकते हैं। तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यासों का यद्यपि स्तरीय नहीं माना जाता तथापि प्रारंभिककाल से उनका उल्लेख किया गया है। बाद के कालखण्डों में उनका कहीं जिक्र नहीं आता। प्रमुख तिलस्मी उपन्यासकार के रूप में हम बाबू देवकीनंदनखत्री की गणना कर सकते हैं। जिनकी (चंद्रकांता)(चंद्रकांता संतति) उपन्यास माला बहु चर्चित एवम् लोकप्रिय हुई थी। जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराय गहमरी का नाम लिया जाता है। उन्होंने लगभग 200 जितने जासूसी उपन्यास लिखे हैं। उनको हिन्दी का "कानन डायल" कहा जाता है।[31] अनूदित उपन्यासों का उल्लेख भी केवल इसी कालखण्ड़ में हुआ है, बाद में उनका उल्लेख आलोचकों ने नहीं किया, क्योंकि ये उपन्यास जिन-जिन भाषाओं में लिखे गए हैं उनकी मूलधरोहर माने जाते हैं। प्रारंभिक काल में उनका उल्लेख इस लिए किया गया कि इन उपन्यासों ने हिन्दी

उपन्यास की दशा और दिशा निर्धारित की। इस कालखण्ड़ में अनूदित उपन्यास सब से ज्यादा मिलते हैं। अंग्रेजी, बंग्ला, पंजाबी, मराठी, गुजराती, उड़िया आदि भाषाओं से उपन्यासों के अनुवाद किए गए हैं।

प्रेमचंदकाल:- हिन्दी उपन्यास से प्रेमचंद का आर्विभाव एक प्रमुख साहित्यिक घटना है। प्रेमचंद ने न केवल स्तरीय एवम् साहित्यिक समस्यामूलक उपन्यास दिए, उन्होंने उपन्यास के मानदंडों को भी निर्धारित किया और अपने समय की एक समग्र पीढ़ी को तैयार किया। सचमुच सामाजिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंदजी द्वारा ही हुआ। उन्होंने उपन्यास को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा और तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक स्थिति को उजागर किया। मानवचरित्र की पहचान सर्वप्रथम करानेवाले मुंशी प्रेमचंद ही है।[32] प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को विश्वसाहित्य के स्तर पर ला दिया। उनकी तुलना गोर्की तथा चेखव जैसे समर्थ वैश्विक कथाकारों के साथ होने लगी। उनके प्रमुख उपन्यासों में सेवासदन, वरदान, प्रतिज्ञा, निर्मला, गबन, प्रेमाश्रम, कायाकल्प, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान आदि है। प्रेमचंद की औपन्यासिक कला का सर्वोत्तम शिखर गोदान है। प्रेमचंद ने अपने इन उपन्यासों में भारत के चर्तुमुखी शोषण को अभिव्यक्त किया है। यह चतुर्मुखी शोषण इस प्रकार है-गरीब किसानों और मजदूरों का शोषण, दलित जातियों का शोषण, नारियों का शोषण तथा अंग्रेज सरकार द्वारा हो रहें समग्र देश का शोषण। इस समय नारी विमर्श एवम् दलित विमर्श के मुद्दे साहित्यिक चर्चा में हैं, वस्तुतः उसकी पृष्ठभूमि का निर्माण प्रेमचंदजी ने ही कर दिया था।

प्रेमचंद का महत्त्व केवल इसमें नहीं है कि उन्होंने कालजयी उपन्यासों की रचना की, बल्कि इसलिए भी है कि उन्होंने एक युग का निर्माण किया, एक पीढ़ी का निर्माण किया, हिन्दी उपन्यास को एक नयी दिशा प्रदान की और नवोदित उपन्यासकारों को यथोचित मार्गदर्शन भी दिया। प्रेमचंद ने जिस पीढ़ी को तैयार किया उसे हम प्रेमचंद स्कूल के उपन्यासकार कह सकते हैं। प्रेमचंद स्कूल के उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" पाण्डेय बेचेन शर्मा, "उग्र", चतुरसेन शास्त्री, भगवती प्रसाद वाजपेयी, ऋषभचरण जैन, जयशंकर प्रसाद, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राजा राधिका रमण प्रसाद

सिंह, वृंदावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी, “निराला” सिया रामशरण गुप्त, गोविंद वल्ल पन्त, राजेश्वरप्रसाद, धनीराम प्रेम, प्रफुल्लचंद्र ओझा, श्रीनाथ सिंह, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी, तेजो रानी दीक्षित, चंद्रशेखर शास्त्री, गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा आदि की गणना कर सकते है ।[33] इनके चर्चित उपन्यासों में (प्रस्तुत कालखण्ड़ में) “माँ” भिखारिनी (कौशिकजी), “घंटा” “चंद हसीनों के खतुत”, “बुधवा की बेटी”, (उग्रजी), ह्रदय की परख, व्यभिचार (चतुरसेन शास्त्री), त्यागमयी, प्रेमनिर्वाह (भगवतीप्रसाद वाजपेयी), दिल्ली का व्यभिचार (वेश्यापुत्र), (ऋषभचरण जैन), कंकाल, तितली (जयशंकर प्रसाद), अप्सरा, अल्का (सूर्यकांत त्रिपाठी), (निराला), मदारी (गोविंद वल्लभ पंत), गोद, अंतिम अंकाक्षा (सियाराम शरण गुप्त), लगन, संगम (वृंदावनलाल वर्मा) वेश्या का ह्रदय (धनीराम प्रेम) नारी ह्रदय (शिवानी देवी), वचन का मोल (उषादेवी मित्रा) ह्रदय का कांटा (तेजोरानी दीक्षित) आदि की गणना कर सकते है ।[34]

प्रेमचंद के प्रभाव के कारण इस युग में वृंदावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास लिखे थे । हाँलाकि बाद में उनकी पहचान ऐतिहासिक उपन्यासकार के रुप में हमें मिलती हैं । इस कालखण्ड़ के अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों में खवास का ब्याह (चतुर सेन शास्त्री) गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी आदि की गणना कर सकते हैं । इस कालखण्ड़ में प्रमुखरुप से हमें दो औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं – सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास हाँलाकि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात जैनेन्द्र और इलाचंदजोशी द्वारा हो गया था, परंतु उनका औपन्यासिक विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में ही होता है । इस कालखण्ड़ में जैनेन्द्र के दो उपन्यास प्राप्त होते हैं । “परख” और “सुनीता” । आलोचकों के मतानुसार राजनीतिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंद द्वारा ही हो गया था । प्रेमचंद कृत “प्रेमाश्रम” इस दृष्टि से हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास हैं । प्रेमचंद की विचार धारा के केन्द्र में मानववादी मूल्य सदैव रहे है । परंतु विचारधारा की दृष्टि से देखे तो प्रेमचंद का विकास आर्य समाजी, गांधीवादी और मार्क्सवादी लेखक के रुप में क्रमशः हुआ है ।

"गोदान" तक आते-आते प्रेमचंद रुप में लगभग मार्क्सवादी हो गये थे। गोदान में प्रोफेसर मेहता, मार्क्सवाद के प्रवक्ता पात्र के रुप में आये हैं।

प्रेमचंदोत्तर कालः-

सन् 1936 प्रेमचंद का निधन हुआ, अतः सन् 1936 के बाद के कालखण्ड़ को प्रेमचंदोत्तर काल की संज्ञा दी गयी है। सन् 1947 को हमारा देश स्वाधीन होता है। प्रारंभ के कुछ वर्ष सुनहरे भविष्य की कल्पना में आनंद, उमंग, उल्लास में व्यतीत हो जाते हैं। परंतु आज़ादी के दश-पंद्रह वर्षो तक की सामान्य प्रजा की स्थिति में कोई खास बदलाव नज़र नहीं आता और लेखकों, चिंतको और कवियों को लगने लगता है कि ये आज़ादी महज सत्ता का (हस्तांतरण) (Transfer of Power) मात्र रह गयी है और अन्याय, अत्याचार, शोषण, भ्रष्टाचार आदि में निरंतर बढ़ोत्तरी होती है। तो एक मोहभंग की स्थिति का निर्माण होता है। अतः भारतीय साहित्य में, विशेषतः हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी साहित्य की अवधारणा सामने आती है। अतः प्रेमचंदोत्तकाल की समयसीमा सन् 1960 तक निर्धारित हुयी हैं। हालाँकि औपन्यासिक प्रवृत्तियों के विकास में अध्ययन की सुविधाहेतु हमने साठ के बाद के उपन्यासों को भी समेकित किया है।

प्रेमचंदोत्तरकाल में हमें निम्नलिखित औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं – (1) सामाजिक उपन्यास (2) ऐतिहासिक उपन्यास (3) मनोवैज्ञानिक उपन्यास (4) मार्क्सवादी या समाजवादी उपन्यास (5) आंचलिक उपन्यास

(1) **सामाजिक उपन्यासः-** प्रेमचंदोत्तरकाल के प्रमुख सामाजिक उपन्यासों में टेढ़े मेढ़े रास्ते, भूले बिसरे चित्र, (भगवती चरण वर्मा), मनुष्य और देवता, भूदान, उस से न कहना, भगवती प्रसाद वाजपेयी, गिरती दीवारें, गर्म राख, पत्थर अल पत्थर, (उपेन्द्र नाथ अश्क), लोहे के पंख (हिमांशु श्रीवास्तव), धर्मपुत्र, बगुला के पंख (आचार्य चतुरसेन शास्त्री), अचल मेरा कोई, अमरवेल (वृंदावनलाल वर्मा) जुनिया, जलसमाधि, फरगेट मी नोट (गोविंद वल्लभ पंत), चंपाकली, हिज-हाईनेस, बुर्दा-फरोश, तीन इक्के (ऋषभ चरण जैन), राम-रहीम, गांधीटोपी, चुंबन और काँटा (राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह), घेरे के बाहर (द्वारिका

प्रसाद), बयालिस विश्वास की बेदी पर (प्रतापनारायण श्रीवास्तव), चोटी की पकड़, बिल्ले सुर बकरीहा, कुल्लीभाट (सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला), जीवन की मुस्कान, पथचोरी और नष्टनीड़ (उषादेवी मित्रा), निशीकान्त, तट के बंधन (विष्णु प्रभाकर), प्रभुति की गणना कर सकते है ।[35]

(2) **ऐतिहासिक उपन्यासः-** प्रेमचंदोत्तरकाल के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासों में झाँसी की रानी, मृगनयनी, अहिल्या बाई (वृंदावनलाल वर्मा), वैशाली की नगरवधू, सोमनाथ, सोना और खून (चतुर सेन शास्त्री), बाणभट्ट की आत्मकथा (डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी), जय यौध्येय (राहुल सांस्कृत्यायन), मुर्दो का टीला (रांगेयराघव), दिव्या, अमीता (यशपाल), बहती गंगा (शिवप्रसाद मिश्र), बेकसी का मज़ार (प्रतापनारायण श्रीवास्तव), शतरंज के मोहरें (अमृतलाल नागर), चित्रलेखा (भगवती चरण वर्मा) इत्यादि उपन्यासों को उल्लेखनीय कहा जा सकता हैं ।[36]

(3) **मनोवैज्ञानिक उपन्यासः-** मनोवैज्ञानिक उपन्यास होते तो सामाजिक उपन्यास ही है, परंतु उनकी कथावस्तु में मनोवैज्ञानिक समस्याओं, मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों और मनोवैज्ञानिक क्षणों का निरुपण सविशेष होता है । प्रेमचंदोत्तरकाल के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, जयवर्धन (जैनेन्द्र कुमार), प्रेत और छाया, पर्दे की रानी, संन्यासी, जहाज का पंछी (इलाचंद्र जोशी), शेखर एक जीवनी भाग-1,2, नदी के द्वीप (अज्ञेय), पंथ की खोज, बाहर-भीतर, अजेय की डायरी (डॉ,देवराज), गुनाहों का देवता (धर्मवीर भारती), डूबते मस्तूल, दो एकांत (नरेश महेता), चाँदनी के खण्डर (गिरधर गोपाल), तंतुजाल (डॉ.रघुवंश), द्वाभा साँचा (डॉ.प्रभाकर माचवे) आदि औपन्यासिक कृत्तियों की गणना कर सकते हैं ।

(4) **मार्क्सवादी या समाजवादी उपन्यासः-** वस्तुतः ये औपन्यासिक विद्याएँ सामाजिक उपन्यास के विकास स्वरुप ही आयी हैं, परंतु किसी औपन्यासिक विद्या में किसी तथ्य-विशेष या विचार विशेष के केन्द्रस्थ होने से विभिन्न विद्याओं का उदभव हुआ है । मार्क्सवादी पर समाजवादी उपन्यास उसे कहते हैं जिसमें उसके लेखक की विचारधारा मार्क्सवादी या समाजवादी हो और उसने उसी विचारधारा को

केन्द्र में रखते हुए उपन्यास का वस्तु नियोजन और पात्रसृष्टि की हो । मार्क्सवादी विचारधारा दलितों, पीड़ितों, शोषितों, श्रमिकों और किसानों की पक्षधर विचारधारा है । इन्हें ये “सर्वहारा वर्ग” कहते हैं और उनका लेखन चिंतन आदि सब इस वर्ग के उत्थान हेतु होता हैं । मार्क्सवाद धर्म, ईश्वर, भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद, पूंजीबाद, सामंतवाद आदि को नकराता है । वह स्त्री-पुरुष समानता में विश्वास रखता है और मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी प्रकार का अंतर नहीं होना चाहिए इसी बात पर जोर देता हैं । यद्यपि मार्क्सवादी उपन्यासों का सूत्रपात तो प्रेमचंदयुग में उनके “गोदान” उपन्यास से हो गया था परंतु उसका विशेष पल्लवन और विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में दृष्टिगोचर होता ह । प्रमुख मार्क्सवादी उपन्यासों को हम निम्नलिखित की परिगणना कर सकते हैं – “दादा कामरेड”, “पार्टी कामरेड”, “मनुष्य के रुप”, “झूठा-सच” (यशपाल), बलचनमा, नयी पौध, दुःखमोचन, वरुण के बेटे (नागार्जुन), “विषादमठ”, “हुजूर”, “सीधा-साधा रास्ता” (डॉ.रांगेयराघव), “सती मैया का चौरा”, “मशाल” (भैरव प्रसाद गुप्त), “बीज”, “हाथी के दाँत” (अमृतराय), “बया का घोसला और साँप”, “काले फूल का पौंधा, “रुपाजीवा (लक्ष्मीनारायण लाल), “उखड़े हुए लोग, कुल्टा, सह और मात (राजेन्द्र यादव), खाली कुर्सी की आत्मा (लक्ष्मीकांत वर्मा), जमींदार का बेटा, (दयानाथ झा), मूदानी सोनिया (उदयराज सिंह) चढ़ती धूप (रामेश्वर शुक्ल अंचल) आदि-आदि ।[37]

(5) आंचलिक उपन्यास सन् 1954 में फणीश्वरनाथ रेणू के “मैला आंचल” के प्रकाशन के साथ ही आंचलिक विद्या का उदभव माना जाता है । स्वयं रेणू ने अपने उपन्यास को “आंचलिक” उपन्यास की संज्ञा दी है । “आंचलिक” शब्द अंचल से व्युत्पन्न हुआ है । अंचल अर्थात् कोई स्थान विशेष । अब अंचल या स्थान तो सभी उपन्यासों में होते हैं तो फिर आंचलिक उपन्यास से क्या तात्पर्य है? इसका उत्तर यह है कि अंचल तो सभी उपन्यासों में होते है परंतु आंचलिक उपन्यास में उस अंचल विशेष का चित्रण समग्रता से किया जाता है । आंचलिक उपन्यास में उसका नामक वह अंचल विशेष ही होता है । “मैला आंचल” का नामक पूर्णिया जिले का “मेरीगंज” गाँव ही है । आंचलिक उपन्यास में अंचल

विशेष ही होता है । आंचलिक उपन्यास में अंचल के लोग उनकी बोली ठोली, रीति-रिवाज, विश्वास, अविश्वास, मान्यताएँ, खान-पान, पहचान, खेत-खलिहान, नदी-निर्झर, मेले आदि सभी का साँगोपाँग वर्णन होता है । प्रमुख आंचलिक उपन्यासों में "मैला-आंचल" परती परिकथा (फणीश्वरनाथ रेणू), वरुण के बेटे, दुःखमोचन (नागार्जुन), दूब जन्म आयी (शिव सागर मिश्र), बहती गंगा (शिवप्रसाद मिश्र), होलदार चिट्ठी चतुरसेन, एक मूठ सरसों (शैलेष मटियानी), रथ के पहिये, ब्रह्मपुत्र (देवेन्द्र सत्यार्थी), जंगल के फूल (राजेन्द्र अवस्थी), कब तक पूकारुँ (रांगेय राघव), सागर लहरें और मनुष्य (उदय शंकर भट्ट), आदि की गणना कर सकते हैं ।[38]

(6) **राजनीतिक उपन्यासः-** जहाँ किसी उपन्यास विशेष में राजनीतिक विचारधाराओं और आंदोलनों को केन्द्र स्थान में रखा जाता है वहाँ उनको राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा मिलती है । इसका सूत्रपात भी प्रेमचंदयुग में प्रेमाश्रम के द्वारा हो गया था । परंतु उसका विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में देखा जा सकता है । प्रमुख राजनीतिक उपन्यासों में प्रश्न और मरीचिका, सबहिं नचावत राम गोंसाई (भगवती चरणवर्मा), झूठा-सच, (यशपाल), एक पंखुड़ी की तेज धार (शमशेर सिंह नरुला) आदि की गणना कर सकते हैं ।[39]

(7) **व्यंग्यात्मक उपन्यासः-** उपन्यास अपने प्रारंभिक काल से ही विरोध का साहित्य (Literature of discart) रहा है और व्यंग्य तो विरोध का मुख्य औजार है, अतः उपन्यास में व्यंग्य की उपस्थिति तो सदैव रहती है तो फिर व्यंग्यात्मक उपन्यासों से क्या तात्पर्य है? अतः व्यंग्यात्मक उपन्यास हम उनको कह सकते है जहाँ उपन्यास की कथावस्तु तथा पात्रसृष्टि में व्यंग्य की ही प्रधानता है । जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार, मनोवैज्ञानिक क्षणों (Psychological moments) को तरासता है ठीक उसी प्रकार व्यंग्यात्मक उपन्यासकार व्यंग्यात्मक क्षणों के जुगाड़ में रहता है । प्रेमचंदोत्तरकाल में इसका सूत्रपात श्रीलालशुक्ल कृत "राग दरबारी" उपन्यास से माना जाता है । प्रमुख व्यंग्यात्मक उपन्यासों में कथासूर्य की नयी यात्रा (हिमांशु श्रीवास्तव) एक चूहे की मौत (बदी उज्जमा), जंगल

तत्रम (श्रवण कहीन) (मनोहर श्याम जोशी) सभी नचावत राम गोसाई (भगवती चरण वर्मा) आदि की गणना कर सकते हैं ।[40]

(8) **पौराणिक उपन्यासः-** अधिकांश लोग ऐतिहासिक और पौराणिक में अंतर नहीं करते, किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासों और पौराणिक उपन्यासों में उतना ही अंतर है जितना इतिहास और पुराण । पौराणिक उपन्यासों का सूत्रपात प्रेमचंदोत्तर काल में डॉ.नरेन्द्र कोहली से माना जाता है । डॉ.कोहली ने रामायण और महाभारत को लेकर क्रमशः चार और आठ उपन्यासों की रचना की हैं । डॉ.कोहली के उपन्यासों में अतिरिक्त प्रमुख पौराणिक उपन्यासों में वयम रक्षामः (आचार्य चतुरसेन शास्त्री) अपने अपने राम (डॉ.भगवान सिंह) सूत्रो वा सूत्र पुत्रोवा (डॉ.बच्चन सिंह) पवनपुत्र, पुरुषोत्तम, प्रथम पुरुष (डॉ.भगवती शरण मिश्र) एकदा नैमिषारण्य (नरेश महेता) संभवामि युगे युगे (कन्हैयालाल ओझा) की परिगणना की जा सकती हैं ।[41]

साठोत्तरी उपन्यासः-

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ठ किया गया है सन् साठ के बाद भारतीय समाज के लेखकों एवम् चिंतकों में मोहभंग की स्थिति का निर्माण होता हैं । इन लोगों को आज़ादी महज एक छलावा लगती है क्योंकि स्थितियों में बहुत परिवर्तन तो नहीं होता है बल्कि कुछ क्षेत्रों में स्थितियाँ बदत्तर होती जाती हैं, आज़ादी के पहले जो भी वादे किये गये थे, स्थितियाँ बरअक्स उसके विपरीत होती चली जाती हैं । राष्ट्रकवि और राज्यसभा के सासंद डॉ.रामधारी सिंह दिनकर तक को कहना पड़ा है कि “अटका कहाँ स्वराज्य”[42] माखनलाल चतुर्वेदी इस संदर्भ में लिखते हैं उनकी यादों के तरुतण पल्लव को अब तो हम छोड़ चले । कसमें राधी के तट खाई, यमुना के तट तोड़ चले ।[43] यहाँ दो ऐतिहासिक संदर्भ दिए गये हैं – रावी के तट से कवि का अभिप्राय लाहौर से है । जहाँ सन् 1929 में कोंग्रेस का अधिवेशन हुआ था । और जिसके प्रमुख पंड़ित जवाहरलाल नेहरु थे । यमुना के तट से तात्पर्य है देश की राजधानी दिल्ली का । अर्थात् संकेतात्मक ढंग से कवि यह याद दिलाना चाहते हैं कि पंड़ित जी ने जो वादे किए थे । उनको आज़ादी के बाद वे नहीं निभा पाये । फलतः हिन्दी साहित्य में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि

सभी विद्याओं में साठोत्तरी साहित्य की विशेषतः चर्चा होने लगी जैसे साठोत्तरी कविता, साठोत्तरी उपन्यास आदि-आदि । "साठोत्तरी" शब्द में साठ के बाद की रचना का तो संकेत है परंतु यहाँ एक मुख्य तथ्य ध्यात्व रहना चाहिए की साठ के बाद की कोई भी रचना साठोत्तरी नहीं होगी, यही उसमें साठोत्तरी मानसिकता और चेतना न हो । प्रमुख साठोत्तरी उपन्यासों में हम निम्नलिखित उपन्यासों का उल्लेख कर सकते हैं ।

अमृत और विष (अमृतलाल नागर); शहर में घूमता आईना (अश्क); नदी फिर बह चली (हिमांशु श्रीवास्तव); कालाजल (गुलशेर खान साहनी); प्रेम अप्रवित्र नदी (लक्ष्मीनारायण लाल); तेरा कोटा (लक्ष्मीकांत वर्मा); अनदेखे अनजान पुल (राजेन्द्र यादव); अपने अपने अजनबी (अज्ञेय); उग्रतारा, इमरतिया (नागार्जुन); मेरी तेरी उसकी बात (यशपाल); शहीद और शोहदे (मन्मथनाथ गुप्त); अलग अलग वैतरणी (डॉ.शिवप्रसाद सिंह); रागदरबारी (श्रीलाल शुक्ल); आधा गाँव (डॉ. राही मासूम रज़ा); जल टूटता हुआ सूखता हुआ तालाब (डॉ.रामदरश मिश्र); धरती धन न अपना (जगदीशचंद्र); तमस (भीष्मसाहनी); मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी); बैशाखियाँवाली इमारतें, अठारह सूरज के पौधे (रमेश बख्शी); पचपन खम्भें लाल दीवारे, रुकोगी नहीं राधिका (उषा प्रियवंदा); डाक बंग्ला, तीसरा आदमी, आगामी अतीत (कमलेश्वर); अंधेरे बन्द कमरें (मोहन राकेश); वे दिन (निर्मल वर्मा); आपका बंटी (मन्नू भंड़ारी); एक चूहे की मौत (बदी उज्जमा); मुर्दाघर (जगदंबा प्रसाद दिक्षित) आदि-आदि ।[44]

"समकालीन" शब्द का अर्थघटन दो तरह से किया जाता है - एक अर्थ तो हैं दो व्यक्तियों के एककालीक होने के संदर्भ में और दूसरा अर्थ है सम-सामायिकता (Contemporary) के संदर्भ में । यदि दो व्यक्ति किसी एक कालखण्ड़ में पाये जाते हैं तो हम उनको एक दूसरे के समकालीन कहते हैं, यथा अकबर और तुलसीदास समकालीन थे । समकालीनता का दूसरा संदर्भ समसामायिकता से है । समसामयिकता का सीधा अर्थ होगा वर्तमान समय । यदि हिन्दी साहित्य की हम बात करें तो पिछले पचीस-तीस वर्षो के साहित्य को हम समकालीन की संज्ञा दे सकते हैं । यथा समकालीन हिन्दी कविता, समकालीन हिन्दी कहानी, समकालीन हिन्दी उपन्यास, आदि-आदि । इस तरह लगभग

सन् 1980 के बाद के हिन्दी उपन्यास को हम समकालीन हिन्दी उपन्यास की कोटि में रख सकते हैं । हमारी आलोच्य लेखिका का रचनाकाल भी लगभग यही हैं । अतः मैत्रेयीपुष्पा को समकालीन हिन्दी लेखिका कह सकते हैं और वह यह कि समकालीनता की समयसीमा में आनेवाली केवल उन औपन्यासिक रचनाओं को हम समकालीन कहेंगे । जिनमें समकालीनयुग बोध, समकालीन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक चिंताएँ अंतर्निहित हो । समकालीनता के युगबोध से विलग ऐसी रचना को समकालीन नहीं कहा जाएगा फिर भले ही वह इधर के पन्द्रह बीस वर्षो में लिखी गयी हो । चर्चित समकालीन हिन्दी उपन्यासों में “अनारों” (मंजुलभगत), “रेत की मछली”, (कांता भारती), “नावें”, “सीढ़ियाँ” (शशीप्रभा शास्त्री), “तत्सम् (राजीशेठ), कुरुकुरु स्वाहा (मनोहर श्याम जोशी) मुझे चाँद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा), इदन्नमम, अल्मा कबूतरी (मैत्रेयी पुष्पा) उसके हिस्से की धूप (मृदुला गर्ग), यामिनी कथा (सूर्यबाला सिंह) रात का रिपोर्टर (निर्मल वर्मा) शहर में कर्फ्यू (विभूति नारायण राय), अपना अपना आकाश (देवेश ठाकुर), धपेल बाबा (श्यामबिहारी), आखिरी कलाम (दूधनाथ सिंह), काशी का अस्सी (काशीनाथ सिंह), सात आसमान (असगर बसाहत), काला पहाड़ (भगवान दास मोखाल), ईसुरी फाग (मैत्रेयी पुष्पा) दर्दपुर, मोबाइल (क्षमा शर्मा), बाजत अनहद ढ़ोल (मधुकर सिंह), पिछले पन्ने की औरतें (सुश्री शरद सिंह), कुइयाँजान (नासिरा शर्मा), छिन्नमस्ता, पीली कोठी (प्रभा खेतान), सलाम आखिरी (मधु कांकरिया) राह में जागनेवाले (असगर वज़ाहत), सावधान नीचे आगे है धार, जंगल जहाँ शुरु होता है (संजीव), काली सुबह का सूरज, आग-पानी आकाश (रामधारी सिंह दिनकर), वे जहाँ कैद है (प्रियवंद) अपनी सलीबे (नमिता सिंह), शहर चुप है, मुसलमान (मुशर्रफ आल्म ज़ोकी), मीरा याज्ञिक की डायरी (बिंदु भट्ट) किशोरी का आसमान (रजनी गुप्त) प्रभुति उपन्यासों की परिगणना की जा सकती है ।[45]

<u>हिन्दी उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा का योगदान :-</u>

उत्तर आधुनिक काल में नारी विमर्श और दलित विमर्श की चर्चाएँ विशेषतः रही है । नारी विमर्श को उसकी ऊँचाईयों पर पहुँचाने में हमारी आलोच्य लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का सविशेष योगदान है । उनका जन्म 30 नवम्बर 1944 को अलीगढ़ जिले के सिर्कुरा

गाँव में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा झाँसी जनपद के खिल्ली गाँव में संपन्न हुई। झाँसी के बुंदेलखण्ड़ कोलेज से उन्होंने हिन्दी साहित्य में एम.ए.की उपाधि प्राप्त की। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास लेखन का आरंभ "स्मृतिदंश" नामक उपन्यास से सन् 1990 में हुआ। आलोचकों ने उसे "उपन्यासिका" कहा हैं।[46] उनका दूसरा उपन्यास "बेतवा बहती रही" सन् 1993 में प्रकाशित होता है। उसे भी लघु उपन्यास कहा जा सकता है।

इन दोनों उपन्यासों में पितृसत्ताक भारतीय समाज में परम्परागत पुरुष समाज द्वारा स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचारों का यथार्थ चित्रण लेखिका ने किया है। इस से उनकी यथार्थ की गहरी समझ प्रत्यक्ष हुई है। परंतु हिन्दी उपन्यास में उनकी विशेष पहचान उनके उपन्यास "इदन्नमम" (1994) से बनती है। प्रस्तुतः उपन्यास में उन्होंने बुंदेलखण्ड़ के प्रामाणिक और अंतरंग अनुभवों का मार्मिक चित्रण किया है। बुंदेलखण्ड़ का पहाड़ी अंचल और वहाँ के बीहड़ पहाड़ के जीवन के सामाजिक यथार्थ को गहरी मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। "स्मृतिदंश" और "बेतवा बहती रही" में मैत्रेयीजी ने बुंदेलखण्ड़ की अहीर जाति की करुणनियति को गहरी कारुणिक संवेदना के साथ रखा है। परंतु "इदन्नमम" में लेखिका मानो इस कारुणिक सीमा का अतिक्रमण करती है। "इदन्नमम" की नायिका "मंदाकिनी" करुणनियति के नाम पर आँसू नहीं बहाती है। वह इस कठोर नियति का सामना करनेवाली एक जूझारु युवती है। वह परिवार और समाज के बंधनोंको ही नहीं तोड़ती वरण इस शोषणोन्मुखी व्यवस्था के विरुध्ध तनकर खड़ी हो जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने बुंदेलखण्ड़ की अहीरजाति की तीन पीढ़ियों की स्त्रियों के यथार्थ को उसके खुरदरेपन के साथ खुरदरी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस में इधर के ग्रामीण अंचल में फल-फूल रहे भ्रष्ट नेताओं और माफिया ठेकेदारों तथा उनके द्वारा बुंदेलखण्ड़ के आदिवासियों और ग्रामीणों के शोषण के विभिन्न स्तरों को भी लेखिका ने बेपर्द किया है। "इदन्नमम्" के उपरांत मैत्रेयी पुष्पा के चाक (1997), झूलानट (1999), अल्मा कबूतरी (2000) आदि उपन्यास उपलब्ध होते हैं। स्मृतिदंश, बेतवा बहती रही तथा "इदन्नमम्" से जहाँ अहीर समाज के यथार्थ का चित्रण है वहाँ चाक और झूलानट में खेती और काश्तकारी से जुड़े बुंदेलखण्ड़ के जाटों का चित्रण हैं। किन्तु इन दोनों उपन्यासों के केन्द्र में ग्रामीण परिवेश में उभर रही नयी नारी चेतना है। चाक में जाट समाज में नैतिक संहिताओं की रुढ़ियों में जकड़ी पुरानी पीढ़ी के क्रूरतापूर्ण

हठ का यथार्थ चित्रण मिलता है । यहाँ पर नारी संहिता का उल्लंघन करनेवाली स्त्री से जीने का अधिकार छीन लेना एक मामूली बात है । इस समाज में स्त्री की हत्या कर दिए जाने पर एक हल्की सी सुगबुहाट के अतिरिक्त और कोई विशेष हलचल नहीं होती । इसके प्रतिरोध के कोई खड़ा नहीं होता । ऐसे क्रूर, बीहड़ परिवेश में मैत्रेयीपुष्पा ने नारी नियति का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें चौकानेवाली ताज़गी है ।[47]

इस समाज में न केवल जाट, अहीर जैसी पिछड़ी जाति की स्त्रियों को बल्कि दलितजाति की स्त्रियों को भी प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं है । इस तथाकथित अपराध के लिए जहाँ "रेशम" की हत्या कर दी जाती है । वहाँ गुलबंदी को जिंदा जला दिया जाता है । इस अमानवीय अपराध के विरोध में कोई भी पुरुष खड़ा होने का साहस नहीं जुटा पाता, तब उसके विरोध में खड़ीहोती है सारंग नामक एक स्त्री जो ज्यादा पढ़ी-लिखी तो नहीं हैं । परंतु, उसमें गजब की संकल्पशक्ति है । गजब की दृढ़ता है और उसके इस संकल्प को धार देता है श्रीधर प्रजापति । श्रीधर अपने आदर्श और प्रेम के चाक पर सारंग का नया चरित्र घड़ता है । इदन्नमम की "मंदा" की भाँति "सारंग" भी एक संघर्षकामी जूझारु और जीवटवाली महिला है । उसमें अन्याय से लड़ने का माद्दा है । आतताइयों का मुकाबला करने का साहस है तो नारी के अधिकारों के लिए जान तक दे देने की हिम्मत और दृढ़ता है पर सारंग में ये सब चीज़े एक कच्चे उपादान के रुप में है । श्रीधर इस कच्चे उपादान को सही रुप देने का कार्य करता है । सारंग नारी संहिता की समस्त मान्यताओं और मूल्यों को चुनौती देती हुई न केवल श्रीधर से देह सम्बन्ध स्थापित करती है बल्कि पुरुष सत्ता को चुनौती भी देती है । पुरुष सत्ता को चुनौती देने के लिए वह ग्रामपंचायत के चुनाव में प्रधानपद के लिए खड़ी होती है । सारा पुरुष समाज इसका विरोध करता है, जिसमें उसका पति भी शामिल है । वह यह सब कर पाती है क्योंकि उसने अपने गाँव में एक नारी संगठन स्थापित किया है, इसके द्वारा वह पुरुषसत्ता को चुनौती देती है । यहाँ सारंग जैसे नारीपात्र द्वारा मैत्रेयी पुष्पा यह स्थापित करती है कि जब तक सत्ता स्त्री के हाथ में नहीं आती तब तक पुरुषसमाज द्वारा उसका शोषण होता रहेगा और नारियों पर होनेवाले अत्याचार कभी समाप्त नहीं होंगे । झूलानट उपन्यास का विषय भी जाट समाज की पारिवारिक स्थितियों को उजागर करनेवाला है । इसमें सास-बहू, माँ-बेटे, पति-पत्नी और देवर-भाभी के सम्बन्धों को कुछ इस तरह चित्रित किया

गया है कि बुंदेलखण्ड़ के जाट समाज की एक-एक विशेषता दृष्टिगोचर हो जाती है। जहाँ "चाक" में सारंग है। वहाँ प्रस्तुत उपन्यास में "शीलो" है। जो परम्परागत जीवन मूल्यों को चुनौती देती है। इन उपन्यासों के अलावा "विज़न" और "अगनपंखी" नामक दो उपन्यास और है। परंतु मैत्रेयी जी की इधर की सशक्त रचनाओं में "अल्मा कबूतरी" है। इसका फलक विशाल एवम् वैविध्य पूर्ण है। इस उपन्यास में मैत्रेयी ने नयी जमीन को तोड़ा है। जिस प्रकार डॉ.रांगेय राघव ने "कब तक पुकारुँ" उपन्यास में राजस्थान के "करनट" नामक जरायन लोगों के जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत किया है; ठीक उसी प्रकार अल्माकबूतरी में मैत्रेयीजीने "कबूतरा नामक" जरायनपेशा जाति की नायिका "अल्मा" को प्रस्तुत किया है। भारत में आज भी कुछ ऐसी जातियाँ है जिनके पास न अपनी जमीन है न घर है न गाँव है। पुराना सरकारी रेकोर्ड इन जातियों को अपराधकर्मी मानता था और आज भी सभ्य समाज के बहुत से लोग उनको उसी नजरिये से देखते हैं। आज़ादी के बाद वैधानिक दृष्टि से उन्हें सम्मान नागरिकता का अधिकार जरुर प्राप्त हो गया है परंतु समानजनक साधनों से जीविकोपार्जन का कोई रास्ता न होने से पुरुषवर्ग अपराधकर्म और स्त्रियाँ देह व्यापार के लिए विवश होती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में कबूतराजाति के जीवन को यथार्थ धरातल पर लेखिका ने चित्रित किया है जो अपनी वंश परम्परा रानी पद्मिनी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की अंगरक्षिका "झलकारी बाई" से जोड़ते है। कबूतरा समाज के लोग अन्य सभ्य समाज के लोग को "कज्जा" कहकर पुकारते है और उनको हिकारत की नजर से देखते है। इस प्रकार कब्जा और कबूतराओंकी मुठभेड उपन्यास का केन्द्रीय विषय है। परंतु अनेक संघर्ष में अधिक नुकसान कबूतराओं को ही होता है। भूरी उपन्यास का एक सशक्त नारी पात्र है। वह कज्जा समाज से टक्कर लेती है। अपने शरीर का सौदा करके भी वह अपने बेटे को पढ़ा लिखाकर इस दलदल से बाहर निकालना चाहती है। परंतु ऐसा नहीं हो पाता उसका बेटा कबूतरा बनकर ही जीने के लिए अभिशप्त है। शनैः शनैः उसकी संघर्ष क्षमता खत्म हो जाती है और वह पुलिस का दलाल बन जाता है। लोग उसे डाकू बेटाराम के नाम से जानते हैं। पुलिस द्वारा प्रायोजित एक मुठभेड़ में वह मारा जाता है। इस प्रकार अल्मा कबूतरी पराजित मानवता की कथा है। उसमें सभ्य कहे जानेवाले असभ्य और बर्बर समाज का बेलाग चित्रण है। अल्मा की कहानी उस स्थिति के प्रति नारी के विद्रोह की

कहानी है । अल्मा अपने पिता के साथ रहते हुए राणा के बच्चे को “मर्द” बनाती है, इतना ही नहीं कुमारी माँ बनने का साहस भी बताती है । समाज के आततायियों को वह साहस के साथ झेलती है पर साथ ही साथ सत्ता प्राप्ति द्वारा अपने समाज को इस दलदल से बाहर लाने का प्रयत्न करती है । भूरी जहाँ असफल रहती है अल्मा इसमें एक हद तक सफल होती है । विधान सभा चुनाव के लिए एक प्रत्याशी के रुप में वह खड़ी हो जाती है और उपन्यास के अन्त मे लेखिका ने सांकेतिक किया है कि वह इस चुनाव में जीत पाएगी । इस प्रकार गोपाल उपाध्याय द्वारा प्रणीत उपन्यास “एक टुकड़ा इतिहास” की नायिका जहाँ राजनीति में उतरती है । ठीक उसी तरह अल्मा भी राजनीति के क्षेत्र में आती है । डॉ. गोपालराय इसे “नारीवाद” को लहकाने का प्रयास कहते है और इस पूरे प्रसंग को आरोपित मानते हैं ।[48] परंतु यदि हम वर्तमान राजनीतिक पटल पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि पिछड़ी जाति की कुछ औरतें राजनीति में अपना कद निरंतर बढ़ाने में सफल हुई हैं उत्तर प्रदेश की मुख्यप्रधान मायावती इसका ज्वलंत उदाहरण हैं ।

मैत्रेयी पुष्पा ने भारतीय ग्रामीण आंचलिक क्षेत्रकी साहसी और जुझारु छोटी जाति की औरतों के द्वारा नारी विमर्श को एक नया आयाम प्रदान किया है । भयंकर शोषण, अराजकता और अत्याचारों की आँधी के बीच भी मैत्रेयी की नारियाँ हार नहीं मानती हैं । वे टकराकर चूर-चूर हो जाती हैं । परंतु अपनी अस्मिता की एक स्थायी मुद्रा छोड़ जाती हैं । मैत्रेयी के इस नारी विमर्श के सामने नगरीय जीवन की सुशिक्षित सुविधा भोगी महिलाओं का संघर्ष और विमर्श कुछ फीका लगता है । केवल योनिसूचिता ही सत्तीत्व का लक्षण नहीं है, परतुं दरिंदो के बीच में मर्दानगीपूर्वक लड़ना भी सतीत्व है । सुरेन्द्रवर्मा कृत उपन्यास “मुझे चाँद चाहिए” की नायिका वर्षावषिष्ठ भी कुमारी माँ बनने का साहस दिखाती है । परंतु अल्मा और उसकी स्थितियों में जमीन-आसमान का फर्क है । मैत्रेयी की ग्रामीण नारियों के चरित्र से गुजरते हुए मंजुल भगत की “अनारो” और भीष्मसाहनी की “बंसती” का स्मरण बरबस हो जाता है । मटियानीजी की कहानियों और उपन्यासों में जो ग्रामीण अंचल की महिलाओं का (नगरीय अंचल में छोटे-छोटे काम करनेवाली पिछड़ी जाति की महिलाएँ) जूझारूपन है वह यहाँ दृष्टिगत होता है । जिस तरह मुंशी प्रेमचंद के उल्लेख बिना हिन्दी उपन्यास की चर्चा अर्थहीन है ठीक उसी प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के जिक्र के बिना नारी विमर्श की दास्तान भी अधूरी सी ही लगती है ।

निष्कर्ष :-

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरांत हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहर्षतया पहुँच सकते है ।

(1) उपन्यास की तमाम परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उपन्यास एक यथार्थधर्मी विद्या है । उपन्यास के सभी तत्वों में यथार्थता का विशेष आग्रह पाया जाता है ।

(2) उपन्यास का उद्‌भव "रेनेसा" के उपरांत युरोपीय देशों में हुआ । भारतीय भाषाओं में उसका आर्विभाव नवजागरण के उपरांत 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पाया जाता है । हिन्दी का प्रथम उपन्यास सन् 1878 में प्रकाशित पंडित श्रद्धाराम फुल्लोरी का भाग्यवती उपन्यास है । इस प्रकार हिन्दी उपन्यास ने लगभग 132 वर्ष की यात्रातय की है ।

(3) हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक गौरव मुंशी प्रेमचंद द्वारा प्राप्त हुआ । अतः उपन्यास के विकासयात्रा में अनेक नाम को केन्द्रस्थ करना स्वाभाविक समझा जाएगा । इस प्रकार हिन्दी उपन्यास की विकासयात्रा को मुख्यतया तीन शीर्षकों में विभक्त किया गया है । पूर्व प्रेमचंदकाल – प्रेमचंद काल – प्रेमचंदोत्तरकाल ।

(4) पूर्व प्रेमचंदकाल सन् 1878 से सन् 1918 तक माना जाता है । सन् 1918 से 1936 प्रेमचंदकाल है और 1936 से 1947 तक प्रेमचंदोत्तरकाल माना गया है ।

(5) सन् 1947 को हमारा देश स्वाधीन हुआ । प्रारंभ के कुछ वर्ष आशा, उल्लास-उमंग में व्यतीत हो जाते है । परंतु शनैः शनैः मोहभंग की स्थिति का निर्माण होता है । क्योंकि स्वाधीनता से जो हमारी अपेक्षाएँ थी वे संतुष्ट नहीं होती और स्वाधीनता एक छलावा मात्र बनकर रह जाती है । इस मोहभंग की स्थिति का आलेखन साठोत्तर उपन्यासकारों ने किया है । अतः प्रेमचंदोत्तर काल को सन् 1936 से 1960 तक माना गया है ।

(6) साठोत्तरी उपन्यास की परिसीमा सन् 1980-85 तक मानी गयी है । उसके बाद के औपन्यासिक विकास को समकालीन उपन्यास के अंतर्गत रखा गया है । अतः सन् 1980 से अध्यावती तक के कालखण्ड़ को हम समकालीन उपन्यास की संज्ञा दे सकते हैं ।

(7) इन 132 वर्षों में हमें उपन्यास के विभिन्न रुपबंध प्राप्त होते हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं – सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, पौराणिक उपन्यास, व्यंग्यात्मक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास आदि-आदि ।

(8) पूर्वप्रेमचंदकाल में हमें मुख्यतया पाँच औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ मिलती है । परंतु उनमें से तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों को अस्तरीय एवम् असाहित्यिक माना गया है, और अनुदित उपन्यास अपनी मूल भाषा के धरोहर होते हैं अतः पूर्व प्रेमचंदकाल में हमें केवल दो औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं – सामाजिक उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास ।

(9) पूर्व प्रेमचंदकाल का औपन्यासिक साहित्य स्थूल कथावस्तु प्रधान, मनोरंजन प्रधान, उपदेश प्रधान और अपरिपक्व माना गया है । चरित्र चित्रण की प्रवृत्ति उसमें कम दिखायी पड़ती है ।

(10) उपन्यास में चरित्रचित्रण को प्रधानता देने का श्रेय मुंशी प्रेमचंद को जाता है । मानव चरित्र की पहचान करानेवाले हिन्दी के वे प्रथम उपन्यासकार है । अतः कह सकते है कि सचमुच के सामाजिक उपन्यासों का सूत्रपात मुंशी प्रेमचंद द्वारा हुआ ।

(11) सचमुच ऐतिहासिक उपन्यास का सूत्रपात भी प्रेमचंदयुग में ही वृंदावनलाल वर्मा तथा आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा हुआ ।

(12) राजनीतिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और समाजवादी उपन्यास का सूत्रपात प्रेमचंदयुग में हुआ । किन्तु उनका विकास प्रेमचंदोत्तरकाल में पाया जाता है ।

(13) प्रेमचंदकाल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन के अतिरिक्त यशपाल, महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. शिवसागर मिश्र आदि को परिगणित कर सकते हैं। परंतु इतिहास विषयक उनकी दृष्टियों में विभिन्नता पायी जाती है । जहाँ आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने "इतिहासरस" की बात है वहाँ वृंदावनलाल वर्मा में "इतिहास की पुनर्व्याख्या" का प्रयास देखा जा सकता है । यशपाल एवम् महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन की इतिहास दृष्टि मार्क्सवादी विचारों से आप्लावित है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के राजनीतिक इतिहास की तुलना में सांस्कृतिक इतिहास को अधिक महत्व देते हैं।

(14) प्रेमचंदोत्तरकाल में जो औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं । उनमें आंचलिक उपन्यास पौराणिक उपन्यास और व्यंग्यात्मक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास प्रमुख हैं। आंचलिक उपन्यास में "अंचल" को उसकी समग्रता में प्रस्तुत किया जाता है । पौराणिक उपन्यास पौराणिक वृत्तांत पर आधारित होते हैं और व्यंग्यात्मक उपन्यासों में आध्यन्त व्यंग्यात्मक दृष्टि की प्रचुरता होती है।

(15) आंचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र अवस्थी, उदयशंकर भट्ट, डॉ.शिवप्रसाद सिंह, शैलेष मटियानी आदि के नाम रेखाकिंत किये जा सकते हैं। पौराणिक उपन्यासकारों में डॉ.नरेन्द्र कोहली, डॉ.भगवतीशरण मिश्र, डॉ. भगवानसिंह, डॉ.बच्चन सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं । व्यंग्यात्मक उपन्यासकारों में श्री लालशुक्ल, हिमांशु श्रीवास्तव, बदी उज्जमां, डॉ.राही मासूम रज़ा आदि के नाम उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। राजनीतिक उपन्यासकारों में डॉ.भगवती चरण वर्मा, यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, शमशेरसिंह नरुला आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

(16) मैत्रेयीपुष्पा तक की उपन्यासयात्रा में निम्नलिखित उपन्यासों को सीमाचिन्ह रुप कहे जा सकते हैं। सेवासदन, रंगभूमि, गबन, निर्मला, गोदान (प्रेमचंद), बुधवा की बेटी, घंटा और चंद हसीनों के खतुत (उग्र), गिरती दीवारें, शहर में घूमता आईना (उपेन्द्र नाथ अश्क), बाणभट्ट की आत्मकथा (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी) मृगनयनी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई (वृंदावनलाल वर्मा), जय सोमनाथ,

वैशाली की नगरवधू (आचार्य चतुरसेन), दिव्या, अमीता (यशपाल), जय यौध्येय, सिंह सेनापति (राहुल सांस्कृत्यायन) अमृत और विष, बूंद और समुद्र, नाच्यौं बहुत गुपाल (अमृत लाल नागर) टेढ़े मेढ़े रास्ते, भूले बिसरे चित्र, सबहिं नचावत रामगोसाई (भगवती चरण वर्मा) हौलदार, चिठ्ठीरसेन, चौथी मुठ्ठी, आकाश कितना अनंत है (शैलेष मटियानी), लोहे के पंख, नदी फिर बह चली (हिमांशु श्रीवास्तव), झूठा-सच (यशपाल), सती मैया का चौरा (भैरवप्रसाद गुप्त), रागदरबारी (श्रीलाल शुक्ल) आधा गाँव (डॉ.राही मासूम रज़ा), काला जल, (बूल शेरखान साहनी) अलग-अलग वैतरणी (डॉ.शिवप्रसाद सिंह) जल टूटता हुआ (डॉ.रामदरश मिश्र) सारा आकाश (राजेन्द्र यादव) सूरज का सातवाँ घोड़ा (धर्मवीर भारती) आगामी अतीत, तीसरा आदमी (कमलेश्वर) अंधेरे बंद कमरें (मोहन राकेश) आपका बंटी (मन्नू भंडारी) सूरजमुखी अंधेरे के (मित्रो मरजानी), कृष्णा सोबती, वे दिन (निर्मल वर्मा), मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी), मुर्दाघर (जगदंबा प्रसाद दीक्षित)

(17) मैत्रेयी पुष्पा का रचनाकाल समकालीन हिन्दी उपन्यास का है। प्रमुख समकालीन हिन्दी उपन्यासों में अनारों, रेत की मछली, तत्सम्, कुरू कुरू स्वाहा, मुझे चाँद चाहिए, इदन्नमम् , अल्मा कबूतरी, चित्तकोबरा, उसके हिस्से की धूप, यामिनी कथा, शहर में कर्फ़्यू, आखिरी कलाम, ईसूरी फाग, दर्दपुर, पिछले पन्ने की औरतें, कुईयाँजान, सलाम आखिरी, धार, जंगल जहाँ शुरु होता है, आग-पानी-आकाश, वे जहाँ कैद हैं। आदि की गणना कर सकते हैं।

(18) हिन्दी कथा साहित्य विशेषतः उपन्यास साहित्य में सन् साठ के बाद महिला लेखिकाओं की विशेष भागीदारी रही हैं। इन महिला लेखिकाओं में कृष्णासोबती, मन्नूभंडारी, उषा प्रियवंदा, निरुपमा सेवती, मेहरुनिशा परवेज़, सूर्यबाला सिंह, मंजुल भगत, ममता कालियाँ, मालती जोशी, शशिप्रभा शास्त्री, दीप्ती खण्ड़ेलवाल, मृदुलागर्ग, चित्रा मृदुगल, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा, क्षमा शर्मा, शरद सिंह, मधुकाकरिया, मैत्रेयी पुष्पा, नमिता सिंह, प्रभुति का योगदान उल्लेखनीय कहा जा सकता हैं। नारीविमर्श को अग्रसरित करने में इनका सविशेष योगदान रहा है। इस दिशा में प्रभाखेतान तथा मैत्रेयीपुष्पा के योगदान

को नकारा नहीं जा सकता। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में हमें बुंदेलखण्ड़ के ग्रामीण अंचल की तेजतर्रार, जूझारु संघर्ष-कर्मी, जीवटवाली महिलाएँ उपलब्ध होती हैं। उन्होंने ग्रामीणक्षेत्र की निम्नजाति की महिलाओं के जुझारुपन को भी अभिव्यक्ति दी है। अल्मा कबूतरी उसका ज्वलन्त उदाहरण हैं।

संदर्भ संकेतः

(1) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभावः डॉ.भारतभूषण अग्रवालः पृ.23

(2) वही. पृ.21

(3) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य का इतिहासः आचार्य रामचंद्र शुक्लः पृ.434

(4) दृष्टव्यः परीक्षागुरु : लाला श्रीनिवासदास और भूमिका।

(5) दृष्टव्यः आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रुपों का चित्रण : डॉ.मोहम्मद अज़हर ढ़ेरीवालाः पृ.24

(6) दृष्टव्यः भारतीय नवलकथा भाग-1 : डॉ.रमणलाल जोशीः पृ.6-7

(7) Sec : Novel : New English Dictionary

(8) Aspects of the Novel – E.M.Forster – P:94

(9) Novel and the People: Ralphox : P.20

(10) Writers at work : First series: Irawal fert P:8

(11) उध्र्धत द्वारा : डॉ.पारुकांत देसाई : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास " पृः56-57

(12) वही :92

(13) साहित्यालोचन : पृ.135

(14) कुछ विचार : प्रेमचंद : पृ.46

(15) उपन्यास शीर्षक लेखक : साहित्य संदेश मार्च 1940

(16) हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 : पृ.153

(17) हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डॉ.एस.एन.गणेशन : पृ.29

(18) विस्तार के लिए दृष्टव्य : प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास : सामाजिक उपन्यास नामक तृतीय अध्याय : पृ.79 से 198

(19) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पारुकांत देसाई :पृ.128

(20) Writer at work, first series : 1958 : P.60

(21) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : डॉ. भारतभूषण अग्रवाल : पृ.24

(22) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.71

(23) आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान : डॉ.देवराज : पृ.14

(24) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.131

(25) दृष्टव्यः "हिन्दी उपन्यासः एक अंतर्यात्रा" पृ.222-223

(26) दृष्टव्यः "रामायण ओर महाभारत के कथावस्तु पर आधारित डॉ.नरेन्द्र कोहली के उपन्यास : एक अनुशीलन" (शोध प्रबंध) डॉ.राजेश चौहाण : पृ.44-50

(27) आधुनिक समुद्रशास्त्र (Oscanology) के अनुसार समुद्र में स्थितिया उसको कहते है जहाँ समुद्र गहरा न होकर उथला होता हैं।

(28) क्षितिज नवलकथा विशेषांक : संपादक : सुरेश जोशी

(29) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डॉ.गोपालराय : पृ.387

(30) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : पृ.70

(31) दृष्टव्यः वहीः पृ.73

(32) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययनः डॉ.एस.एन.गणेशनः पृ.58

(33) दृष्टव्यः युगनिर्माता प्रेमचंद : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.28-29

(34) दृष्टव्यः वहीं : पृ.32

(35) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पी.के.देसाई : पृ.108 से 115

(36) वही : 127 से 130

(37) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पी.के.देसाई : पृ.115 से 119

(38) दृष्टव्यः वही : पृ.120 से 127

(39) दृष्टव्यः हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ.पारुकांत देसाई : पृ.62

(40) दृष्टव्यः वही : पृ.62-63

(41) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य का इतिहास : डॉ.गोपाल राय : पृ.348-350

(42) दिनकरजी की एक कविता का शीर्षक

(43) माखनलाल चर्तुवेदी की "रावी का तट यमुना का तट" शीर्षक कविता।

(44) दृष्टव्यः हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ.पी.के.देसाई : पृ.10

(45) दृष्टव्यः "हिन्दी उपन्यासों में चित्रित वैश्याजीवन : एक अध्ययन" (शोधप्रबंध) डॉ.प्यारेलाल कहार : पृ.सं.43-44

(46) दृष्टव्यः "हिन्दी उपन्यास का इतिहास": डॉ.गोपालराय – पृ.387

(47) दृष्टव्यः वही : पृ.388

(48) डॉ.गोपालराय : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : पृ.390

द्वितीय अध्याय

हिन्दी आत्मकथा,परिभाषा, विभावना और विकास

द्वितीय अध्याय

हिन्दी आत्मकथा परिभाषा, विभावना और विकास

प्रास्ताविक

हमारे शोध प्रबंध का विषय है – "मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन" । अतः प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम आत्मकथा विधा के सैध्धान्तिक निरूपण के उपरांत आत्मकथा साहित्य के इतिहास को रेखांकित करने का रहेगा । शोध प्रबंध मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं से सम्बद्ध है । फलतः प्रस्तुत अध्याय में समकालीन हिन्दी साहित्य में महिला लेखिकाओं के द्वारा प्रणीत आत्मकथाओं के ऐतिहासिक विकास को रेखांकित एवम् विश्लेषित करने का भी रहेगा । समकालीन हिन्दी साहित्य में महिलाओं द्वारा लिखित आत्मकथाओं पर संक्षिप्त दृष्टिपात किया जाएगा । मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं का विश्लेषण तृतीय अध्याय में रहेगा । अतः प्रस्तुत अध्याय में नारी लेखन के तहत महिला लेखिकाओं द्वारा लिखित आत्मकथाओं की उपादेयता बताते हुए नारी-विमर्श को स्पष्ट करने का रहेगा । इसके उपरांत अध्याय के अंत में सम्रगावलोकन की प्रकिया द्वारा समग्र अध्याय से कुछ निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाएगा ।

आत्मकथाविधाः तत्व एवम् अभिलक्षण

काव्य या साहित्य के अंतर्गत जहाँ गद्यविधाओं का उल्लेख हुआ है, गद्य की अनेक विधाओं में आत्मकथा विधा का भी उल्लेख किया गया है । मोटे तौर पर आत्मकथा उसे कहा जाता है जिसमें कोई व्यक्ति विशेष अपने जीवन के संदर्भ में अपनी ही कथा को प्रस्तुत करता है । उसमें व्यक्ति स्वयं अपने जीवन के प्रसंगों को उद्घाटित करता है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अरण्यवासी तो है नहीं । वह समाज में अपने घर-परिवार, सगे-सम्बन्धी और मित्र तथा परिचितों के बीच में रहता है । जन्म से लेकर जहाँ तक की भी कथा कही गयी है उसमें व्यक्ति अनेक लोगों के परिचय में आता है, उसमें कुछ तो उसके घर-परिवार के अपने लोग होते हैं और कुछ बाहरी लोग होते हैं । अतः आत्मकथाकार कथा तो अपनी कहता है परंतु उसके साथ कई-कई लोग भी संदर्भित हो जाते हैं । इन संदर्भित पात्रों की बात आत्मकथाकार अपने निजी दृष्टिकोण से करता है । उन लोगों का उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार रहा है उसके आधार पर उसका निरूपण होता है । आत्मकथा में आत्मकथाकार अपनी कथा कहता है परंतु अपनी कथा कहने से पहले वह संक्षेप में अपनी वंश परम्परा पर भी प्रकाश डालता है । वंशपरम्परा की

चर्चा करते हुए वह अपने दादा-परदादा आदि कुछ पूर्वजों की बात भी कर सकता है। जैसा कि हरिवंशराय बच्चन ने भी अपनी आत्मकथा के प्रथम खंड़ – "क्या भूलूँ क्या याद करूँ" में किया है। आत्मकथा चूँकी आत्मकथाकार की अपनी व्यक्तिगत कथा है, अतः उसमें ईमानदारी और प्रमाणिकता का होना बहुत ही आवश्यक हैं। आत्मकथाकार को चाहिए कि वह अपने जीवन के सभी प्रसंगों को, सभी पक्षों को, अच्छे और बुरे, निखालसता एवम् तटस्था के साथ बिना किसी लाग-लपेट और लिहाज के तटस्थापूर्वक प्रस्तुत कर दें। आत्मकथा में आत्मश्लाघा का तत्व उसके कलात्मक मूल्यों को व्याघात पहुँचा सकता है। यह मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति है कि वह अपने जीवन के उज्जवल पक्षों की चर्चा तो खूब उत्साहपूर्वक एवम् रस ले-लेकर करता है परंतु अपने जीवन के अनुज्जवल पक्षों के उदघाटन में वह कतरा जाता है। अतः आत्मकथा लेखन के क्षेत्र में केवल उसे ही पदार्पण करना चाहिए, जिसमें अपने जीवन के अंधेरेपक्षों को प्रकट करने का साहस हो। इस संदर्भ में हम महात्मा गांधीकी आत्मकथा "सत्य के प्रयोग" और अमृताप्रीतम की आत्मकथा "रसीदी टिकट" का उल्लेख कर सकते हैं। मोहनदास करमचंद गांधी ने अपनी आत्मकथा में चोरी के प्रसंगों की, माँस खाने के प्रसंगों की, बीड़ी-सिगरेट जैसे व्यसनों की तथा, अपनी कामुकता के अतिरेक की चर्चा भी निड़रता और साहसता के साथ की है। इस संदर्भ में बर्टेण्ड रसेल की आत्मकथा भी उल्लेखनीय कही जा सकती है। किसी को लग सकता है कि आत्मकथा लिखना तो सबसे आसान हो सकता है, क्योंकि उसमें केवल अपने बारे में ही लिखना है परंतु ऐसा नहीं है, जैसा कि ऊपर बताया गया है अपने जीवन के अंधेरेपक्षों को सामाजिक रूप से प्रकट करने के लिए बहुत ही हिम्मत और साहस चाहिए। अतः आत्मकथा लिखना आसान नहीं अपितु टेढ़ी खीर है। गुजराती के महान तत्वचिंतक और निंबधलेखक मणिभाई नभुभाई द्विवेदी ने अपनी आत्मकथा में अपने जीवन के कुत्सित प्रसंगो की भी खुलकर चर्चा की है। दूसरी स्त्रियों के साथ उनके संबंधों का भी उन्होंने खुलकर वर्णन किया है। उसमें कुछ तो उनकी मित्र पत्नियाँ और रिश्तेदारों की पत्नियाँ थीं। अतः मणिभाई ने जब यह आत्मकथा अपने मित्रों के सामने रखी तो उन्होंने तय किया कि मणिभाई के निधन के उपरांत पचास साल बाद ही उसका प्रकाशन किया जाय क्योंकि उसके कारण कइयों के जीवन पर पारिवारिक संकट आ सकता था। कहने का अभिप्राय यह है कि आत्मकथा लिखना सरल नहीं है। आत्मकथा लिखना बड़े उत्तरदायित्व का काम है। "दायित्व बोध" हीन व्यक्ति को इस क्षेत्र में कभी नहीं आना चाहिए। आत्मकथाकार जब अपनी कथा लिखता है तो साथ ही साथ वह अपना समसामायिक (Contemporary) इतिहास भी लिख रहा होता है। अपने समय की सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का लेखा-जोखा भी उसमें रह सकता है। अतः अच्छी प्रामाणिक आत्मकथा वही लिख सकता है जो अपनी दैनंदिनी या डायरी लिखता हो। हाँलाकि डायरी भी अपने आप में एक अलग साहित्यिक विधा है। गुजराती में "महादेव भाई की डायरी" अंत्यंत प्रसिद्ध है जो महात्माजी के अंत्येवासी है। उसमें महात्माजी के जीवन की अनेक रोजाना घटनाओं का

उल्लेख मिलता है। गांधीजी अपनी आत्मकथा लिख पाये उसमें इस डायरी से भी उन्होंने काफी सहायता ली होगी। पश्चिम के तो अनेक लेखक अपनी डायरियाँ लिखते थे। प्रसिद्ध जर्मन कवि रिल्के की डायरी इस संदर्भ में उल्लेखनीय कही जा सकती है। मादामबउरी के लेखक ने भी अपनी डायरी लिखी है जो मादामबउरी की रचना प्रक्रिया को समझने में काफी उपयोगी हुई है।

आत्मकथा को अंग्रेजी में Autobiography कहते हैं। उसमें Biography शब्द के आगे Auto उपसर्ग लगा हुआ है। Biography शब्द का अर्थ जीवन चरित्र होता है। अतः Autobiography का अर्थ होगा वह जीवनचरित्र जो जीवन चरित्र्यकारने अपने विषय में स्वयं लिखा हो। "सत्य के प्रयोग" महात्मा गांधी ने स्वयं अपने संदर्भ में लिखा है। अतः वह Autobiography है। परंतु यदि महात्मा गांधी के संदर्भ में उनके जीवन को लेकर कोई दूसरा व्यक्ति लिखता है तो उसे Biography कहा जाएगा। हिन्दी में मुंशी प्रेमचंद के संदर्भ में मदनगोपाल तथा अमृतराय ने क्रमशः "कलम के मजदूर" और "कलम का सिपाही" नाम से दो जीवनियाँ लिखी है। जिनको हम मुंशी प्रेमचंद की Biography कह सकते हैं। इस तरह जीवनी के लिए अंग्रेजी में Biography और आत्मकथा के लिए Autobiography शब्द मिलते हैं। सरल शब्दों में कहें तो जीवनी में लेखक और चरित्रनायक अलग-अलग होते हैं; जबकि आत्मकथा में लेखक और चरित्रनायक एक ही होते हैं।

उपर्युक्त दोनों विधाओं के लिए विपुल, गहरे, अध्ययन की आवश्यकता रहती है। उनके लेखकों पर एक वैश्विक राष्ट्रीय सामाजिक दायित्वबोध का दबाव रहता है। जिस प्रकार इतिहास लेखक वस्तुतथ्यता (Mater of facts) की उपेक्षा नहीं कर सकता उसी प्रकार आत्मकथा लेखक भी वस्तुतथ्यता को भुला नहीं सकता। उनको अतिरंजनाओं, अतिशयोक्तियों और मिथक तत्वों से बचना होगा।

आत्मकथाकार का वैयक्तिक परिवेश अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। उसमें वैयक्तिक, पारिवारिक जानकारियों के अतिरिक्त आत्मकथाकार का जो परिवेश है, उसका भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। आत्मकथाकार जिस क्षेत्र से सम्बद्ध होता है, वह परिवेश उसमें सर्वांगी रूप से उभरकर आना चाहिए। इस तरह राजनीतिज्ञ समाजसुधारक, संत-महात्मा, तथा लेखक कवि के संदर्भ में उन लोगों के परिवेश पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति पाऐंगे।

हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 में डॉ. अजीतकुमार ने आत्मकथा के संदर्भ में दिया है। आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से संबद्ध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव है। डायरी, जर्नल, संस्मरणपत्र आदि रचना प्रकार आत्मकथा के ही स्फुट रूप हैं। इन्हें व्यक्तिगत प्रकाशन Personal Revolution वाले साहित्य के

अंतर्गत रखा जा सकता है; क्योंकि जाने-अनजाने आत्मांकन करना ही इन विविध रचना प्रकारों का उद्देश्य होता हैं। जीवन-चरित्र आत्मकथा से इस अर्थ में भिन्न है कि किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई किसी अन्य व्यक्ति की जीवनी जीवन चरित्र है और किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गयी स्वयं अपनी जीवनी आत्मकथा है। आत्मचरित और आत्मचरित्र हिन्दी में आत्मकथा के अर्थ में प्रयुक्त प्रारंभिक शब्द है और तत्वतः आत्मकथा से भिन्न नहीं है। एक सूक्ष्म अंतर कदाचित यह है कि आत्मचरित कहनेवाली रचना किंचित विश्लेषणात्मक और विवेकप्रधान होती थी और अब आत्मकथा कहे जाने वाली अपेक्षया अधिक रोचक और सुपाठय होती है। आपबीती, अपने साथ बीती हुयी सामान्यतः किसी असुखद घटना का वर्णन है। "......की रामकहानी" और "............की कहानी उसकी जबानी" शीर्षक से लिखी गयी रचनाओं की शैली तो आत्मकथा की होती है पर किसी अन्य के जीवन पर प्रकाश डालती है। वास्तव में ऐसी रचनाएँ प्रथम पुरुष सर्वनाम में लिखित जीवनियाँ है और उचित यह है कि इन्हें आत्मकथा या जीवनी शैली में लिखी गई स्फुट गद्यरचनाओं की संज्ञा दी जाय। आत्मकथा, जीवनी या पत्रशैली में निबंध भी लिखे जा सकते हैं और कहानी उपन्यास भी, पर स्वतंत्र विधा की दृष्टि से आत्मकथा आदि रूपों का साहित्य में अपना अलग स्थान है।"[1]

भारतीय साहित्यकोश (संपादक डॉ. नगेन्द्र) में आत्मकथा के संदर्भ में दिया गया है – "जीवन चरित्र के दो रूप हैं – जीवनी और आत्मकथा। लेखक के अपने जीवन से संबंधित ब्यौरेवार विवरण, संस्मरण, डायरी, पत्रावली आदि सभी आत्मकथा के अंतर्गत आते हैं; पर आत्मकथा प्राय : उसी पुस्तक को कहते हैं जिसमें लेखक अपने जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, भले ही उसमें आंतरिक जीवन या चरित्र पर अधिक बल दिया गया है। कार्लाइल के शब्दों में सफल चरित्र का लिखना उतना ही कठिन है जितना सफल जीवन का अपने जीवन में निभाना; आत्मकथा लिखना तो और भी दुष्कर है क्योंकि प्रथम तो व्यक्ति की स्मृति सदा विश्वसनीय नहीं होती; दूसरे कटु सत्यों का उद्घाटन करना, अपने दुःखों, दोषों और चारित्रिक छिद्रों को प्रस्तुत करना कठिन है और तीसरे अपने पौरूष और महत्व जताने का लोभ संवरण करना दुष्कर होता है। फिर भी विश्व-वाङ्मय में अनेक प्रामाणिक आत्मकथाएँ जैसे रूसो तथा गांधी की आत्मकथाएँ लिखी गयी हैं, जो रोचक होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी हैं।[2]

उपर्युक्त परिभाषा में निम्नलिखित तथ्यों को विशेषतया रेखांकित किया गया है -

(1) आत्मकथा में लेखक स्वयं अपने जीवन को ब्यौरेवार प्रस्तुत करता है; (2) आत्मकथा लेखन में संस्मरण, डायरी, पत्र आदि सहायक हो सकते है; (3) सफल आत्मकथा को लिखना सफल जीवन जीने के समान ही कठिन है; (4) आत्मकथा लिखना अंत्यत दुष्कर है; क्योंकि अपनी कमियों और चारित्रिक छिद्रों को उद्घाटित करने का साहस कुछ बिरले ही कर सकते हैं; । उपर्युक्त विवेचन में जो कहा गया है कि सफल आत्मकथा

लिखना सफल जीवन जीने के समान है, तो उसका तात्पर्य यह है कि किसी – न – किसी क्षेत्र में जो विशेष रूप से सफल रहे हैं उनकी आत्मकथा ही समाज को उपयोगी हो सकती है । ऐसे महान व्यक्तियों के जीवन में कुछ छिद्र हो तो भी उनकी महानता की ओट में वे छिप जाते हैं, या कम से कम उनके शेष अनुकरणीय आदर्श जीवन को देखते हुए पाठक और समाज उन छिद्रों को दरगुजर कर सकता है । सरल शब्दों में कहें तो चारित्रिक छिद्रों का अनुपात वहाँ कम होता है । सकारात्मक पक्षों का बाहुल्य होता है । तभी आत्मकथा साहित्य प्रेरणादायी ठहरता है । सफल व्यक्तित्व संपन्न आत्मकथाकार के चारित्रिक छिद्र और स्खलन भी प्रेरणादायी होते हैं; क्योंकि उनसे उसकी विश्वसनीयता और मानवीयता बढ़ जाती है । अगर इस प्रकार के छिद्र और कमियाँ ना हो तो व्यक्ति को लोग देवता या भगवान बना देंगे । किन्तु मानव सहज कमजोरियों के कारण पाठक और समाज यह बात ग्रहण कर सकता है कि इस प्रकार की कमजोरियों से भी मनुष्य का लौह-संकल्प उसे महान बना सकता हैं । व्यक्ति को भगवान या देवता मान लेने से समाज, देश और संस्कृति का जो सर्वाधिक नुकशान होता है वह यह कि लोग-बाग मानने लगते हैं कि यह तो अपौरूषेय काम है; और कोई अवतारी पुरूष ही उसे कर सकता है । सामान्य मनुष्य के बूते के बाहर हैं । अतः मानवीय पुरूषार्थ से व्यक्ति का विश्वास उठ जाता है ।

Compact Oxford Reference Dictionary में Autobiography को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – Biography is an account of a person's life written by that person'[3] अर्थात् आत्मकथा में व्यक्ति स्वयं अपने जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है । आत्मकथा लेखक को Autobiographer कहा जाता है और उस प्रकार की रचना को Autobiographical कहा जाता है ।

डॉ. गुलाबराय ने अपने "काव्य के रूप" नामक ग्रंथ में जीवनियों के प्रकार के अंतर्गत जीवनी के एक रूप में "आत्मकथा" का उल्लेख किया है, यथा "जीवन चरित्रों की कई विधाए और रूप हैं । लेखक की दृष्टि से तो जीवनी और आत्मकथा ये दोनों प्रधान रूप है । जीवनी कोई दूसरा आदमी लिखता है और आत्मकथा स्वयं लिखी जाती है ।"[4] इसी संदर्भ में डॉ. गुलाबराय लिखते है – साधारण जीवन चरित्र से आत्मकथा में कुछ विशेषता होती है । आत्मकथा लेखक जितना अपने बारे में जान सकता है उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा नहीं जान सकता । किन्तु इसमें कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शील-संकोच आत्म प्रकाश में रूकावट डालता है । यद्यपि सत्य के आदर्श से तो दोंनो ही प्रवृत्तियाँ निंद्य हैं । तथापि अनावश्यक आत्मविस्तार कुछ अधिक अवांछनीय है । शीलसंकोच के कारण सत्य और उसके अनुकरण के लाभ से वंचित रखना भी वांछनीय नहीं कहा जा सकता । साधारण जीवन लेखक की अपेक्षा आत्मकथा लेखक को ऊब से बचाने और अनुपात का अधिक

ध्यान रखना पड़ता है । उसे अपने गुणों के उद्घाटन में आत्मश्लाघा या अपने मुंहमियां मिट्ठू बनने की दूषित प्रवृत्ति से बचना चाहिए । जीवनी लिखनेवाले को अपने गुण कहने में सचेत रहने की आवश्यकता है । (इसी कारण इन पंक्तियों के लेखक ने अपने आत्मकथा संबधी निंबधो में अपनी असफलताओं का ही उद्घाटन किया है । उस पुस्तक का नाम भी "मेरी असफलताएँ" है ।)[5]

आत्मकथा के संदर्भ में आंग्ल लेखक अब्राहम काउली के निम्नलिखित शब्दों को तथ्यपूर्ण बताया हैं । पंड़ित जवाहरलाल नेहरु ने – "किसी आदमी को अपने बारे में खुद लिखना मुश्किल भी है और दिलचस्प भी क्योंकि अपनी बुराई या निंदा लिखना खुद हमें बुरा मालूम होता है और अगर हम अपनी तारीफ करें तो पाठकों को उसे सुनना नागवार मालूम होता है ।"[6]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम आत्मकथा के निम्नलिखित अभिलक्षणों तक पहुँच सकते हैं-

(1) व्यक्ति जीवन से सम्बद्ध जो साहित्यरूप हैं उनमें जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी, पत्र इत्यादि की गणना कर सकते हैं । प्रथम दो के अतिरिक्त जो साहित्यरूप हैं वे अपने आप में स्वतंत्र भी हो सकते हैं और प्रथम दो के लेखन में उपादेय भी हो सकते हैं ।

(2) जीवनी को अंग्रेजी में Biography कहा गया है । उसमें लेखक किसी अन्य नामांकित व्यक्ति के जीवन पर उसके जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के ब्यौरों को ठोस प्रमाणों और दस्तावेजों के आधार पर प्रस्तुत करता है । इस प्रकार जीवनी लेखक एक हद तक इतिहासकार की भूमिका अदा करता है ।

(3) आत्मकथा को अंग्रेजी में Autobiography कहा गया है । उसमें लेखक स्वयं अपने जीवन को ब्यौरेबार प्रस्तुत करता है । आत्मकथा के दो भयस्थान हैं – आत्मश्लाघा और आत्मसंकोच ।

(4) ये दोनों विधाएँ अंत्यंत दुष्कर हैं । जीवनी लेखन में लेखक को अपने चरित्रनायक का सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ता है । उससे संबंधित समग्र जानकारी का आद्यंत अनुशीलन करना होता है । जीवनी लेखन व्यक्ति पूजा का साधन न बने उसके लिए उसे बहुत सचेत रहना पडता है । आत्मकथा लिखना तो जीवनी से भी अधिक कठिन है । यह बात किसी को विपरीत लग सकती है, क्योंकि जहाँ जीवनी में सामग्री हेतु वर्षो अध्ययन में लग जाते हैं, वहाँ आत्मकथा लेखन में अपने बारे में लिखने के कारण सामग्री के लिए इधर-उधर झाँकना नहीं पड़ता । परंतु यही तो कठिन है । आत्मकथा लेखन असि-धार पर चलने के समान है । जैसा कि ऊपर पंड़ितजी ने लिखा है आत्मकथा लेखक यदि अपनी बुराई या

निंदा करता है तो वह उसके लिए कठिन होता है और यदि वह अपनी तारीफ करता है तो सुनने वालों को वह नागवार गुजरता है । अपने चारित्रिक छिद्रान्वेषण में लेखक को नैतिक साहस का परिचय देना होता है । जिस प्रकार रस्सी पर चलनेवाले नट को Balance का ध्यान रखना पडता है ठीक उसी प्रकार आत्मकथा लेखक को भी इसी प्रकार की "नट साधना" करनी होती है ।

आत्मकथा साहित्य की परम्परा :

हिन्दी जीवनी साहित्य का आरंभ तो मध्यकाल से हो गया था । "चौरासी वैष्णवन की वार्ता", "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता", "भक्तमाल" तथा प्रियदासजी द्वारा प्रणीत उसकी टीका आदि इसके उदाहरण हैं । परंतु इनका शुमार जीवनी साहित्य में होगा । जहाँ तक आत्मकथा का सवाल है हिन्दी की प्रथम आत्मकथा अकबर के समकालीन आगरा निवासी जैन कवि बनारसीदासजी की है । उन्होंने अपनी इस आत्मकथा को "अर्ध्दकथानक" नाम दिया है जिसमें उन्होंने अपनी बुराइयों और कमजोरियों का निःसंकोच भाव से उद्‌घाटन किया है । परंतु यह आत्मकथा पद्यात्मक है, जबकि इधर के आत्मकथा साहित्य को हम गद्य की विधा मानते हैं । तुलसीदासजी के भी दो पद्यमय जीवन निकले थे, किन्तु वे अब प्रामाणिक नहीं माने जाते ।[7] वस्तुतः आधुनिक आत्मकथा साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग से माना जा सकता है, स्वयं भारतेन्दुजी ने "कुछ आपबीती कुछ जगबीती" संज्ञक आत्मवृतांत लिखा था । सन् 1819 में हमें स्वामी दयानंद की आत्मकथा प्राप्त होती है । डो. चंद्रभानु सोनवणेकर के मतानुसार इसे हम खड़ी बोली की प्रथम आत्मकथा कह सकते हैं ।[8] भारतेन्दुयुग में हमें प्रतापनारायणमिश्र की आत्मकथा मिलती है, जो कि अधूरी है । दूसरी आत्मकथा किशोरी लाल गोस्वामीजी की मिलती है । इस आत्मकथा में उन्होंने बताया है कि अपने स्वतंत्र विचारों के लिए उन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ा था । उनके पिताजी ने उनको भारतेन्दु हरिशचन्द्र से मिलने की मनाही कर रखी थी । क्योंकि वे भारतेन्दुजी को नास्तिक समझते थे । अतः उनको मिलने के लिए वे छिप-छिपकर आधी रात को जाते थे । जिसके लिए उनको दरबान को घूस भी देनी पड़ती थी ।[9]

भारतेन्दुयुग के पश्चात् द्विवेदीयुग मे डॉ. श्यामसुंदरदास की आत्मकथा "मेरी आत्मकहानी" उपलब्ध होती है । इसके अतिरिक्त श्रद्धानंदजी द्वारा लिखित "कल्याणमार्ग के पथिक" नामक आत्मकथा प्राप्त होती है । भाई परमानंदजी द्वारा लिखी हुई "आपबीती" भी उल्लेखनीय कही जा सकती है । जिसमें उन्होंने अपने साहसपूर्ण जीवन के घात प्रति घातों का आकलन किया है । श्री वियोगी हरि की आत्मकथा भी "मेरा जीवन प्रवाह" नाम से प्रकाशित हो चुकी है ।[10] इसके अतिरिक्त सत्यानंद अग्निहोत्री कृत "मुझ में देवजीवन का विकास" नामक आत्मकथा उपलब्ध होती है ।

वस्तुतः देखा जाय तो आत्मकथा साहित्य का विकास द्विवेदीयुग और उसके बाद हुआ है । इस कालखण्ड़ में जो आत्मकथाएँ हमें उपलब्ध होती हैं, उनको हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाएँ और

(ख) तत्कालीन नेताओं की आत्मकथाएँ ।

(क) हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाएँ : इन आत्मकथाओं में डॉ. राजेन्द्र माथुर कृत आत्मकथा, महापंड़ित राहुल सांस्कृत्यायन कृत "मेरी जीवन यात्रा", मार्क्सवादी लेखक यशपाल कृत "सिंहावलोकन" सेठ गोंविददास कृत "आत्मनिरीक्षण" ; पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी कृत "मेरी अपनी कथा" ऐतिहासिक उपन्यासकार चतुर सेन शास्त्री द्वारा प्रणीत "मेरी आत्मकथा" ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा द्वारा लिखित "अपनी कहानी" डॉ. नगेन्द्र कृत "अर्ध्दकथा" पंडित गोपालप्रसाद व्यास द्वारा लिखित "कहो व्यास कैसी कही?" पाण्डेय बैचेन शर्मा उग्र कृत "अपनी खबर" , श्री दौलत द्वारा लिखित "दौलत दरबार", अजित कौर द्वारा लिखित "खाना बदोश" डॉ. रामविलास शर्मा कृत "अपनी धरती अपने लोग", डॉ शिवपूजन सहाय कृत "मेरा जीवन" भीष्मसाहनी कृत "आज के अतीत" आदि को उल्लेखनीय कहा जा सकता है ।[11] इधर कुछ अनेक खंड़ीय आत्मकथाएँ भी आयी हैं । हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि - गीतकार डॉ. हरिवशं राय बच्चन की आत्मकथा चार खण्ड़ों में आयी है, यथा – "क्या भुलूँ क्या याद करूँ", "नीड़ का निर्माण फिर", "बसेरे से दूर", "दशद्वार से सोपान तक" । इसी तरह डॉ. रामदरश मिश्र की आत्मकथाएँ भी 4 खण्ड़ों में प्रकाशित हुई है, यथा – "जहाँ में खड़ा हूँ" , रोशनी की पगदंड़ियाँ, टूटते बनते दिन, "उत्तरपथ" । डॉं. राजेन्द्रयादव यद्यपि आत्मकथा लिखने के पक्ष में नहीं थे । किन्तु उनके साहित्यिक जीवन के कुछ प्रसंगों का आलेखन उन्होंने "मुड़-मुड़ के देखता हूँ" में किया है । डॉ. राजेन्द्रयादव ने इसे आत्मकथा न कहते हुए "आत्मकथ्य" कहा है ।

(ख) इसी कालखण्ड़ में हमें कुछ देशनेताओं और समाज सुधारकों की आत्मकथाएँ भी उपलब्ध होती हैं । इन आत्मकथाओं में महात्मागांधी की आत्मकथा "सत्य के प्रयोग" एक क्लासिक रचना मानी गई है । उसकी गणना विश्व-साहित्य की सर्वोत्तम आत्मकथाओं में होती है । "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा ।" का नारा देनेवाले वीर सुभाषचंद्र बोस ने अपनी आत्मकथा "तरूण के स्वप्न" नाम से लिखी है । उस समय की राजनीतिक गतिविधियों को समझने के लिए यह आत्मकथा उपयोगी सिद्ध हो सकती है । सशस्त्र क्रांति में विश्वास रखनेवाले क्रांतिकारी शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा भी प्राप्त

होती है । बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में यह हिन्दी का एक सर्वश्रेष्ठ आत्मचरित है ।[12] इन्हीं दिनों में भवानी दयाल संन्यासी की आत्मकथा "प्रवासी की आत्मकथा" के नाम से प्रकाशित होती है । सत्यदेव परिव्राजक की आत्मकथा "स्वातंत्र्य की खोज में" भी स्वाधीनता आंदोलन को यथार्थतः चित्रित करनेवाली आत्मकथा है । पंडित जवाहरलाल नेहरू की "मेरी कहानी" नामक आत्मकथा भी विश्वसाहित्य में अपना स्थान रखती है । स्वतंत्र्य भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की आत्मकथा "सत्य की खोज" भी उल्लेखनीय कही जा सकती है । देशनेताओं की आत्मकथाओं की परम्परा में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंड़न की आत्मकथा "आग से लपटें" भी एक महत्वपूर्ण आत्मकथा कही जा सकती है; जिससे तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है । इनमें से कुछ आत्मकथाएँ हिन्दी में अनुदित रूप में भी मिलती हैं । इधर पिछले दो दशकों में अनेक आत्मकथाएँ आई है । सुप्रसिद्ध आधुनिक कथाकार शरद देवड़ा की आत्मकथा "आकाश एक आपबीती" सन् 1992 में प्रकाशित हुई थी । उसी वर्ष काशीनाथसिंह के जीवन के कुछ प्रसंगों "याद हो कि न याद हो" शीर्षक से प्रकाशित हुए जिसे संपूर्ण आत्मकथा तो नहीं परंतु आत्मकथा का अंश या खंड़ कह सकते है । सन् 1995 में दलित कथाकार मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा "अपने-अपने पिंजरे" प्रकाशित हुई, जिसमें दलित जीवन के कुछ रोमांचक, पीड़ा से युक्त प्रसंगों का आलेखन हुआ है । इसके पूर्व सुप्रसिद्ध दलित लेखक एवम कवि ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा "जूठन" भी प्रकाशित हुई है, जिसे पढ़कर मराठी दलित कथा साहित्यकार शरणकुमार लिंबाले की आत्मकथा "अक्करमाशी" की याद ताजा हो जाती है । सन् 1997 में मराठी साहित्यकार किशोर शांताबाई काले की आत्मकथा "छोरा कोल्हाटी का" सामने आती है । किशोर ने अपने नाम के पीछे पिता का नाम न लिखकर माता का नाम लिखा है जिसे हम एक क्रांतिकारी कदम कह सकते हैं । बहुतों को याद हो कि सुप्रसिद्ध Film maker संजय लीला भणसालीने भी अपने पीछे माता का नाम रखा है और अब तो यह कानून भी बन गया है कि कोई चाहे तो अपने पीछे अपनी माँ का नाम लगा सकता है । मोहन राकेश की मृत्यु के उपरांत उनके कुछ लेख, संस्मरण, आरंभिक एकांकी उपन्यास "काँपता हुआ दरिया", फिल्मलेख, डायरी, अधूरे लेख एवम् कविताओं इत्यादि को डॉ. जयदेव तनेजा ने "एकत्र" नामक ग्रंथ में संकलित किया है । उसमें मोहन राकेश का आत्मकथ्य भी है । उसी वर्ष इस्मतचुगताई की आत्मकथा "कागजी है पेहरन" प्रकाशित होती है जिसमें मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति के संदर्भ में कुछ अनकही बातें कहीं गई हैं ।

21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में कुछ महत्वपूर्ण आत्मकथाओं का प्रकाशन हुआ है । यहाँ ध्यान रहें हम समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं का जिक्र नहीं कर रहे हैं क्योंकि परवर्ती पृष्ठों में उस पर अलग से एक उपशीर्षक के तहत हम उन सबका जिक्र करने जा रहे हैं । "मैंने मांडु नहीं देखा" स्वदेश दीपक की आत्मकथा का एक खंड़

है जिसमें उन्होंने अपने खंड़ित जीवन (कोलांस) का निरूपण किया है । "आत्मा का ताप" चित्रकार सैयद हैजर रज़ा की आत्मकथा है जो हमें एक अलग कला विश्व में ले जाती है । उसी प्रकार की आत्मकथा वसंत पोतदार की है जो "कुमार गंधर्व" नाम से प्रकाशित हुई है जहाँ "आत्मा का ताप" में चित्रकला को केन्द्र में रखा गया है । वहाँ प्रस्तुत कथा में संगीत को केन्द्रस्थ रखा गया है । "आई मोहन गाता जाएगा" तथा "लायी हयात आये" क्रमशः कथाकार विद्यासागर नोटियाल और लक्ष्मीधर मालवीय की आत्मकथाएँ हैं । सन् 2004 मे महान क्रांतिकारी विचारक रूसो की आत्मकथा प्रकाशित हुई है । जिसका अनुवाद युगांक धीर ने किया है । सन् 2003 में सुप्रसिद्ध कथाकार भीष्मसाहनी की आत्मकथा "आज के अतीत" प्रकाशित हुई है । उनकी आत्मकथा में एक प्रकार की सहजता और "आम आदमीपन"का भाव दृष्टिगोचर होता है । उनकी ये आत्मकथा "तमस्" और "हानूश" जैसी क्लासिक रचनाओं की रचना प्रकिया को समझने में सहायक होती है । आत्मकथाओं से आमतौर पर आत्मस्वीकृतियों की अपेक्षा की जाती है; इस पुस्तक में वे अंश विशेष तौर पर पठनीय हैं जहाँ भीष्मजी अंकुठ भाव से अपने भीतर बसे "नायक पूजाभाव" को स्वीकारते हैं, बचपन में बड़े भाई (बलराज साहनी) के प्रभाव स्वरूप जो भाव उनके मन में बना, वह बाद तक उनके साथ रहा । हर कहीं वे "हीरो को तलाशने लगते हैं" । भीष्मजी के मास्को प्रवास का ब्यौरा सोबियत संघ को जानने के लिए भी पढ़ा जाना चाहिए । इस से हम साम्यवाद के प्रति रूसी नागरिकों की आरंभिक निष्ठा के बारे में तो जानते ही हैं वे कुछ सूत्र भी हमें दिखायी देते हैं जो धीरे-धीरे सोवियेट समाज में प्रकट हुए और अन्ततः उसके पतन का कारण बने ।"[13]

ऊपर ओमप्रकाश वाल्मीकी और मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथाओं का उल्लेख किया गया है । इसी परम्परा में सुप्रसिद्ध मराठी साहित्यकार दयापवार की आत्मकथा "अछूत"(अनूदित) भी उल्लेखनीय कही जा सकती है । इसके अलावा श्योराजसिंह बैचेन तथा सूरजपाल चौहान की आत्मकथाएँ भी दलित जीवन के रहस्यों को परत दर परत खोलने में सहायक प्रमाणित हो सकती हैं । प्रसिद्ध दलित लेखक भगवानदास की बहुचर्चित आत्मकथा "मैं भंगी हूँ "एक उल्लेखनीय रचना कही जा सकती है । जिसमें उन्होंने भंगी जाति के उद्भव, उत्थान और पतन की कहानी को दर्द के साथ उकेरा है । लगभग सन् 2007 के आसपास रूपनारायण सोनवणेकर की दलित आत्मकथा "नागफणी" काफी चर्चित रही है । दलित लेखको की आत्मकथा में यह स्पष्ट हुआ है कि किस प्रकार धर्म और शास्त्र के नाम पर उनका शारीरिक, मानसिक, आर्थिक जातीय शोषण हुआ है । उन पर अमानवीय एवम् जघन्य अत्याचार हुए हैं और अस्पृश्यता के नाम पर उन्हें कदम-कदम पर अपमानित होना पड़ा है । भारत की जाति व्यवस्था के मूल में वर्णाश्रम व्यवस्था ही रही है । इसलिए तमाम-तमाम दलित लेखकों ने इस अमानवीय एवम् अतार्किक सामाजिक व्यवस्था की भर्त्सना की है ।[14]

समकालीन हिन्दी लेखिकाओं द्वारा प्रणीत आत्मकथाएँ :-

हमारे पोंगा पंड़ित टाईप लोग जिस "कलियुग" को सबसे ज्यादा गरियाते हैं; किन्तु कलियुग का वह आधुनिकयुग (नव जागरण के बाद को) वस्तुतः दलितों और नारियों के लिए तो "स्वर्णयुग" ही समझा जाना चाहिए । इस युग में जो सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आंदोलन हुए, पश्चिम में जो नारीमुक्ति आंदोलन हुआ । "ब्लेक लिटरेचर" जो सामने आया । इन सबके कारण आधुनिकरण में विशेषतः साहित्य में दो विमर्श उभरकर आये हैं – नारी विमर्श और दलित विमर्श । आधुनिक काल की नवीन परिस्थितियों से समुत्पन्न अनुकूलता के कारण नारी शिक्षा एवम् दलित शिक्षा दोंनों में गुणात्मक वृद्धि हुई है, जिसके कारण आधुनिकरण में इन दोनों वर्गों में लेखकों, लेखिकाओं की मानों बाढ़ सी आ गई हैं । हिन्दी साहित्य के किसी भी कालखण्ड़ में इतने दलित लेखक कवि और नारी लेखिकाएँ नहीं हुई हैं । यहाँ हमारा सरोकार समकालीन लेखिकाओं तक महदूद रहेगा । पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम प्रेमचदंयुग, प्रेमचंदोत्तर युग, साठोत्तरी युग इत्यादि की लेखिकाओं का उल्लेख कर चुके हैं । अतः यहाँ समकालीन लेखिकाओं में निरूपमा सेबती, शशिप्रभा शास्त्री, दीप्ति खण्ड़ेलवाल, ममता कालिया, मुदृलागर्ग, राजीशेठ, सूर्यबालासिंह, चित्रा मुद्गल, समा कौल, मधू कांकरिया, नासिरा शर्मा बिंदुभट्ट, महेरून्निशा परवेज़, सुश्री शरदसिंह, कुसुम अंसल, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभाखेतान, आदि की गणना कर सकते हैं; जिनमें से कुछेक लेखिकाओं ने आत्मकथा विधा पर लेखनी चलाने का साहस जुटाया है । एक बात ध्यातव्य रहे कि जिस तरह इधर लेखिकाओं और दलित लेखको की संख्या में गुणात्मक अभिवृद्धि हुई है । ठीक उसी प्रकार इस तबक्कें के लेखक लेखिकाओं ने आत्मकथा विधा में भी प्रचुर मात्रा में लिखा है । यह अकारण नहीं है । सहस्त्रादिक वर्षो से धर्म, शास्त्र, परंपरा, रीतिरिवाज के नाम पर इन तबकों का भयंकर रूप से उत्पीड़न हुआ है । उनको हर तरह से सताया और दबाया गया है । अतः अब जब अनुकूल विचारप्रवाह आये हैं तब उनकी वाचा का खुलना सहज और स्वभाविक माना जाएगा । गेंद को जितनी ताकत से जमीन पर फेंका जाता है उतनी ही ताकात से वह ऊपर उछलता है ठीक यही मनोविज्ञान इस में भी कारणभूत है । 20 वीं शताब्दी के अंतिम दशक में हमें समकालीन लेखिकाओं की कई आत्मकथाएँ प्राप्त होती हैं । इन आत्मकथाओं में सुप्रसिद्ध समकालीन लेखिका "कुसुम अंसल" की आत्मकथा "जो कहा नहीं गया" एक महत्वपूर्ण आत्मकथा है । स्वयं लेखिका के मतानुसार उसमें उन्होंने अपने अनुभवों का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है । "आमुख" में उन्होंने दावा किया – "ज्यों कि त्यों धर दीन्ही चदरिया" । इस आत्मकथा में हमें लेखिका अंसल और मिसिस अंसल के बीच का संघर्ष दृष्टिगोचर होता है । इस संघर्ष को अभिव्यक्त करने की दिशा में वे कहीं - कहीं आत्मसमर्थन करती भी नजर आती है । इस आत्मकथा का एक दोष यह है कि इस में सामाजिक, राजनीति के संदर्भ आत्मकथा का परिवेश नहीं बन पाये हैं । मात्र कुसुम से ऊपर उठकर श्रमकार शिल्पीसृष्टा समझने का दंभ

आत्मकथा को एकांगी बना देता है । तथ्य, वर्णन अधिक है चाहे वह वृंदावन में कुंजबिहारी का मंदिर हो, अथवा गंगा का तट हर जगह दार्शनिक विवेचन और दार्शनिकों तथा अन्यलेखकों के लंबे- लंबे उद्धरण इसके कथारस में बाधक होते है ।[15]

"लगता नहीं हैं दिल मेरा" कृष्णा अग्निहोत्री की भूमिकाबद्ध आत्मकथा है । उर्दू शायर बहादुर शाह ज़फर की गज़ल के मुखड़े से लेखिका के शायराना अंदाज का पता चलता है । लेखिका का कहना है कि "लिखने का उदेश्य किसी को दुःख पहुँचाना या लांछित करना नहीं है.....तब भी यदि किसी को कुछ चोट या कष्ट पहुँचे तो यह समझकर कि उसने मुझे कितना बड़ा घाव दिया है मुझे क्षमा कर दें ।"[16] उनकी इस आत्मकथा में नारी के संपूर्ण अस्तित्व को मात्र उसकी देह तक सीमित कर देने की पीड़ा आद्यंत कसकती रही है । कृष्णाजी ने अपनी इस आत्मकथा में अपूर्णता, रिक्तता का बोध, बार-बार प्रेम में धोखा खाना, अटूट धैर्य, लगन और मेहनत इन सबके सूक्ष्म ब्यौरे दिए हैं । आत्मकथा का सामाजिक, राजनैतिक परिवेश वहीं तक सीमित है जहाँ तक वह लेखिका के संबंध का विषय है । नैतिक संस्कार से लेकर व्यक्तिगत अभिरूचियों तक को लेखिका ने अपनी आत्मकथा तक समेटा है । लेखिका के पास सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि अवश्य है जो व्यक्ति और वातावरण की सूक्ष्मतम हलचल को भी पकड़ने में सक्षम है । प्रेम में बार-बार धोखा खाने के बावजूद वह स्वयं को अभियोग नहीं देती वरन उन स्थितियों को अपराधी सिद्ध करती हैं जो स्त्री को मात्र भोग्या स्थापित करती है । लेखिका की आत्मकथा में साफगोई का प्रयत्न अवश्य है । किन्तु इसके मूल में कहीं न कहीं स्वयं को स्थापित करने की इच्छा भी सर्वोपरि रही है । आत्मविश्लेषण की प्रकिया में वह अपने प्रति कठोर नहीं हो पायी है । इसे इस आत्मकथा का एक कमज़ोर पक्ष समझना चाहिए । अपनी क्षमताओं का परिचय तो लेखिका देती है । किन्तु त्रुटियों और स्खलनों के लिए परिस्थितियों को दोषी ठहराती है । लब्बोलुबाब यह कि अनेक कमजोरियों के रहते हुए भी प्रस्तुत आत्मकथा नारी विमर्श के कई पृष्ठों को उजागर करने में सफल रही है ।[17]

पद्मा सचदेव की आत्मकथा – "बूंद बावड़ी" भी आत्मकथा साहित्य की एक महत्वपूर्ण कड़ी है । प्रस्तुत आत्मकथा में उनके जीवन से सम्बद्ध महत्वपूर्ण कालखण्ड की अंर्तकथा भी जुड़ी हुई है । पद्मा सचदेव डोगरी की कवि कवयित्री है, अतः इस आत्मकथा मे कहीं कविता की लय है तो कहीं नाटकीय आयरनी है । यह आत्मकथा मात्र आत्मकथ्य नहीं है । अपितु लेखिका के विकास की गाथा है । जीवन की देखी सुनी या बीती हुई घटनाएँ किस प्रकार लेखक की रचना का अंग बन जाती हैं, कभी चेतन तौर कभी अचेतन तौर पर, यह हिसाब पकड़ में नहीं आता । प्रस्तुत आत्मकथा से यह भी प्रतीति होती है कि सृजन में अपने जीवन को खपाना साहित्य की अनिवार्यता और नित्यधर्मिता है । लोकगीतों की रचना में उनके भीतर बैठा हुआ "लोक" किस प्रकार अभिव्यक्ति पाता है, इसकी पूरी झलक इसमें मिल जाती है । उनकी आत्मकथा की

विशेषता है कि रेणु की भाँति परिवेश भी यहाँ एक पात्र बन गया है, जम्मू-कश्मीर, बम्बई, दिल्ली सभी स्थान लेखिका की आत्मा के साथ गहराई से जुड़ गये है । "बूँद बावड़ी" का प्रतीक व्यष्टि-समष्टि समबन्धों को सफलता से रूपायित करता है । आत्मकथा में वर्ण्य-विषय की एकाग्रता निरंतर बनी रही है । यदा-कदा लेखिकाने भोले भाव से आत्म निरीक्षण भी किया है और मनोभावों को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है । विपरीत परिस्थितियों में जीते हुए उन्हें अपने वश में करने की अदम्य जिजीविषा लेखिका के अंतर्मन का दर्शन कराती है । निष्कर्षतः कहा जा सकता कि "बूंद बावड़ी एक सफल आत्मकथा है ।[18]

कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा "दोहरा अभिशाप" दलित महिला की पहली आत्मकथा है ।[19] आत्मकथा का शीर्षक "दोहरा अभिशाप" इसलिए है कि कौशल्या बैसंत्री अस्पृश्य समाज की नारी है । एक अभिशाप अस्पृश्यता का और दूसरा अभिशाप नारी होने का । हमारे यहाँ भले "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः" कहा जाता रहा हो, परंतु धर्म और शास्त्र के नाम पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएँ (Disabilities) दलितों और स्त्रियों पर थोपी गयी हैं । कौशल्या बैसंत्री मूलतः मराठी भाषी लेखिका है । आत्मकथा के प्रारंभ में ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि उनकी यह आत्मकथा सीधी सरल शैली में लिखी हुई है और उसमें "स्व" का विश्लेषण करने के बजाय "भोगे हुए यथार्थ" को शब्दों में उतारने का प्रयत्न किया है । सुश्री निशा नाग ने इस आत्मकथा के संदर्भ में लिखा है – "सामाजिक, सांस्कृतिक और दलित चेतना सम्बन्धी राजनैतिक परिवेश का सन्निवेश आत्मकथा को प्रमाणित बनाता है । अस्पृश्य समाज में पैदा होने के कारण लेखिका को जो यातनाएँ सहनी पड़ी है उन्हें लेखिका ने प्रस्तुत किया है । किन्तु अंर्तमंथन और अंतर्द्वन्द्व यहाॅं स्पष्ट नहीं है । आत्मकथा एक गाथा की भाँति अधिकतर बाहरी घटनाओं का मूल्यांकन करती है चाहे वह माँ-बाबा का श्रमकर जीवन हो अथवा लेखिका का स्कूल जाने का प्रसंग । मराठी दलित समाज में प्रचलित खान-पान, रीतिरिवाज छुआ-छूत के अनेक स्तरों का सजीव वर्णन उसमें है । दलितवर्ग में प्रचलित सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक अंधविश्वासों का ब्यौरा भी यह आत्मकथा प्रस्तुत करती है। घर और बस्ती में रहनेवाले अनेक लोगों की अंतर्कथाएँ होते हुए भी प्रकरणों का तादात्मय है । आंबेडकर का प्रभाव और दलित समाज के बौद्ध बनने की मानसिकता दोंनों का ही प्रत्यक्ष दर्शन यहाँ है । एक स्त्री और दलित समुदाय सम्बन्धित होने के कारण लेखिका को जो कुछ भी सहना पड़ा है वह "दोहरा अभिशाप" के रूप में प्रस्तुत है । कहीं भी आत्मश्लाधा, आत्म समर्थन और आत्मप्रताड़ना इसमें नहीं है । घटनाओं का सपाट वर्णन करके भी यह आत्मकथा रोचक बन पायी है ।[20] डॉ. राजेन्द्रयादव ने इस आत्मकथा के संदर्भ में कहा है कि स्त्रियाँ घर को टूटने से बचाने के लिए बहुत सी ज्यादतियाँ बर्दाश्त करती हैं । वे अपने परिवारों और बच्चों का ख्याल रखते हुए कोशिश करती हैं पति से सम्बन्ध विच्छेद करने की नौबत न आए । एक उर्दू शायर का हवाला देते हुए उन्होंने एक शेर भी उद्धृत किया है –

तर्के के तालुकात, मुझे सोचना पड़ा" इस आत्मकथा की भाषा को श्री यादव प्रवाहपूर्ण और अच्छी बतातें हैं। उन्होंने "दोहरा अभिशाप" के संदर्भ में कहा हैं कि हमारे समाज में नैतिकता के सारे मापदंड स्त्रीशरीर से तय होता है और उनका निर्वाह केवल स्त्री को ही करना पड़ता है। सेक्स के मामले में स्त्री का जो शोषण होता है उस अनुभव को केवल स्त्री ही जानती है। मुझे उम्मीद है कि दलित स्त्रियाँ भी उस अनुभव को लिखेंगी।[21] सुप्रसिद्ध दलित लेखक श्यौराजसिंह बैचेन ने प्रस्तुत आत्मकथा के संदर्भ में लिखा है – "मैंने इस आत्मकथा की पांडुलिपि कई बार पढ़ी थी। कौशल्या बैसंत्री के जीवन संघर्ष ने मुझे प्रभावित किया था। इस आत्मकथा का संकेत "हमने भी इतिहास बनाया है" नामक ग्रंथ से मुझे मिला था। जिसमें बैसत्रीजी की बाबा आंबेड़कर के आंदोलन में सक्रियता की झलक थी। ऐसे व्यक्ति जो सामाजिक स्थितियाँ बदलने के लिए संघर्ष करते हैं, अपने दुःखों को व्यापक समाज के दुःखों से जोड़ते हैं। उन्हीं की आत्मकथा सार्थक होती है। यदि अस्पृश्यता, जाति भेद या अर्थाभाव व्यक्त करना ही आत्मकथा है तो दलित समाज की हर स्त्री और हर पुरुष आत्म कथाकार है, हरेक के पास कटु अनुभव है।"[22] श्रीमती विमल थोरात ने प्रस्तुत आत्मकथा के संदर्भ में अपने वक्तव्य में मराठी के आत्मकथाकारों खासकर दयापवार से जोड़कर इस आत्मकथा पर प्रकाश ड़ाला है। प्रस्तुत आत्मकथा की लोकार्पणविधि में कार्यक्रम की संचालिका रजतरानी "मीनू" ने कहा – मैं दलित साहित्य की शोधछात्रा होने के नाते जानती हूँ कि हिन्दी साहित्य में मोहनदास नैमिशराय और ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथाओं का क्या प्रभाव पड़ा है और बैसंत्रीजी की आत्मकथा इस दिशा में क्या खास योगदान करेगी? मेरा अनुमान है कि यह स्त्रियों के लिए अत्यंत प्रेरणादायी होगी"।[23]

बांग्ला लेखिका तस्लीमा नसरीन की "मेरे बचपन के दिन" उनकी आत्मकथा का प्रथम खंड़ है। अपनी वंश परम्परा के साथ जन्म से लेकर 13 वर्षो की गाथा लेखिका इसमें कहती है। तस्लीमा नसरीन की आत्मकथा घर परिवार के कोनों से लेकर समाज देश देशांतर के परिवर्तनकारी रहस्यों को उद्घाटित करती है। तस्लीमा के भीतरी व्यक्तित्व के विकास के साथ आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक परिवेश यहाँ बखूबी संजोया हुआ है। परिवेश आत्मकथा में इस प्रकार सन्निहित है कि लोकसंघर्ष, राष्ट्रीय समस्याएँ, बांग्लामुक्ति संघर्ष और युद्ध यह सब लेखिका के आत्मा के अंग बनकर आये हैं। बारहवीं उल अब्बल के पाक दिन जन्म लेने के कारण इन्हें सच्चा मुसलमान बनाने के खाला के प्रयत्नों ने उनके बचपन को किस तरह प्रभावित किया, इसके ब्यौरे लेखिका के निर्भीक व्यकितत्व की पहचान कराते हैं। डॉक्तर पिता और धमाँध माता के बराबर अपने संस्कार ड़ालने के प्रयत्न में पिता का कहना खूब पढ़ो और पढ़ाने के इस प्रकिया में उनका क्रूर हो जाना, माँ का बच्ची को पाक मुसलमान बनाने के आग्रह में निर्मम हो जाना, दोनों की विसंगति लेखिका को प्रभावित करती है।

लड़की होने के कारण उनके ऊपर लगाए गये निषेध उन्हें खलते थे। कुरान में लिखी गई, बातों में उन्हें वैपरित्य मिलता था। "हदिस" में वर्णित स्त्री-पुरुष के अधिकारों की विषमता न केवल बालिका तस्लीम को चकित करती है अपितु उसके बालमस्तिष्क में प्रश्नों के बीजों को बोती है, जिसके फलस्वरूप उन्हें भविष्य में निर्वासन का दंड़ भोगना पड़ा। संक्षेप में "बचपन के दिन में" हमें तस्लीमा के बचपन के साफ अक्स नजर आते हैं।[24]

21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में समकालीन लेखिकाओं की जो आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई हैं उनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं। "मेरी जिंदगी चेखव भी" "हादसे", "इन्द्रधनुष के पीछे-पीछे", "आलो अंधारी", "एक अनपढ़ कहानी", "खिड़की के पास वाली जगह", "एक कहानी यह भी", "अन्या से अनन्या", "सोबती बैद संवाद", इन - बिन .... "चेतना के कोलंबस", "पिंजरे की मैना", "यादें", "कस्तूरी कुंडल बसै", "गुड़िया भीतर गुड़िया आदि-आदि। लिडिया - एविलो महान रूसी कथाकार चेखव की प्रेमिका है। "मेरी जिंदगी चेखव भी" उसकी आत्मकथा है। परंतु यह कथा जितनी लिडिया की है उससे ज्यादा चेखव की भी है। इस आत्मकथा से लिडिया और चेखव के अंतर्सबधों पर तो प्रकाश पड़ता ही है। तत्कालीन रूसी समाज की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। यह एक अनूदित आत्मकथा है। रमणिका गुप्ता दलित स्त्री लेखिकाओं में एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। उनकी आत्मकथा "हादसे" अपने नाम से ही बहुत कुछ कह जाती है। दलित स्त्रियों का जीवन हादसों की एक अनवरत कुयात्रा के अलावा क्या हो सकता है? "इन्द्रधनुष के पीछे पीछे" आर. अनुराधा की आत्मकथा है जिसमें नारी जीवन के कुछ अभिशप्त पहलुओं को ऊजागर किया गया है। "आलो अंधारी" तथा "एक अनपढ़ कहानी" क्रमशः बेबी हाल्दार और सुशीलाराय की आत्मकथाएँ हैं जिनमें नारीजीवन के उपेक्षित पक्षों को दर्द के साथ उकेरा गया हैं। इधर की लेखिकाओं में लता शर्मा भी एक उल्लेखनीय नाम है। उनकी आत्मकथा "खिड़की के पास वाली जगह" एक महत्वपूर्ण कृति है। मध्यवर्गीय समाज में जहाँ लड़की के बाहर आने-जाने पर न जाने कितनी रोक-टोक होती है, वहाँ ये खिड़की के पास वाली जगह ही तो उसे बाहरी हलचलों से कुछ आंदोलित कर सकती है। "सोबती वैद संवाद" कृष्णा सोबती ओर कृष्ण बलदेव वैद के बीच के संवादों को उद्घाटित करती है। उसे एक पूर्ण आत्मकथा न कहते हुए खंड़शः आत्मकथा कह सकते हैं। जिसके द्वारा कमज़कम कृष्णासोबती और कृष्ण बलदेव वैद के साहित्यिक जीवन पर तो प्रकाश पड़ता ही है, तत्कालीन साहित्यिक परिवेश की कुछ अनकही बातें भी ऊजागर होती है। वैसे पद्मा सचदेव की "बूंदबावडी" बहुत चर्चित रही है। परतुं उनकी "इन बिन......." भी आत्मकथा के कुछ अंशो को प्रकट करती है। उसी तरह, "कुसुम अंसल" की आत्मकथा "जो कहाँ नहीं गया" प्रकट हुयी है। परतुं उनकी चेतना का कोलबंस भी उनके जीवन के कुछ पक्षों को उद्घाटित करती है। चंद्रकिरण सोनरेक्शा हिन्दी की एक महत्वपूर्ण कथा

लेखिका है । उनकी कहानियों में नारी विमर्श की अनेक बातें गहराई से अभिव्यक्त हुयी हैं । उनकी आत्मकथा "पिंजरे की मैना" शीर्षक ही बड़ा प्रतीतात्मक है । हमारे "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते" वाले समाज में सभ्रांत परिवारों में स्त्री की स्थिति पिंजरे की मैना के अलावा क्या है? घर के महत्वपूर्ण निर्णयों में उसका कोई स्थान नहीं होता, हाँ बुढ़िया हो जाने पर कभी कभार उसको पूछकर गौरवान्वित करने का नाटक अवश्य किया जाता है एक सुप्रसिद्ध उर्दू लेखिका हमीदा सलीम की आत्मकथा "यादें" भी उल्लेखनीय रचना है । जिसमें मुस्लिम समाज में स्त्रियो की जो स्थिति है उसके कुछ पक्षों को उदघाटित किया गया है । "छिन्नमस्ता" उपन्यास से जिन्होंने अपनी विशेष पहचान बनायी है ऐसी सशक्त समकालीन हिन्दी कथाकार प्रभा खेतान की चर्चा के बिना नारीविमर्श अधूरा और अपूर्ण लगता है । रूढिचुस्त मारवाडी समाज में पैदा होकर भी उन्होंने नारी मुक्ति के लिए जो संघर्ष किया है वह बेमिसाल है । एक छोटे पैमाने पर एक्सपोर्ट इम्पोर्ट का व्यवसाय शुरू कर के उसे आंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाना प्रभा खेतान की व्यावसायिक सूझ-बूझ का परिणाम है । परिवारों में होनेवाली धोखा धड़ियों का शिकार होकर उनका परिवार जब रास्ते पर आ जाता है तो प्रभा खेतान ही उसे पुनः ऊँचाइयों पर ले जाती है । इन सब कारगुजारियों में प्रभा अविवाहित रहती है । अविवाहित रहने के पीछे प्रभा का प्रेम प्रकरण भी है । अपने पारिवारिक विवाहित डॉक्टर से जिसे प्रभा डॉक्टर साहब कहती थी, डॉ. से प्रभाजी को प्रेम था । उन दोनों के इस प्रेम को डॉक्टर साहब की पत्नी भी जानती थी और उसने भी इन संबधो पर स्वीकृति की मोहर लगायी थी । और यहाँ तक कि डाक्टर साहब को जब असाध्य बीमारी हो जाती है तब उसे विदेश इलाज के लिए ले जाने का उत्तरदायित्व भी वह "दीदी" को देती है । प्रभाजी ने अपनी आत्मकथा "अन्या से अनन्या" में किसी बात को छिपाया नहीं है । अपने इस प्रेम-प्रकरण को भी नहीं । पैसा कमाना उनकी पारिवारिक जरूरत थी । एक ऊँचे प्रतिष्ठित व्यावसायिक परिवार को बैठा करना था, अतः पूरी लगन से वह उसमें जुट जाती है । प्रायः व्यावसायिक लोग नीरस और जड़ होते है । परंतु डॉक्टर साहब से प्रेम करनेवाली प्रभा ने अपनी संवेदनाओं को भी बरकरार रखा था । उनकी संवेदनाएँ उनके कथा साहित्य में भी ऊजागर हुई हैं । "अन्या से अनन्या" की तुलना बरबस अमृताप्रीतम के "रसीदी टिकट" से हो जाती है क्योंकि "रसीदी टिकट" में अमृता प्रीतमने अपने तथा साहिर लुधियानवी के प्रेम को खुलकर अभिव्यक्त किया है । सुप्रसिद्ध अस्तित्ववादी लेखक ज्याँ-पॉल-सार्त्र की प्रेमिका "सिमोन बाउवार के सुप्रसिद्ध ग्रंथ "द सेकंड सेक्स" का अनुवाद भी प्रभा खेतान "स्त्री उपेक्षिता" के रूप में किया है । इस प्रकार एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान की स्थापना के द्वारा प्रभाजी न केवल अपने घर-परिवार को ऊबारती है बल्कि अनेक साहित्यिक संस्थाओं को भी अनुदान देकर उनको पल्लवित एवम् पुष्पित करने में उनका विशेष योगदान रहा है । उनके निधन पर राजेन्द्र यादव ने कहा था कि उनके जाने से हंस का एक स्थायी आर्थिक आधार टूट गया है ।[25] प्रभा खेतान के संदर्भ में उर्दू का एक शेर स्मृति में क्रौंध रहा है – "उठतों को गिराना तो सबको आता है, मज़ा तो जब है गिरते को थाम ले साक़ी ।" कहना

न होगा कि प्रभाजी एक ऐसी "साक़ी" है जिन्होंने अनेक गिरतों को उठाया है । इन सब कारणों से "अन्या से अनन्या" एक पठनीय कृति हो जाती है । उसके संदर्भ में आत्मकथा के मुखपृष्ठ पर लिखा गया है – "भारतीय साहित्य की विलक्षण बुद्धजीवी डॉ. प्रभा खेतान दर्शन, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विश्व-बाजार और उद्योगजगत की गहरी जानकार है और सब से बढ़कर है – सक्रिय स्त्रीवादी लेखिका । उन्होंने विश्व के लगभग सारे स्त्रीवादी लेखन को घोट ही नहीं डाला, बल्कि अपने समाज में उपनिवेशित स्त्री के शोषण, मनोविज्ञान, मुक्ति के संघर्ष पर विचारोत्तेजक लेखन भी किया...... और उसी क्रम में उन्होंने लिखी है यह आत्मकथा – "अन्या से अनन्या" । हंस में धारावाहिक रूप से प्रकाशित इस आत्मकथा को जहाँ एक बोल्ड और निर्भीक आत्म स्वीकृति की साहसिक गाथा के रूप में अंकुठ प्रशंसाएँ मिली हैं वहाँ बेशर्म और निर्लज्ज स्त्री द्वारा अपने आप को चौराहे पर नंगा करने की कुत्सित बेशर्मी का नाम भी दिया गया है ।[26]

प्रभा खेतान की उक्त आत्मकथा के संदर्भ में डॉ. सुधा अरोड़ा ने कुछ प्रश्न उपस्थित किए है । यथा – "प्रभा खेतान की "अन्या से अनन्या" की काफी चर्चा हुई क्योंकि उन्होंने खुलकर विवाहित पुरूष से अपने प्रेमसंबध की चर्चा की, राजेन्द्रजी ने प्रभा खेतान से अपनी मित्रता को सार्त्र और सिमोन के संबंधों को बरअक्स रखा । मुझे हैरानी तब होती है जब मैं देखती हूँ कि प्रभा खेतान की आत्मकथा "अन्या से अनन्या" के बारे में प्रकाशित तमाम समीक्षकों में एक भी आलोचक ने यह सवाल नहीं उठाया कि सहजीवन निभानेवाले जिन अपने प्रेमी डॉक्टर गोपाल कृष्ण सर्राफ के बारे में उन्होंने इतने विस्तार से लिखा है, वह संवेदनशील लेखिका जरा अपनी समदुखीनी, पाँच बच्चो की माँ डॉक्टर शराफ की पत्नी की पीड़ा-यातना के बारे में भी कुछ लिखती कि पति को अन्या के पास जाता देखकर उन महिला पर क्या बीतती होगी?"[27] ध्यान रहें की डॉ. सुधा अरोड़ा की यह टिप्पणी "एक कहानी यह भी" (मन्नू भंडारी) समीक्षा के संदर्भ में आयी है । "हंस" के 2010 के मार्च अंक में "आत्मा का आईना" नामक आलेख में हिन्दी के सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ. मेनेजर पाण्डेय ने मन्नूजी की उक्त रचना की बेहतरीन विश्लेषणात्मक समीक्षा की है । परंतु आलेख के अंत में एक नुक्ताचीनी वे करते हैं कि मन्नूजी को "मीता" के संदर्भ में भी, उसके दुःख, दर्द को भी, आलेखित करना चाहिए था ।" परवर्ती पृष्ठों में इस पर मन्नूजी की आत्मकथा – "एक कहानी यह भी" - के संदर्भ में विस्तार से चर्चा की गयी है ।

मन्नू भण्ड़ारी कथा जगत की एक सशक्त हस्ताक्षर है । ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता बंगला कथाकार तथा Activist महाश्वेतादेवी ने मन्नूजी के संदर्भ में लिखा है – "मन्नू ने महाभोज, आपका बंटी के अलावा स्वामी और कलेवा जैसे उत्कृष्ट उपन्यास लिखे । उन्होंने राजेन्द्रयादव के साथ "एक इंच मुस्कान" उपन्यास लिखा । मन्नु ने "त्रिशंकु", "एक प्लेट" "सैलाब", "मैं हार गयी", "तीन निगाहों की एक तस्वीर", "यही

सच है", "श्रेष्ठ कहानियाँ", "आँखों देखा झूठ" जैसे कहानी संग्रह दिए । उन्होंने "बिना दीवारों के घर" जैसा नाटक भी लिखा । इधर के वर्षो में मन्नू की कोई नयी किताब मेरे देखने में नहीं आयी, जिस लेखिका के पास संतुलित दृष्टि है, शैली है उससे उम्मीद थी कि वह और ज्यादा रचती और साहित्य का भंडार समृद्ध करती । मन्नू से मेरी यही प्रत्याशा रही है, किन्तु उस पर वह खरी नहीं उतर रही, उसका मुझे दुःख है । लेखन का संस्कार उन्हें विरासत में मिला । उस पैतृकदाय के प्रति वह न्याय नहीं कर पा रही है । 76 वर्ष की उमर कोई ज्यादा नहीं होती है । यह सही है कि मन्नू भण्ड़ारी ने जो भी काम किया तन्मयता, गहरी संलग्नता और ईमानदारी से किया । चाहे अध्यापन का काम रहा हो या लेखन का । यह भी सही है कि उन्होंने कम किन्तु क्लासिक लिखा । पर वह नाकाफ़ी है मुझे तो यही लगता है ।"[28] मन्नूजी जैसी एक अत्यंत संवेदनशील एवम् उर्जासंपन्न लेखिका एक लंबे अरसे तक चुप्पी साध लेती है तो वह चिंता का विषय होता ही है एक सच्चे लेखक के लिए न लिख पाने का दर्द या चूक जाने का दर्द असहनीय होता है । हेंमिग्वे की आत्महत्या का यही कारण था । हिन्दी साहित्य जगत के लिए यह एक खुशी की बात है कि मन्नूजी की यह चुप्पी टूटी है, "एक कहानी यह भी" जैसी कृति के द्वारा, मन्नू भण्ड़ारी का मानना है कि एक सृजनशील लेखक को आत्मकथा लेखन से अलग रहना चाहिए क्योंकि अपने संदर्भ में बहुत सी बातें वह अपनी कथाओं में ही लिख चुका होता है । अपने ही जीवन का कोई न कोई अंश उसमें जरूर आता है । कहानी भले ही दूसरे की हो, लेकिन जब तक मैं उसे अपनी नहीं बना लेती हूँ (मेरा भी कोई आयाम जुड ही जाता है ।) तब तक लिखूंगी कैसे?[29] शायद इसीलिए मन्नूजी इस आत्मकथा अंश को आत्मकथ्य कहती हैं । राजेन्द्र यादव भी आत्मकथा के नाम पर "न, न" करते रहे हैं । परंतु आखिरकार उन्होंने भी अपना आत्मकथ्य "मुड़ मुड़ के देखता हूँ" के रूप में लिखा हैं । डॉ. रोहिणी अग्रवाल का इस संदर्भ में कहना है – "हकीकत है कि दोनों ने अपने अपने आत्मकथ्य क्रमशः "एक कहानी यह भी", और "मुड़ – मुड़ के देखता हूँ" में अपनी आत्मस्वीकृतियों और आत्म संस्मरणों को "Self Justification" देने का प्रयास किया है । बल्कि कहना यों चाहिए कि राजेन्द्र यादव का "मुड़ – मुड़ के देखता हूँ" का यह प्रतिवादी मन्नू की ओर से दाखिल जवाबदावा है ।[30] जहाँ डॉ. रोहिणी अग्रवाल इसे कटघरों में खड़े अहम् की टकराहट मानती है, वहाँ डॉ. मनीषा ठक्कर इस आत्मकथा को "अपराजित लेखकीय जिजीविषा की अदम्य कहानी" मानती है । डॉ. रोहिणी अग्रवाल "एक कहानी यह भी" को कांता भारती द्वारा लिखित "रेत की मछली" (उपन्यास) जैसी औसत रचना मानती है । इस संदर्भ में डॉ. मनीषा ठक्कर लिखती हैं – "किन्तु एक आत्मकथा के रूप में, भले ही "एक कहानी यह भी" मन्नू की "आपका बंटी" या "महाभोज" या उनकी कुछ एक कहानियों की तरह क्लासिक रचना न बन पायी हो, उसे एक औसत रचना कहना शायद एक आत्यंतिक कथन होगा । तहमीना दुरानी के "मेरे आका", अमृता प्रीतम के "रशीदी टिकट", प्रभा खेतान के "अन्या से अनन्या" या मैत्रेयी

के, "कस्तूरी कुंडल बसै" या "गुड़िया भीतर गुड़िया" की तुलना में "एक कहानी यह भी कुछ कमजोर रचना लग सकती है; परंतु आरोपों और प्रत्यारोपों का पुलिंदा मात्र तो वह नहीं ही है, क्योंकि स्वयं रचना में कुछ साक्ष्य कथन मिलते हैं, जिनसे न केवल राजेन्द्र अपितु मन्नू भी चेतना के कटघरे में खड़ी है। जहाँ उनकी वस्तुपरक विश्लेषण शक्ति के दर्शन होते हैं।"[31] "एक कहानी यह भी" के मुखपृष्ठ पर प्रकाशकीय, निवेदन के रूप में लिखा गया है – "आपका बंटी" और "महाभोज" जैसे उपन्यास और अनेक बहुचर्चित कहानियों की लेखिका मन्नू भण्डारी इस पुस्तक में अपने लेखकीय जीवन की कहानी कह रही है। यह उनकी आत्मकथा नहीं है, लेकिन इसमें अनेक भावात्मक और सांसारिक जीवन के उन पहलूओं पर भरपूर प्रकाश पड़ता है जो उनकी रचनायात्रा में निर्णायक रहे हैं। एक ख्यातनामा लेखक की जीवन-संगिनी होने का रोमांच और एक जिद्दी पति की पत्नी होने की बाधाएँ। एक तरफ लेखकीय जरूरतें (महत्वाकाक्षाएँ नहीं) और दूसरी तरफ एक घर को सँभालने का बोझिल दायित्व एक घूर आम आदमी की तरह जीने की चाह और महान उपलब्धियों के लिए ललकता आसपास का साहित्यिक वातावरण - ऐसे कई-कई विरोधाभास के बीच में मन्नूजी लगातार गुजरती रहीं, लेकिन उन्होंने अपनी जिजीविषा, अपनी सादगी, आदमीयत और रचना संकल्प को नहीं टूटने दिया। .....यह आत्मस्मरण मन्नूजी की जीवन स्थितियों के साथ साथ उनके दौर की कई साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर भी रोशनी डालता है और नयी कहानी दौर की रचनात्मक बेकली और तत्कालीन लेखकों की ऊँचाइयों – नीचाइयों से भी परिचित कराता है।[32]

"हंस" के, मार्च-2010 के अंक मे "आत्मा का आईना" आलेख में वरिष्ठ समीक्षक डॉ. मेनेजर पाण्डेय ने "एक कहानी यह भी" पर बेहद उदारमना होकर बेहतरीन विश्लेषणात्मक समीक्षा की है लेकिन अंत तक आते-आते उनकी आलोचकीय दृष्टि पर पुरुषवादी सोच ने धावा बोल दिया है। उनका एक लंबा पैराग्राफ जिसमें मीता के प्रति गहरी सहानुभूति से उन्होंने एक टिप्पणी दी है।[33] मीता के संदर्भ में डॉ. पाण्डेय लिखते हैं – "इस कहानी में एक पात्र और उससे जुड़ा प्रसंग ऐसा है जिस पर अगर मन्नू परानुभूति या समानुभूति के साथ सोचती और लिखतीं तो उनकी आत्मकथा असाधारण होती। वह पात्र है मीता, जो एक ओर राजेन्द्रयादव के बौद्धिक छल का शिकार हुई है तो दूसरी ओर मन्नू तथा राजेन्द्र के बीच का तनाव और अलगाव का कारण भी है। मेरे सामने सवाल यह है कि क्या मीता के कुछ दुःख-दर्द नहीं होंगे। अगर वे हैं तो उनकी चिंता किसी को नहीं है, न राजेन्द्र को न मन्नू को। मन्नू तो एक स्त्री है और संवेदनशील लेखिका भी। यही नहीं, वे स्वयं राजेन्द्र के छल से पीड़ित स्त्री है, इसलिए उनसे यह उम्मीद की जा सकती है कि वे मीता की पीड़ा को एक समदुखिनी के दर्द को समझने और व्यक्त करने की कोशिश करतीं, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। मीता तो लेखिका

नहीं है, फिर उसके दुःख - दर्द की कहानी कौन कहेगा? लगता है कि दूसरी असंख्य स्त्रियों की तरह मीता की पीड़ा भी अनकही रह जाएगी।"[34]

इस संदर्भ में डॉ. सुधा अरोड़ा ने अपनी टिप्पणी देते हुए लिखा है – "सबसे पहले मन्नूजी की इस पुस्तक "एक कहानी यह भी" को पढ़ते हुए स्पष्ट कर लिया जाना चाहिए कि यह पुस्तक दाम्पत्य के दैनंदिनी के छलावों में मरती-खपती एक ईर्ष्यालु, स्त्री का सियापा नही; बल्कि इसमें एक स्त्री रचनाकार की बौद्धिक दृष्टि और उस दृष्टि का आलोक भी है जो एक "सामान्य" स्त्री का "रचनाकार" स्त्री में कायांतरण करता है दाम्पत्य के अलावा भी साहित्यिक और सामाजिक अंतर्विरोधों के कई मुद्दों को रचनात्मकता के पार्श्व में रखकर देखेंगे कि इस पुस्तक में वस्तुगत और निरपेक्ष कोशिश है। यहाँ स्त्री के किसी गोपनजगत को खोलकर लोलुप पाठकीय उपभोग के लिए किया गया मुआईना नहीं है बल्कि आत्मसजग भाषा में एक स्त्री रचनाकार के परिवेश की मार्मिक मीमांसा है। लेकिन इसको क्या किया जाए कि हिन्दी साहित्य में आलोचना क्षेत्र के अधिपतियों की आस्वाद ग्रंथि में जादुई यथार्थ (Magical Realism) के बदले आभाषी यथार्थ (Vartual Realism) का चसका लग गया है। यह एक दुःखद स्थिति है कि वे महिला रचनाकारों की आत्मकथाओं में प्रेम के पुराने त्रिकोण के रोमांच का अतिरेक में आख्यान सुनने की अपेक्षा रखते हैं और ऐसी तमाम मीताओं की मर्मकथा सुनना चाहते हैं ताकि बौद्धिक लंपटई का साहित्यिकरण कर सके। पुरूष रचनाकारों की आत्मकथा में क्या उन्होंने किसी छूटे हुए प्रसंग या छूटे हुए पात्र को लाने की माँग कभी की है जो लेखक की पत्नी का लपंट प्रेमी रहा हो?[35]

बात जब समकालीन लेखिकाओं की आत्मकथाओं पर चल रही है तो एक पुस्तक जो आत्मकथा नहीं है, उसका ज़िक्र भी आवश्यक हो जाता है। यह पुस्तक है राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित "कथा जगत की बाग़ी मुस्लिम औरतें"। इस पुस्तक में रूकइया सखावत हुसैन, रशीदजहाँ, मुमताजशीरीं, ईस्मत चुगताई, अख्तर कमाल, किश्वर नाहिद, जाहिदा हीना, इल्ताब फातिमा, वाजिदा तबस्सुम, जमिला हासमी, फरखंदा लोधी, खालिदा हुसैन, हाजरा मसरूर, तहमीना दुरानी, शैदा गज़दर, मुस्सरत लुगारी, तस्लीमा नसरीन, नुहुल हुदासाह, नासिरा शर्मा, निगार अजीम, फहमीदा रियाज़, सैयद अकरा बुखारी, रसीदा रिज़विया, परवीन आतीक, तरन्नुम रियाज़, ग़जाल जैगम, सुबुदी तारीख, तबस्सुम फातिमा आदि-आदि। मुस्लिम कथाजगत की बागी मुस्लिम औरतों की कहानियों को संकलित किया है। "मुसलमान औरत नाम आते ही घर की चहार दिवारी में बंद या कैद या पर्दे में रहनेवाली एक "खातून" का चेहरा उभरता है अब से कुछ साल पहले तक मुसलमान औंरतो का मिला-जुला यही चेहरा ज़हन में महफूज़ था, किन्तु समय के साथ काले-काले बुर्को के रंग भी बदल गए। कायदे से देखें तो अब भी छोटे-छोटे शहरों की औरतें बुर्का संस्कृति में एक न खत्म होनेवाली घुटन का शिकार है,

लेकिन घुटन से बगावत भी जन्म लेती है और मुसलमान औरतों के बगावत की लंबी दास्तान रही है। ऐसा भी देखा गया है कि "मजहबी फरिजो से जकड़ी शौमो – सलात की पाबंध औरतों ने यकबारगी ही बगावत या जेहाद के बाजू फैलाये और खुली आजाद फिजा में समुद्री पक्षी की तरह उड़ती चली गयीं। लेखन के शुरूआती सफर में ही इन मुस्लिम महिलाओं ने जैसे मर्दो की वर्षो पुरानी हुक्मरानी तौक को अपने गले से उतार फेंका था। यह महज इत्तफाक नहीं है कि मुस्लिम महिलाओंने जब कलम संभाली तो अपनी कलम से तलवार का काम किया। इस तलवार की जद पर पुरूष का, अब-तक का समाज था, वर्षों की गुलामी थी, भेदभाव और कुंठा से जन्मा भयानक पीड़ा देनेवाला एहसास था।[36] इनमें से कई लेखिकाओं की उर्दू अदब में आत्मकथाएँ भी मिलती हैं। जिनमें से तहमीना दुरानी की आत्मकथा "मेरे आका" का जिक्र पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम कर चुके हैं। तस्लीमा नसरीन की आत्मकथा "मेरे बचपन के दिन" का जिक्र भी ऊपर हो चुका है। तस्लीमा की आत्मकथा का दूसरा भाग "द्विखण्ड़िता" इधर बहुत चर्चा में है। मुशरर्फ आलम ज़ोकी ने इन बागी औरतों के संदर्भ में लिखा है – "साहित्य में ये बागी औरतें बार-बार चिखतीं और चिल्लातीं रही हैं, रशीदजहाँ से लेकर मुमताज शिरी, ईस्मत चुगताई, वाजिदा तबस्सुम, रूकैया सखावत हुसैन, तस्लीमा नसरीन, तहमीना दुरानी, शमरा शगुफता, फहमीदा रियाज़ और किशवर नाहिद तक यह औरतें शताब्दियों के इतिहास में स्वयं को नंगा देखते हुए जब चित्कार करती हैं, तो कलम इतनी तीखी, पैनी और नंगी बन जाती है कि मर्दाना – समाज को डर महसूस होने लगता है। फिर ऐसी किताबों पर सेन्सरशीप और घर में न पढ़ने के लिए पाबंदी लगा दी जाती है। एक जमाना था, शायद नही, जमाना आज भी बहुत से मुस्लिम परिवारों में जिंदा है, जहाँ घर के बड़े ऐसी तहरीरें पढ़ने के लिए मना करते है।[37]

ऐसी ही तेज-तर्रार लेखिका है – मैत्रेयी पुष्पा। बेतवा बहती रही, इदन्नमम् चाक, झूलानट, अल्माकबूतरी, अगनपाखी, विज़न आदि उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पाने बुंदेलखण्ड़ के ग्रामीण अंचल के तेज-तर्रार नारी पात्रों को प्रस्तुत कर के भारतीय समाज के पौंगा पंथी तबकें को चकित कर दिया है। हमारा प्रस्तुत शोध-प्रबंध इन्हीं मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं और उपन्यासों पर केन्द्रित है अतः उनकी विस्तृत चर्चा आगामी अध्यायों में होगी ही – यहाँ उनकी आत्मकथाओं पर बहुत संक्षेप में विचार किया जाएगा। "बहुत संक्षेप में" इस लिए कि तृतीय और चतुर्थ अध्याय में उनकी इन आत्मकथाओं का विस्तृत विवेचन एवम् विश्लेषण होगा। मैत्रेयीजी की आत्मकथाएँ दो खण्ड़ो में आई है – "कस्तूरी कुंडल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" जो क्रमशः सन् 2002 और 2008 में प्रकाशित हुई हैं। "कस्तूरी कुंडल बसै" के प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है – हर आत्मकथा एक उपन्यास है और हर उपन्यास एक आत्मकथा। दोनों के बीच "फिक्सन" है, इसी का सहारा लेकर दोनों को अपने को अपनी आप की कैद से निकाल कर दूसरे

के रुप में सामने खड़ा कर लेते है यानी दोनों ही कहीं-न-कहीं सृजनात्मक कथा-घड़ंत है । इधर उपन्यास की निर्वैयक्तिता और आत्मकथा की वैयक्तिता मिलकर उपन्यासों का नया शिल्प रच रही है । आत्मकथाएँ व्यक्ति की स्फुटित चेतना का जायजा होती है, जबकि उपन्यास व्यवस्था से मुक्ति संघर्ष की व्यक्तिगत कथा है । आत्मकथा पाये हुए विचार की या "सत्य के प्रयोग" की सूची है और उपन्यास विचार का विस्तार और अन्वेषण । जो तत्व किसी आत्मकथा को श्रेष्ठ बनाता है वह है उन अंतरंग और लगभग अनछुअे, अकथनीय प्रसंगों का अन्वेषण और स्वीकृति जो व्यक्ति कहानी को विश्वसनीय और आत्मीय बनाती है । हिन्दी में जो गिनी चुनी आत्मकथाएँ है उनमें एकाध को छोड़ दें तो ऐसी कोई नहीं है जिसकी तुलना मराठी या उर्दू की आत्मकथाओं से भी की जा सके । इन्हें पढ़ते हुए कबीर की उक्ति "शीश उतारें भुई धरै" की याद आती है । यह साहसिक तत्व "कस्तूरी कुंडल बसै" में पहली बार दिखायी देता है ।"[38]

स्वयं मैत्रेयी जी प्रस्तुत कृति के संदर्भ में असमंजस में है कि उसे उपन्यास कहा जाय या आपबीती? अपने प्रारंभिक कथन में मैत्रेयीजी लिखती हैं – "यही है हमारी कहानी । मेरी और मेरी माँ की कहानी । आपसी प्रेम, घृणा, लगाव और दुराव की अनुभूतियों से रची कथा में बहुत सी बातें ऐसी हैं जो मेरे जन्म के पहले घटित हो चुकी थीं" । मगर उन बातों को टुकड़ों - टुकड़ों में माताजी ने जब तब बता डाला, जब जब उन्हें अपनी बेटी को स्त्री जीवन के बारे में नए शिरे से समझाना पड़ा......... माँ भी पूरी तरह कहाँ खुलती थी? लेकिन उनकी बेटी उनका लगाव, गुस्सा, लाड, अलगाव, ममता, और निर्मोह हो जाने की एक-एक भंगिमा बचपन में चित्र उतारती रही । हो सकता है, जो घटा हो वो कहानी में ना हो, और जो हो वो जीवन में न घटा हो, मगर यादों में जो मुक्कमल तस्वीरे जिंदा है ; वही कहानी का आधार है – भले वे किसी और से सुनी हों, या अपने परिवार के बारे में किंवदंतियाँ रही हों । मेरे लिए तो सबकुछ माँ को निकट जानने की ही पीडा और प्रक्रिया रही और शायद इसीलिए मैं ठोंस यथार्थ की तरह अपने तीखे-मीठे अनुभव लिखकर मुक्ति की आकांक्षा में माताजी रुपी संस्कार को अपने बाहर भीतर को पिछाड़ने खंगालने पर तुली हुई इस कथा को लिख रही थी ।"[39]

मैत्रेयी पुष्पा की उक्त आत्मकथा के संदर्भ में डॉ. सुधा अरोड़ा की निम्नलिखित टिप्पणी भी विचारणीय कही जा सकती है – "आज भारतीय समाज और जीवन में ही नहीं साहित्य में भी मूल्य बदल रहे हैं । अनैतिकता हमें चौकाती नहीं है, आकर्षित करती है, उसका बयान हमें रोमांचकारी" लगता है । दूसरे तमाम मुदद्दों को दरकिनार कर हम ललक कर उस किताब को पढ़ना चाहते हैं, साहित्य का प्रकाशक इस तथ्य से अच्छी तरह वाकिफ है । मैत्रेयी की आत्मकथा का फलैप मेटर देखें – मैत्रेयी ने डॉ. सिद्धार्थ और राजेन्द्र यादव के साथ अपने संबंधों को लगभग आत्महंता, बेबाकी के साथ स्वीकार किया है ।" अंदर पूरी किताब का एक-एक पन्ना पढ़ जाइए आप उस "आत्महंता, बेबाकी

" (!) को ढूंढते रह जाएंगे । इसके उत्तर मे फरवरी 2009 के Outlook में राजेन्द्र यादव की अपनी एक टिप्पणी पर्याप्त है – मैत्रेयी ने मुझे कुछ जरुर जाना होगा पर लिखने में शायद वह चूक गयी हैं । चूकने से ज्यादा कहना चाहिए की वह छिपा गयी है । वह जो इबारत में नही झाँकता, पर पीछे से झाँकता जरुर दिखता है । जाने उसने ऐसा क्यों किया?" (Outlook : Feb : 2009 Pg. 75) आत्मकथा लेखन की सबसे बड़ी चुनौती है अपने जीवन, बल्कि कहना चाहिए, अपनी व्यथा से, अपने झेले हुए से एक दूरी बनाने की । आत्मकथा लेखन में स्वं प्रतिबंध (अपना अंकुश) सबसे पहले आड़े आता है । भारतीय समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण इकाई है । अगर हम सच बोल रहे हैं तो हमारे परिवार के या करीबी लोग नाराज हो सकते हैं । तो मेरा मानना यह है कि इस तरह के प्रतिबंधों के बीच आत्मकथा नहीं लिखी जानी चाहिए ।[40]

अपने उक्त कथन में डॉ. सुधा अरोड़ा ने प्रकाशकों की निंदनीय प्रवृत्ति को उजागर किया है जो आत्मकथा में नहीं है या कम से कम उस प्रकार नहीं है उसे वे फलेप" पर देते हैं ताकि कुत्सित मनोवृत्तिवाले लोग उसे ज्यादा से ज्यादा पढ़े । वस्तुतः यदि ऐसा होता है तो लेखकीय ईमानदारी का यह तकाजा है कि वह अलग से उसका विरोध करें ।

नारी-शिक्षा और नवजागरण : –

हमारे शोधप्रबंध का विषय मैत्रेयी पुष्पाकी आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यासों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से जुड़ा हुआ है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में हिन्दी की अनेक स्वनाम धन्य लेखिकाओं का निर्देश हम कर चुके हैं । कहना न होगा कि यह इसलिए संभव हुआ है कि नवजागरण के तमाम-तमाम समाज सुधारकोंने एक सूर में नारीशिक्षा की आवाज़ को बुलंद किया है । आधुनिककाल, जिसे बहुत से अनुष्ठानपरक धर्मावलंबी, पोंगापंडित कलियुग कहते हैं और जिसकी वह भर्त्सना करते हैं वह युग सचमुच में पूछा जाय तो भारतीय नारियोँ के लिए आर्शीवादरुप प्रमाणित हुआ है, क्योंकि इस आधुनिककाल ने ही नारीशिक्षा के द्वारों को खोल दिया है । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि प्राचीन समय में नारीशिक्षा नहीं थीं । परंतु, वह एक सीमित वर्ग तक महदूद थी । बहुजन समाज की अधिकांश स्त्रियाँ शिक्षा के आर्शीवाद से पूर्णतया वंचित थीं ओर जब नारियाँ शिक्षा से वंचित रहेंगी तो उनका लेखिका या कवियित्री होना तो असंभव ही रहेगा । डॉ.एम.एल.गुप्ता तथा डॉ.डी.डी.शर्मा जैसे समाज शास्त्रियों ने भारतीय समाज तथा संस्कृति पर विशेष कार्य किया है । उनके मतानुसार "वैदिक और उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के बराबर रही है तथा उन्हें पुरुषों के समान ही सब अधिकार प्राप्त रहे हैं । धीरे-धीरे पुरुष में अधिकार प्राप्ति की लालसा बढ़ती गई । परिणाम स्वरूप स्मृतिकाल, धर्मशास्त्रकाल तथा मध्यकाल में इनके अधिकार छीनते गये और इन्हें परतंत्र ओर निःसहाय और निर्बल मान लिया गया । परंतु समय ने पलटा खाया । अंग्रेजी

शासनकाल में देश में राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में जागृति आने लगी। समाज सुधारकों एवम् नेताओं का ध्यान स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की ओर गया।"[41] कहना न होगा कि उपर्युक्त परिच्छेद में जिन अधिकारों की बात कही गई है उसमें स्त्रियों की शिक्षा का अधिकार भी है।

मनु ने स्वयं कहा है कि स्त्रियाँ कभी भी स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं है। बाल्यावस्था में उन्हें पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। यथा –

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हँति।"[42]

इतिहासकार डॉ.ए.एस.अल्तेकर भारतीय समाज में स्त्रियों के संदर्भ में कहते हैं कि ईसा के 200 वर्ष पूर्व से 1800 वर्ष पश्चात् के करीब २००० वर्षो के काल में स्त्रियों की स्थिति लगातार गिरती गई। यद्यपि माता-पिता उसे दुलारते थे, पति उसे प्रेम करता था और बच्चे उसका आदर करते थे। सती-प्रथा के पुनः प्रचलन, पुनर्विवाह पर प्रतिबंध,पर्दा प्रथा के विस्तार एवम् बहु विवाह की व्यापकता ने उसकी स्थिति को बहुत गिरा दिया था। यह सही है कि मध्यकाल के भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति काफी निम्न थी।[43]

डॉ.एम.एल.गुप्ता एवम् डॉ.डी.डी.शर्मा ने स्त्रियों की निम्नस्थिति के लिए जिन कारकों का उल्लेख किया है उनमें स्त्रीशिक्षा की उपेक्षा, कन्यादान का आदर्श, बाल-विवाह, वैवाहिक कुरीतियाँ, संयुक्त परिवार व्यवस्था, पितृसत्ताक (Patriarch), समाज की व्यवस्था, पुरुषों पर अधिक निर्भरता, मुसलमानों के आक्रमण आदि को परिगणित किया जा सकता है।[44]

स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न में आधुनिकता के अग्रदूत राजा राममोहनराय सबसे आगे थे। आपने सन् 1828 में ब्रह्मसमाज की स्थापना की ओर आप के ही प्रयत्नों से लोर्ड बेण्टिक के समय सन् 1829 में सतीप्रथा कानून द्वारा बंध की गयी। (इस अमानवीय, अधार्मिक, अनैतिक प्रथा को हटाने के लिए राजा राममोहनराय ने न जाने कितने पत्र लोर्ड बेण्टिक को लिखे थे परंतु लगता है, अप्रगतिवादी शक्तियाँ पुनः सक्रिय हो गई हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व राजस्थान में एक स्त्री-राजकुंवर बा सती हो गयी और वहाँ मंदिर भी खड़ा कर दिया गया है। स्पष्ट है राज्यसरकार की मूकसंमति के बिना यह संभव नहीं है। ये बढ़ रहे "Honour killing" इत्यादि हमारी बात की पुष्टि करते हैं।) बाल-विवाह समाप्ति तथा विधवा पुर्न-विवाह को प्रचलित करने के लिए भी आपने ऐडी-चोटी का जोर किया। लगभग उसी समय स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज

की स्थापना द्वारा स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया, शिशुविवाह को रोकने तथा पर्दा-प्रथा को समाप्त करने का काफी प्रयास किया। ईश्वरचंद विद्यासागर ने बहुपत्नी विवाह एवम् विधवा पुर्न-विवाह निषेध का विरोध किया। उनके प्रयत्नों के कारण ही सन् 1856 में "विधवा पुर्नविवाह अधिनियम" पास किया गया। आपने स्त्रीशिक्षा के लिए अथक प्रयत्न किया तथा स्त्रियों को उनके अधिकारों के लिए जागृत किया। केशवचंद्र सेन के प्रयत्नों से सन् 1872 में "विशेष विवाह अधिनियम" पारित हुआ। जिसके द्वारा विधवा पुर्नविवाह एवम् आंतरजातीय विवाह को मान्यता प्रदान की गयी। (यह ध्यानार्ह रहेगा कि इधर अंतरजातिय विवाह करनेवालों की हत्या ऑनर कीलिंग के नाम पर हो रही है।) इस अधिनियम के द्वारा एक विवाह प्रथा (monogamy) को अनिवार्य कर दिया गया। पुणे में जब ज्योतिबा फूले तथा उनकी धर्मपत्नी सावित्री बाई फूले ने शिक्षा के लिए बालिकाओं का स्कूल स्थापित किया था, तो उनको वहाँ के ब्राह्मणों का कोपभाजन होना पड़ा था ओर उन पर पत्थर और गोबर फेंका गया था। जहाँ 19 वीं शताब्दी के आरंभ में लड़कियों की शिक्षा के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी, वहाँ इस शताब्दी के मध्य में उनके लिए अनेक प्राथमिक स्कूल खोले गए और सन् 1902 में तो विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में लड़कियों की संख्या २ लाख ५६ हजार हो गयी। कई स्त्रियाँ तो शिक्षा प्राप्त कर नौकरी तक करने लगीं। बढ़ती हुई स्त्रीशिक्षा ने महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने में विशेष योग दिया। इसी शताब्दी में अनेक महिलाओं जैसे पंड़िता रमाबाई, रमाबाई रानडे, मेडम कामा, तारुदत्त एवम् स्वर्ण कुमारी देवी ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जागृत करने का प्रयत्न किया।[45]

महात्मा गांधी के राजनीति में प्रवेश के उपरांत 20 वीं शताब्दी में जो सुधार आंदोलन हुए उनको हम तीन वर्गों में बाँट सकते है ---

(1) महात्मा गांधी द्वारा सुधार प्रयत्न।
(2) महिला संगठनों द्वारा सुधार प्रयत्न।
(3) संवैधानिक सुधार प्रयत्न।

(1) **महात्मा गांधी द्वारा महिलाओं के लिए किए गए सुधार प्रयत्न :-**

नवजागरण के उक्त नेताओं के उपरांत जो चेतना आयी उसके फलस्वरूप महात्मा गांधी ने अपने समय में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए भरसक प्रयत्न किए। उन्होंने हंमेशा स्त्री-पुरुषों की समानता की वकालत की। आपने स्त्रियों को राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के लिए भी प्रेरित किया। ये उनके प्रयत्नों का ही परिणाम था कि इस समय लाखों स्त्रियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सेदारी की। इसके फलस्वरूप स्त्रियों ने अपनी शक्ति को पहचाना और अनुभव किया कि वे अबला नहीं अपितु शक्ति का स्त्रोत है।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय कोंग्रेस के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के संबंध में प्रतिवर्ष ब्रिटिश सरकार के सम्मुख अनेक प्रस्ताव पारित कर उसका ध्यान इस ओर आकर्षित किया । आपने बाल-विवाह और कुलीन विवाह का विरोध किया, साथ ही साथ विधवा पुन-र्विवाह एवम् आंतरजातीय विवाह प्रथा को समर्थन दिया । महात्मा गांधी हंमेशा चाहते रहे हैं कि महिलाओं को समाज में उचित स्थान मिले और उनको उनके मानवीय अधिकार भी प्राप्त हों जिनसे सैकड़ों वर्षों से उन्हें वंचित किया गया था ।[46]

(2) महिला संगठनों द्वारा किए गए सुधार प्रयत्न :-

20 वीं शताब्दी के इस जागरण – वातावरण में अनेक महिला संगठनों की स्थापना हुई जिन्होंने भारतीय महिलाओं में सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक चेतना जागृत करने का कार्य किया । उन संगठनों के फल-स्वरुप महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए । यह एक ध्यानार्ह तथ्य है कि महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के इस चेतना यज्ञ में कुछ पाश्चात्य महिलाओं ने भी अपना योगदान दिया । उन महिलाओं के नाम हैं - मारग्रेट नोबल, श्रीमति एनी बेंसण्ट, मारग्रेट कुशनस् । इन महिलाओने भारत में चल रहे स्त्री आंदोलन को अधिक सक्रिय एवम् सशक्त बनाने में काफी योगदान दिया । सन् 1917 में मद्रास (संप्रति चेन्नई) भारतीय महिला समिति (Indian Women Associations) गठित की गई । तदुपरांत विभिन्न महिला संगठनों के प्रयत्नों से देश में "अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (Indian Women's Conference) नामक संस्था की स्थापना की गयी । सन् 1927 में पुणे में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ । इस संगठन ने नारी शिक्षा को सर्वाधिक प्राथमिकता दी । यह इसी संगठन के प्रयत्नों का परिणाम है कि सन् 1932 में (लेडी इरविन कोलेज) नामक महिला कोलेज की स्थापना दिल्ली में हुई । इसी संगठन के माध्यम से आगे चलकर बाल-विवाह, बहु पत्नी विवाह एवम् दहेजप्रथा आदि के विरोध की मुहीम को चलाया । इन संगठनो ने पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी संपत्ति के अधिकारों तथा वैयस्क मताधिकार (Adult Franchise) की माँग भी रखी । ध्यान रहे पहले विधवाओं को उसके पति की संपत्ति में कोई अधिकार नहीं था । प्रेमचंद ने "बेटों वाली विधवा" के द्वारा विधवाओं की कहानी तथा "गबन" की विधवा "रतन" की बड़ी दयनीय स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है । उपर्युक्त संगठनों के अलावा "विश्वविद्यालय महिला संघ", "भारतीय ईसाई महिला मंडल", "अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा संस्था", तथा "कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट" आदि नारी संगठनों ने स्त्रियों पर थोपी गई निर्योग्यताओं (Disabilities) दूर करने सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने और स्त्री शिक्षा का प्रचार करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया । यह एक विचारणीय तथ्य है कि ज्ञान और शिक्षा का प्रकाश ही कुरितियों,

कुरिवाजों, अंधविश्वासों एवम् नारी विरोधी मान्यताओं के अंधकार को हटा सकता है ।[47]

(3) **संवैधानिक प्रयास :** तत्कालीन समाज सुधारकों, नेताओं तथा उपनिर्दिष्ट स्त्री संगठनों के प्रयत्नों से महिलाओं को कुछ संवैधानिक सुविधाएँ प्राप्त हुई और समय-समय पर अनेक ऐसे अधिनियम पारित हुए; जिन्होंने स्त्रियों पर थोपी गई निर्योग्यताओं को दूर करने और उनकी स्थिति को ऊँचा उठाने में महत्वपूर्ण योग दिया । स्वतंत्र भारत के संविधान में स्त्री पुरुषों को बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार दिए गए । सन् 1955 में "हिंदू विवाह अधिनियम" पारित किया गया, जिसके द्वारा विवाह क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिए गए । इतना ही नहीं विशेष परिस्थितियों में विवाह विच्छेद की व्यवस्था भी की गयी और बहुपत्नी विवाह पर रोक लगा दी गयीं । उसके बाद सन् 1956 में कई महत्वपूर्ण अधिनियम पारित हुए । जिनमें निम्नलिखित मुख्य है – "हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम", "हिंदू नाबालिक और संरक्षता अधिनियम", "हिंदू दत्तक ग्रहण और भरणपोषण अधिनियम", "स्त्रियों और कन्याओं का व्यापार निरोधक अधिनियम" । इन अधिनियमों से स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार आया । सन् 1961 में "दहेज-निरोधक अधिनियम पारित किया गया । इन अधिनियमों के पास हो जाने से आंतरजातीय विवाह, विधवा पुनर्विवाह, प्रेम-विवाह को कानूनी मान्यता प्राप्त हुई । इन अधिनियमों के चलते विवाह की न्यूनतम आयु भी लड़के-लड़कियों के लिए क्रमशः 21 वर्ष व 18 वर्ष की हो गयी है । अब एक पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया जा सकता । असाधारण परिस्थितियों में पति-पत्नी को समानरुप से विवाह विच्छेद का अधिकार भी दिया गया है । कहना न होगा कि इन संवैधानिक व्यवस्थाओं से महिलाओं की स्थिति को सुधारने में निश्चित रुप से गुणात्मक परिणाम आया है ।[48]

डॉ. के.एम. पनिकर ने अपने समाज शास्त्रीय ग्रंथ "हिंदू सोसायटी एट क्रोस रोड्स" में लिखा है कि हिंदूओं के कानून ने, न कि अनेक धर्म ने स्त्रियों को सांपत्तिक अधिकारों से वंचित रखा था तथा यौनारंभ के पूर्व लड़कियों को विवाह के लिए बाध्य किया जाता था और विधवाओं के पुनर्विवाह संबंधी अधिकार पर प्रतिबंध लगाया था । किन्तु अब इन तीनों को हिंदू धर्म को प्रभावित किए बिना कानून द्वारा बदला जा चुका है ।[49] डॉ. पनिकर का यह कथन हिंदू धर्म और हिंदू कानून में विभाजक रेखा खींचता है । हिंदू धर्म के बुनयादी सिद्धांत पर्याप्त परिमाण में उदार और व्यापक थे । परंतु धर्म के नाम पर विविध संहिताओं में जो विधि विधान बनाए गए उसके कारण हिंदू स्त्रियों को निर्योग्यताओं का सामना करना पड़ता था ।

20 वीं शताब्दी की ऊपर उल्लिखित सुधारधर्मिता के कारण भारतीय महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में गुणात्मक दृष्टि से विकास किया है । सन् 1882 में पढ़ी-लिखी स्त्रियों की

संख्या कुल संख्या 2054 थी जो सन् 1981 में बढ़कर 7 करोड 91 लाख से अधिक हो गई है । सन् 1950-51 में जहाँ स्कूलों में लड़कियों की कुल संख्या 54 लाख थी, वहा सन् 1978-79 में वहाँ संख्या 3 करोड 40 लाख हो गई ।[50] सन् 1883 में पहली बार एक स्त्री ने B.A. पास किया । यहाँ 1980 में कोलेज स्तर कीं शिक्षा प्राप्त करनेवाली लड़कियों की संख्या 7.4 लाख से भी अधिक हो गई । डॉ. पनिकर ने लिखा है कि स्त्रियों की शिक्षा एवम् उनकी राजनैतिक जागृति ने उस कुल्हाड़ी को तेज़ कर दिया; जिसकी सहायता से हिंदू सामाजिक जीवन की जंगली झाड़ियों को साफ करना संभव हो गया ।[51] यह प्रगति शिक्षा के सभी क्षेत्रों में हुई यथा - कला, विज्ञान, वाणिज्य, गृहविज्ञान, शिल्पकला, और संगीत ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि प्रेमचंदयुग में तेजोरानी दीक्षित, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी जैसी नारी लेखिकाएँ हमें उपलब्ध होती हैं । कहना न होगा कि यह नारी शिक्षा का ही परिणाम है । शैक्षिक जागृति हमेशा राजनैतिक चेतना को उपक्रमित करती है । एक गणना के अनुसार सन् 1952 में 23 स्त्रियाँ लोकसभा के लिए निर्वाचित हुई थीं । राज्यसभा के लिए 19 स्त्रियाँ मनोनीत हुई थीं । इस संदर्भ में डॉ. पनिकर ने लिखा है कि स्वाधीनता के उपरांत भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में महिलाओं ने जो स्थान प्राप्त किया उसे देखकर बाहरी दुनिया के लोग आश्चर्य में पड़ गए क्योंकि वे तो यह सोचने के अभ्यस्त थे कि हिंदू स्त्रियाँ पिछड़ी हुई अशिक्षित और प्रतिक्रियावादी सामाजिक व्यवस्था में जकड़ी हुई हैं । यह महिलाओं में राजनीतिक चेतना का ही परिणाम था कि स्वाधीन भारत में अनेक महिलाएँ राज्यपालों, केबिनेट स्तर के मंत्रियो और राजदूतों के रुप में यश प्राप्त किया । यहाँ तक कि इंदिरा गांधी के रुप में हमें एक सशक्त महिला प्रधानमंत्रीपद के लिए प्राप्त हुईं, जिनके लिए कभी आदरणीय भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा था कि सदन में यदि कोई “मर्द” है तो वह श्रीमती इंदिरा गांधी है । जिस प्रकार सरदार वल्लभभाई पटेल को ”लौह पुरुष” कहा जाता था, ठीक उसी प्रकार इंदिरा गांधी के लिए हम ”लौह-महिला” (Iron Lady) शब्द का प्रयोग कर सकते हैं । उत्तर प्रदेश की सुचेता कृपलानी कभी उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री भी रही हैं । इधर की बात करें तो जयललिता लंबे अरसे तक तमिलनाडु की मुख्यमंत्री रही हैं । संप्रति शीला दीक्षित दिल्ली की मुख्यमंत्री है । ममता बेनर्जी तो दिल्ली केबिनेट मंत्री है (अब बंगाल की मुख्यमंत्री हैं) । सुश्री मायावतीजी उत्तर प्रदेश जैसे राज्य की दो - दो बार मुख्यमंत्री रही हैं । ऐसी अनेक महिलाओं के उदाहरण दिए जा सकते हैं । यह राजनैतिक चेतना शैक्षिक चेतना का ही परिणाम है ।

डॉ. मुहम्मद अज़हर ढ़ेरीवाला ने अपने शोध प्रबंध ”आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण” में कुछेक भारतीय महिलाओं का नामोल्लेख किया है जिन्होंने जीवन के किसी – न – किसी क्षेत्र में पहल की है, जो इस प्रकार है -

1. चंद्रमुखी बोस और कादम्बनी बोस : प्रथम महिला स्नातिकाएँ
2. मेडम भिखाजी कामा : प्रथम महिला क्रांतिकारी
3. श्रीमती एनी बेसण्ट : क्रोंग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्षा
4. अमृता शेरगिल : प्रथम महिला चित्रकार
5. सरोजिनी नायडू : प्रथम महिला राज्यपाल
6. श्रीमती सुचेता कृपलानी : प्रथम महिला मुख्यमंत्री
7. श्रीमती मारग्रारेट कजिन्स : प्रथम महिला मताधिकार आंदोलन की सूत्रधार
8. श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित : प्रथम महिला राजदूत, प्रथम राष्ट्रसंघ अध्यक्षा
9. डॉ. मुतुलक्ष्मी रेड्डी : प्रथम महिला विधायक (M.L.A.)
10. तैयबा बेगम : प्रथम मुस्लिम स्नातक महिला
11. सुवर्ण कुमारी देवी : प्रथम महिला उपन्यासकार
12. अन्ना राजम् ज्योर्ज : प्रथम महिला I.A.S.
13. श्रीमती किरण बेदी : प्रथम महिला I.P.S.
14. श्रीमती हंसा महेता : प्रथम महिला उपकुलपति
15. श्रीमती इंदिरा गांधी : प्रथम महिला प्रधानमंत्री
16. प्रतिभा आर्य : प्रथम नेत्रहीन स्नातिका
17. ए. ललिता : प्रथम महिला इंजीनियर
18. शांतारानी : प्रथम महिला बैंक मेनेजर
19. डॉ. गीता घोष : प्रथम महिला छाताधारी
20. सुभाषिनी दास गुप्ता : प्रथम महिला सेनाधिकारी
21. डॉ. विद्या कोठेकर : प्रथम महिला नाभीकिय भौतिकी विद्
22. कुमारी आरती शाह : प्रथम इंग्लिश चेनल तैराक महिला
23. श्रीमति ज्योति मेहता : प्रथम महिला वन्य प्राणी विद् ।
24. श्रीमती सवितारानी : अंतरिक्ष विज्ञान और आंतर राष्ट्रीय कानून में प्रथम महिला ।
25. कुमारी पी.टी. उषा : एशिया गेम्स में स्वर्णपदक पानेवाली प्रथम महिला धावक
26. कुमारी कल्पना चावला : प्रथम महिला अवकाश अवरोही ।[52]
27. प्रथम दलित कुलपति : हेमाक्षी राव : Vice Chancellor of Hemchandrachyrya North Gujarat University[53]

अभिप्राय यह कि जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में शिक्षा के कारण महिलाएँ दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति कर रही हैं । पिछले कुछेक वर्षो के गुजरात के 10th और 12th के बोर्ड के परिणामों पर यदि दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि बोर्ड में आधे से ज्यादा लड़कियाँ होती हैं । इस साल (2010) 12th में प्रथम गुजरात में आनेवाली लड़की ही थीं । इस तरह

हम देंखते हैं कि लड़कियों में पढ़ाई का और कुछ नया कर गुजरने का माद्दा सविशेष देखा जाता है । यह पिछले सौ डेढ़ सौ वर्षों की नारीजागृति का ही परिणाम है ।

❖ **नारीजागृति और कुछ लेखिकाएँ :-**

न केवल अपने यहाँ परंतु समुचे विश्व में यह नारी चेतना पिछली एक दो शताब्दियों में आयी है । पश्चिम में तो नारीमुक्ति आंदोलन चला है । जिसने स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए पुरुष के आमने-सामने कर दिया है । सिमोन बोउवार की “द सेकण्ड सेक्स” इस पर लिखी एक महत्वपूर्ण किताब है । इसमें सिमोन बोउआरने पूरे विश्व में स्त्रियों का जो दोयम दर्जा है उसके खिलाफ आवाज उठायी है । बार्बरा डेकोर की पुस्तक “The Women's movement” भी एक उल्लेखनीय किताब कही जा सकती है जिसने विश्वभर की स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए ललकारा है । पश्चिमी जगत में उद्भुत नारी मुक्ति आंदोलन अपनी तमाम शुभकामनाओं के बावजूद अपनी कट्टरवादिता के कारण थोड़ा आलोचनीय रहा है । पुरुषोंने पिछले हजारों साल से स्त्रियों को उनके जायज मानवीय अधिकारों से वंचित रखा है । इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि उसका प्रतिशोध लेते हुए पुरुषों और स्त्रियों को एक दूसरे के दुश्मन समझा जाए । वस्तुतः संसार की प्रगति तभी होगी, जब स्त्री और पुरुष हाथ में हाथ मिलाकर एक दूसरे का सहयोग करें और एक-दूसरे के मित्र और जीवनसाथी बनने का प्रयत्न करें । पश्चिम की तुलना में भारतीय नारीवादी लेखिकाओं ने आत्यंतिक पद्धति को न अपनाते हुए कुछ मध्यमार्गीय रास्ते को चुना है, जिसे श्लाघनीय कहा जा सकता है ।

नारी जागृति और विमर्श में गुणात्मक परिवर्तन एवम् अभिवृद्धि लाने का श्रेय निम्नलिखित पुस्तकों को भी जाता है ।

(1) इन्डियन वुमन : डॉ.हंसा मेहता : बुटालाएण्ड कंपनी दिल्ली (2) इन्डियन वुमन इन ट्रासिंसन : गोल्ड स्टेन्ड : न्यूर्योक (3) ध ग्लिमसेज : डॉ.उमा देशपांडे : गुड कम्पेनियन बरोडा । (4) वुमन ध पास्ट, प्रेजण्ट एण्ड फ्युचर : आगस्ट वेबल : नेशनल बुक सेण्टर दिल्ली (5) ध वुमन्स मुवमेण्ट : बॉबरा डेकारेड : हारपरहेन रा पब्लिसर्स : न्युयार्क (6) वुमेन एण्ड़ इक्वेलिटी : चाफे : ओक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस न्यूयार्क (7) वीमेन एण्ड़ सोसायटी – इण्डिया : नीरा देसाई, कृष्णाराजा मैत्रेयी : अजन्ता पब्लिशर्स दिल्ली । (8) वीमेन इन पब्लिक एण्टर प्राईसस : डॉ.वंदना भटनागर : जयपुर (9) वीमेन इन ध टवेन्टी एट सेंचुरी - एलिसा बोल्ड़िग : न्यूर्योक (10) वीमेन एण्ड सोसयल चेन्ज इन इण्डिया : जेमा मेस्टोन एवार्ट : हेरिटेज पब्लिसर्स : न्यू दिल्ली (11) औरत के हक मे : तस्लीमा नसरीन वाणी प्रकाशन दिल्ली (12) औरत होने की सजा, अरविंद जैन, विकास पेपर बेंक, गांधीनगर दिल्ली (13) परिधि पर स्त्री : डॉ. मृणाल पाण्ड़ेय : राधा

कृष्ण प्रकाशन दिल्ली (14) भारत की अग्रणी महिलाएँ : डॉ.आशारानी वोरा : आत्मा राय सन्स : दिल्ली (15) भारतीय समाज में नारी : डॉ.नीरा देसाई : मेकमिलन : दिल्ली (16) स्त्री संशब्द संपादिका : सु श्री कमलकुमार : राजकमल प्रकाशन : दिल्ली (17) हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : डॉ. रोहिणी अग्रवाल (18) हिन्दी उपन्यास में रुढिमुक्त नारी : डॉ.राजरानी शर्मा (19) जहाँ औरते गढ़ी जाती है। आदि – आदि ।[54] उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त “हंस” तथा वर्तमान साहित्य जैसी प्रगतिवादी पत्रिकाओं ने भी नारी चेतना को विकसित करने में विशिष्ट योगदान दिया है। “हंस” ने तो 2004 में नारी विमर्श को लेकर एक विशेषांक ही निकाल दिया था। “हंस” का नवम्बर 2009 का अंक - “स्त्री विमर्श” का अगला दौर प्रकाशित हो चुका है जिसमें निम्नसूचित चार मुदों पर विशेष बहस हुई है –

* संबंधो की नयी पारिवारिक सामाजिक संरचना
* 1975 से अब तक की यात्रा का पहला चरण : पितृसत्ता के विरुद्ध
* आगे की यात्रा स्त्री का स्वत्व संकल्प और साधन
* स्त्री श्रम : मूल्य और आंकलन।[55]

नारी शिक्षा तथा ऊपर उल्लिखित पुस्तकों के पठन – पाठन और प्रचार से भारत के नारी समाज में विशेषतः हिन्दी जगत की महिलाओं में जो चेतना प्रस्फुटित हुई है; उससे हिन्दी साहित्य में नारी लेखिकाओं की मानों बाढ़ सी आ गई है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव ने अपनी संपादकीय में बड़ी ही सार्थक टिप्पणी की है – “जब तक पुरुष इन परनारियों की कहानियाँ लिख रहे थे, तब तक सभी कुछ ठीक-ठाक था, उनका चरित्र और व्यक्तित्व निखर और सँवर रहा था मगर जैसे ही स्त्री ने अपनी भाषा में बोलना ओर लिखना शुरु किया, दूसरे शब्दों में प्रेमिका ने अपनी जबान खोली कि सारी मान-मर्यादाएँ चरमराकर गिर पड़ीं और पुरुष प्रभुत्व के मारे लेखक और विचारक बेवफाई का रोना रोने लगे।”[56]

राजेन्द्र यादव का उक्त कथन “नया ज्ञानोदय” के बेवफाई दो विशेषांक में विभूति नारायण राय का जो इंटरव्यू प्रकाशित हुआ था उसी के संदर्भ में आया था। राय साहब ने अपने कथन में कहा था – “लेखिकाओं में होड़ लगी है। यह साबित करने के लिए कि उनसे बड़ी छिनाल कोई नहीं है। मुझे लगता है कि इधर प्रकाशित बहु प्रमोटेड और ओवर रेटेड लेखिका की आत्म कथात्मक पुस्तक का शीर्षक होना चाहिए “कितने बिस्तरों पर कितनी बार”[57] राय के इस हमले में कृष्णा सोबती प्रभा खेतान, कृष्णा अग्निहोत्री, मृदुलागर्ग, रमणिका गुप्ता आदि कई लेखिकाएँ आ जाती हैं। उनके कथन में प्रयुक्त “छिनाल” शब्द को लेकर इधर सांप्रतिक लेखिकाओं तथा मीड़िया में भारी बावेला मचा हुआ है। वृंदाकरात तथा गिरिजा व्यास से लेकर कृष्णा सोबती, मन्नू भण्ड़ारी, मृदुला

गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा आदि सभी राय के खिलाफ बयान दे रही हैं कि श्रीमान विभूति नारायण राय को अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा के कुलपतिपद से तत्काल हटाया जाना चाहिए।

यह संगठित एवम् शिक्षित महिलाओं के प्रतिरोध का ही परिणाम है कि राय को क्षमायाचना करनी पड़ी है। अपने बचावनामें में राय कहते हैं "छिनाल" भोजपुरी भाषा का शब्द है ओर स्त्री-पुरुष दोनों के लिए इस्तमाल होता है। "छिनाल" शब्द छिन्न + नाल से बना है यानी अपनी जड़ों, परिवेश, परम्पराओं और पतिव्रत से भट्की हुई औरत के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है। प्रेमचन्द ने इस शब्द का इस्तमाल कम से कम सौ बार किया है, इस लिए यह इतना अपमानजनक नहीं है"[58] परंतु राय का यह बचाव बेहद कमजोर और लध्धड़ है। प्रथम तो "छिनाल" शब्द भोजपुरी ही नहीं, गुजराती तथा हिन्दी की कई बोलियों में आया है और भोजपुरी में पुरुष के लिए छिनाल नहीं अपितु "छिनरा" शब्द प्रयुक्त होता हैं, दूसरे "छिनाल" शब्द तद्‌भव या देशज हो सकता है। तीसरें प्रेमचन्द ने "छिनाल" शब्द का प्रयोग हमेशा बदचलन, पथभ्रष्ट और फ़ाहिसा औरत के लिए किया है। अतः प्रेमचन्द के नाम को बीच में लाना बिल्कुल मुनासिब नहीं है। निश्चय ही छिनाल स्त्री के लिए बेहद अपमानजनक गाली है। अपने कथा – साहित्य में नारी – सम्मान और नारी अस्मिता की बात करनेवाले प्रगतिवादी प्रेमचन्द कभी किसी सम्मानीय स्त्री के लिए ऐसे अभद्र शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते थे। चतुर्थतः "छिनाल" शब्द को यदि बख़्श भी दिया जाए तो उसके बाद के अनर्गल वाणी-विलास को क्या कहा जाएगा?

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि व्यक्ति या लेखक की विचारधारा एवम् विभावना स्पष्ट होनी चाहिए। एक तरफ प्रगतिवादी होने का दंभ भरना और दूसरी तरफ कुछ दकियानूसी बातों को लेकर इस प्रकार का संकुचित रवैया अपनाना, किसी भी प्रतिष्ठित लेखक या लेखिकाओं को शोभा नहीं देता। यहाँ बरबस मुँशी प्रेमचंद के प्रो.मेहता की स्मृति ताजा हो जाती है, जो कहते हैं कि व्यक्ति को स्पष्ट करना चाहिए कि वह मार्क्सवादी है या नहीं और यदि हैं तो वह उस प्रकार के आचरण का व्यवहार करें। यह समीचीन नहीं है कि अपनी सुविधाओं के लिए कुछ मामलों में तो आप प्रगतिवादी दृष्टिकोण अपनायें और कुछ मामलों में वही अपनी पुरानी संकुचित दकियानूसी सोच को कायम रखें। विभूतिनारायण राय जैसे लेखक से यह ठोस सामंतकालीन मर्दवादी रवैये की आशा नहीं थी। अतः सभी तबकों से उसकी भरपूर और भरसक भर्त्सना करना लेखकीय धर्म बन जाता है।

यहाँ प्रस्तुत मुद्दे की इतनी विस्तृत चर्चा इस लिए की गयी है कि यह चर्चा ही प्रमाण है कि आज की शिक्षित संगठित नारी-विमर्श संपन्न महिला इस प्रकार की बातों को बरदास्त नहीं कर सकती, इतना ही नहीं वह उसके खिलाफ आंदोलन भी छेड़ सकती

है । लद गये वे दिन जब आप नारी के संदर्भ में अनाप-सनाप वाणी विलास करते रहते थे ।

★ शिक्षा और नारीविमर्श :

इधर इस उत्तर आधुनिक युग में मुख्यतया दो विमर्शों की विशेष रुप से चर्चा हो रहीं है । ये दो विमर्श हैं – नारीविमर्श और दलितविमर्श । हमारे शोध प्रबंध का सम्बन्ध नारीविमर्श से है । नारी-विमर्श का सीधा सादा अर्थ यह हो सकता है कि नारी के हितों की, नारी स्वाभिमान की, नारी के सत्व की, नारी – अस्मिता की, नारी के जायज़ मानवीय अधिकारों की मुहिम इसके तहत रहेंगी । इधर एक और शब्द की चर्चा है – नारीवादी चिंतन । नारीविमर्श और नारीवाद में बुनियादी अंतर यह है कि नारीविमर्श में जो खुलापन है, जो लोकतांत्रिक भावना है वह शायद नारीवाद में नहीं है । नारीवाद में एक प्रकार की कट्टरता है । उसमें कटुता, घृणा और प्रति-हिंसा जैसे कारक कार्य करते हैं । अभी तक धर्म, शास्त्र, विधि-विधान, सामाजिक परंपराओं और रूढ़ियों के नाम पर नारी के मानवीय अधिकारों को छीना गया है, उस पर खुली बहस होनी चाहिए । नारी विमर्श का ये तकाजा है । नारीवाद स्त्री को पुरुष के खिलाफ खड़ा करता है । स्त्री और पुरुष प्रकृति के दो अंग हैं । दोनों का समान महत्त्व है । न कोई कमत्तर न कोई बढ़कर । अभी तक नारी को पुरुष के समकक्ष नहीं समझा जाता था । इसलिए तो सिमोन बोऊआर ने अपने ग्रंथ का नाम रखा था – "सेकण्ड सेक्स" । अतः इस बात का विरोध होना चाहिए । स्त्री और पुरुष को समान और एक दूसरे के पूरक समझने चाहिए । मार्क्सवाद का रवैया इस मामले में बिल्कुल स्पष्ट है । वह स्त्री – पुरुष गैरबराबरी को दूर करना चाहता है । उनके बीच बढ़ती जाने वाली असमानता की कटु भर्त्सना करता है । परंतु वह स्त्री को पुरुष के खिलाफ भड़काता नहीं है । यहाँ एक बात यह भी स्पष्ट होनी चाहिए कि अतीत में किसी ने अन्याय, अत्याचार और शोषण किया है तो अब उसके प्रतिशोध के रूप में उसके साथ अत्याचार, अन्याय और शोषण होना चाहिए, यह तर्क नहीं कुतर्क है । "शैतानिक वर्सिस" के विवादास्पद लेखक सलमान रसदी का एक कथन यहाँ उध्दरणीय रहेगा – The Past is past. It should not burden & cripple the present.[59] नारीविमर्श उसकी इजाजत नहीं देता । नारी-वाद की विभावना को स्पष्ट करने के लिए हम अन्य दो शब्दों को ले रहे हैं – हिंदू और हिंदूत्व । प्रकटतया देखा जाए तो इनमें अभिन्नता दृष्टिगोचर होती है, परंतु इधर जो राजनीतिक प्रवाह बह रहे हैं, उसमें ये दोनों शब्द भिन्नार्थक - व्यंजन हो गए हैं । "हिंदू" शब्द में जहाँ उदारता, सहिष्णुता, व्यापकता जैसे गुण है वहाँ "हिंदूत्व" में एक प्रकार की कट्टरता हैं और किसी भी बात की कट्टरता हमें मानवीयता के निकट नहीं ले जाती । यही बात हम नारीविमर्श और नारीवाद को लेकर कर सकते हैं । नारीवाद में जो कट्टरता है वह नारीविमर्श में नहीं हैं ।

नारीविमर्श के संदर्भ में उपर्युक्त चर्चा इसलिए आवश्यक है कि यह नारीविमर्श नारीशिक्षा का ही प्रतिफल है । यदि आज से सौ – डेढ़ – सौ साल पहले ईश्वरचंद विद्यासागर, ज्योतिबा फूले, सावित्रीबाई फूले, पंडिता रमाबाई जैसे महानुभावों ने नारी-शिक्षा की नींव को न रखा होता तो आज यह महिला-भारती-सदन का निर्माण असंभव था । प्रस्तुत नारीविमर्श भी नारी-शिक्षा के कारण ही संभव हो सका है। जैसे – जैसे नारी सुशिक्षित होती गई, उसकी दृष्टि व्यापक होती गयी, उसने संसार की अन्य शिक्षित महिलाओं के संदर्भ में भी पढ़ा और फलतः उसकी अपनी भूमिका स्पष्ट होती गई, रूढ़ि और परंपरा की बंदिशों से वह न केवल मुक्त हुई बल्कि उसने उन रूढ़ियों और परंपराओं की छानबीन भी की और अपने भीतर जगे नारीविमर्श के विवेक से उसने सारगर्भित बातों को ग्रहण करते हुए नारी-हित विरोधी थोथी बातों को नकार दिया । आज की नारीविमर्श संपन्न लेखिका या कवियत्री को परंपरा विरोधी समझने की गल्ती ना करें, वह केवल उन परंपराओं का विरोध करती है जो अमानवीय है या आज के संदर्भ में अप्रस्तुत हैं । शिक्षा से उत्पन्न इस नारीविमर्श ने उनके सन्मुख एक नया सपना रखा हैं । यहाँ पंजाब के कवि “पाश” की निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत करना मैं आवश्यक समझती हूँ ---

“पुलिस की मार / सबसे खतरनाक नहीं होती ।

पेट की भूख / सबसे खतरनाक नहीं होती ।

सबसे खतरनाक होता है /चुपचाप घर से निकलना /

और चुपचाप घर को लौट आना ।

सबसे खतरनाक होता है सपनों का मर जाना ।”[60]

किसी भी देश, समाज, संस्कृति, वर्ग के लिए “सपनों का मर जाना” एक खतरनाक परिस्थिति होती है । नारीविमर्श ने कमज़-कम गूँगी, बहरी नारी के मन में सपनों को जगाया है । यह उसकी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है ।

नारीविमर्श और लेखिकाओं की आत्मकथाएँ :-

पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम आत्मकथा के स्वरूप पर तथा हिन्दी आत्मकथा साहित्य की परंपरा पर विस्तृत चर्चा कर चुके हैं । आत्मकथा साहित्य की परंपरा को निर्दिष्ट करते हुए हमने अनेकानेक हिन्दी लेखकों की आत्मकथाओं का हवाला दिया है । तत्पश्चात

हमने लेखिकाओं के आत्मकथा साहित्य पर भी प्रकाश डाला है । पुरुष लेखकों की आत्मकथाओं और महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं पर यदि तुलनात्मक दृष्टिपात किया जाए तो परिमाणगत एक तथ्य सामने आए बिना नहीं रहेगा । वह तथ्य यह है कि पुरुष लेखकों की आत्मकथाओं का परिमाण महिला लेखिकाओं की आत्मकथा के परिमाण से कम है । लगभग यही बात दलित लेखकों की आत्मकथाओं पर भी लागू होती है । वहाँ भी परिमाण का प्रतिशत कुछ अधिक ही मिलेगा । इसके कारणों की पड़ताल करने पर हमे मनोविज्ञान का सहारा लेना पड़ेगा । इन दोनों तबकों पर धर्म और शास्त्र, रूढ़ि और परंपरा, विधि-विधान आदि के द्बारा अनेक प्रकार की निर्योग्ताएँ (Disabilitees) थोपी गई थीं । यानी एक तरह से ये दोनों तबकों का समाज एक बंध समाज था । अनेक बंदिशों में घिरा हुआ समाज था । डॉ. मीरा रामनिवास द्बारा प्रणीत सद्य प्रकाशित काव्य संग्रह "नया सवेरा" की एक कविता "आधी दुनिया" में नारी की इसी पीड़ा – व्यथा को अभिव्यक्त किया गया है ---

> **"उड़ना चाहती थी उन्मुक्त होकर पंछी की तरह । बंदिशों के पिजड़े में कैद कर दी गयी । उसके हिस्से का आकाश छीन लिया गया / बनना चाहती थी निश्छल नदी सी मर्यादाओं के बाँधो में सिमटा दी गई / उसके हिस्से की जमीं छीन ली गई / उगना चाहती थी विशाल वृक्ष की तरह / ... उसके हिस्से का जीवन छीन लिया या फिर बना दी गई बोनसाई / "[61]**

कवियत्री मीरा रामनिवास की चिंता व्यथा और पीड़ा, इस बात को लेकर है कि संसार की इस "आधी दुनिया" (महिला समाज या महिला तबका) को उसके मानवीय अधिकारों से पढ़ने-लिखने के अधिकारों से दूर रखा गया था ।

यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है कि जिसको तुम ज्यादा दबाओगे अनुकुल समय मिलने पर वह उतना ही ज्यादा उछलेगा । दलित और महिलाओं के साथ यही हुआ है । उनकी वेदनाएँ, उनकी त्रासदियाँ हजारों साल पुरानी हैं, तो इस तथाकथित कलियुग में जब इनके सामने संभावनाओं का सपनों का एक आकाश खुला है तो यह स्वाभाविक एवम् मनोवैज्ञानिक है कि उनके भीतर की "अहिल्या" पिघलेगी । उसकी वाणी से आक्रोश भी फूट सकता हैं । नारीशिक्षा के कारण ही नारीवाद, नारीवाद चिंतन तथा नारीविमर्श जैसी विभावनाएँ समुपस्थित हुई हैं । प्रेमचंदयुग उसका प्रारंभिक दौर था, अतः वहाँ नारी लेखन तो मिलता है । उषादेवी मित्रा, तेजोरानी दीक्षित, शिवरानी देवी जैसी कुछ उपन्यास लेखिकाएँ भी उपस्थित होती हैं, परंतु वह स्वर कुछ दबा हुआ सा था । नारीविमर्श तब इतना अधिक प्रखर होकर सामने नहीं आया था । अतः साठोत्तरी उपन्यासों या समकालीन उपन्यासों के दौर में नारी का स्वर अधिक सशक्त, अधिक आत्मविश्वासदिप्त और

अधिक प्रखर होकर आया है । महिला आत्मकथाओं का सृजन भी उसी का परिणाम हैं । इतिहास में घटनाओं के घटित होने में एक निश्चित तार्किक क्रम होता है । कोई एक घटना घटित होती है । उसके परिणाम स्वरूप दूसरी घटना घटित होती है और फिर तीसरी, चौथी यों तो यह सिलसिला आगे बढ़ता है । हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि नवजागरण ने नारी शिक्षा के मुद्दे को आगे बढ़ाया, नारी शिक्षा के कारण ही नारीविमर्श आया और इस नारीविमर्श के कारण ही नारियों ने आत्मकथा जैसा साहित्य प्रकार लिखने का साहस जुटाया । इधर की समकालीन नारी लेखिकाएँ अपने जीवन के अंतरंग प्रसंगों की चर्चा से भी गुरेच करती नहीं है । शायद इसीलिए विभूतिनारायण राय जैसे लोग अपनी बौखलाहट में ऐसी लेखिकाओं को "छिनाल" तक कहने का दुःसाहस कर बैठते हैं । हमें संतोष है कि समकालीन लेखिकाओं की ओर से उसका जोरदार, कराराविरोध हो रहा है । ध्यान रहे विभूतिनारायण राय का पूर्व उल्लेखित कथन भी प्रायः महिलाओं द्वारा लिखी जानेवाली आत्मकथाओं के संदर्भ में ही है ।

इधर Shania Twain की Auto Biography के संदर्भ में तथा दलित लेखकों की आत्मकथा के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण वक्तव्य आया है – Auto-biographies are often drafts of history both personal and public. In the Indian context, auto biographies Paved the way for the emergence of a broad category called dalit literature. Many of these testimonials were by first time writers. These books were not testimonials of great men, but broken people reflecting on cruel and unjust social Institutions and customs and the pain of living under them. Not to forget, some of these were beautifully crafted as well."[62]

उपर्युक्त कथन यद्यपि दलित आत्मकथाकारों के संदर्भ में आया है, तथापि यह कथन महिला लेखिकाओं की आत्मकथा के संदर्भ में भी उतना ही सत्य है ।

निष्कर्ष : अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुँच सकते हैं –

(1) आत्मकथा विधा गद्य की एक प्रमुख विधा है । आत्मकथा और जीवनकथा या जीवनी में मुख्य अंतर यह है कि आत्मकथा में कोई व्यक्ति अपने जीवन के संदर्भ में अपनी ही कथा को प्रस्तुत करता है । दूसरी ओर जीवनी में किसी व्यक्ति के जीवन को लेकर कोई दूसरा व्यक्ति उसके जीवन का आलेखन और आंकलन करता है । दूसरे शब्दों में कहें तो आत्मकथा में कथानायक और लेखक एक ही होता है जब कि जीवनी में कथानायक और लेखक भिन्न-भिन्न होते हैं । आत्मकथा को अंग्रेजी में "Autobiography" और जीवनी को "Biography" कहा गया है ।

(2) कथा और जीवन प्रसंग तो उपन्यास में भी होते हैं पर उपन्यास की गणना "फिक्सन" (कल्पना प्रसूत) होती है जब कि आत्मकथा काल्पनिक नहीं अपितु वास्तविक घटनाओं और प्रसंगों पर आधारित होती है ।

(3) सामाजिक और राजनीतिक दायित्वबोध की दृष्टि से आत्मकथा का लेखन अत्यंत विकट कार्य है । जिस प्रकार नट रस्सी पर चलता है उसी प्रकार का संतुलन आत्मकथाकार को रखना पड़ता है । इस तरह आत्मकथा लेखन कोई सरल कार्य नहीं अपितु एक अत्यंत मुश्किल कार्य है । आत्मकथा प्राय : ख्यात व्यक्तियों की होती है । आत्मकथाकार यदि समाज सुधारक, देशनेता या कोई संत, साधु – महात्मा होता है तो उनकी अपनी कथा के साथ साथ समांतर उनके समय की युगीन परिस्थितियों का भी चित्रण होता है । साहित्यकारों की आत्मकथाओं में अन्य समकालीन साहित्यकार तथा साहित्य प्रवाहों की भी चर्चा रहती है ।

(4) आत्मकथा लेखन में एक प्रमुख भयस्थान यह होता है कि आत्मकथा लेखक अपने उज्जवलपक्षों की चर्चा तो कर सकता है परंतु जीवन के अनुज्जवलपक्षों और तथ्यों के उद्घाटन का साहस बहुत कम लोग कर पाते हैं । इस संदर्भ में महात्मागांधी की आत्मकथा "सत्य के प्रयोग" तथा अमृता प्रीतम की आत्मकथा "रशीदी टिकट" का उल्लेख किया जा सकता है; जिनमें क्रमशः महात्मा गांधी और अमृता प्रीतम ने अपने जीवन के अनुज्जवल पक्षों को भी उद्घाटित किया है ।

(5) आत्मकथा लेखन में संस्मरण, डायरी, पत्र आदि सहायक हो सकते हैं । सफल आत्मकथा लिखना सफल जीवन जीने के समान ही कठिन है । अतः आत्मकथाएँ प्रायः महान लोगों की होती है । किन्तु महान से महान लोगों में भी कुछ कमजोरियाँ पायी जाती हैं, उन कमजोरियों के कारण उनका व्यक्तित्व अपौरुषय या अवतारी पुरुष सा नहीं लगता । परिणामतः उसकी विश्वनीयता बढ़ जाती है ।

(6) हिन्दी में आत्मकथा साहित्य की एक सुदीर्घ और संपन्न परम्परा प्राप्त होती है । हिन्दी की प्रथम आत्मकथा अकबर के समकालीन आगरा निवासी जैन कवि बनारसीदासजी की है; जो कि "अर्द्धकथानक" नाम से उपलब्ध होती है । जो पद्य में लिखी गयी है । वस्तुतः आधुनिक आत्मकथा साहित्य का प्रारंभ तो भारतेन्दु-युग से होता है । भारतेन्दु युग में हमें प्रतापनारायण मिश्र और किशोरीलाल गोस्वामीजी की आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं ।

(7) आत्मकथा साहित्य का अक्षुण, अजस्र प्रवाह तो द्विवेदी युग और उसके बाद से होता है । इन आत्मकथाओं को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं ।

(क) हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथा

(ख) तत्कालीन नेताओं की आत्मकथा

हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाओं में महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, सेठ गोविंददास, हरिवंशराय बच्चन, भीष्म साहनी, आदि की आत्मकथाएँ हैं। (विस्तृत सूची – पृष्ठ 12-13) देशनेता तथा समाज सुधारकों की आत्मकथाओं में महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस, पंड़ित जवाहरलाल नेहरू आदि की आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं।

(8) पिछले कुछ दशकों में अनेक हिन्दी साहित्यकारों की आत्मकथाएँ आई हैं जिनमें शरद देवड़ा, काशीनाथसिंह, मोहनदास-नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले, किशोर शांताबाई काले, मोहनराकेश, इस्मत चुगताई आदि की आत्मकथाएँ उल्लेखनीय कहीं जा सकती है।

(9) 21 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में स्वदेश-दीपक, चित्रकार, सैयद हैजर रज़ा, संगीतकार वसंत पोतद्दार, विद्यासागर नोटियाल, लक्ष्मीधर मालवी, भीष्म साहनी दयापावर, रूपनारायण सोनवणकर आदि की आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं। (यहाँ पर हमने समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं का जिक्र नहीं किया है।)

(10) समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में कुसुम अंसल, कृष्णा अग्निहोत्री, पद्मा सचदेव, कौशल्या बैसंत्री, मन्नू भण्डारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, तस्लीमा नसरीन, कृष्णा सोबती, चंद्रकिरण सोनरिक्शा आदि की आत्मकथाएँ बड़ी महत्वपूर्ण आत्मकथाएँ हैं। इस संदर्भ में कुछ मुस्लिम लेखिकाओं की आत्मकथाएँ भी महत्वपूर्ण है।

(11) आधुनिक काल के महिलालेखन और विशेषतः समकालीन हिन्दी लेखिकाओं के आत्मकथा लेखन के संदर्भ में यह सदैव ध्यान रहेगा कि इसके पीछे नवजागरण और नवजागरण से उत्प्रेरित नारीशिक्षा के कारण बड़े महत्वपूर्ण रहे हैं।

(12) नवजागरण के पश्चात् महात्मागांधी तथा महिला संगठनों द्वारा स्थापित अनेक सामाजिक, राजनैतिक संस्थानों ने महिलाओं के सशक्तीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिनमें संवैधानिक दृष्टि से जो प्रयत्न हुए हैं वे भी बड़े महत्वपूर्ण हैं।

(13) जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर कार्य किया है। हमने ऐसी लगभग २७ महिलाओं का उल्लेख किया है जो किसी न किसी क्षेत्र में पहल करनी करनेवाली महिलाओं में रही हैं।

(14) नारीजागृति की मशाल जलाने में आधुनिक काल तथा समकालीन साहित्य की अनेक देशी-विदेशी महिलाओं ने नारीजागरण विषयक जो ग्रंथ लिखे हैं, उन ग्रंथों की भी बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

(15) उत्तर आधुनिक युग में नारी विमर्श को जगाने में नारी शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। नारी यदि शिक्षित और संगठित न होती तो नारी-विमर्श का प्रश्न ही सामने नहीं आता।

(16) समकालीन साहित्य में हिन्दी लेखिकाओं की जो अनेक आत्मकथाएँ उपलब्ध होती हैं, वह ऊपर उल्लिखित नारी-विमर्श का ही परिणाम है। "नारी-विमर्श" और "नारीवाद" में भी अंतर है। "नारी विमर्श" में जहाँ संवाद ओर व्यापकता की भूमिका है; वहाँ नारीवाद में एक प्रकार की कट्टरता का आभास मिलता है।

संदर्भसंकेत

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1 : प्रधान संपादक : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : पृ. 98
2. भारतीय साहित्यकोश : संपादक : डॉ. नगेन्द्र : पृ. 94
3. Compact Oxford Reference Dictionary : P. 50
4. काव्य के रूप : डॉ. गुलाबराय : पृ. २३२
5. वही : पृ. 232-233
6. पंडित जवाहरलाल नहेरू लिखित “मेरी कहानी” के अनुवाद से उद्धृत : काव्य के रूप : पृ. 233
7. दृष्टव्य : काव्य के रूप : डॉ. गुलाबराय : पृ. 233 – 234
8. वही : पृ. 298
9. दृष्टव्य :वही : पृ. 234
10. दृष्टव्य : वही : पृ. 234
11. दृष्टव्य :हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. माधव सोनटक्के : पृ. 345, 460-461
12. दृष्टव्य :हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. सोनटक्के पृ. : 463
13. आज के अतीत : भीष्म साहनी : प्रथम पृष्ठ से।
14. आत्मकथा विषयक तमाम ब्यौरे के लिए मैंने हंस 1991 से अद्यावधि तक के हंस के अंको का उपयोग किया है। विशेषतः प्रत्येक वर्ष के जनवरी अंक को देखा गया है। जिसमें साल भर की साहित्यिक गतिविधियों का लेखा-जोखा रहता है।
15. लेख : अपने आईने में आत्मकथाएँ : निशानाग : हंस : मार्च 2000 पृ. 86
16. “लगता नहीं है दिल मेरा” : कृष्णा अग्निहोत्री : भूमिका से।
17. दृष्टव्य : हंस : मार्च 2000 : पृ. 96 – 97
18. वही : पृ. 97
19. दृष्टव्य :लेख दलित महिला की पहली आत्मकथा “दोहरा अभिशाप” : टेकचंद मेहताब : हंस : जून 1999 : पृ. 84
20. हंस : मार्च : 2000 : पृ. 97

21. हंस : जून 1999 : पृ. 84
22. वही : पृ. 84
23. वही : पृ. 84
24. दृष्टव्य : हंस मार्च 2000 : पृ. 97
25. दृष्टव्य : हंस : प्रभाखेतान की मृत्यु पर राजेन्द्र यादव का कथन
26. दृष्टव्य : हंस : अन्या से अनन्या : प्रभा खेतान : प्रथम मुखपृष्ठ से।
27. डॉ. सुधा अरोड़ा : लेख : क्या पति अपने रकीब को सहानुभूति देंगे? : हंस : अगस्त 2010 : पृ. 130
28. हंस : मई : 2007 : पृ. 20
29. आज-कल सितम्बर – 2004
30. दृष्टव्य :लेख : "एक कहानी यह भी" कटघेर में खंड अहम् : डॉ. रोहिणी अग्रवाल : हंस : मई 2007 : पृ. 84
31. मन्नू भण्डारी की कथायात्रा : संपादक : डॉ. किशोरसिंह राव : "डॉ. मनीषा ठक्कर" "अपराजित लेखकीय जिजीविषा की अदम्य कहानी : एक कहानी यह भी" : पृ. 103
32. एक कहानी यह भी : प्रकाशकीय वकतव्य : प्रथम मुखपृष्ठ से।
33. डॉ. सुधा अरोड़ा : लेख - "क्या पति अपने रकीब को सहानुभूति देंगे?" : हंस – अगशू 2010 : पृ. 129
34. हंस : मार्च – 2010 : पृ. 54
35. हंस : अगस्त – 2010 : पृ. 131
36. दृष्टव्य :कथाजगत की बाग़ी मुस्लिम औरते : प्रकाशकीय वकतव्य से।
37. वही : पृ. 25
38. कस्तुरी कुंडल बसै : मैत्रेयी पुष्पा : प्रकाशकीय वकतव्य से।
39. वही : लेखिका का प्रारंभिक वकतव्य – पृ. 5
40. डॉ. सुधा अरोड़ा : हंस – अगस्त 2010 : पृ. 130-131

41. भारतीय समाज तथा संस्कृति : डॉ. एम.एल. गुप्ता तथा डॉ. डी.डी. शर्मा : भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति विषयक अध्याय : पृ. 356
42. वही : पृ. 360
43. Dr. A.S.Altekar : The Position of Women in Hindu Civilization : Dr. A.S. Altekar PP : 342-343
44. दृष्टव्य : "भारतीय समाज तथा संस्कृति : पृ. 362-364
45. दृष्टव्य :वही : पृ. 365
46. दृष्टव्य :वही : पृ. 366
47. दृष्टव्य :प्रस्तुत परिच्छेद में दी गई तथ्य परख सुचनाओं के लिए : वही : पृ. 366
48. दृष्टव्य :वही : पृ. 367
49. See : Dr. K.M. Panikar : Hindu Society at Cross Roads : P-36
50. See : Indian Survey 1982
51. See : Hindu Society at Cross Roads : P-36

See : Ibid : Page 36

52. दृष्टव्य :आधुनिक हिन्दी उपन्यासो में नारी के विविध रूपो का चित्रण : डॉ. मुहम्मद अज़हर देरीवाला पृ. 56
53. प्रथम दलित कुलपति : हेमाक्षी राव : Vice Chancellor of Hemchandracharya North Gujarat University : Times of India : 17-9-2010 : Page-4
54. दृष्टव्य : शैलेष मटियानी की कहानियों में नारी के विविध रूपों का चित्रण (शोध प्रबंध हिन्दी विभाग म.स. विश्वविद्यालय) : डॉ. श्रीमती सुषमा शर्मा : पृ. 353-357
55. हंस : सितम्बर 2010 : मुखपृष्ठ से।
56. हंस सितम्बर : 2010 : पृ. 5
57. वही : पृ. 5
58. वही : पृ. 5
59. See : Times of India : The thought for Today : 1/10/2010 : P : 14

60. स्वामी अग्निवेश द्वारा उद्धत : ये अन्याय हमें स्वीकार नहीं – लेख : हंस – सितम्बर 2010, पृष्ठ : 87

61. नया सवेरा : डॉ. मीरा रामनिवास : पृ. 39

62. Regular Column "Times view and counter view" : Anil Thakkar : Times of India : Date : 25/9/10 P. 12

तृतीय अध्याय

“कस्तूरी कुण्डल बसै” का विश्लेषणात्मक अध्ययन

तृतीय अध्याय

“कस्तूरी कुण्डल बसै” का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रास्ताविक : पूर्ववर्ती अध्यायों में उपन्यास विषयक विभावना, हिन्दी का औपन्यासिक विकास, आत्मकथा परिभाषा और विभावना आत्मकथा की विकास यात्रा, समकालीन आत्मकथाओं का संक्षिप्त विवरण जैसे कतिपय मुद्दों की पड़ताल हो चुकी है । हमारे शोध प्रबंध का संबंध बहुचर्चित एवम् लब्ध प्रतिष्ठित समकालीन हिन्दी लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं तथा उनके उपन्यासों से सम्बद्ध है । उनकी आत्मकथाओं और उनके उपन्यासों में जो अंतर्संबंध है उन्हें विश्लेषित करना हमारा लक्ष्य है । अतः प्रस्तुत अध्याय में हमने उनकी आत्मकथाओं में से प्रथम आत्मकथा “कस्तूरी कुण्ड़ल बसै” की विस्तृत विवेचना एवम् विश्लेषण का उपक्रम रखा है । आत्मकथा अपने आप में एक मुकम्मल दर्पण है । यह दर्पण व्यक्तिविशेष अर्थात् उसके लेखक या लेखिका का तो होता ही है परंतु साथ ही वह दर्पण उस युग और समाज का भी होता है । इसे एक सुखद संयोग ही समझना चाहिए कि इधर पिछले दो दशकों में साहित्य का यह सर्वाधिक उपेक्षित रूप अपनी तमाम शक्तियों के साथ उभरकर आया है । यह अकारण नहीं है । धर्म, शास्त्र परंपराओं और सामाजिक रूढ़ियों के नाम पर हमारे यहाँ पिछले हजारों वर्षो से स्त्रियों और दलितों का दोहन, शोषण और उत्पीड़न होता रहा है । यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस वर्ग को जितना ज्यादा दबाया या सताया जाता है समय आने पर वह उतनी ही शक्ति और गति के साथ प्रतिक्रियायित होता है । पिछले दो दशकों में सबसे ज्यादा आत्मकथायें हमें इन दों वर्गों से उपलब्ध हुई हैं । यहाँ तक कि इसके कारण यथा स्थितिवादी तबकों में एक बैचेनी और बौखलाहट भी फैल गयी है । अभी तक जब अनेक लेखक स्त्रियों के संदर्भ में लिख रहे थे तब तक इन यथास्थितिवादियों को कोई परेशानी नहीं थी, परंतु अब जब आज भी सुशिक्षित एवम् बहुपठित लेखिकाएँ स्वयं अपना पक्ष रखने के लिए तत्पर हुई हैं तब उक्त वर्ग के लोगों की पेशानियों पर बल पड़ने लगे हैं । यहाँ तक कि वे गाली-गलोच पर भी उतर आए है । ठीक यही बात दलित-लेखकों के संदर्भ में भी लागू होती है । कविता, कहानी, उपन्यास जैसी विधाओं मे तो कल्पना का भी एक आवरण रहता है, जबकि आत्मकथा में (ईमानदार आत्मकथा) तो सब

"जस का तस" धर देना है । यह अनुकूलित वातावरण में समझौतावादी दृष्टिकोण से लिखा गया "सुष्ठु सुष्ठु" प्रकार का साहित्य नहीं है । यहाँ तो सच कहने और लिखने की हिंमत चाहिए, साहस चाहिए । कई जोखिम भरे निर्णय यहाँ लेखक या लेखिका को लेने पड़ते हैं । उसे समाज और परिवार से संघर्ष करना पड़ सकता है और उनसे उच्छेदित होने का हौंसला और साहस भी रखना पड़ता है । कोई कोर्ट कचहरी में भी जा सकता है । मुकदमों से लड़ने की भी पूरी तैयारी रखनी पड़ती है । आत्मकथा लिखना सहज-सरल नहीं है । यह पावक ज्वाला से गुजरना है । ऐसे में मैत्रेयी पुष्पा ने एक नही बल्कि दों आत्मकथाओं को लिखने का अदम्य साहस किया है – "कस्तूरी कुण्ड़ल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" । हमारा लक्ष्य इन आत्मकथाओं के विस्तार में जाने का है, फलतः प्रस्तुत अध्याय को हमने "कस्तूरी कुण्ड़ल बसै" तक सीमित रखा है चतुर्थ अध्याय में हम "गुड़िया भीतर गुड़िया" की चर्चा करेंगे । "कस्तूरी कुंड़ल बसै" में मैत्रेयी पुष्पा की माताजी कस्तूरी के जीवन संघर्ष को रूपायित किया गया है । इस तरह इसे कस्तूरी की दृष्टि से देखा जाय तो यह कस्तूरी की जीवनी है । कस्तूरी के परिवार की द्ररिद्रता, भगोड़े पिता के कारण कस्तूरी की माँ का विधवा सा जीवन, अंग्रेज हाकीमों और जमींदारों का लगान वसूली के लिए जुल्मो-सितम, इनसे निज़ात पाने के लिए कस्तूरी को गाय की तरह बेच देना, पुत्र का कुछेक दिनो का होकर असमय ही कालकवलित हो जाना, मैत्रेयी के जन्म के उपरांत कुछ समय बाद कस्तूरी के पति हीरालाल की मोतीजल्ला की बीमारी से मृत्यु जैसे प्रसंग के प्रारंभ में ही निरूपित हुए हैं । यहाँ से कस्तूरी का संघर्ष शुरु होता है । इस संघर्ष में कस्तूरी के ससुर मेवाराम तथा नंबरदार का सहयोग कस्तूरी को प्राप्त होता है । एक अनपढ़ औरत शिक्षित होती है, सरकारी नौकरी में लगकर न केवल अपने पैरो पर खड़ी होती है बल्कि अनेक समदुखियाँ औरतो को भी आत्म निर्भर करती है । इस प्रकार "कस्तूरी कुंडल बसै" कस्तूरी के संदर्भ में जीवनी (जीवन चरित्र्य - Biography) परंतु प्रारंभिक कुछ पृष्ठों के बाद मैत्रेयी की कथा शुरू हो जाती है । अतः मैत्रेयी के लिए यह आत्मकथा है । प्रस्तुत आत्मकथा में हमें कस्तूरी एवम् मैत्रेयी दोनों का जीवन संघर्ष मिलता हैं । प्रस्तुत आत्मकथा में हमें मैत्रेयी के विवाह और उनके एक पुत्री (नम्रता) होने तक कि कथा उपलब्ध होती है । ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से देखा जाय तो इसकी कथा ब्रिटिश शासन के जोरो जुल्म से होते हुए

स्वाधीनता आंदोलन, स्वाधीनता प्राप्ति और स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ वर्षो तक चलती है। अंग्रेजी शासन से मुक्ति तथा जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के कारण समाज में जो परिवर्तन आए हैं उनको भी लेखिका ने रेखांकित किया है।

कस्तूरी कुण्डल बसै

"कस्तूरी कुण्डल बसै का प्रथम संस्करण सन 2002 में आया था। उसके दूसरे ही वर्ष उसका दूसरा संस्करण भी निकलता है जिससे प्रस्तुत आत्मकथा का महत्व स्वयंमेव बढ़ जाता है। प्रारंभिक संक्षिप्त भूमिका में मैत्रेयी कहती है – "इसे उपन्यास कहूँ या आपबीती?"[1] मैत्रेयीजी के इस प्रश्न से ही प्रस्तुत रचना की शिल्प विधि पर प्रकाश पड़ता है। इससे ज्ञापित होता है कि यह तो आपबीती या आत्मकथा है ही, परंतु उसे उन्होंने लिखा है उपन्यास की तरह जिससे पाठक को उपन्यास पढ़ने का आनंद प्राप्त होता है। जिस प्रकार उपन्यास में प्रतीकों का, बिम्बों का, संकेतों का भी अंलकृत भाषा शैली में प्रयोग होता है, मैत्रेयीजीने इसे उसी तरह ही लिखा है। यदि अपनी तरफ से वह घटस्फोट न करती तो शायद पाठक इसे आत्मकथात्मक प्रकार का उपन्यास ही कहते। मैत्रेयीजी ने इन दोनों आत्मकथाओं के जो शीर्षक रखे हैं और उनके भीतर जो अध्यायों को शीर्षक दिए हैं उनसे भलीभाँति महसूस किया जा सकता है कि मैत्रेयीजी के प्रिय कवि कबीर रहे होंगे। प्रस्तुत आत्मकथा (प्रथम भाग) को उन्होंने 9 अध्यायों में विभक्त किया है जो इस प्रकार है – (1) रे मन जाह जहाँ तोहि भावे (2) उलट पवन कहाँ राखिये (3) जिउ, तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम (4) तुम्ह पिंजरा, मैं सुअना तोरा (5) हम घर साजन आए (6) दुल्हनियाँ गाओ री मंगलचार (7) कैसे नीर भरे पनिहारी? (8) पानी में अगन जरे (9) जो घर जारै आपनो ...। इस प्रकार संपूर्ण आत्मकथा (प्रथम भाग) 332 पृष्ठों में उपन्यस्त् हुई है। यहां हमारा उपक्रम प्रथमतः "कस्तूरी कुंडल बसै" के पाठ को प्रस्तुत करना होंगा। जिसमें हम उनके द्वारा दिए गए तथ्यों और घटनाओं को जस का तस रखने की चेष्टा करेंगे जिससे बाद में कस्तुरवादी दृष्टि से उसका सम्यक् विवेचन और विश्लेषण हो सके।

1) रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे

जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया है "कस्तूरी कुंडल बसै" में प्रारंभ में मैत्रेयीजी की माता "कस्तूरी" के जीवन को चित्रित किया गया है। इस प्रथम प्रकरण में कस्तूरी के बचपन से विवाह तक की कथा का आकलन मिलता है। यहाँ कस्तूरी के माता-पिता की दरिद्रता और तज्जन्य उनकी लाचारदर्जी का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। कस्तूरी अपनी माता को "चाची" कहती थी। उसके पिता का नाम ज्वालाप्रसाद था। उसके दो भाई थे – नंदनलाल और हेतराम। बड़ा भाई नंदनलाल पीलिया का मरीज था। कस्तूरी ब्राह्मण परिवार के उपाध्याय गोत्र की कलंकनुमा बहन थी। कलंकनुमा इसलिए कि वह ब्याह करना नहीं चाहती थी। उसके पीछे भी कस्तूरी के मन में समाया हुआ जो भय था वह तत्कालीन सती प्रथा को लेकर था। कस्तूरी को कहीं से ज्ञात हो जाता है कि उसकी शादी किसी बूढ़े से होनेवाली है। पति यदि बूढ़ा हो तो उसका पहले मरना भी निश्चित है और तत्कालीन समाज में कुलीन जातियों में पति के पश्चात सती होने की प्रथा थी[2] परंतु फिर भी कस्तूरी को विवाह तो करना ही पड़ता है। विवाह के उपरांत कस्तूरी को ज्ञात होता है कि उसे कुछ रूपयों में बेच दिया गया था। कस्तूरी के पति का नाम हीरालाल है और ससुर मेवाराम है जो कि अपाहिज है। विवाह के तुरंत बाद कस्तूरी को एक लड़का होता है जो कि कुछही दिनों का होकर मर जाता है। उसके बाद मैत्रेयी का जन्म होता है। मैत्रेयी नाम हीरालाल द्वारा दिया गया था। गाँववालों के लिए तो उसका नाम "पुष्पा" ही था। हीरालाल ने कहा था – "यह हमारी बेटी, जब इसका जन्म हुआ, ग्रह-नक्षत्रों ने रास्ता दिया। देवता और रिद्धि-सिद्धि साथ हो लिए पंड़ितजीने यही कहा था? और यही हमने देखा, हमारे घर में अन्न और दूध की सारे गाँव में अमन-चेन ! मैत्रेयी आई है हमारे घर।[3] मैत्रेयी के जन्म के बाद हीरालाल मोतीजल्ला की बीमारी में तड़प-तड़पकर मर जाता है।[4] इसी अध्याय में अंग्रेजों के शासन का जिक्र भी हुआ है। गाँव के गरीब किसानों को लगान के लिए अंग्रेजों का जोरो – जुल्म सहन करना पड़ता था। लगान न देने पर कोड़ों से उनके शरीर को छलनी कर दिया जाता था। लगान वसूली के लिए गोरे हाकीमों के आने मात्र से गाँव मे भय का साम्राज्य खड़ा हो जाता था। इस अध्याय में "राधाभाभी का किस्सा" भी वर्णित है। भूख के कारण राधाभाभी एक दिन सास से पहले

एक रोटी खा लेती है । सास उसे खाते देख लेती है गले में कौर अटक जाता है और वह मारे भय के लोटा लेकर खेतो में निकल पड़ती है और रात को घर नहीं आती । दूसरे दिन प्रातः गाँव का धोबी मिलता है जो किसी तरह उसे घर ले आता है । धोबी हाथ जोड़कर कसम खाता है कि राधा उसकी बहन के समान है मगर राधाभाभी पर हरजाई होने का कलंक लग ही जाता है उसकी जबान को गरम चिमटे से दागा जाता है । राधाभाभी महीनों तड़पती रहती है । बोलना बंद हो जाता है और एक दिन उसी पीड़ा में मर जाती है ।[5] इसमें यह भी संकेतिक किया गया है कि गाँव में दुष्चरित्रा स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा होती थी । उनके सिर को मुड़ाकर और मुँह पर कालिख पोतकर गाँव में घुमाया जाता था । यहाँ लेखिकाने अपनी व्यंग्यात्मक शैली में कहा भी है – "जिन घरों में धन नहीं रहता, आबरू और मर्यादा उतनी ही ज्यादा पैदा करनी होती है ।"[6] अध्याय के अंत तक आते-आते समय परिवर्तन की बात भी कही गई है । भारत पराधीनता की बेड़ियों को तोड़कर आज़ाद होता है । अंग्रेजी शासनका जोरों-जुल्म खत्म होता है । ज़मीदारी प्रथा का भी खात्मा हो जाता है । पति के मृत्यु के उपरांत कस्तूरी आगे पढ़ने का फैसला करती है जिसमें गाँव के जमींदार उसका सहयोग करते हैं । वैसे बचपन में रामश्रीने जमीन पर मात्राओं को जोड़कर अक्षर बनाने का उसे सिखाया था । कस्तूरी में पढ़ने की ललक तभी से थी , जिसकी पूर्ति पति की मृत्यु के उपरांत होती है ।

2) उलट पवन कहाँ राखिये

इस अध्याय में चंदना का गीत, मैत्रेयी का शैशव, उसका पढ़ने में ज्यादा ध्यान न लगना, खेरापातिन दादी के साथ तरह-तरह के गीत गाना, एदल्ला-चमार से जुड़ी घटना, कस्तूरी का सरकारी नौकरी में लगना, कस्तूरी के ससुर मेवाराम की मृत्यु, उनकी गाय का बिक जाना, ग्राम सेविका के रूप में कस्तूरी का उभरकर आना, पढ़ाई हेतु मैत्रेयी का अलीगढ़ में रहना, जैसी घटनाओं को आकलित किया गया है ।[7] बुंदेलखण्ड में चंदना का गीत एक लौकिक प्रेमकहानी के रुप में प्रचलित है । ब्याहता चंदना सुनार के लड़के के प्रेम में फंस जाती है । पति दोनों को प्रेम की स्थिति में देख लेता है । चंदना की विदाई करवाके उसका पति जब उसे ले जा रहा था तो बीच जंगल में रोककर उससे पूछता है सच क्या है ? मारे डर के चंदना मुकर जाती है, किन्तु

कुंवरजी (पति) तलवार से उस प्रेम करनेवाली लड़की का सिर धड़ से अलग कर देते है ।[8] मैत्रेयी खेरापातिन दादी से यह गीत सीखती है और जब तब उसकी कड़ियों को गाती रहती है । कस्तूरी की इस संदर्भ में सोच है कि औरत पुरुष के जंजालमें फंसी ही क्यू? उसे समाज की इस अश्लील गाथा से नफरत है । कस्तूरी चाहती है कि मैत्रेयी ध्यान लगाकर पढ़े । परंतु मैत्रेयी का ध्यान पढ़ाई में कम खेरापातिन दादी के गीतों में ज्यादा होता है । एदल्ला चमार का लड़का है परंतु अपने पीछे वह "सिंह" लिखता था । अतः ऊँची जाति के लड़के एदल्ला को मारते पीटते हैं । मैत्रेयी की एदल्ला से दोस्ती थी । वह उसके प्रति सहानुभूति रखती है । आगे की पढ़ाई के लिए कस्तूरी मैत्रेयी को उसकी संयोजिका के घर रखती है । वहाँ पर संयोजिका के घर के जवान लड़के मैत्रेयी को परेशान करते हैं । मैत्रेयी कस्तूरी को जब बताती है तो कस्तूरी एक दूसरे घर में उसके रहने की व्यवस्था करवा देती है । किन्तु वहाँ भी एक बूढ़ा मिल जाता है जो मैत्रेयी को छेड़ता रहता है । इस संदर्भ में कस्तूरी मैत्रेयी से कहती है – "ऐसे भागने से तेरा क्या बनेगा? कोई बुरी नजर न डाले, इस लिए ही मैंने तेरे बाल काट दिए थे । कान, नाक के छेद मूँदने को कहा था, जेवर भी आदमी की बुरी निगाह को न्योता देते है । सामना करना सीखना होगा, ऐसे ही जैसे हम विधवा औरतें किया करती हैं । यह बात गाँठ में बाँध ले कि मर्द की जात से होशियार होकर चलना होता है, भले ही वह साठ साल का बूढ़ा हो ।"[9] गाँव की औरतें ऐसे बूढ़ों का पर्दा करती है । मैत्रेयी इस बात को लेकर चिढ़ती है और वह सोचती है कि ऐसे बूढ़ों का आदर करने का रिवाज़ क्यो है? जवानों से ज्यादा दोष तो बूढ़ों में होता है क्योंकि वे बूढ़ें हैं । नहीं तो यह बूढ़ा संयोजिका के लड़के से भी बदतर क्यों हुआ । इन दिनों में कस्तूरी अलग-अलग गाँवो में ग्रामसेविका के रूप में काम करती है । अतः उसकी ये मजबूरी है कि वह अपनी बेटी को पढ़ाने के लिए दूसरों के घर में रखती है ।

3) जिउ तरसै तुम मिलन को, मन नाहि विसराम :

प्रस्तुत अध्याय में कस्तूरी के जीवन संघर्ष को यथार्थतः निरूपित किया गया है । यहाँ पर कस्तूरी और मैत्रेयी के प्रकृतिगत, अंतर को भी बताया गया है । कस्तूरी की विचारधारा Careerist महिलाओं जैसी हैं । वह चाहती है कि मैत्रेयी पढ़ – लिखकर

अपने पैरों पर खड़ी हो। दूसरी ओर मैत्रेयी का मन वैवाहिक जीवन के लिए ललकता है। ज्यादातर देखने में आता है कि माताएँ जल्द से जल्द अपनी बेटियों के हाथ पीले कर देना चाहती हैं। परंतु यहाँ माँ-बेटी के संबधो में हमें एक विपरीत स्थिति के दर्शन होते हैं। कस्तूरी नहीं चाहती कि मैत्रेयी विवाह के बंधनो में बँधे। अतः मैत्रेयी जब दसवीं पास कर लेती है तो कस्तूरी 20 रू. माहवार में महिला विकास विभाग में उसकी नौकरी लगवा देती है।[10] और अगर उन दिनों में उसके मामा न आते तो मैत्रेयी को विकास खण्ड़ मोंठ की ग्रामलक्ष्मी का पुरस्कार भी मिल जाता। झाँसी रिज़न के डायरेक्टर ने भी कहा कि मैत्रेयी बी.ए. पास होते ही भगिनी मंडल झाँसी में अच्छे पद पर नियुक्त हो सकती है।[11] अतःकस्तूरी मैत्रेयी को आगे पढ़ाती है। मोठ कोलेज का एक कटु अनुभव भी यहाँ वर्णीत है। पिता की उम्रका मोंठ कोलेज का प्रिंसिपल मैत्रेयी को अपनी बाँहो में कस लेता है और उसे चुंबन देते हुए उसकी मनुहार करता है। ब्राह्मण की बेटी मैत्रेयी यादवों के घर का पानी पीनेवाली अख्क्ड़ और मजबूत लड़की प्रिंसिपल का मुँह बकोट लेती है। उसके शरीर में अपने दाँत गड़ा लेती है , इस वारदात का चश्मदीद गवाह कालेज का चपरासी भी था। परंतु वह तो प्रिंसिपल का मातहत था। बात मैत्रेयी के आमरण अनसन पर बैठने तक आ गई परतुं प्रिंसिपल की पहुँच बहुत ज्यादा थी। अतः मैत्रेयी रेस्टीकेशन के कगार पर आ गई और ऊपर से लांछन लगा – "गुण्ड़ों के साथ रहनेवाली लडकी गुण्डी"[12] कस्तूरी मैत्रेयी को आदेश देती कि वह प्रिंसिपल की माफी माँग ले। कस्तूरी प्रिंसिपल महोदय के आगे तीरवाचा भरती है कि आगे से ऐसा नहीं होगा। तब मैत्रेयी को बड़ा बुरा लगता है। वह कहती है – "यह स्कूल किसी प्रिंसिपल की बपौती नहीं, मेनेजमेन्ट कमिटी, सुप्रीम कोर्ट नही, अगर यह स्कूल व्यभिचारियों और अन्यायी शिक्षकों का अड्डा है तो यह मेरे योग्य स्कूल नहीं, थूँ है यहाँ की शिक्षा पर"।[13] यहाँ कस्तूरी की carrier women वाली सोच उभरकर आती है। वह सोचती है कि मैत्रेयी किसी भी तरह पढ़-लिखकर आगे बढ़े। यहाँ पर लेखिका ने एक तथ्यकी और संकेत किया है – "कांमाध आदमी जब अपने मकसद में मात खाता है तो व स्त्री के लिए सबसे ज्यादा खूंखार हो जाता है।"[14] प्रस्तुत अध्याय में कस्तूरी और गौरा के समलैंगिक संबंधों का भी सांकेतिक वर्णन है। समाज की कुरीतियों के प्रति कस्तूरी का आक्रोश भी यहाॅ उपलब्ध होता है।

मैत्रेयी के विवाह से कस्तूरी जब उसके विवाह के बारे में सोचती है तो दहेज का मामला सामने आता है और दहेज देकर विवाह करने के पक्ष में तो स्वयं मैत्रेयी भी नहीं है। पढ़ाई के सिलसिलें में मैत्रेयी को जो इधर-उधर रहना पड़ता है उसके बुरे अनुभवों का भी यहाँ वर्णन है। कस्तूरी के चरित्र के अंतर्विरोध भी यहाँ सामने आता है। इस अध्याय में मैत्रेयी और नंदकिशोर के प्रेम और आकर्षण का प्रसंग भी आता है। अध्याय में जहाँ एक तरफ आज़ादी के बाद ग्रामीण जीवन में जो बदलाव आए हैं, उसका वर्णन है वहाँ मैत्रेयी की हिन्दी साहित्य में अभिरूचि को भी व्यंजित किया गया है। अध्याय में अनेक स्थानों पर प्रसाद, नीरज आदि की काव्यपंकितयों को भी उदधृत किया गया है।

4) तुम पिजरा मैं सुअना तोरा

पिछले अध्यायों में हमने देखा कि विवाह को लेकर माँ कस्तूरी और बेटी-मैत्रेयी में काफी मतभेद है। कस्तूरी चाहती है कि मैत्रेयी पढ़े-लिखे आगे बढ़े, इस नयी रोशनी का फायदा उठाए और फिर उसका विवाह कही होना हो तो हो। कस्तूरी विवाह से ज्यादा महत्व (करियर) को देती है। कस्तूरी को समाज से जो कटु अनुभव हुए हैं, उसके कारण उसके भीतर की कोमलता का कूप मानों सूख सा गया है। दूसरी ओर मैत्रेयी में किशोरावस्था या युवावस्था में लड़कियोंको लड़को के लिए जो आकर्षण होता है वह आकर्षण है। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टया हम कह सकते हैं कि मैत्रेयी का व्यवहार एक नोर्मल सहज लड़की जैसा है। उसके भीतर स्त्रीत्व की एक ललक है। मैत्रेयी के मनोभावों को देखकर कस्तूरी उसके लिए अच्छे लड़के भी ढूँढ़ती है। परंतु बिना दान-दहेज या केसर के मैत्रेयी का हाथ थामने कोई सामने आगे नहीं आता और कस्तूरी को यह मंजूर नहीं। वह अपनी लड़की कुएँ में धकेल देना नहीं चाहती। प्रस्तुत अध्याय में हम देखते हैं कि कस्तूरी मैत्रेयी को लेकर बहुत परेशान है। कस्तूरी को यह पसंद नही है कि उसकी बेटी का यह मकसद हो कि अपना ब्याह कराकर बच्चें पैदा करें और उन्हे माँ से नानी बना दें।[15] कस्तूरी के सामने गौरा का भी उदाहरण है जिसने एक पुरुष के मरने पर दूसरे पुरुष के कंधे पर सिर टिकाना मंजूर नहीं किया।[16] कस्तूरी सोचती है कि उसके जमाने में यह ऊजाला होता तो वह अब तक सूरज के आस-पास होती। उसे मैत्रेयी की यह बात पसंद नहीं कि वह रोशनी को घूंघट की परतों से ढ़कना चाहती है। मैत्रेयी को लेकर वह उधेडबुन में थी कि अचानक उसका ध्यान कथा सरितसागर की एक कहानी

की ओर जाता है । जिसमें राजा अपनी प्रिय, प्रेयसी, पत्नी की मृत्यु के उपरांत दूसरा ब्याह नहीं करना चाहता । तब उसकी प्रेयसी पत्नी सपने में आकर कहती है कि उसकी मृत्यु के गम में उसे निष्क्रिय नहीं होना चाहिए । उसे जंगल में जाना चाहिए । जंगल में उसे शेर की सवारी गाठनेवाला बालक मिलेगा । जिसे वह अपना वारिस बना सकता है ।[17] इस कहानी के कारण कस्तूरी का ध्यान विद्या बीवी की ओर जाता है जो रिश्ते में उसकी ननद होती है । तीन – तीन बेटियों को देकर पति स्वर्ग सिधार गया, पर विद्या बीबी जिम्मेदारी के बोझ को उठाती है और तीनों बेटियों का विवाह करा देती है । दो भानिजों के ब्याह के बाद कस्तूरी तीसरी के ब्याह में नहीं गयी थीं । भात न्यौतने आई बीबी से कहना न चूकी कि 14 वर्ष की लड़की के लिए 44 का आदमी ढूँढ़ लिया तो बड़ा मोर मार लिया । तब विद्या बीबी ने कहा था – "भाभी तेरी जैसी अक्ल हम में कहाँ से आई, बस अपना गुजारा कर रहे हैं । लड़की कुँआरी बिठाए रहें तो हाल मुश्किल जानती है तू? उमर का बड़ा है तो खेती-पाती में भी बडा़ है । साढ़े-तीन सो बीघो का मौरुसीदार है । कोई गोद का लल्लू ढूँढ़ लेती तो लड़की को क्या मिल जाता? रागरंग और दिलजोइयों से जिन्दगी नहीं चलती ।"[18]

पर विद्या बीबी कस्तूरी के प्रति अपने मन में कोई मलाल नहीं रखती और अंततः कस्तूरी की समस्या उसके द्वारा ही सुलझती है । विद्या बीबी के मझले दामाद ने अपनी आठवीं पास बहन के लिए एक डॉक्टर लड़का ढूँढ़ा था । बात लगभग तय थी पर पढ़ाई को लेकर टूट गई । डॉक्टर को पढ़ी-लिखी शिक्षित लड़की चाहिए थी । अतः विद्या बीबी को अपनी भाभी कस्तूरी का ध्यान आता है । और वह कस्तूरी जब हसनगढ़ जाकर विद्या बीबी को मिलती है, तब अति उत्साह में विद्या बीबी से कहती है – "लो तुम न आती तो हम आ ही रहे थे । हमने सुनी है कि "कनास बापों" ने तुम्हें बड़ा सताया है । धुआँकारों ने ऐलकारनी का हौप ना माना । राँड लुगाई की तरह फजिहात पर उतर आए । लोभी लालची रुपया पइसा तो माँग ही रहे है, इसकूटर के संग छोरी के भईया-बाप माँग रहें है । बताओ, लुगाई हाथ-पाँव से मेहनत करे और भगवान से लड़कर खसम-पूत भी लाए, तब से ब्याह शादी के लिए राजी होंगे । रंधे की मरदों की दुनिया ! आज मेरा हीरा भइया होता तो.....”[19]

कस्तूरी भले ही विद्या बीबी को अनपढ़, गँवार समझती हो परंतु विद्या बीबी अपनी महिला मंगल में अधिकारी के पद पर काम करती हुई भाभी को लेकर गौरव का अनुभव करती है । यथा – "सो तो तेरे नाम की इलाके में "हई" पड़ गई है । कस्तूरी नाम सुनते ही बंजमारे मर्दो का हौंसला हिल जाता है । मेरी छाती चौड़ी हो जाती है, भोजाई का नाम सन्नाम हो रहा है"[20] अतः दूसरे दिन भाभी-नंनद अलीगढ़ चल देते हैं । वहाँ पहुँचकर कस्तूरी को ज्ञात होता है कि डॉक्टर सिनेमा देखने गये हैं । इस बात को लेकर फिर वह विदक जाती है क्योंकि कस्तूरी को सिनेमा देखनेवाले लोग अच्छे नहीं लगते थे । उसकी सोच थी कि सिनेमा चरित्र का नाश कर देती है ।[21]

यहाँ भी विद्या बीबी की व्यवहार बुद्धि काम आती है । वह कस्तूरी को समझाती है – "अरी सिलैमा क्या रंडी का कोठा है? हमारे तीनों दामाद सिलेमा के सोखीन हैं तो क्या उन्हें बदचलन मान लूँ? बावरी न कुछ बात पर लड़का खारीज कर रही है ! फिर तो तैने कर लिया छोरी का ब्याह ।"[22] दूसरे दिन जब दोनों डॉक्टर से मिलती है तो डोक्टर के व्यवहार, विनम्रता के सामने कस्तूरी गद्‌गद् हो उठती है । अततः उसे "शेर की सवारी गाँठने वाला युवक"मिल ही जाता है । कस्तूरी को डॉक्टर की ये बात अच्छी लगती हैं कि वह बिना लाग लपेट के पिता की बात आने पर कह देता है कि, उनके पास जाने की जरूरत नहीं है शादी मुझे करनी है । मेरे मुँह से निकला तो हुआ । डॉक्टर की इस बात पर कस्तूरी को "शाबाश" कहने का मन हुआ । अध्याय में यह भी आया है कि डॉक्टर से पहले अढू के नगला वाले इंजीनियर अयोध्याप्रसाद से जो बात चल रही थी । वह भी कुछ नाननुच के साथ तैयारी बताते है । परंतु कस्तूरी के दिलो दिमाग पर तो डॉक्टर छाया हुआ है । अतः अंततोगत्वा उन्हीं से सगाई की बात तय होती है । अढू के नगलावालों के कारण पंड़ितजीने कई मीन-मेख निकाले थे । गुण दोष मिलाए नही मिले । नाड़ियों का मिलान किया, नहीं हुआ । पर कस्तूरी तो निराली है । वह कहती है कि उसे पत्रा पंचाग पर रत्तीभर विश्वास नहीं है । सिंकुरा गाँव के नंबरदार भी कस्तूरी के सूर में सूर मिलाते है - करमगति टारे नाहि टरी । मुनि वसिष्ठ से पंड़ित ज्ञानी सोधि के लगन धरी / सीता हरण दसिरथ को, वन में विपत्ति परी ।"[23]

<u>5) हम घर साजन आए</u>

यह समूचा अध्याय पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है। पूर्ववर्ती अध्याय में र्निदिष्ट किया गया है कि कस्तूरीजी को अपनी बेटी मैत्रेयी के लिए ऐसा पढ़ा-लिखा शिक्षित समझदार दामाद मिल गया है जो केवल लड़की की शिक्षा को देखकर बिना दान-दहेज के शादी करने के लिए उद्यत है। पिछले अध्याय के अंत में सिर्कुरा गाँव में मैत्रेयी के लिए दो – दो बारातों के आने का जिक्र हुआ है।[24] डॉक्टर के साथ तय होने के पश्चात अढ़ू के नगलावाले इंजीनियर अयोध्या प्रसाद भी बिना दान-दहेज विवाह के लिए तैयार हो जाते है। परंतु अंततः मैत्रेयी का विवाह अलीगढ़ के डॉक्टर साहब से ही होता है। अतः हम देख सकते है कि प्रस्तुत अध्याय की तमाम घटनाएँ पूर्वदीप्ति के माध्यम से विवाह पूर्व की है। वैसे आत्मकथा में घटनाओं तारीखों की क्रमिक्रता का ध्यान रखा जाता है परंतु यहाँ मैत्रेयीजी ने आत्मकथा और उपन्यास के शिल्प को मिला दिया है।

अध्याय का प्रारंभ डॉक्टर के तार से होता है कि वह झाँसी आ रहा है। मैत्रेयी ने अपने पत्र में अपने निवास स्थान का जो वर्णन किया था उसके कारण डॉकटर वहाँ आने की इच्छा जाहिर करते हैं। तार के आते ही गाँव में आंतक सा छा जाता है। क्योंकि गाँव में तार हंमेशा दुःखद घटनाओं के ही आते रहते हैं। कोई शुभ या अच्छी घटना का तार आए उसकी तो गाँववालों को कल्पना तक नहीं होती। यूँ देखा जाए तो यह खुशी का तार है। परंतु मैत्रेयी अब सकपका जाती है कि ऐसे स्थान पर डॉक्टर को कहाँ ठहराया जाएगा। मैत्रेयी जिस बाई के यहाँ रहती थी वह स्थान बड़ा गंदा था। आस-पास काछी, मेहतर आदि निम्न वर्ग के लोग रहते थे और उसके कमरे में पाखाने और गुसल खाना की व्यवस्था भी नहीं थी। इससे पूर्व मैत्रेयी जहाँ रहती थी, वह स्थान जदुनाथ के बाड़ें में था और उसमें सभी प्रकार की सुविधाएँ भी थी। लोग भी उच्च-मध्य वर्ग के थे, परंतु मैत्रेयी ने "जदुनाथ के बाड़े की औरतों" को लेकर जो कविता लिखी वह "दैनिक जागृति" के रविवारीय संस्करण में प्रकाशित हुई थी। उसमें मैत्रेयी ने बाड़े की औरतों के दुर्गुणों का पर्दाफाश किया था। कविता के प्रकाशन से जहाँ मैत्रेयी को प्रसन्नता हुई वहाँ उसके बाद मचे हुए बबाल के कारण उसे काफी दुःख भी हुआ। उसे अपनी इस काव्य-लेखन के कारण ही जदुनाथ के बाड़े को छोड़ना पड़ा।[25]

मैत्रेयी जिस स्थान पर रहती है उसका वर्णन प्रस्तुत अध्याय में है और उसके साथ ही उससे जुड़ी हुई कई कहानियाँ है । रधुवीरकाछी उर्फ पोलेबाबा, उसकी बेटी नन्हीं, पोलेबाबा की पत्नी की तपेदिक की बीमारी जिसके इलाज में उन्हें अपनी जमींन भी बेच देनी पडी़ फिर भी पत्नी को बचा नहीं पाये । पत्नी के बाद नन्हीं भी तपेदिक की शिकार हुई और उसीमें परलोक सिधार गई । इस घटना के कारण पोलेबाबा विक्षिप्त से हो गए । यहाँ पर लेखिका ने निम्न तबकें के लोगों की गरीबी और इस गरीबी से जुड़े व्यसनों की भी बात की है कि गरीबी और व्यसन का चोली दामन का साथ होता है ।[26]

डॉक्टर के लिए खाना बनाने की समस्या के संदर्भ में सल्लो का किस्सा आता है । सल्लो का आदमी रामशरण यादव बस में क्लीनरी करता है, पर नंबरी छटा हुआ और उचक्का व्यक्ति है । कुछ दिन पहले उसने गाँव की एक लड़की को बहेला-फुसलाकर मेला दिखलाने ले जाता है । रात को लड़की घर नहीं पहुँची तो गाँव में बात आग की तरह फैल जाती है । दूसरे दिन जब वह घर पहुँचती है तब उसके भाई और बाप उसको दो टुकड़े में काट देते है । यहाँ लेखिका ने बुंदेलखण्ड़ के गाँव में खाप-पंचायतों की बर्बता का भी जिक्र किया है ।[27] इस घटना के बाद रामसरण का भी दिमाग सनक जाता है । और जब तब चोरी उचेक्की और लफंगाइगीरी का काम करता है । तब आए दिन पुलिस उसे पकड़ कर ले जाती है । सल्लो का काम है किसी तरह उसे छुड़ा लाना । एक बार तो वह अपनी हँसुली बेचकर उसे छुड़ा लाती है । सल्लो को उसके आदमी के दूसरी औरतों से जो संबंध है उससे कोई लेना-देना नहीं है वह कहती है – "राजा की रानी एक, बांदी हजार"[28] यहाँ मैत्रेयी ने यह भी सांकेतिक किया है कि ग्रामीण, संघर्षशील महिलाएँ अपने पति के ऐसे संबंधो को लेकर निर्दन्द्र सी होती है ।

प्रस्तुत अध्याय में राजकुमारीराय, अमरजीत कौर, निशिखरे आदि मैत्रेयी के साथ कोलेज में पढ़नेवाली लड़कियों की कहानी भी है । इसी अध्याय में नंदकिशोर से मैत्रेयी की प्रथम मुलाकात का प्रसंग भी है । कोलेज की अन्य लड़कियाँ मैत्रेयी को गँवई (गाँव) समझकर उसकी उपेक्षा करती थीं, उसके कारण एक बार मैत्रेयी के कपड़े भी खराब होते है तब अमरजीत कौर दूसरे कपड़े देकर स्त्रीत्व की लाज बचाती है ।[29] राजकुमारी

राय के पिता फ्रीडम फाइटर रहे है । वह भी अब ताँगें में न जाकर मैत्रेयी के साथ पैदल जाना पसंद करती है । शोभा मांजरेकर के पिता कोंग्रेसी नेता थे और विधानसभा में प्रमुख पद पर बिराजमान थे । इसी अध्याय में मैत्रेयी के मित्र मदनमानव का भी उल्लेख है । मदनमानव एक छात्र नेता है । और उसके साथ मैत्रेयी कोलेज चुनाव के प्रचार में भी भाग लेती है । इसके कारण भी कुछ लोग मैत्रेयी की निंदा करते है । मैत्रेयी के कोलेज के लड़के-लड़कियाँ अंग्रेजी शिक्षक से तो आंतकित रहते है परंतु हिंदी शिक्षक का मखौल उड़ाने से नहीं चूकते ।[30]

ऊपर जिस राजकुमारीराय का उल्लेख है उसके पिता डी.ओ. है । वे लोग एक किराये के मकान में रहते है ऐन परीक्षा के वक्त मकान मालिक मकान खाली करवाने के तकादे करता है तब मैत्रेयी राजकुमारी के लिए कोर्ट के दरवाजे खट-खटाती है परंतु अपनी कुछ अध्यक्षता के कारण वे कोर्ट में हार जाते है ।[31] इस प्रसंग की चर्चा इस संदर्भ में आती है कि राजकुमारी के लिए लड़नेवाली मैत्रेयी जदुनाथ के बाड़ेवालों के खिलाफ भी लड़ सकती थी परंतु माताजी (कस्तूरी) का विचार कर के वह मौन साध लेती है । यहाँ पर लेखिकाने यह भी स्पष्ट किया है कि उच्च शिक्षा का अर्थ केवल पढ़ाई मात्र नहीं होता, उससे व्यक्ति में स्वतंत्ररुप से सोचने समझने की शक्ति का भी विकास होना चाहिए ।[32]

अध्याय में आलमआरा का प्रसंग भी है । बुर्का छोड़ने पर आलमआरा को बेइज्जत किया जाता है, इतना ही नहीं उसे कोलेज छोड़कर घर पर बैठना पड़ता है । इन सबके पीछे उन लोगों का भी हाथ है जो अपने को शिक्षित समझते हैं । इस प्रकार मैत्रेयी ने शिक्षित लोगों के भी दोगलेपन को भी आड़े हाथों लिया है ।[33]

निशिखरे की आत्महत्या का प्रसंग भी इस अध्याय की एक मुख्य घटना है । निशिखरे का विवाह जबरदस्ती एक दुहाजू व्यक्ति के साथ तय कर दिया जाता है । निशिखरे इस विवाह का विरोध करती है, परंतु घर परिवारवालों के आगे उसकी एक नहीं चलती और वह आत्महत्या कर लेती है ।[34]

प्रस्तुत अध्याय में यह भी बताया है कि मैत्रेयी का जन्म उल्टा हुआ था । ऐसी मान्यता है कि उल्टे जन्मने वाले बच्चे कुछ हटकर होते हैं । उनमें सघर्षशीलता का माद्दा पाया जाता है । मैत्रेयी में भी ये गुण हमें दिखते हैं । वह छात्रसंध के चुनाव में योगदान देती है और फलतः संस्कृत असोशिएशन की सेक्रेटरी भी बनती है ।[35] यथास्थितिवादी लोगोंकी सोच यह है कि लड़कियों को राजनीति से दूर रहना चाहिए, परंतु "वरूण के बेटे" (नागार्जुन) की नायिका की भाँति मैत्रेयी भी मानती है कि लड़कियों को या औरतों को राजनीति से परहेज नहीं करना चाहिए ।

मैत्रेयी चीमनसिंह यादव के यहाँ पली-बड़ी है, उनके बेटे युवराज और रतनसिंह को मैत्रेयी अपने भाई मानती है और वह भी उनको "दीदी" का दर्जा देते हैं । इनके संदर्भ में बाल-विवाह का प्रसंग भी आया है । यहाँ एक दिलचस्प तथ्य की ओर मैत्रेयी ने इशारा किया है विवाह के समय पहनाये जाने वाले "पाग" के रंग से भी जाति-भेद को चिन्हित किया जाता है । जैसे – "पीला बागा अपने यहाँ (यादवों में) पहना जाता है । लाल पहनोंगे तो लोग कहेंगे, चमार दुल्हा आ रहा है । सफेद पहेनोगे तो कहेंगें भैतर बसोर का दुल्हा आ रहा है । पीला पहनों, अहीरों के लला लगो ।"[36]

इस अध्याय की अंत्यंत महत्वपूर्ण और त्रासद घटना है शकुन की कथा-व्यथा । शकुन मैत्रेयी के गाँव खिल्ली के पुजारी की लड़की है । उसका पति प्रभुदयाल एक दुर्घटना में लंगड़ा हो जाता है । प्रभुदयाल के मालिक बसवाले लोग हैं । अतः मालिक लोग तथा उनसे जुड़े ड्राईवर, कडंक्टर आदि शकुन के यहाँ लड़कियाँ लेकर आते है । प्रभुदयाल का खर्चा वहाँ से चलता है । इस प्रकार "जिस्मफरोशी" की चर्चा भी आती है । वस्तुतः इन लड़कियों के साथ वास्तव में बलात्कार होते हैं । कई बार एक स्त्री को तीन-चार पुरूष झेलने पड़ते हैं तब शकुन के कमरे से चीखों की आवाज भी सुनाई पड़ती है । लेखिकाने संकेतिक किया है कि शकुन को भी शायद जिस्म फरोशी से गुजरना पड़ा हो । जिस्मफरोशी का एक काला चेहरा इस रूप में भी उभरकर आया है कि कुछ लोग तरक्की पाने के लिए अपनी पत्नी तक का भी इस्तेमाल करते हैं ।[37] शकुन का यह प्रसंग मैत्रेयी डॉक्टर के निवास के लिए जो व्यवस्था तलासती है उस संदर्भ में आया है । शकुन

पहले तो मैत्रेयी को कमरा देने के लिए कह रही थी परंतु बाद में उसे अपनी बात से मुकरना पड़ता है। क्योंकि उस दिन मालिक लोग आने वाले थे। शकुन इसे बर्दाश्त नहीं कर पाती और भाग जाती है। शकुन को भगाने का आरोप भी मैत्रेयी पर आता है। इस घटना की एक विड़म्बनापूर्ण पक्ष यह भी है कि शकुन के भाग जाने से उसका पति प्रभुदयाल स्वयं को असुरक्षित समझता हैं कि इसको लेकर मालिक लोग पुलिस की सहायता से उसकी खूब पिटाई करवायेंगे। अतः मैत्रेयी प्रभुदयाल को खिल्ली पहुँचने में भी सहायता करती है और डॉक्टर को टेलिग्राम दे देती है कि वह अपने आने के कार्यक्रम को स्थगित कर दें।

इस प्रकार समूचा अध्याय पूर्वदीप्ति में है और उसमें डॉक्टर के लिए समुचित निवास तलाशने के संदर्भ में बहुत सी प्रासंगिक कथायें आई हैं। जिनमें निशिखरे, सल्लो, शकुन और पोले बाबा की त्रासदी प्रमुख है।

6) <u>दुल्हनियाँ गाओ री मंगलाचार</u>

प्रस्तुत अध्याय पृष्ठ 208 से लेकर 241 तक में 33 पृष्ठों में उपन्यस्त् हुआ है। इसमें मैत्रेयी और डॉक्टर के विवाह के प्रसंग को इस तरह यथार्थ शैली में उकेरा गया है कि ग्रामीण संस्कृति के विभिन्न स्तर उभरकर आए हैं। ग्रामीण संस्कृति में सामुहिकता की भावना, जन्म, मरण, विवाह जैसे प्रसंगों को वैयक्तिक या पारिवारिक न मानते हुए उसको समूचे गाँव का मानने की स्पष्ट भावना - गाँव की इज्जत आबरू के लिए लड़ने – मरने का माद्दा, लोगों के विश्वास, अंधविश्वास, मान्यताएँ कई सकारात्मक चीजों के साथ कुछ ऋणात्मक चीजों का भी समावेश जैसे जातिवाद की कट्टरता, जातिवाद को ही धर्म समझना, छूत-अछूत की भावना, रीति-रीवाज और रुढ़ियों के पालन में कट्टरता का निर्वाह यहाँ यथार्थतः श्रृतिगोचर हुआ है। "श्रृतिगोचर" शब्द का प्रयोग मैने साभिप्राय किया है क्योंकि मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों, कहानियों और आत्मकथाओं में हम घटनाओं को देखते ही नहीं है, बल्कि उनको सुनते भी हैं।

कहते हैं मैत्रेयी का जन्म ऊल्टा हुआ था। और ऐसे व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की बाधाएँ आती है। मैत्रेयी के विवाह में भी एक के बाद एक ऐसी अड़चनें आती हैं

कि वह पुरानी कहावत स्मृति में क्रोंध जाती है – "कानी के ब्याह में सौ जोखो की बात"। यहाँ मैत्रेयी की तुलना कानी लड़की से करने की हमारी मनसा कतई नही है, परतुं कस्तूरी और मैत्रेयी दोनों अलग ऊर्जा की बनी हुई है। कस्तूरी महिला मंगल योजना में अधिकारी है और रीतिरिवाजों और रूढियों को नकारती है। दूसरी तरफ मैत्रेयी में माँ जैसी कट्टरता तो नहीं है परंतु वह भी नारी अस्मिता को लेकर सचेत है। लड़की और गायवाली कहावत को दोनो माँ-बेटी नकारती हैं, वहाँ विवाह में अड़चनें ना आवे तो ही आश्चर्य हो सकता है।

भगवानदास बनिया चाहता है कि कस्तूरी यह ब्याह शहर से करे क्योंकि उसमें उसकी बनिया बुद्धि अपना फायदा देखती है। परंतु कस्तूरी टस से मस नहीं होती। वह शादी अपने गाँव सिर्कुरा से ही करना चाहती है। मैत्रेयी के विवाह में पहली बाधा तो प्रकृति की ओर से ही आती है। दिसम्बर के महीने में बेमौसम बारिश सबको चिंतित कर देती है। पक्की सड़क से गाँव तक आनेवाली कच्ची सड़क से बारात कैसे आएगी यह भी एक समस्या है। परंतु गाँव के लोग मिलकर सड़क को दुरूस्त करने के काम में लग जाते हैं जिसमें यह बारिश एक बाधा उपस्थित करती है। अंधविश्वासों में नहीं माननेवाली कस्तूरी भी एक बार तो सोचती है कि कही मैत्रेयीने कढ़ईया तो नहीं चाटी होगी?[38]

उसके बाद दूसरी बाधा आती है विद्या बुआ और नारायणीमामी को लेकर। कस्तूरी के भाई – भाभी ने भात में कोताही की है। मैत्रेयी की नानी मरते समय पैसे दे गयी थी फिर भी इन लोगो ने भात पहनाने में अपनी नीचता का परिचय दिया था। विद्या बुआ ने ही मैत्रेयी के लिए डॉक्टर वर ढूँढा था। अतः उनका पउवा भारी था। इस वाक्‌युद्ध में कलावती चाची और लौंगसीरी भी जुड़ती है। कस्तूरी का भतीजा देवकिशोर कलावतीचाची के लिए कुछ जातिसूचक अपमानवाची शब्द का प्रयोग करता है, जिसे लेकर गाँव के लोग विशेषतः जाट मरने मारने पर उतारू हो आते हैं। मौके की नज़ाकत को देखते हुए देवकिशोर को छिपा दिया जाता है और नंबरदार सबको समझाने की चेष्टा करते हैं।[39]

तीसरी अड़चन कस्तूरी के व्यवहार के कारण आती है । विवाह में आई हुई हथलगनी औरतें और रिश्तेदारिनें कामे में तो हाथ बटाती नहीं हैं । अतः कस्तूरी हबीबन को बर्तन माँजने का काम सौंपती है, जिसके कारण गाँव का जातिवादी साँप फन उठाकर खड़ा हो जाता है । ब्राह्मण और बनियां स्त्रियों को अपना धर्म जोखिम में पड़ता नजर आता है । कस्तूरी जातिवादी ऊँचनीच में मानती नहीं है । कस्तूरी स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी वह जातिवादी ढ़कोस लों को नकारती है इसे लेकर पूर्वदीप्ति (Flash back) द्वारा मथुरा ट्रेनिंग सेंटर के प्रसंग को लेखिका ने चित्रित किया है, जिसमें कस्तूरी कमेटी के सदस्यों के आगे भी झुकती नहीं है और अपनी सही बात को मनवाती है ।[40] परंतु जो कस्तूरी अपनी सिद्धांतवादिता के कारण बड़े-बड़े हाकिमों को झुकाती है वह यहाँ इन गँवई, अनपढ़, मूढ़मती लोगों के आगे बकरी बन जाती है । ऐसा कहा जाता है कि जिसे कोई न पहुँचे उसका पेट (अर्थात् संतान) पहुँचता है । यहाँ कहीं नहीं झुकनेवाली कस्तूरी को अपनी बेटी मैत्रेयी के विवाह के लिए अनचाहे समझौते करने पड़ते है ।

नंबरदार की तरह चीमनसिंह यादव भी एक उदारमना और उदात्तचेता व्यक्ति है । मैत्रेयी चीमनसिंह के यहाँ बेटी की तरह रही है । चीमनसिंह के बेटे युवराज और रतनसिंह मैत्रेयी को अपनी "दीदी" ही मानते हैं । इस नाते चीमनसिंह यादव सबको जो भव्य तरीके से भात पहनाते हैं उससे सब आश्चर्यचकित रह जाते है ।[41]

चौथी अड़चन भी स्वयं कस्तूरी के द्वारा आती है । यह तो सभी जानते है कि डॉक्टर ने बिना देहज के मैत्रेयी का रिश्ता स्वीकार किया था । परंतु बारात में आए वरपक्ष के संबधियों को मिलनी में कुछ न कुछ देने की परम्परा है । मैत्रेयी के लिए गाँववालों के लिए या चीमनसिंह यादव के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं थी । परंतु सिद्धांतवादी कस्तूरी उसमें अड़ंगा लगाती है कि दहेज के रुप में वह एक राती पाई भी न देगी । सभी कस्तूरी को समझाने की चेष्टा करते हैं परंतु सभी इसमें असफल रहते है । अबतक दबती आयी कस्तूरी के आंतरिक भाव मानों उछाल मारते है । अंततः विवाह के पहले डॉक्टर आमने सामने बैठते है । गाँववालों के लिए तो यह दृश्य भी बड़ा अजूबा होता है क्योंकि विवाह संस्कारों के पहले वर वधू मिलते नहीं है ।[42] मैत्रेयी छोटा सा पत्र

लिखकर डॉक्टर के हाथ में थमा देती है। फलतः यह समस्या भी सुलझ जाती है। और सिर्कुरा गाँव में ये एक अनोखा और अनोता ब्याह संपन्न होता है।

अध्याय में खेरापतिनदादी, कलावती, लौंग सिंरीबीबी, विद्या बुआ आदि के गाली गीतों का भी बड़ा मनोरंजक वर्णन हैं। ये गालीगीत कहीं-कहीं अश्लीलता की सीमा कों भी पार करनेवाले होते हैं। कलावती शहरातियाँ के आग्रह पर "ललमनियाँ" नाच भी दिखाती है।[43] इन गाली गीतों को कहीं-कहीं खेल के गीत भी कहते है। गुजरातमें इनको "फटाणा" कहते हैं।

7) कैसे नीर भरे पनिहारी

प्रस्तुत अध्याय पृष्ठ 242 से लेकर पृष्ठ 260 (18 कुल पृष्ठों में) उपन्यस्त् हुआ है। अनेक बाधाओं और अड़चनों के बावजूद मैत्रेयी का विवाह होता है। प्रस्तुत अध्याय में मैत्रेयी के ससुराल में बिताये कुछ दिनों का वर्णन है। बिदा के समय कस्तूरी मैत्रेयी से जो कुछ कहती है वह बहुत कुछ सूचक है। पारंपारिक और रूढ़ीगत मान्यताओं में बँधी हुयी माँए अपनी बेटियों को जो शिक्षावचन देती हैं ऐसा यहाँ कुछ नहीं है। यथा – "लाली, ब्याह हो गया, पर तु नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना, पाँव, फाँव मत पूजना, किसी की भी सुन ले कि "रोटी छुआई की रस्म, रस्म नहीं, तुझे चूल्हे-चौके से बाँधने का महूरत निकलेगा। साफ मना कर देना। तेरी कुछ किताबे मैंने अटैची में रखी थी, अटैची टूट गई। रेशमी साड़ियों का वर्जन साधनेवाली नाजुक अटैची भला किताबों का बोझ सह सकती थीं? मेरी भी मत् मारी गई। ले चाभी, लोहे के बक्से में तेरी किताबें हैं। बस, मेरी तो माँ के नाते इतनी ही कहावत है कि सिंगार-पंटार में मत लगी रहना। तूझे बड़ा शौक है बिन्दी – महावर का। अलीगढ़ युनिवर्सिटी जाना। देखना की पी-एच.डी. की बात बनेगी या नही?"[44] इससे ज्ञापित होता है कि कस्तूरी की सोच प्रगतिवादी नारी की सोच है। वह अव्वल तो यह मानती है कि प्रतिभा संपन्न स्त्रियों को अपनी लीक अलग बनानी चाहिए। वैवाहिक जीवन की वह विरोधी नहीं है परंतु वह स्त्री को – पत्नी को पुरुष की अनुगामिनि – नहीं बल्कि सहगामिनी के रूप में स्वीकार करती है। "कैसे नीर भरे पनिहारी" शीर्षक बड़ा सूचक है। अपने दांपत्यजीवन का, जिसके

कई-कई सपने मैत्रेयीने बुन रखे हैं, रीतिकाल की नायिकाओं की भाँति बहुत कुछ सोच रखा है उसका प्रारंभ कैसे किया जाए। ससुराल में मैत्रेयी से पहले मैत्रेयी के कालेज जीवन की घटनाएँ पहुँच जाती है। उसमे कल्पनाओं और अफवाओं से रंग भरे जाते हैं। फलतः मैत्रेयी का पति डॉक्टर होते हुए भी शिक्षित होते हुए भी उसे संदेह की दृष्टि से देखता है। डॉक्टर शिक्षित है पर पुराने संस्कारों ने अभी पीछा नही छोड़ा है। बल्कि यहाँ तो लगता है कि उसकी उच्च शिक्षा ही यहाँ आड़े आ रही है। फलतः शारीरिक संबधो में वह पहल नहीं कर पाता। यहाँ बहुत सांकेतिक ढंग से लेखिका ने विपरीत रति का भी वर्णन किया है।[45] डॉक्टर को विवाह के बाद की इस प्रथम रति क्रीडा में लुत्फ तो आता है, परंतु मैत्रेयी के इस कौशल के कारण वह उसके प्रति और भी शंकाशील हो जाता है। यहाँ मैत्रैयी का खुलापन ही उसका दुश्मन हो जाता है। अभी कुछ वर्षपूर्व "देव डी" नामक फिल्म प्रदर्शित हुई थी जिसमें नायक वर्षो बाद मिली अपनी प्रियतमा के चरित्र को शंका की नजर से देखता है क्योंकि गँवई गाँव में उनके मिलन का समारोह नायिका ही रचती है, जिसके कारण नायक को लगता है कि यह तो कोई "खेली खाई" औरत लगती है। डॉक्टर के मन में भी कुछ इसी प्रकार की प्रतिक्रिया आती है। इसका बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखिका ने किया है। डॉक्टर दूसरों के ब्याज से मैत्रेयी की साधारण खुबसूरती पर कोड़े बरसाते हैं। खुद को जो कहना है दूसरों के बहाने जड़ते रहते हैं। खोद-खोदकर जानने की चेष्टा करते हैं कि मैत्रेयी के जीवन में पहले और कितने नायक आ चुके हैं। ऐसी मानसिक विकृत सोच के कारण डॉक्टर बीमार भी हो जाते है। विवाह के उपरांत कई बार हनीमून के लिए जाने का प्रोग्राम खारिज हो जाते है। और "लिबउआ" का समय आ जाता है। उससे पहले दोनों में फिर एक बार आकर्षण की स्थिति बनती है। परंतु पीहर जाते समय मैत्रेयी अपने गहनों, अलंकारो के लिए विवाद खड़ा करती है। हाँलाकि कस्तूरी ने ही सख्त हिदायत दे रखी थी कि अपने गहनों, लत्तो पर अपना अधिकार बनाए रखना क्योंकि यहीं स्त्री के काम आता है; परंतु बाद में वही चिट्ठी लिखती है कि अलंकारों के मोह का गँवारुपन व्यवहार वहा ना करें। मैत्रेयी डॉक्टर से उसे शीघ्र ही बुलाने की जो बात करती है वह भी फैल जाती है और उसके कारण भी उसकी काफी फजीहत होती है। इस अध्याय में यह तथ्य सामने आया है कि हम चाहे जितनी शिक्षा की, स्त्री पुरूष बराबरी के दावे करें परंतु जातीयजीवन में स्त्री की

सक्रियता को आज भी संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है । इस मधुर मदिर आनंददायक घटना में स्त्री को तो निष्क्रिय पड़े रहकर कटपुतली का ही बोध करना होता है । जो पुरूष अपनी प्रियतमाओं की इन अदाओं पर बलि-बलि जाते हैं, वे ही यहाँ अपनी पत्नी में उस प्रकार के व्यवहारों को देखकर चकित, दिग्भ्रमित एवं शंकित होने लगते हैं ।

8) पानी में अगन जरै

"पानी में अगन जरै" पृ. 261 से 290 तक (लगभग 30 पृष्ठों में) उपन्यस्त् हुआ है । मैत्रेयी अपने मायके कस्तूरी के पास आ गयी है । उसका विचार था कि डॉक्टर शीघ्र ही उसे बुला लेंगे परंतु छह महीनों के व्यतीत हो जाने पर भी कोई लेने नहीं आता, फलतः मैत्रेयी को चिंता होने लगती है । शिक्षित होने पर भी डॉक्टर के विचार परंपरागत थे कि स्त्री को स्त्री की तरह रखना चाहिए । उसमें लज्जा, सहनशीलता और त्याग जैसे गुण होने चाहिए ।[46] दूसरी ओर मैत्रेयी स्त्री पुरूष, पति-पत्नी में बराबरी की भावना पर तवज्जो देती है । अपने पुरूष मित्र मदनमानव से प्रेरित होकर मैत्रेयी डॉक्टर को पत्र लिखती है । जिसका यथेष्ठ प्रभाव डॉक्टर पर पड़ता है और वह मैत्रेयी को लेने आता है । डॉक्टर के आने पर कस्तूरी को प्रसन्नता होती है । एक अरसे से उनके घर में पुरूष की मौजूदगी ही नहीं थी । कस्तूरी का घर यानी कस्तूरी, गौरा, मैत्रेयी या कोई ग्रामलक्ष्मी दूसरे शब्दों में औरतों का अड्डा । डॉक्टर के आने से स्थिति में कुछ बदलाव आता है । कस्तूरी को दामाद के प्रति कुछ लगाव भी होता है । इस लगाव को मैत्रेयी पसंद नहीं करती ।[47] इस स्थिति की तुलना कृष्णा सोबती के उपन्यास "मित्रोमरजानी" की "मित्रो" से कर सकते है जिसमें मित्रो दामाद से उसकी माँ की नजदीकियों को संदेह की दृष्टि से देखती है ।[48] मनोवैज्ञानिक दृष्टया देखा जाए तो कस्तूरी का अपने दामाद के प्रति जो लगाव है उसे सामान्य (Normal) नहीं कहा जाएगा । उसमें कहीं-न-कहीं दमित वासनाओं का प्रस्फूटन है । हो सकता है कि कस्तूरी को यदि अपने पति का पूरा प्यार और साथ मिला होता, उसके कोई बेटा होता तो शायद उसके व्यवहार में यह असामान्यता (Abnormality) न होती । यहाँ यह लगाव सास-दामाद के वात्सल्य भाव का न होकर स्त्री-पुरुषवाला है । फलतः मैत्रेयी और डॉक्टर के शारीरिक मिलन पर भी

कस्तूरी हाय तौबा मचा देती है और मैत्रेयी को जली-कटी बातें सुनाती है ।[49] कस्तूरी के स्थान पर कोई दूसरी माँ होती तो न केवल इसके लिए प्रसन्न होती, बल्कि उनके मिलन की व्यवस्था स्वयं कर देती । कस्तूरी का यह जो व्यवहार है, उसकी यह नीरसता और शुष्कता है, मनोवैज्ञानिक शब्दों को यदि प्रयोग करें तो उसकी यह जो Saddiest मनोवृत्ति है । उसके पीछे उसका प्रेम विहीन जीवन ही है । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिंदगी में जिसने प्रेम पाया हो वही दूसरे को प्रेम करते देख भी सकता है ।[50] एक बहुत पुरानी अंग्रेजी फिल्म "Blue hot Blue cold " का एक दृश्य स्मृति में कौंध रहा है जिसमें एक व्यक्ति जिसे प्रेम नहीं मिला है, वह कामक्रीड़ारत एक युग्म पर पत्थर की बड़ी शिला लुढ़का देता है । बाहार घूमने-फिरने का जो प्रोग्राम बनता है उसमें भी कस्तूरी ताँगे में पहले बैठ जाती है ।[51] डॉक्टर को अपनी सास का यह व्यवहार कुछ अनुचित तो लगता है परंतु वह उनको समझने का प्रयास भी करता है । उनको अपनी माँ की छबि कस्तूरी में नजर आती है । कस्तूरी के विचार से स्त्री को पुरूष से मुक्त होना चाहिए । स्त्री को पुरूष की गुलामी से मुक्त होना हो तो उसे आत्मनिर्भर होना पड़ेगा और स्त्री को चाहिए की पढ़-लिखकर वह आत्मनिर्भर बने । इस प्रकार कस्तूरी के विचार कुछ कुछ नारीवादी लेखिकाओं से प्रतीत होते हैं । तो दूसरी तरफ मैत्रेयी की दृष्टि से स्त्री पुरूष में मैत्री बराबरी होनी चाहिए । इस तरह आज जिसे "नारी विमर्श" कहा जाता है, उसके दर्शन हमें मैत्रेयी में होते हैं । मैत्रेयी चाहती थी कि डॉक्टर के साथ अपने ससुराल जाएँ परंतु माँ की अनिच्छा से नहीं आज्ञा से, और कस्तूरी है कि खुशी - खुशी उसे भेजना नहीं चाहती । फलतः मैत्रेयी को लिए बिना ही डॉक्टर को वापस जाना पड़ता है ।[52] डॉक्टर के जाने के उपरांत मैत्रेयी को अपने पति की याद आती है । ससुराल जाने की उसकी ईच्छा बलवती होती है । इस बीच ज्ञात होता है कि मैत्रेयी गर्भवती हुई है ।[53] यहाँ भी कस्तूरी का व्यवहार कुछ अलग सा है, जहाँ और माँए, इस बात को लेकर प्रसन्न होती है वहाँ कस्तूरी को मैत्रेयी का माँ होना अच्छा नहीं लगता । कस्तूरी के हिसाब से यह मैत्रेयी का गुलाम होना था । जबकि मैत्रेयी उसमें भागीदारी की भावना देख रही थी । अध्याय के अंत में मैत्रेयी पत्र लिखकर डॉक्टर को सूचित करती है ।

जो घर जारै आपनो......

"कस्तूरी कुंडल बसै" का अंतिम अध्याय (जो घर जारै आपनो.....) लगभग ४० पृष्ठों मे उपन्यस्त् हुआ है । इस आत्मकथा के अधिकांश शीर्षकों को कबीर काव्य से लिया गया है जो की अत्यंत सांकेतिक, सटीक एवम् सूचक है । अध्याय के प्रारंभ में बताया गया है कि कस्तूरी की सुई अब पाव तक आ गयी हैं और फलतः उसे पैरो में बहुत पीड़ा होती है । कस्तूरी को लखनऊ के अस्पताल में भर्ती करवाया जाता है । गर्भवती होते हुए भी मैत्रेयी माँ की तबियत को देखने जाती है । मैत्रेयी के पति डॉक्टर साहब भी उसमें उसकी सहायता करते हैं । उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री कस्तूरी के विभाग को बंद करवाना चाहते हैं । उनकी सोच स्त्रियों के खिलाफ है । उनका मानना है कि स्त्रियों का क्षेत्र चार दिवाली और घर गृहस्थी है और स्त्रियों के पढ़ने लिखने से युवकों की नौकरी छीन जाती है ।[54] मुख्यमंत्री कोग्रेंसी हैं पर उनके विचार स्वाधीनता पूर्व के विचारों से बरअक्स विपरीत प्रमाणित होते है । ऐसा लगता है कि स्वाधीनता के बाद हमारे यहाँ सब ऊल्टा-पुलटा ही होता है । स्मृति में पंक्तियाँ कौंध रही है – "पन्द्रह अगस्त उन्नीस सौ सैतालीस" ठीक मध्यबिंदु है हमारे देश के स्वाधीनता के इतिहास का / जहाँ से हमने उलटना सीखा, जहाँ से हमने पलटना सीखा, जहाँ से हमने मुड़ना सीखा सिद्धांतों से / सिद्धांतों की खोल को ओढ़कर[55] ऐसा प्रतीत होता है कि स्वाधीनता के बाद हमारे नेताओं की सोच Anti-reformation हो गई है । मुख्यमंत्री की तुलना में कस्तूरी के विचार अधिक प्रगतिवादी, कहीं कहीं तो नारीवादी से लगते हैं । इस संदर्भ में कस्तूरी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को भी पत्र लिखती है परंतु उसका कोई प्रत्युत्तर नहीं आता, कस्तूरी को इस बात का भी दुःख है कि देश की प्रधानमंत्री एक स्त्री होते हुए उसके विचार स्त्रियों के पक्ष में नहीं ।[56] कस्तूरी अस्पताल में है । दामाद डॉक्टर साहब भी आ गए हैं । परंतु कस्तूरी का मन बैचेन है क्योंकि उसकी अनुपस्थिति में महिला मंगल योजना को खत्म किया जा सकता है । सरकारी तौर पर फूट डालो और राज करो की नीति भी चल रही थीं । कस्तूरी के आंदोलन को खत्म करने के लिए महिला मंगल की कुछ शिक्षित उच्च वर्गीय महिलाओं को शहर में नोकरियाँ भी दी जा रही थी । अतः शीघ्रातिशीघ्र अस्पताल से निकल जाना कस्तूरी चाहती हैं, बल्कि वह यह भी सोचती है कि उसको अस्पताल में नजर कैद किया गया है । कस्तूरी की चिंताएँ केवल वैयक्तिक न

होकर महिला मंगल की उन तमाम औरतों के लिए थीं । गांधीवाद में विश्वास करनेवाली कस्तूरी इतनी विचलित हो जाती है कि अहिंसा के बारे में और धर्म के बारे में कुछ अलग ढ़ंग से सोचने लगती है ।[57] गौरा, वतनदेवी और सोमेश्वरी, सुबोधबाबू आदि लोग कस्तूरी को अंत तक साथ, सहयोग देते है ।

मैत्रेयी एक सतमासी लड़की को जन्म देती है । पुत्री जन्म पर औरतों की जली कटी बातें उसे व्यथित करती हैं । उस समय उसके मन में जो विचार आते हैं उनकी तुलना इधर की दो पुस्तकों से कर सकते हैं ।[58] यह कितनी विडम्बनापूर्ण स्थिति है कि स्त्री को जन्म देने का दोष एक स्त्री पर ही थोपा जाता है । बच्ची के नामकरण संस्कार के समय डॉक्टर समाज के लोगों के ड़र से प्रचलित तमाम ज्ञाति-रिवाजों की पूर्तता करते हैं । परंतु बाहर से यह बताते है कि यह सारा सामान कस्तूरी देवी ने भेजा है । बाद में जब मैत्रेयी को पता चलता है तब उसे पति पर प्यार भी आता है और गुस्सा भी । डॉक्टर को लेकर भी मैत्रेयी में काफी ऊँहा-पोह चलता रहता है ।

अस्पताल से छूटने के बाद कस्तूरी अपने आंदोलन को तेज करना चाहती है । पर सरकार एक षडयंत्र के तहत उसको कुचलने का प्रयत्न करती है । कस्तूरी की थैली में हथगोले रख दिए जाते हैं और उसे आंतकवादी करार देते हुए जेल में ठूँस दिया जाता है । तब डॉक्टर साहब कस्तूरी देवी को छुडाने के लिए जमीन-आसमान भी एक कर देते हैं । नंबरदार, रामावतार और चरनसिंह आदि लखनऊ आकर कस्तूरी देवी को छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं । अध्याय के अंत में एक फैंटसी के द्वारा कस्तूरी के वहाँ आने का वर्णन हुआ है । अपनी माँ से अलग विचार रखते हुए भी मैत्रेयी के मन में कस्तूरी के लिए आदरभाव जगता है । मैत्रेयी को लगने लगता है कि माँ की नारीवादी सोच गलत नहीं है । पुत्री-प्रसव पर वह सोचती है कि आगे चलकर यह भी नानी के नक्शेकदमों पर चलेगी । मैत्रेयी को दो से तीन होने का एहसास होता है और इससे उसे आनंद की एक अनुभूति भी होती है ।[59]

:: कस्तूरी कुण्डल बसै ::

विश्लेषणात्मक दृष्टिपात :

"कस्तूरी कुंड़ल बसै" मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का प्रथम खण्ड़ है । उसका प्रथम संस्करण सन् 2002 में प्रकाशित हुआ था और सन् 2003 में उसकी पहली आवृत्ति भी प्रकाशित होती है जिससे मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं की पठनीयता प्रमाणित होती है । मैंने यह आत्मकथा सन् 2008 में खरीदी थी । अतः इधर दो-तीन वर्षों में उसकी और आवृतियाँभी कदाचित प्रकाशित हुयी हो इससे हम सहजतया अंदाजा लगा सकते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा को पाठकों का विशाल वर्ग मिला है और उससे कई लेखकों की उस शिकायत को भी करारा जवाब मिला है कि इधर लोग साहित्य नहीं पढ़ते हैं । साहित्य में यदि गुणवत्ता हो वह यदि दमदार हो तो पाठक तो उसे अपने आप मिल जाते हैं । परंतु इस प्रकार के लेखन के लिए साहस और हिम्मत की जरूरत है "सुष्टु सुष्टु" तो सभी लिखते हैं पर कुछ ऐसा लिखना जिससे समाज के विभिन्न तबकोंस से तरह-तरह की हलचलें पैदा हों । जीवन के उजले पक्षों को लिखना अच्छा लगता है पर आत्मश्लाघा आत्मकथा के लिए घातक बीमारी है । आत्मकथाकार को चाहिए कि वह अपने जीवन के कालेपक्षों को भी उतनी ही बेबाकी से पाठकों के सामने रख सकें । उसके लिए अतिरिक्त नैतिक हिम्मत और हौंसले का होना निहायत जरूरी है । इस आत्मकथा को पढ़कर हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकने अपने "फ्रस्टेशन" की फुहड़ता में मैत्रेयी पुष्पा को "छिनाल" तक कहने का दुस्साहस दिखाया ।[60] इससे ही हम अंदाजा लगा सकते हैं कि इस रचना ने कितने लोगोमें कितने प्रकार की प्रतिक्रियाओं को जगाया होगा । इसे भी रचना की सफलता का एक निकष कहा जा सकता है ।

"कस्तूरी कुंड़ल बसै" के विभिन्न अध्यायों के शीर्षक को देखते हुए इस पर कबीर साहित्य की मुद्रा स्पष्टतः लक्षित होती है । अंग्रेजी की एक कहावत है – Man knows by the company he keeps अर्थात् अपनी मित्रमंडली से पहचाना जाता है । इसी बात को किंचित परिवर्तन के साथ कहा जा सकता है – "An author is known by the quotations he / she likes" अर्थात् लेखक किन-किन लोगों को उद्धत करता है, उससे उसका परिचय उसकी विचारधारा का परिचय भी प्राप्त होता है । जिस तरह कबीर ने अपने समय में सामाजिक, धार्मिक, ब्राह्य अनुष्ठानों के पाखंडों का पर्दाफाश किया था ठीक यही प्रवृत्ति हमें इस आत्मकथा में भी उपलब्ध होती है ।

आत्मकथा के प्रांरभिक 40 - 50 पृष्ठों तक हमें कस्तूरी का आत्मसंघर्ष मिलता है । कस्तूरी के मन में ब्याह की कोई उत्सुकता नहीं है क्योंकि उसने सुन रखा था कि पति की मृत्यु के उपरांत स्त्री को सती बताया जाता है । उसे भी पति की चिता के सात जल जाना होता है अतः इसकी कल्पना मात्र से कस्तूरी के रोंगटे खड़े हो जाते है । परंतु न चाहते हुए पर भी घर की गरीबी के कारण कस्तूरी को विवाह करना पड़ता है । एक प्रकार से कस्तूरी को बेचा गया था ऐसा ही कह सकते है । दो - चार साल के वैवाहिक जीवन के उपरांत कस्तूरी का पति हीरालाल का निधन हो जाता है । निधन से पूर्व उसने कस्तूरी की झोली में एक बच्ची को डाल दिया है । वह बच्ची ही आगे चलकर "मैत्रेयी पुष्पा" के नाम से जानी जाती है । कस्तूरी को वैवाहिक जीवन का कोई अच्छा अनुभव नहीं होता । मैत्रेयी से पूर्व कस्तूरी को एक लड़का हुआ था और जिस दिन उस लड़के की मौत हुई थी उस समय ही कस्तूरी ने अपने पति को किसी दूसरी स्त्री के साथ "कुकर्म" करते हुए देख लिया था ।[61] इसके कारण कस्तूरी पुरूष बिरादरी को "कुत्ते की जात" समझने लगती है । पुरूषों के प्रति उसके मन में कोई आकर्षण नही रहता और वह समग्र पुरूष जाति को ही मक्कार और धोखेबाज समझने लगती है । पति की मृत्यु के बाद भी कस्तूरी टूटती नहीं है । वह और विधवा स्त्रियों की भाँति स्वयं को दयनीय नहीं समझती, बल्कि बेचारगी को वह प्रयत्नपूर्वक अपनी जिंदगी से फेंक देती है । कुछ पंक्तियाँ स्मृति में कौंध रही है – "बेचारा" यह शब्द लब्ज़े हमदर्दी नहीं । गाली है गाली है । इसलिए नहीं बनूँगा बेचारा क्योंकि बेचारा बनना / टूटना हैं और मै ही अगर टूट गया तो कितने ही

टूट जाएगें बनने से पहले।"[62] कस्तूरी भी बेचारगी की जिंदगी जीना नहीं चाहती। अतः पढ़ लिखकर वह आत्मनिर्भर होना चाहती है। इसमें कस्तूरी को अपने बूढ़े ससुर मेवाराम और गाँव के नंबरदार मुखिया का भी सहयोग प्राप्त होता है। मेवाराम तथा नंबरदार पुरानी पीढी के होते हुए भी नारीशिक्षा और नारी की आत्म निर्भरता के कायल है। यह आधुनिक युग, गांधीवाद का प्रभाव है। जब कि दूसरी और आज़ादी के बाद काग्रेसी शासन में उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री के नारी विषयक विचार नितांत प्रतिगामी दिखते है। मुख्यमंत्रीजी नारी के कार्यक्षेत्र को घर की चार दिवारी ही समझते थे और पढ़-लिखकर स्त्रियों का आगे आना, उनका आत्म-निर्भर होना, उनको फूटी आँखों नहीं सुहाता था।[63]

कस्तूरी मंगल योजना में काम करती है और ग्रामीण विधवा महिलाओं को संगठित आगे बढ़ने की मुहीम चलाती है। अपनी नौकरी के कारण कस्तूरी किसी एक जगह पर स्थिर होकर रह नहीं सकती थी। फलतः अपनी बेटी मैत्रेयी को पढ़ाने के लिए उसे अलग अलग जगहों पर रखना पड़ता है। फलतः बड़ी छोटी उम्र में मैत्रेयी को भी कई ऐसे अनुभव होते हैं जो उसकी उम्र की लड़की को प्रायः नहीं होते। पढ़ाई के लिए कस्तूरी अपनी बेटी को एक ग्राम्य-संयोजिका के यहाँ रखती है। वह मैत्रेयी से न केवल अपने घर का काम करवाती थी। बल्कि उसके बेटा भी उस पर बुरी नजर डालता है और उसे बेइज्जत करने की कोशिश करते है वहाँ एक बूढ़ा उसे बलात्कृत करने की कोशिश करता है। तब कस्तूरी उल्टे मैत्रेयी पर ही बरस पड़ती है कि स्त्रीजात को इन सब चीजों से निबटने की आदत होनी चाहिए। उसका डटकर मुकाबला करना चाहिए न कि इधर उधर भागकर खडे होना चाहिए। कस्तूरी के सामने एक ही लक्ष्य है कि लड़की पढ़-लिखकर अपने पाँवों पर खड़ी हो जाए। अतः हाईस्कूल के उपरांत मैत्रेयी को महिला-विकास में नौकरी भी मिल जाती है। परंतु इस प्रकार की नौकरी में हमेशा उपरी अधिकारियों की चापलूसी और चाटुकारी करनी पड़ती है जो मैत्रेयी को पसंद नहीं है। अतः वह उस नौकरी को छोड़कर मोठ के इंटर कोलेज में पढ़ने जाती है।

"जहँ-जहँ चरन पड़ें संतन के, तहँ-तहँ बँटा-ढ़ार" उक्ति के अनुसार मैत्रेयी पुष्पा को यहाँ भी कुछ बुरे अनुभव से गुजरना पड़ता है। यहाँ कोलेज का प्रिसिंपल ही विलन बनकर आता है। इसे हमारी शिक्षा-व्यवस्था और सिस्टम की विडंबना ही समझना चाहिए

की जिन बातों को लेकर प्रिंसिपाल की प्रताड़ना होनी चाहिए, निंदा और भर्त्सना होनी चाहिए, उसके स्थान पर अनुशासन के प्रश्नों को उठाते हुए मैत्रेयी को ही कोलेज से रेस्टिकेट करने की बात आती है। यहाँ हमें कस्तूरी के जीवन के कुछ अंतः विरोधी का भी परिचय मिलता है। नारियों के खिलाफ अत्याचार और अन्याय का झंडा फहरानेवाली कस्तूरी यहाँ अपनी ही पुत्री को न्याय दिलाने में कमजोर साबित होती है क्योंकि प्रिसिंपल महोदय की क्षमा याचना करके वह किसी तरह उस समस्या को सुलझाना चाहती है।[64] कथाचित यह इसलिए भी है कि वह चाहती है कि मैत्रेयी कुछ पढ़-लिखकर आगे बढ़े और अपने पैरो पर खड़ी होने लायक स्थिति में पहुँच जाएँ। कस्तूरी का लक्ष्य है कि बेटी ऊचाइयों और बुलंदीयों को छुए फिर भले ही उसके लिए कहीं समझौते करने पड़े।

मोठ के बाद मैत्रेयी की स्नातक और अनुस्नातक की पढ़ाई झाँसी के कोलेज में होती है। यहाँ पर मैत्रेयी हिंदी साहित्य तथा संस्कृत साहित्य से विशेष परिचित होती है। साथ ही साथ उसका अंग्रेजी पर भी उसका प्रभुत्व होता है। जिसका हिंदी – संस्कृत के छात्रों में प्रायः अभाव सा दिखता है। जो शहराती लड़कियाँ मैत्रेयी को गँवई, गँवारू समझती थी वे भी उसकी अंग्रेजी की वाक्पटुता से अभिभूत होती है। उसके कारण कुछ लड़कों से भी उसकी घनिष्टता बढ़ती है। संस्कृत एसोशिएशन की वे सेक्रेटरी होती है और छात्रसंघ के चुनाव में भी अपने सहपाठी "मदन मानव" का प्रचार करती है जिसे उस समय के वातावरण को देखते हुए एक प्रगतिशील कदम समझना चाहिए।[65] क्यूँकि प्रायः कोलेज छात्राएँ इन सब बातों से छात्र राजनीति से दूर रहती है, वहाँ मैत्रेयी की सक्रियता उसके भविष्यत प्रगतिवादी विचारधारा को रेखांकित करती है।

मैत्रेयी के अध्ययनकाल के कुछ प्रेम प्रसंग भी यहाँ वर्णित हुए है। मैत्रेयी जब अलीगढ़ में पढ़ती थी तब एक चमार लड़के से उसकी मित्रता हुई थी। कोलेज में आने के उपरांत राघव नामक एक लड़का मैत्रेयी के पीछे दिवाना था। मैत्रेयी को कविता लिखने के लिए प्रेरित करनेवाला वही था, जो बाद में उसके प्रेम के कारण कुछ विक्षिप्त सा भी हो गया था। इन दिनों में वह जादुनाथ के बाड़े की स्त्रियों पर एक व्यंग्य कविता भी लिखती है, जिसके कारण उसके जादुनाथ के बाड़े से भी निकाला जाता है। तब भी

कस्तूरी मैत्रेयी पर बुरी तरह से नाराज होती है ।[66] जादूनाथ के बाड़े से निकाले जाने पर मैत्रेयी को एक गंदी बस्ती में रहना पड़ता है । यहाँ पर मैत्रेयी "रेल्वे कोलोनी" को लेखनी की ताकात का भी पता चलता है । एक और बात यहाँ ध्यात्व रहेंगी कि मैत्रेयी के ये प्रेमसंबध केवल भावनात्मक स्तर के है उसमें शारीरिकता या इंद्रियता नहीं है । इसके पीछे कुछ परिस्थितियाँ भी है । शायद नंदकिशोर के साथ मैत्रेयी के शारीरिक संबध भी स्थापित हो सकते थे । परंतु गौरा और कस्तूरी की सजगता से वह हादसा होते होते रह जाता है ।[67] यदि ऐसा होता तो शायद मैत्रेयी का जीवन कुछ दूसरे प्रकार का होता ।

कस्तूरी महिला मंगल योजना में अधिकारी के पद पर कार्य करती थी । उसकी मातहत में गौरा नामक एक ग्रामसेविका है । गौरा भी विधवा थी । आत्मकथा में कस्तूरी और गौरा के समलैंगिक संबंधो के संकेत भी मिलते हैं ।[68] उन दोनों की अंतरंगता हंमेशा बनी रहती है । जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों में गौरा कस्तूरी के साथ रहती है । यहाँ तक कि आत्मकथा के अंत में जहाँ कस्तूरी के विभाग को खत्म करने की बात आई है । वहाँ पर भी कस्तूरी जो आंदोलन करती है । उसमें भी गौरा उसके साथ रहती है ।

वैसे कस्तूरी का बस चलता तो मैत्रेयी के विवाह के लिए वह कभी नहीं सोचती क्योंकि संसार का यह कोमल और संवेदनापूर्ण पक्ष मानो उसके लिए सूख ही गया है । मैत्रेयी यदि पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाती तो, सरकार में किसी उच्च अधिकारी पद पर आसीन हो जाती तो उसकी प्रसन्नता का कोई ठीकाना न रहता परंतु मैत्रेयी तो पूरी तरह डूब कर संसार को भोगना चाहती है । उसमें एक सुखपूर्ण दांपत्यजीवन जीने की भरपूर ख्वाईश है । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है, उसकी नारी चेतना कुंद हो गई है, या कि परंपरावादी या रूढीवादी अशिक्षित अंधविश्वासी, धार्मिक, ढ़कोसलों में अशिक्षित रची पची रहनेवाली महिलाओं जैसी है । वह विवाह करना चाहती है परंतु पुरूष को पति या स्वामी के रूप में नहीं एक साथी और दोस्त के रूप में पाना चाहती है । बेटी के विचारों से परिचित कस्तूरी भी मैत्रेयी का विवाह करना चाहती हैं परंतु अपनी शर्तो पर । वह दान-दहेज के बिल्कुल खिलाफ है । बिना दान-दहेज के केवल मैत्रेयी की शैक्षिक योग्यता को ध्यान में रखकर यदि कोई लड़का विवाह के लिए तैयार हो जाता है तो कस्तूरी को कोई एतराज नहीं । अढू के नगलावाला अयोध्या प्रसाद सिंह

इंजीनियर है और मैत्रेयी को चाहता भी है, मैत्रेयी भी उसे पसंद करती है। परंतु दहेज के कारण वह शादी नहीं हो पाती।

अंततः कस्तूरी की ननद विद्याबुआ के प्रयत्नों से कस्तूरी को मैत्रेयी के लिए एक डॉक्टर लड़का मिल जाता है। वह बिना दहेज के मैत्रेयी की शैक्षिक योग्यता के आधार पर विवाह के लिए तैयार हो जाता है।[69] इस समय मैत्रेयी झाँसी में रहकर पढ़ती थी। जादूनाथ के बाड़े से निकालेजानेवाली घटना मैत्रेयी के छात्रसंघ के चुनाव में योगदान की घटना, मदन मानव की मैत्री, मैत्री के पीछे पगलयाएँ राघव की कथा, ये सब घटनाएँ, पूर्वदीप्ती शैली में बतायी गई है।[70] निशिखरे की आत्महत्या वाली घटना भी यहाँ आती है। निशिखरे कोलेज कन्या है पर उसके माँ-बाप जबरदस्ती उसे एक कुपात्र के गले मढ़ देना चाहते है तब निशिखरे आत्महत्या कर लेती है।[71] यहाँ पर शकुन की त्रासदी भी आई है। शकुन और उसके पति दोनों मैत्रेयी के गाँव के है। शकुन का पति अपाहिज है वह बस के कर्मचारियों तथा मालिकोकों अपने घर ठहराने की व्यवस्था करता है और वे लोग न जाने कहाँ - कहाँ से लड़कियों को लेकर आते है। कई लड़कियाँ वहाँ बलात्कृत होती रहती है। शकुन का पति शकुन से भी “धंधा” करवाता है। अतः एक दिन शकुन भाग जाती है। मैत्रेयी को लगता है कि निशिखरे से अधिक साहसी वो शकुन निकली।

मैत्रेयी और डॉक्टर का विवाह होता है। विवाह के समय भी कस्तूरी के स्वभाव के कारण कई अडचने आती है, परंतु किसी तरह से विवाह संपन्न होता है। विवाह के समय के मांगलिक प्रसंग, अनुष्ठान, मंगल-गीत, खेल के गीत, गालीगती आदि का बड़ा सजीववर्णन मैत्रेयी ने किया है। विवाह के उपरांत मैत्रेयी जब ससुराल के लिए बिदा होती है। तब भी कस्तूरी और माँओं की तरह शिक्षा वचन देने के स्थान पर उसे रीति-रिवाजों के नाम पर समझौता न करने की सलाह देती है।

मैत्रेयी के खुले व्यवहार के कारण ससुराल में उसे पास-पड़ोस की औरतों के व्यंग्यबाण सुनने पड़ते हैं। मैत्रेयी ने यहाँ बेबाक ढंग से डॉक्टर के साथ के उनके प्रथम संयोग वर्णन किया है। शारीरिक संबध स्थापित करने में डॉक्टर जब असफल रहते है तो मैत्रेयी खुलकर सामने आती है। यहाँ विपरीत रति का भी वर्णन है। मैत्रेयी के इस

खुलेपन के कारण उसके पूर्वचरित्र को लेकर भी डॉक्टर भी कुछ-कुछ सशंकित रहने लगते है । सामाजिक प्रथाओं का विरोध करनेवाली मैत्रेयी जब मायके जाते समय जेवरों को साथ लेकर जाने की बात करती है तो उसे लेकर कुछ विवाद भी होता है । वस्तुतः जेवरों को अपने पास रखने की सलाह कस्तूरी की थी, परंतु अततः वही मैत्रेयी को समझाती है कि वह इस प्रकार की कोई जिद न करे ।[72]

मैत्रेयी के मायके आने पर डॉक्टर कई दिनों तक उसे लिवाने नहीं आते, अंततः अपने एक कोलेज के मित्र की सलाह पर मैत्रेयी ही पहल करती है वह अपने पति को एक पत्र लिखती है । डॉक्टर उसे लिवाने आते है । तब कस्तूरी अपने दामाद को बहुत लाड़-प्यार करती है । यहाँ पर कस्तूरी की अभुक्त कामवासना के भी हमें दर्शन होते है । साधारण माँ जहाँ ऐसे अवसरों पर अपनी बेटी और दामाद के मिलन के लिए व्यवस्था कर देती है और उसके लिए प्रसन्न भी होती है, वहाँ कस्तूरी का व्यवहार कुछ असाधारण (Abnormal) सा लगता है । कस्तूरी और गौरा बेटी-दामाद पर पहरे बिठा देती है । और एक बार बेशर्म होकर जब वे दोनों शारीरिक मिलन का प्रयत्न करते हैं तब उनके उस व्यवहार में कस्तूरी को व्यभिचार के दर्शन होते है ।[73]

मैत्रेयी चाहती थी की डॉक्टर उसे लिवाकर ले जाए, परंतु कस्तूरी उसके लिए राजी नहीं होती । अतः डॉक्टर को खाली हाथ ही लौटना पड़ता है । उसके बाद ज्ञात होता है कि मैत्रेयी गर्भवती होती है । कस्तूरी कि वह सुई अब पैरो तक पहुँच गई है । अतः डॉ. अपनी सास को अस्पताल में भर्ती करवाते है । वहाँ भी कस्तूरी को यह चिंता रहती है कि उसकी अनुपस्थिति में प्रदेश का मंत्री उसके विभाग को बंद करवा देगा । बल्कि अस्पताल में वह स्वयं को नजरबंद किया गया है, ऐसा सोचती है । मैत्रेयी एक पुत्री को जन्म देती है । कस्तूरी किसी तरह अस्पताल से निकलकर अपने विभाग को चालू रखने के आंदोलन में भी जान से जुट जाती है । कस्तूरी के कई सहयोगियों को फोड़ दिया जाता है और कस्तूरी; गोरा और दो एक अन्य ग्राम्य सेविकाओं को जेल में बंद करवा दिया जाता है । उन पर आरोप लगता है कि उनके बगलथैलों में हथगोले थे । वस्तुतःये हथगोले पुलिसवालों ने ही रख दिए थे और कस्तूरी तथा उनके साथियों पर गलत आरोप लगाये गए थे । तब डॉक्टर एक आज्ञांकित पुत्र की भूमिका अदा करते हुए

कस्तूरी को छुड़वाने लखनऊ भी जाते है । उनकी नौकरी भी दाव पर लगी हुई है । यहाँ तक कि कथा-कस्तूरी कुंडल बसै खण्ड़-1 में उपन्यसत् हुई है ।[74]

कस्तूरी दहेजप्रथा को समाज का दूषण समझती है । मैत्रेयी के संबध के लिए जब वह इधर उधर हाथ मारती है तो उस समाज की सोच को वह लानत भेजती है । एक स्थान पर उसके अंतद्वंद्व को लेखिका ने स्पष्ट किया है । – ”यथा कस्तूरी की छाती पर से साँप गुजर गया । साँस आए न जाए यह है, उनका समाज । इस समाज में वे मनुष्य तो क्या औरत भी नहीं है; रांड है, विधवा, बस! ऊपर से निपूती, साख के लिए कोई रूख तो क्या, कोपल तक नहीं । पुरूषों जैसे काम करने से पुरुष जैसी नहीं मान ली जाती स्त्री सामाजिक कामों के चलते उसे किसी पुरूष की जरूरत होती है, भले वो पाँच साल या दो साल का हो । पति और बेटा कहाँ से लाएगी कस्तूरी? काँपते कलेजे को पुरूष के आंतक ने कँस लिया.........दर्द ने धीरे-धीरे उद्यता का रूप ले लिया – “में स्त्री नहीं, माँ नहीं, रांड हूँ....छोड़ो उनकी बातें । बेवकूफ साले खुद में तो कोई खासियत है नहीं, लड़के को पढ़ा लिया, बस अत्तेखाँ के बाप बन गये, हम भी चित्त न कर दे तो बनिया से जाइदाँ नहीं । आज बेटा पाठक, तू डाल तो हम पात – पात.......यह मामला परिवार का नहीं । निष्ठुर और क्रूर समाज का है, जहाँ स्वार्थ तो घुल-मिल सकते हैं । लाचारियाँ और कमजोरियाँ नहीं ।”[75]

आजादी से लोगों को बहुत सी आशाएँ थी । लोग बाग सोचते थे कि आज़ादी मिलने पर हमारी सारी समस्याओं का अंत हो जाएगा । नंबरदार कहा करते थे, देश आज़ाद हो जाएगा तो रामराज आ जाएगा, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ । आजादी महज Transfer of Power होकर रह गई । पहले अंग्रेज लोग देश को छूरी-काँटे से खाते थे अब ये देशी खानेवाले उसे अचार और चटनी के साथ खा रहे हैं ।[76] बकौल लेखिका के शिवामौरूसीदारी के पट्टे के कुछ न बदला । बेचने वाला वही रहा खरीदनेवाला वही रहा । बिकनेवाली चीजों में गाय-बैल-भैंस, जेवर, अनाज और लड़कियाँ रही ।[77] आज़ादी के बाद रीति रिवाज के नाम पर होनेवाले खर्चो में कटौती तो नहीं हुई बल्कि बढ़ौती ही होती गयी है । यथा “बड़े गृहस्थवाले किसानों की बेटियों – बहनों की जन्मपत्रियाँ पड़ितोंने

हथियाँ ली नाईयों के जरिए शहर के रईसो के काने – बूचे, पागल – बावरे, लूले – लगड़े बेटो का पता लगाकर ब्याह साधे गए नाड़ियाँ और गुण मिलाकर "शुभ" करार दिए गए। कई पुरोहित इस चक्कर मे माला-माल हुए। खेल खरीदकर किसानों की श्रेणी में आ गए। नाईयों की माली हालत सुधर गई। ब्याह हुए कि कामगारों की बक्षिस ही उनकी जीविका का अच्छा साधन बन गई।[78]

आत्मकथा के अंत भाग में जहाँ कस्तूरी के महिला मंगल के ऊपर अस्तित्व संकट के बादल गहराने लगते है तब कस्तूरी का आक्रोश भड़क उठता है। गांधी और नेहरू के आदर्शो पर चलनेवाली कस्तूरी हिंसा की भाषा में सोचने लगती है क्योंकि प्रदेश का मुख्यमंत्री महिलाओं की उन्नति को नहीं चाहता। उसकी सोच वही पुरानी है। आज़ादी के संघर्ष के दौरान भले नेताओंने महिलाओ से कंधे से कंधा मिलाकर चलने को कहा होगा। अब अपना स्वार्थ संध जाने पर उनका कहना है कि स्त्री का स्थान तो चार दीवारी के अंदर है। चूल्हा - चौका ही उसकी दुनिया है। इसे एक विडंबना ही समझना चाहिए कि भारत जब पराधीन था तब लोगों के विचार स्वतंत्र थे। शरीर गुलाम था आत्मा स्वतंत्र परंतु आज़ादी के बाद पूरा परिदृश्य ही बदल गया। अब लोग वैसे तो आज़ाद हो गए पर उनके दिमाग वही रहे गुलाम के गुलाम। उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री उसकी जीतीजागती मिशाल है तभी तो एक स्थान पर कस्तूरी अपने दामाद से कहती है – "दामाद कुछ हथगोलो का इंतजाम कर सकेंगे? ......हमारे पास बंदूक नहीं, पिस्तौल नहीं, और यह लाठियों से लड़ने का ज़माना नहीं।"[79] अहिंसा और धर्म के संदर्भ में भी कस्तूरी के विचारों में परिवर्तन आता है। एक स्थान पर वह सोचती है "हम तो इतना समझते हैं कि आदमी न मांसाहारी जानवर की तरह हिंसक है और न पत्ती खानेवाली बकरी की तरह अहिंसह। समय ही उस पर मरने – मारनेवाली धार धरता है। ऐसा न होता तो गाँधीजी कहते कि वे कायरता के मुकाबले हिंसा को चुनेगें। कायर आदमी से बहादुर ही नफरत करते है और बहादुर किसी से डरते नहीं।[80] इसी रौं में वह अपनी बेटी मैत्रेयी से कहती है – "लाली सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपने हिसाब से आदमी रिवाजों को मानता है, उससे बात नहीं बनती तो धर्मशास्त्र का सहारा लेता है वहाँ भी

विश्वास नहीं जमता तो गुरू पैगम्बर खोजता है और जब कही पेश नही जाती तो अपनी अंतरात्मा ही खगालता है, जो उसका आखिरी आसरा है। तू मुझे किसी से न जोड़। मैंने जो सवाल तेरे सामने धरा है, वह मेरी आत्मा की पुकार है समझ लें।[81]

इस तरह "कस्तूरी कुंडल बसै" कस्तूरी और मैत्रेयी की आत्मकथा तो है ही साथ में एक ऐसा दस्तावेज भी है, जिसमें स्वाधीनता पूर्व से लेकर स्वाधीनता बाद के 40 – 50 वर्षों के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन और उसमें आनेवाले परिवर्तनों को उकेरा गया है। यह भी संकेतित हुआ है कि स्वाधीनता के बाद तरक्की पसंद ख्याल कैसे आहिस्ता-आहिस्ता कमजोर पड़ते गए हैं। और किस तरह फिर से कट्टरतावादी, रूढ़िवादी ताकातों ने समाज को अपने शिकंजे में घेर लिया है। इस प्रकार "कस्तूरी कुंडल बसै" को हम आत्मकथा मूलक उपन्यास भी कह सकते है क्योंकि मैत्रेयी ने पूरी टेक्निक उपन्यासों से ली है। यदि इसे आत्मकथा न घोषित किया जाता और मैत्रेयी अपने स्थान पर कोई कल्पित नाम रखती तो ये एक अच्छा खासा उपन्यास भी हो सकता था।

"कस्तूरी कुंडल बसै, मैत्रेयी की आत्मकथाओं का प्रथम खण्ड़ है। डॉ. गोपालराय इसे आत्मकथा से ज्यादा जीवनी और आत्मकथात्मक उपन्यास मानते हैं।[82] रायसाहब उसे जीवनी इस अर्थ में मानते है कि उसमें लेखिका मैत्रेयी की कथा के साथ-साथ उसकी माँ कस्तूरी के जीवन संघर्ष को भी रूपायित किया गया है। किन्तु यह तो स्वाभाविक है कोई भी आत्मकथाकार जब आत्मकथा लिखने का प्रारंभ करता है तो उसमें पृष्ठभूमि के रूप में उसके पूर्वजों और कुल की वंश - परम्परा अपने आप आ जाती है। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा "क्या भूलूँ क्या याद करुँ" में भी बच्चनजी ने अपनी कुल परम्परा का विस्तृत विवेचन किया है। हाँ इतना हम कह सकते है कि यह आत्मकथा उपन्यास के शिल्पकौशल शिल्प संरचना और भाषिक रचाव को लेकर आई है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल सत्य ही कहती है - "कस्तूरी कुंडल बसै में उस मानवी सत्ता की गाथा है जिसमें मानव की तरह एक तरफ अदम्य पुरुषार्थ कौशल, शक्ति, संकल्प और द्रढ़ता का समावेश है तो दूसरी तरफ मानवोचित्त, दुर्बलताए और कमियाँ भी पूरी तरह से उभरकर आई है"[83]

डॉ. राधारमणवैद्य "कस्तूरी कुंडल बसै" के संदर्भ में अपनी टिप्पणी देते हैं – "कस्तूरी कुंडल बसै" में मैत्रेयी ने जिस तरह अपने कष्टप्रद कठिन जीवन के कटु सत्यो को रख खोला है, उससे अनायास सभ्यजनों की कलई और प्रपंच खुले हैं। धर्म और नैतिकता के ठेकेदारों को औरत के सच और उसके बोलने से डर लगता है। यह एक उत्कृष्ट कृति है और इसे स्त्री साहित्या लोचना समालोचना की तरह पढ़ना चाहिए।"[84] क्षमाशर्मा ने तो प्रस्तुत कृति के समीक्षात्मकलेख का शीर्षक ही रखा है "किंवदतीयाँ नहीं है कस्तूरीयाँ" अपने वातानुकूलित सुविधा भोगी अंधेरे बंध कमरो में रहनेवाले लोगों को इसमें अतिशयोक्ति नजर आ सकती है, परंतु जिन्होने इस ग्रामीण जीवन को देखा – झेला और भोगा है वे कस्तूरी के जीवन को किंवदती के रूप में नहीं ले सकते। कस्तूरी की जवामर्दी के संदर्भ में क्षमाशर्मा लिखती हैं – "लेकिन कस्तूरी बिकने के बाद बेचारी नहीं बनी है। विधवा हो जाने पर भी किसी के सामने गिड़गिड़ाई नहीं है। लड़की के जन्म के उपरांत अपने भविष्य को सँवारने का कौन-सा सपना उसके पास है – शिक्षा का। चाहे जितना पैदल चलना पड़े, लोग चाहे जितनी नाक - भो सिकोड़े कस्तूरी के पाँव थमे नहीं है। वह खुद ही नही पढ़ती, गाँव-गाँव में औरतों को शिक्षित करने छोटा परिवार रखने और शोषण को न सहने की अलख जगाती है।[85]

क्षमाशर्मा ने कस्तूरी का अपने दामाद के प्रति जो मोह या आकर्षण है उसका भी यथार्थ विश्लेषण किया है – "और मैत्रेयी इस डाह से मरी जा रही है कि माँ उसके पति को घूर क्यों रही है? पति माँ को पत्नी के होते हुए भी घुमा रहा है कि माँ दामाद के कपड़े क्यों धो रही है। क्या इसलिए की माँ ने अपनी स्वाभाविक ईच्छाओंको हंमेशा नैतिकता, गांधीवाद, आज़ादीकी लड़ाई, स्त्रियों का उत्थान आदि सुनहरे रेपरों में छिपाकर मारा है। इसलिए जैसे ही कोई पुरूष नजदीक आया है, वह उसे उन नज़रो से देख रही है।[86]

डॉ. रोहिणी अग्रवालने "कस्तूरी कुंडल बसै" पर लिखे समीक्षात्मक लेख का शीर्षक रखा है – "किले को तोड़ती औरतें"। प्रस्तुत आलेख में रोहिणीजी लिखती है - "कन्फार्मिस्ट" स्त्रियों के लिए उसके (कस्तूरी) पास गुलाबी सपनों की अनगिनत पोटलियाँ भी है, जिन्हें अबोध बालिका लाली (मैत्रेयी) और अति अबोध वृद्धाएँ (कलावती

काकी, खेरापतिन दादी) आदि न समझ पाने के कारण गीतों – रिवाजों वृत - कर्मकांडो में खोलती फैलाती चलती हैं। विद्रोहणी होते हुए भी कस्तूरी के खून से सर्जी मैत्रेयी की तासीर अलग है – सबके साथ जुड़कर आत्म सार्थकता की तलाश। आर्थिक आत्मर्निभरता की आत्म मुग्ध कर देनेवाली ऊँचाईयॉ की अपेक्षा "लोकतत्व" उसे अधिक छूता-बाँधता है। अभिजात्य के कुत्रिम प्रदर्शन की अपेक्षा मानवी-मूल्यों की जिंदा मिशालों की तरह जीनेवालों दलितों और अवर्णों, मजदूरों और किसानों के श्रम और निष्ठा के प्रति वह अधिक आस्थावान है। पूर्णता एवम् आत्मविश्वास का दावा करनेवाली विवाह संस्था के आकर्षण में बधं कर विवाह करती है। किन्तु उसकी असलियत सामने आते ही पतिनामक जीवधारी के हाथ उसकी औकात थमाने में देर नहीं लगाती। लेकिन शकुन के प्रसंग को छोड़ दें तो मैत्रेयी की सारी चेतना और विद्रोह प्रेम एवम् देश संबंधों के ईदर्गिद घूमते हैं। बचपन से ही "नैतिकपरिवेश" और सही "Character" न मिल पाने को कारण उसे पुरूषों से परहेज नही, क्योंकि उसकी नज़र में थोपी गई नैतिक वर्जनाऍ मानवीय संबंधों एवम् मूल्यों के विस्तार काटती-छाटती चलती है। एक के बाद एक बाज-बहादुर, शिवदयाल, राघव, नंदकिशोर जैसे लड़कों के साथ प्रेमसंबध और अपराधबोध रहित शारीरिक आशक्ति उसे "मित्रो मरजानी" की "मित्रो के समीप ले जाती है। जिसके लिए देह और दैहिक भूख छिपाने की नहीं, स्वीकारने और आनंदित होने की चीज है।"[87]

सुहागरातवाले प्रसंग में विपरीत रति का जो संदर्भ आया है उसके संदर्भ में डॉ. रोहिणी अग्रवाल शंका व्यक्त करती है – "कि कहीं लेखिका ने मैत्रेयी – लीलाप्रसंग इस "आधुनिक" जरूरत को पूरा करने के लिए (Boldness)बताने के लिए तो नहीं कल्पित / संयोजन किए? विद्रोह और Boldness के घाल मेल से तैयार "बिकाऊ स्त्री – विमर्श" जिसके इस ओर परम्पराओं को तोड़ने वर्ष और खुल्लम-खुल्ला वर्णित फल चखने का आनंद है तो दूसरी ओर "उन अतरंग और लगभग अनछूअे अकथनीय प्रसंगों" "अन्वेषण और स्वीकृति" के सहारे साहसिक तत्वोंसे भरपूर (क्या इसीलिए श्रेष्ठ मानी गई?) मराठी और उर्दू की आत्मकथाओं की पाँत मे बैठने का गौरव भी। यों आत्मकथा की तथ्य परखता और प्रमाणिकता पर ऊँगली उठाना ठीक नहीं। न ही स्त्री की उदाम कामेच्छा

को गलत ठहराने का पोंगापंथी हठ । लेकिन बिना किसी सामाजिक सरोकार और सुस्पष्ट उद्देश्य के उनका वर्णन, और महिमा मंडन ही कहाँ तक उचित है ?[88]

यहाँ पर डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने उक्त प्रसंग में निरूपित प्रणयप्रसंग को लेखिका द्वारा बोल्डनेस बताने का तरीका बताया है । हाँलाकि उन्होंने अपनी शंका रखी है । परंतु आत्मकथा में किसी लेखक या लेखिका के कथन की सत्यासत्यता पर विचार करना कहाँ तक उचित है । पुरूष लेखकों द्वारा किए गए स्वीकृति कथनों पर तो कभी इस प्रकार के प्रश्न उठाए नहीं गए । रोहिणीजी सामाजिक सरोकार और उद्देश्य की बात करती हैं तो इसे भी एक सामाजिक - सरोकार ही समझना चाहिए कि जहाँ एक स्त्री लेखिका अपने जीवन के अतिशय अतरंग प्रसंगो की चर्चा भी खुल्लम खुल्ला बिना नैतिक आडंबरों के कर सकी । यह स्वत्र्यंता यदि पुरूषों के पास है तो स्त्री – (स्त्री लेखिकाओं) के पास क्यों नहीं?

मैत्रेयी के सामाजिक सरोकार आत्म कथा में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होते हैं । पहली बेटी के होने पर मोहल्ले भर की औरतें जब बिसुरती है और मैत्रेयी को सुनाती है कि फला-फला को लड़के हुए हैं और यहाँ एक सतमासी लड़की जन्मी है, जो गंजी है तो मैत्रेयी न केवल उनको टोकती है, जली कटीबातें भी सुनाती है । मैत्रेयी को किसी प्रकार का शोक या अफसोस नही है । अपनी बेटी के जन्म को लेकर । अपनी प्रजाति से वह नफरत नहीं कर सकती । यहाँ पर हम अनुभव करते हैं कि मैत्रेयी में कहीं न कहीं कस्तूरी का आत्म-संघर्ष और विद्रोह उतर आया है ।

निष्कर्षतः क्हाँ जा सकता है कि “कस्तूरी कुंडल बसै” लीक से हटकर लिखी गई आत्मकथा है । जिसे कतिपय मराठी आत्मकथाओं और उर्दू लेखिकाओं की आत्मकथाओं और आत्मकथ्यों के समकक्ष रखीं जा सकती है । इसमें लेखिका ने कहीं भी आत्मदया का प्रयास नहीं किया है । अपने जीवन के ठोस यथार्थ को कलात्मक, निर्ममता और निसंगता के साथ प्रस्तुत कर दिया गया है, बिना यह परवाह किए कि पित्तृसत्तात्मक मनोवृत्तियों और मनोग्रंथियो से पीड़ित पुरुष लेखक या बुद्धिजीवी किस प्रकार की प्रतिक्रिया या बौखलाहट (?) प्रगट करेंगे ।

1. दृष्टव्य : प्रारंभिक भूमिका : कस्तूरी कुंडल बसै – पृ. ५

3. वही : पृ. २५

संदर्भसंकेत

1. दृष्टव्य : प्रारंभिक भूमिका : कस्तूरी कुंडल बसै – पृ. ५
2. दृष्टव्य : वही : पृ. ११
3. वही : पृ. २५

4. दृष्टव्य : वही : पृ. २५
5. दृष्टव्य : पृ. २३-२४
6. वही : पृ. २३
7. वही : पृ. ३५-५७
8. वही : पृ. ३५
9. वही : पृ. ५२-५३
10. दृष्टव्य : वही : पृ. ८६
11. दृष्टव्य : वही : पृ. ८७
12. दृष्टव्य : वही : पृ. ९२
13. वही : पृ. १२६
14. वही : पृ. १२६
15. वही : पृ. १३६
16. वही : पृ. १३६
17. वही : पृ. १३८
18. वही : पृ. १३९
19. वही : पृ. १४३
20. वही : पृ. १४३
21. दृष्टव्य : वही : पृ. १४६
22. वही : पृ. १४६
23. वही : पृ. १४९
24. वही : पृ. १४९
25. दृष्टव्य : वही : पृ. १७४-१७७
26. दृष्टव्य : वही : पृ. १५८
27. दृष्टव्य : वही : पृ. १९६
28. वही पृ. ९७
29. दृष्टव्य : वही : पृ. १६७
30. दृष्टव्य : पृ. १७१

31. दृष्टव्य : पृ. १८१

32. कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. १८३

33. दृष्टव्य : वही : पृ. १८७

34. दृष्टव्य : वही : पृ. १८८

35. दृष्टव्य : पृ. १९०

36. दृष्टव्य : पृ. १९२

37. दृष्टव्य : पृ. १९९

38. दृष्टव्य : वही : पृ. २११

39. दृष्टव्य : पृ. २२१

40. दृष्टव्य : पृ. २२०

41. दृष्टव्य : पृ. २३१

42. दृष्टव्य : पृ. २३९

43. दृष्टव्य :

44. दृष्टव्य : पृ. २४२

45. दृष्टव्य : पृ. २५०

46. वही : पृ. २६२

47. वही : पृ. २६८

48. दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास के विकास परम्परा में साठोत्तरी उपन्यास : डॉ. पारूकांत देसाई : पृ. १७०

49. दृष्टव्य : कस्तुरी कुंडल बसै : पृ. २७०-२७१

50. दृष्टव्य : हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन : डॉ. मनीषा ठक्कर : पृ. १७९

51. दृष्टव्य : कस्तुरी कुंडल बसै : पृ. २७५

52. वही : पृ. २८०

53. वही : पृ. २८७

54. दृष्टव्य : पृ. २९६

55. बिजली के फुल : डॉ. पारूकांत देसाई : पृ. ५४

56. दृष्टव्य : कस्तुरी कुंडल बसै : पृ. २९९

57. दृष्टव्य : वही : पृ. ३०३

58. तुलनीय : औरत होने की सजा : अरविंद जैन तथा औरत के हक में : तस्लीमा नसरीन

59. दृष्टव्य : कस्तुरी कुंडल बसै : पृ. २३२

60. दृष्टव्य : हंस

61. दृष्टव्य : कस्तुरी कुंडल बसै : पृ. सं: ११४

62. बिजली के फूल : डॉ. पारूकांत देसाई : पृ. १६

63. दृष्टव्य : कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. सं. २९५

64. दृष्टव्य : वही : पृ. ९३

65. दृष्टव्य : वही : पृ. १८३

66. दृष्टव्य : वही : पृ. १४९

67. दृष्टव्य : वही : पृ. १३०

68. दृष्टव्य : वही : पृ. १०५

69. दृष्टव्य : वही : पृ. १४९

70. दृष्टव्य : वही : पृ. १४९ से १९०

71. दृष्टव्य : वही : पृ. १८०

72. दृष्टव्य : वही : पृ. २१३ से २५९

73. दृष्टव्य : वही : पृ. २७०

74. दृष्टव्य : वही : पृ. २८७ से ३१९

75. कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. ७२

76. दृष्टव्य : हरिशंकर चरसाई : "वह जो आदमी है न" नामक निबंध : परसाई ग्रंथावली –

77. कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. ११३

78. वही : कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. ११३

79. वही : कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. ३०२

80. वही : कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. ३०३

81. वही : कस्तूरी कुंडल बसै : पृ. ३०३

82. दृष्टव्य : मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य : पृ. २०

83. वही : पृ. २०

84. वही : पृ. २०

85. किवदंतियाँ नहीं है कस्तूरियाँ : क्षमा शर्मा : उपरिवत : पृ. १७६

86. वही : पृ. १७७

87. किले को तोड़ती औरते : मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य : रोहिणी अग्रवाल : पृ. १७९-१८०

88. वही : पृ. १८०

चतुर्थ अध्याय

"गुड़िया भीतर गुड़िया" का विश्लेषणात्मक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय

"गुड़िया भीतर गुड़िया" का विश्लेषणात्मक अध्ययन

"कस्तूरी कुंडल बसै", के पश्चात् मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का दूसरा खण्ड़ "गुड़िया भीतर गुड़िया" सन् 2008 में प्रकाशित होता है। "कस्तूरी कुंडल बसै" में मैत्रेयी की माता कस्तूरी की जीवनी और मैत्रेयी की आत्मकथा समांतर चलते हैं। "गुड़िया भीतर गुड़िया" अपने सही अर्थों में मैत्रेयी की आत्मकथा है। कस्तूरी के महिलामंगल आंदोलन को सरकार विफल कर देती है। महिलामंगल की कर्मचारियों को स्वास्थ्य विभाग में नियुक्त किया जाता है। उसके लिए कस्तूरी को प्रशिक्षण केन्द्र में जाकर प्रशिक्षण लेना पड़ता है। प्रशिक्षित होने के उपरांत वह पी.एच.सी. के जिन जिन केन्द्रों पर रहती है वहाँ चैन से रह नहीं पाती। उन केन्द्रों में दवाइयों और इंजेकशनों को लेकर जो धपले चलते थे। कस्तूरी को वे खटकते थे और इसलिए कस्तूरी भी डॉक्टरों और कंपाऊडरों के आँख की किरकरी बनी हुई थीं। मैत्रेयी माँ के सपना को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर स्वयं को सुरक्षित समझ रही थीं। परंतु थीं तो आखिर वह कस्तूरी की बेटी ही उसके भीतर नारी अस्मिता की जो आग थी। वह उसे एक सामान्य "गृहस्थन" कैसे रहने देती? अपने आचरण द्वारा वह कई बार पत्नी के मानसिक स्तर में दखल देने लगी थी। उसके भीतर कुछ तो था जो धीरे-धीरे विवाह संस्था से विरक्त कर रहा था। शायद उसके भीतर "माँ" ही थी जो परोक्षरूप से मैत्रेयी का रास्ता परिवर्तनकामी लोगों के पास ले गयी। मैत्रेयी को अपना लक्ष्य "कलम" में दिखाई देने लगता है। कलम के सहारे वह अपनी चेतना और आत्मा की आवाज को सुनने लगती है। मैत्रेयी के ही शब्दों में – "सुना था साहित्य व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता देता है। हाँ। लिखकर ही तो मैं ने

जाना कि न मैं धर्म के खिलाफ थी, न नैतिकता के विरूद्ध । मैं तो सदियों से चली आ रही तथाकथित सामाजिक व्यवस्था से खुद को मुक्त कर रही थी ।"[1] और उसका परिणाम है "गुड़िया भीतर गुड़िया" । "कस्तूरी कुंडल बसै" की भाँति यहाँ भी हम प्रथमतः "गुड़िया भीतर गुड़िया" के पाठ को संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे । उसके पश्चात् प्रस्तुत रचना "गुड़िया भीतर गुड़िया" की वस्तुवादी दृष्टि से सम्यक् विवेचन और विश्लेषण होगा । "कस्तूरी कुंडल बसै" में जहाँ "9" अध्याय थे । वहाँ "गुड़िया भीतर गुड़िया" में "18" अध्याय है । यहाँ भी शीर्षक काव्यात्मक और प्रतीतात्मक दिए गए हैं, जिनमें अधिकांशतः कबीर साहित्य से है । अब क्रमशः इनका सार – संक्षेप प्रस्तुत होगा ।

(1) काहे रे नलिनी तू कुम्हलानी

"गुड़िया भीतर गुड़िया" का यह प्रथम अध्याय पृ.9 से 26 में उपन्यस्त हुआ है । अध्याय का शीर्षक ही काफी प्रतीकात्मक और संकेतात्मक है । डॉक्टर से विवाह करने के उपरांत पुष्पा रूपी नलिनी को तो प्रफुल्लित होना था । परंतु उसके भीतर की जो आग है वो उसे चैन नहीं लेने देती । डॉक्टर और मैत्रेयी दिल्ली आ जाते हैं । यहाँ उस स्थिति का निर्माण होता है, जो "अंधेरे बन्द कमरे" के "हरवंश" का होता है । डॉक्टर भी "हरवंश" की भाँति चाहते हैं कि मैत्रेयी मोर्डन बने पर दूसरी तरफ मैत्रेयी जब उस दिशा में कदम उठाती है तो डॉक्टर सशंकित होने लगते हैं । डॉक्टर के इन द्वन्दों से मैत्रेयी भी द्वन्दों की "वैतरणी" में डूबती उतराती है । पार्टी में डॉक्टर सिद्धार्थ के साथ नाचने को लेकर काफी बबाल होता है । डॉक्टर सिद्धार्थ के साथ मैत्रेयी के भावनात्मक लगाव को इंद्रियगोचर किया जा सकता है । "पुरूषस्य भाग्यं त्रिया चरित्रम् " जैसी उक्तियों से मैत्रेयी लहूलुहान होती है । सिद्धार्थ के विदेश जाने पर उत्पन्न रिक्तता को मैत्रेयी पी-एच.डी. के द्वारा भरना चाहती है परंतु,

डॉ.रेखा अग्रवाल की "घरेलू औरत" वाली टिप्पणी से आहत होती है ।[2] कई बार मैत्रेयी का बड़बोलापन भी उसका दुश्मन बन जाता है । "लेड़ी विचलेंसी" की कविता मैत्रेयी में उत्साह भरती है । डॉ.रेखा अग्रवाल मैत्रेयी को पी-एच.डी. के लिए तो मना करती है । परंतु वह इतनी अनउदार भी नहीं है । वह मैत्रेयी को "लिंग्विस्टिक" में डिप्लोमा करने का परामर्श देती है । साक्षात्कार कोल भी आता है, परंतु डॉक्टर उस बात को छिपा ले जाते हैं । इस बात से मैत्रेयी बहुत आहत होती है । डॉक्टर का रवैया तो समझ में नहीं आता । एक तरफ "मेरी जान", "मेरी जान" कहकर मैत्रेयी को फुग्गा बना देते हैं और दूसरे ही क्षण उसमें से हवा निकाल देते हैं । नलिनी के कुम्हलाने का यही कारण है ।

(2) तेरा झूठा मीठा लागा

प्रस्तुत अध्याय 17 पृष्ठों में उपन्यस्त् हुआ है । इसमें वर्णित घटनाएँ कुछ तो पीछे की और कुछ बाद की हैं । अतः इसमें लेखिका ने जहाँ एक तरफ पूर्वदीप्ति के द्वारा पिछली घटनाओं को लिया है वहाँ इन्होंने अपनी कुछ कहानियों का ("रास" और "छुटकारा") हवाला दिया है । जो बाद में लिखी गई होंगी । इस प्रकार आत्मकथा होते हुए लेखिका ने "A to Z" वाली क्रमिक्रता को न रखते हुए औपन्यासिक शिल्प का प्रयोग किया है । प्रथम अध्याय में मैत्रेयी ने दिल्ली में अपने स्थिर होने की बात लिखी है । यहाँ पर उन्होंने वे अलीगढ़ से दिल्ली किस प्रकार आए उसका वर्णन किया है । एक स्थान पर पहली बेटी नम्रता का भी उल्लेख है । डॉक्टर का चयन अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान में हुआ था । अतः सर्वप्रथम उनको उस संस्था के बोयज़ होस्टेल में रहना पड़ा था । डॉ.सिद्धार्थ का पहला परिचय यहाँ होता है । जिनकी चर्चा हम प्रथम अध्याय में पढ़ चुके हैं । प्रथम अध्याय में जहाँ "अनपढ़" फिल्म का जिक्र था यहाँ "छलिया" फिल्म का उल्लेख मिलता है उसके बहाने विभाजन के समय की

विभीषिकाओं का भी लेखिका ने वर्णन किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टया जिसे "एण्टीकल्चरल शॉक" (Anticultural Sock) कहते हैं। मैत्रेयी प्रथमतया उससें पीड़ित लगती है। उसे दिल्ली की तुलना में अपना अलीगढ़ अच्छा लगता है। महानगरीय जीवन में व्याप्त अजनबीपन को भी लेखिका ने इंगित किया है। महानगरों में शहर तो बड़े होते है पर घर बड़े छोटे होते है। बोयज़ होस्टेल में डॉक्टर तथा मैत्रेयी का Stay अल्पकालीन था , बाद में रहने की व्यवस्था होते ही उन्हें अन्यत्र जाना था। शुरू-शुरू में मैत्रेयी को होस्टेल के वातावरण में अटपटापन लगता है, परंतु बाद में उसे छोड़ना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता। इसे लेकर भी डॉक्टर फब्तियाँ कसते रहते हैं कि वह "नोस्टेलिजया" की शिकार है। अलीगढ़ आई थी तब अपने झाँसी के लिए रोती-गाती थी और अब दिल्ली पर अलीगढ़ को लेकर बिसुरती रहती है। डॉक्टर दिल्ली के अच्छे पोश एरिया में किराए का मकान ढूंढने की बहुत कोशिश करते हैं, इसे लेकर मकान मालिकों की मानसिकता और उनकी सकीर्णता और टुच्चापन का वर्णन भी लेखिका ने किया है। इसी संदर्भ में विभाजन के समय पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों की बात डॉक्टर करते हैं कि वे वही शरणार्थी है जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से अपने मकान खड़े कर लिए हैं। अतः मैत्रेयी को जहाँ उनमें टुच्चापन दिखता है। वहाँ डॉक्टर का रवैया थोड़ा संतुलित है और वे उनकी मानसिकता को समझने की चेष्टा करते है। बहुत कठिनाई के बाद एक मकान की बरसाती में उनको रहने का ठौर ठिकाना मिलता है।[3] मैत्रेयी अपनी सहेली कंचन को पत्र लिखती है। उसमें कई पुरानी स्मृतियाँ को ताजा करती है उसी संदर्भ में "दाई की संतो" का किस्सा आता है। यहाँ वही संतो है जिसने मैत्रेयी को "ढोला" सुनाया था, इसी "ढोला" का प्रयोग लेखिका ने अपनी "रास" कहानी में किया है। बाद में इसी रास कहानी के नाटयरूप का श्री राम सेंटर पर मंचन हुआ था और जिसके पाँच शो हुए थे। कंचन ने संतो का कुछ पता

दिया था पर लेखिका उसे ढूंढने के लिए कोई खास प्रयत्न नहीं करती है । इस विषय-वस्तु पर लेखिका की "छुटकारा" कहानी के ताने-बाने कसे गए हैं । कहानी का लेखन उस अपराधबोध से मुक्त होने का था जो नहीं हो सका । डॉक्टर अलीगढ़ से दिल्ली आते है वह स्थिति भी "अलग-अलग वैतरणी" में वर्णित वेदना से तुलनीय है । जिसमें कहा गया है कि गाँव से पढ़े-लिखे लोग शहरों में चले जाते हैं । गाँव का जो कुछ भी "सर्वोत्कृष्ठ" है वह शहरों में चला जाता है । गाँव में कोई नहीं रहना चाहता । केवल वह ही रह जाते है जो, अन्यत्र जाने के लिए सक्षम नहीं है ।[4]

(3) जो पै पिय के मन नाहिं भायी

"जो पै पिय के मन नाहिं भायी" पृष्ठ 43 से 52 में उपन्यस्त् हुआ है । प्रस्तुत अध्याय में भी पूर्वदीप्ति का प्रयोग हुआ है । डॉक्टर साहब और मैत्रेयी दिल्ली आ गए हैं । अपना ठौर ठिकाना बना लिया है । मैत्रेयी पुनः गर्भवती हुई है । डॉक्टर साहब अपने पढ़े-लिखे दोस्तों और उनकी कंपनी के लिए प्रेरित करते हैं पर मैत्रेयी जब लोगों से फ्रीली मिलती जुलती है तब उनका "मध्यकालीन पुरुष" फन उठाता है । डॉक्टर मैत्रेयी को चाहते भी हैं और उल्ट वार भी करते हैं । यह "मारो और प्यार करो" वाली उल्टनीति मैत्रेयी की समझ से परे हैं । प्रस्तुत अध्याय में हम देखते है कि मैत्रेयी अपने वैवाहिक जीवन को लेकर अधिक संतुष्ट नहीं है क्योंकि "पुरुष शासित" सेविका नारी मैत्रेयी का आदर्श कभी नहीं रही । मैत्रेयी स्त्री स्वातंत्र्य में मानती है । उसकी स्मृति में "आम्रपाली की कथा" गूँजती है जो इनके पाली के अध्यापक भगवानदास माहौर ने सुनायी थी । दूसरी ओर डॉक्टर साहब आम्रपाली को "वेश्या" बताकर उसे अपमानित करते हैं । मैत्रेयी के इस बैचेनी का कारण उसका वह "थ्रस्ट" भी है

जो किसी तरह राह नहीं पा रहा था । अतः मेडिकल चेकअप के लिए ”चाँदनी चौक” जाते समय “बहादुरशाह जफर मार्ग” पर “टाइम्स ऑफ इंडिया” के कार्यालय को देखकर मैत्रेयी की आँखोमें एक चमक सी आ जाती है । मैत्रेयी में एक जन्मजात विद्रोहभाव है । फिल्म दिग्दर्शक या निर्माता महेशभट्ट के शब्दों में –

“All Art is based on the spirit and emotion of dissent”[5]

अर्थात् प्रत्येक कला असहमति की भावना पर आधृत होती है । यहाँ पर प्रकारान्तर से “पोप सिंगर” Lady gaga का कथन भी स्मृतिगोचर हो रहा है –

“I am an artist……I'm married to my loneliness.”[6]

अर्थात् एकांकीपन ही मेरी सहचरी है । ऐसा लगता है कि कलाकार मात्र अकेलेपन के अभिशाप ढ़ोने के लिए अभिशप्त होता है । मैत्रेयी यदि सामान्य घरेलू प्रकार की स्त्री होती तो मारे खुशी के फूली न समाती, परंतु एक पढ़ा-लिखा डॉक्टर पति और महानगर में निवास होते हुए मैत्रेयी “संतप्त” है । तड़प रही है, क्योंकि उसके भीतर जो लिखने की तड़प है, वह उसे बेचैन कर देती है । इस प्रकार मैत्रेयी के वैवाहिक जीवन और उसकी लेखकीय जिजिविषा के बीच का द्वंद यहाँ अभिव्यक्त हुआ है । मैत्रेयी ब्राहयतः आधुनिक होने का प्रयत्न भी करती है और उसमें दो एक बार हास्यास्पद स्थितियों से गुजरने के हादसों से भी दो-चार होना पड़ता है ।

(4) एक सुहागिन जगत पियारी

“गुड़िया भीतर गुड़िया” का चतुर्थ अध्याय “एक सुहागिन जगत पियारी” कुल 23 पृष्ठों मे उपन्यस्त् हुआ है । (पृ. 53 - 76) इस अध्याय की एक

महत्वपूर्ण घटना “इल्माना – अहमद“ का प्रवेश है । इल्माना – अहमद ने अलीगढ़ युनिवर्सिटी से “बोटनी” में मास्टर डिग्री हासिल की थी । सौन्दर्य और प्रतिभा का मनिकांचनयोग हमें इल्माना में दृष्टिगोचर होता है । उनकी तुलना में उनके पति डॉक्टर अहमद उतने प्रिय दर्शनि नहीं है । गुजराती कहावत – “कागड़ो दैतरूं लई गयो“ का स्मरण मस्तिष्क में होना स्वभाविक है । इल्माना के द्वारा हमें मुस्लिम औरतों, पढ़ी-लिखी और शिक्षित की भी स्थिति का ज्ञान होता है । इस अध्याय में “सती शाण्डिली” की कथा भी आती है । बिहारी के दोहे और “बाण भट्ट की आत्मकथा“ का जिक्र भी मिलता है । जिससे मैत्रेयी की शैक्षिक पृष्ठभूमि भी प्रकट होती है । इस अध्याय में “नैनसी” का भी परिचय मिलता है जो शारीरिक अत्याचार की शिकार होती है । आजकल जिस Domestic Violence का जिक्र हो रहा है वह भारतीय सामाजिक परम्परा में स्त्रियों की नियति सा बन गया है । “मिसिज अरोरा” का पति उसके साथ “अननैचुरल सेक्स” अर्थात् “Anal Coitus” (गुदा मैथुन) करता है । उसकी प्राच्य और पाश्चात्य की चर्चा उभय के कामशास्त्र सबंधी ग्रंथो में मिलता है ।[7] एक यौनखेल (Love game) के रूप में उसका प्रयोग उतना आपत्तिजनक नहीं है ।[8] पर इस तथ्य को ध्यानार्ह रखना चाहिए कि इस प्रकार का मैथुन उभय की सम्मति से ही होना चाहिए अन्यथा “जन्नत जहन्नुम” में बदल सकता है । पूरा का पूरा “कुम्भी पाक” । इल्माना का आकर्षक व्यक्तित्व कई डोक्टरों को लट्टू बना देता है । उसके कारण अनेक सहकर्मी डॉक्टरनियों को भी ईष्या होने लगती है । शुरू शुरू में इल्माना का स्वागत जोशोखरोश से होता है । परतुं बाद में “छीं छीं अंगूर खट्टे है” न्याय से लोकबाग उसकी पीठ के पीछे बुराई करते हैं । मैत्रेयी के पति डॉक्टर साहब भी अपनी मैत्रेयी पर परोक्ष दबाव डालते हैं कि वह उसकी संगत न रखे, परंतु मैत्रेयी को इल्माना का व्यक्तित्व न केवल

आकर्षित करता है बल्कि वह एक चिंगारी का काम करता है जो मैत्रेयी के भीतर की रचनात्मक अग्नि को प्रज्वलित करती है । उसके कारण ही मैत्रेयी में "नारी अस्मिता" के भाव कुलबुलाने लगते हैं और इसी सबब मैत्रेयी में इल्माना के प्रति एक कृतज्ञता का भाव भी पैदा होता है ।[9] यहाँ एक और नारी जीवन का अंतर्विरोध भी प्रत्यक्ष हुआ है कि लोक-बाग नौकरी पेशा महिलाओं को तो कामकाजी कहते हैं, परंतु घर परिवार में खपने-खटनेवाली महिला के श्रम को फालतू समझ लिया जाता है ।[10] वस्तुतः कामकाजी महिलाओं के श्रम के समान ही घरेलू स्त्रियों के श्रम को समझना चाहिए, दूसरे भारतीय परिवेश में कामकाजी महिलाओं पर जो दोहरा बोझ पड़ता है वह भी विचारनीय समस्या है ।[11]

(5) जियरा फिरे उदास

पंचम अध्याय "जियरा फिरे उदास" कुल 14 पृष्ठों (पृ. 77 – 92) में उपन्यस्त् हुआ है । इस अध्याय में हमें समकालीन भारतीय इतिहास के कुछ परिदृश्य उपलब्ध होते हैं । इस दृष्टि से इसमें निरूपित काल सन् 1971 से सन् 1977 तक है । 1971 के बांग्लादेश वाले युद्ध से हिंदुओं में उमंग उत्साह की लहरें दौड़ने लगती हैं, परंतु "एम्स" के परिसर में पूर्व पाकिस्तान से जुड़े मुस्लिम परिवारों में चिंता का माहौल देखा जाता हैं । वे लोग अपने पूर्व पाकिस्तान में स्थित परिवारों के लिए चिंतित दिखते है । यहाँ एक मिथ टूटता है कि युद्ध हंमेशा विधर्मियो में होता है, पूर्व पाकिस्तान और पश्चिम पाकिस्तान इस्लामपरस्त देश है । वहाँ के 95% लोगो का मज़हब इस्लाम है । फिर भी यह युद्ध हो रहा है । यहाँ साबित हो जाता है कि मज़हब से भी ज्यादा पकड़ भाषा की होती है ।[12] 1971 का यह युद्ध जो पूर्व पाकिस्तान को बांग्लादेश में बदल देता है, समकालीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है । यह युद्ध बंगबंधु

“शेख मजुर्बीर रहेमान” अपने “बंगबंधुओं” की अस्मिता के लिए लड़ते हैं। यह युद्ध तानाशाह विरूद्ध लोकतंत्र का है, यह युद्ध उर्दू बनाम बंग्ला का है। चारों तरफ “अमार सोनार बंग्ला” के स्वर गूंजित – अनुगूंजित होते हैं। इस युद्ध में अमरीका की परवाह किए बिना श्रीमती इंदिरा गांधी खुलकर बंगबंधु का साथ देती है। भारतीय सैनिक वहाँ की जनवाहिनीयों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ता है। इसके कारण भारत में भी युद्ध के बादल मंडराने लगते हैं। महानगरों तथा औद्योगिक नगरों में अंधारपट छा जाता है। सायरनों की ध्वनि से लोग अपने घरों में दुबककर बैठ जाते हैं। इस युद्ध के कारण एम्स के परिसर में शुरू-शुरू में हिंदू-मुस्लिम एकता की भावना दृष्टिगोचर होती है, परंतु जैसे जैसे युद्ध की भयावहता गहराने लगती है। यह युद्ध पश्चिम पाकिस्तान और बांग्लादेश का नहीं, भारत और पाकिस्तान का युद्ध हो जाता है। युद्ध के कारण सामान्य (Normal) शिक्षित लोगों तक में सांप्रदायिक भावनाएँ भड़कती हैं। एम्स के परिसर में रात्रि के समय भ्रमण के लिए वोलेंटियर की नियुक्तियाँ होती हैं तब डॉक्टर अहमद और डॉक्टर रिज़वी को उनमें शामिल नहीं किया जाता है।[13] परिसर की औरतें भी इल्माना और कैसर से अंतर रखने लगती हैं। हिंदू-मुस्लिम से अविश्वसनीयता का वातावरण पैदा होता है। इस युद्ध में अमेरिका पाकिस्तान के साथ था। भारत को रूस की सहानुभूति प्राप्त थी। तत्कालीन अमरीकी प्रेसिडन्ट ”निक्सन” का भी उल्लेख यहाँ हुआ है।[14] प्रेसिडन्ट निक्सन श्रीमति इंदिरा गांधी के संदर्भ में अंटसंट निवेदन भी देते हैं। परंतु इस युद्ध के कारण श्रीमती इंदिरागांधी की प्रतिष्ठा न केवल भारत में अपितु बाहर के देशों (अमेरिका छोड़कर) बढ़ती है। उसे एक “लौह महिला” (Iron Lady) का बिरूद मिलता है। बहुतों को स्मरण होगा कि उस समय संसद में “जनसंघ“ के सासंद वाजपेयी ने कहा था कि इस संसद भवन में एक

ही पुरूष है और वह है इंदिरागांधी, परंतु बांग्लादेश के स्थापित हो जाने के बाद इंदिरा के संदर्भ में लोगों का मोहभंग होने लगता है । इंदिरा गांधी एक कट्टर शासक के रूप में उभरकर आती है । “मीसा” का कानून और परिवार नियोजन संबधी ज्यादतियों के कारण माता पुत्र दोनों के संदर्भ में भारतीय जनता में बुरेभाव उत्पन्न होते हैं । आपातकालीन स्थिति के कारण देश के कई नेता जयप्रकाशनारायण, मोरारजी आदि जेलों में ठूस दिए जाते हैं । आपातकालीन स्थिति का विरोध हिंदी के स्वनाम धन्य लेखक फणीश्वरनाथ रेणु भी करते हैं । और उसके कारण उन्हें जेल यात्रा भी करनी पड़ती है । रेणु को “एम्स” परिसर के बहुत से लोग केवल “तीसरी कसम” कहानी के कारण ही जानते है क्योंकि उस पर फिल्म बनी थीं । रेणु के आंचलिक उपन्यास “मैला आंचल” के कारण मैत्रेयी उनकी परम भक्त थीं । “मैला आंचल” तथा राजेन्द्र अवस्थी (जंगल के फूल के लेखक) का उल्लेख भी प्रस्तुत अध्याय में हुआ है । आपातकालीन स्थिति (इंमरजन्सी) का भी यथार्थ वर्णन लेखिका ने किया है । सन 1977 में रेणु का भी निधन हो जाता है । रेणु के निधन पर मैत्रेयी दुःख प्रकट करती है ।[15] बांग्लादेश के युद्ध के कारण भारतीय समाज में जो विषाक्त वातावरण निर्मित होता है उसके कारण मैत्रेयी इल्माना से नजरें चुराने लगती हैं । परंतु वही इल्माना मैत्रेयी की बच्ची को एक बार संकट स्थिति से बचा लेती है । इस प्रसंग के कारण फिर से उनका मेल-जोल कायम हो जाता है । 1977 की इंमरजन्सी के कारण इंदिरा गांधी एक क्रूर और र्बबर शासक के रूप में उभरकर आती है । जिसके दुष्परिणाम भी उसे भुगतने पड़ते हैं । संक्षेप में एम्स परिसर का वर्णन तत्कालीन घटनाओं के संदर्भ में देखने को मिलता है ।

(6) धिय सँबै कुल खोयो

"गुड़िया भीतर गुड़िया" का षष्ठ अध्याय "धिय सबै कुल खोयो" लगभग 50 पृष्ठों का (92 से 129) सुदीर्घ अध्याय है। इसमें मैत्रेयी ने पुनः पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया है। हालाँकि उसे तीन बेटियाँ हो गई हैं – नम्रता, मोहिता, सुजाता। लड़कियाँ भी बड़ी हो गई हैं। तीनों लड़कियों ने डाक्टरी पास कर ली है। तीनों दामाद डॉक्टर है। नम्रता के तो एक लड़की भी हो गई है – वासवदत्ता। माता की सहकार्यकर गौरा ने गाँव में (सिर्कुरा) एक धार्मिक कार्यक्रम रखा था। उसमें वह मैत्रेयी के परिवार को आमंत्रित करती है। वहाँ पर प्रसंग सहचयन की टेक्निक का प्रयोग करते हुए मैत्रैयी पूर्वदीप्ति के द्वारा अपने आर्यसमाजी गुरुकुल की शिक्षा-दीक्षा के तमाम अनुभवों को बड़ी ही यथार्थशैली में वर्णन करती है। यहाँ पुनः यह कहने को मन होता है कि "कस्तूरी कुंडल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" वस्तुगत दृष्टि से आत्मकथाएँ है पर मैत्रेयी का उपन्यासकार हर जगह पर हावी रहा है और उन्होंने अपनी ये आत्मकथाएँ आत्मकथा की पारंपारिक शैली (कालक्रमिकता) को न ग्रहण करते हुए औपन्यासिक शिल्प को लिया है। अतः कोई चाहे तो इन रचनाओं को "औपन्यासिक आत्मकथा" कह सकता है। यहाँ भी मैत्रेयी ने कालक्रमिकता की उपेक्षा की है। प्रथमतः सोनपाल पटवारी के नम्बरदार को सिर्कुरा के प्रति सचेत करता है। वह कहता है कि आपकी ये प्रगतिवादी विचार एक तरफा है। आप लड़कों की शिक्षा का प्रबंध तो करते है, परंतु लड़कियों की शिक्षा पर आपने कभी विचार नहीं किया।[16] सोनपाल पटवारी ने अपनी लड़की निर्मला को आर्यसमाजी गुरुकुल में भेजा था। पटवारी की इस बात से प्रेरित होकर नंबरदार अपनी पुत्री सुशीला को बालिकाओं के गुरुकुल में भेजते हैं और इस प्रकार एक नयी लीक को चलाते हैं। गुरुकुल से पढ़-लिखकर आई सुशीला के वाणी-व्यवहार से गाँववाले अभिभूत हो जाते हैं और उनके मन में

"स्त्री शिक्षा" को लेकर वैचारिक आंदोलन शुरू होते हैं। कस्तूरी नंबरदार से काफी प्रभावित थी। अतः उनके कहने पर वह अपनी बेटी मैत्रेयी को भी बालिकाओं के गुरूकुल में भेजती हैं। मैत्रेयी की प्राथमिक शिक्षा गुरूकुल के कठोर अनुशासन में संपादित होती है। मैत्रेयी का यज्ञोपवित भी होता है।[17] यहाँ पर आर्यसमाजी संस्थाओं के कुछ अंतर्विरोध भी सामने आते हैं। वेद और प्राचीनता के नाम पर चलानेवाले दंभ और ढकोसलों का पर्दाफाश भी मैत्रेयी यहाँ करती है। यह सब स्मृतियात्रा द्वारा घटित होता है।

प्रस्तुत अध्याय में एक साथ कई प्रसंगों और मुद्दों की चर्चा हुई है। पूर्वदीप्ति के द्वारा जहाँ एकतरफ स्वाधीनता पूर्व की स्थितियों का गुरूकुल पध्धतिका उल्लेख हुआ है। वहाँ आज़ादी के बाद के आये कुछ परिवर्तनों को भी रेखांकित किया गया है। भारत-पाकिस्तान विभाजन की घटना को भी लिया है।[18] ध्यान रहें इसके पूर्व उसके पूर्ववर्ती अध्यायों में 1971 के बांग्लादेश युद्ध को लिया गया है। इस प्रकार अधोमुखी कथा प्रवाह की औपन्यासिक टेक्निक यहाँ प्रयुक्त हुई है। मैत्रेयी के तीन – तीन बेटियाँ हो गयी हैं और साथ ही साथ "इदन्नमम", "चाक" इत्यादि उपन्यास और "चिन्हार" कहानी संग्रह के प्रकाशित होने के भी उल्लेख यहाँ हैं।[19] कस्तूरी की यह प्रबल इच्छा थी कि उसकी पुत्री मैत्रेयी सचमुच में "पौराणिक मैत्रेयी" के नाम को सार्थक करते हुए किसी ऊँचे प्रशासनिक पद पर पहुँचे। उसकी बेटी उससे भी बड़ी अफसर बने और कोई "Power and Postion" वाला पद हासिल करे; मैत्रेयी कस्तूरी की इस इच्छा की पूर्ति तो नही कर सकती परंतु एक-दूसरे क्षेत्र में (साहित्य के क्षेत्र) में विजयपताका फहराते हुए कई कीर्तिमान स्थापित करती है।

कस्तूरी और मैत्रेयी सपरिवार जब गौरा के आमंत्रण सिर्कुरा पहुँचते हैं तो उन्हें ग्रामीण सांस्कृतिक ग्राम पंचायत (खाप पंचायत) के कटु अनुभव होते

हैं । गाँव के लोग बेटी को जन्म देनेवाली कस्तूरी की निंदा तो करते ही हैं उसकी बेटी मैत्रेयी ने भी तीन बेटियों को जन्म देकर बेचारे (?) डॉक्टर साहब को निरवंशिया बना दिया है ऐसा कहते हुए उसे बहुत लांक्षित करते हैं और दामाद के साथ जो नाइंसाफी हुई है उसकी भरपाई करने की जिम्मेदारी लेते हुए किसी दूसरी कन्या के साथ के विवाह तक की तत्परता बताते हैं । यहाँ पर स्वाधीनता के बाद का यह अंतर्विरोध भी सामने आया है कि जहाँ आज़ादी के बाद गाँव में अनेक प्रकार के परिवर्तन आए हैं । खेती-बाड़ी में नए तरीके आए हैं । Latest Technology का उपयोग हो रहा है । वहाँ साथ ही साथ उनकी पुरानी सोच में नारी विषयक सोच में कोई बदलाव नहीं आया है । आज भी गाँव में उस स्त्री को "बाँझ" ही कहा जाता है जिसने किसी पुत्र का प्रसव न किया हो फिर भले ही उसे संतति के नाम पर दो-तीन लड़कियाँ हों । गाँववालों के हिसाब से तो कस्तूरी भी बाँझ थी, मैत्रेयी भी बाँझ है । हमारी इस पारंपरिक सोच पर धार्मिक विधि-विधानों के समय होनेवाली आरतियों का भी प्रभाव होता है । उदाहरणतया - गणेश चतुर्थी के अवसर पर होनेवाली गणेश वंदना में कहा गया है – "अंधे को आँख दे, कोढ़िन को काया, बांझिन को पुत्र दे, निर्धन को माया ।" अर्थात् यहाँ भी बांझिन को पुत्र देने की बात कही गयी है । अन्यथा "बांझिन को संतति" भी कह सकते थे । पर यह पारंपरिक सोच है कि स्त्री को तब तक बाँझ समझा जाता है जब तक वह किसी "कुलदीपक" को जन्म न दे । गाँव के लोगों के मतानुसार डॉक्टर को चाहिए कि इस बाँझ-परम्परा को उन्हें तिलांजली देते हुए, अपने वंश को चलाने के लिए किसी दूसरी लड़की से विवाह कर लेना चाहिए ।[20]

यह तो डॉक्टर की समझदारी और शिक्षा थी जो वे इन अनपढ़, गँवार, खाप-पंचायतों के मुखिया के प्रभाव में नहीं आए । क्योंकि उनका मेडिकल

सायन्स का ज्ञान कहता हैं कि पुत्र या पुत्री की गर्भस्थिति में स्त्री कहीं बीच में नहीं आती वह पूर्णरूपेण पुरूष पर ही निर्भर है। अभिप्राय यह कि किसी स्त्री को यदि पुत्रियां ही पुत्रियां होती हैं तो उसमें वह स्त्री जिम्मेदार नहीं होती। बल्कि पुरूष ही उत्तरदायी होता है तो यदि "बाँझ" कहना हो तो पुरूष को कहना चाहिए।

यहाँ इस तथ्य को भी रेखांकित करना चाहिए कि हमारे यहाँ धर्म, रूढ़ि और परम्परा के नाम पर कई बार अनुपयुक्त ही नही अनैतिक कार्य होते हैं। अभी सद्य ही प्रदर्शित हुई "रिवाज" नामक फिल्म में यह बताया गया है कि हमारे यहाँ बीडर के एक गाँव में ऐसा रिवाज है कि परिवार की प्रथम पुत्री अविवाहित रहती है। उससे "जिस्म-फरोशी" का काम करवाया जाता है जिससे उस परिवार विशेष की आर्थिक स्थिति में इजाफा हो। यह अनैतिक कार्य धर्म-रूढ़ि परम्परा के नाम पर होता है। फिल्म में यह बताया गया है कि ऐसी ही एक लड़की शहर के एक लड़के को प्रेम करने लगती है। वह लड़का भी उसे जी जान से चाहता है और बिना दान – दहेज के उससे विवाह करने को भी उद्यत है, परंतु गाँव के लोग उसमें तरह – तरह के अड़गे लगाते हैं।[21]

इसमें कई बार यह भी देखा गया है कि कुछ न्यस्तहित-वाले लोग इन मुदद्दों में अधिक दिलचस्पी दिखाते हैं। "सिर्कुरा" वाले प्रसंग में भी कई लोग मैत्रेयी को बाँझ ठहराकर अपने अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेंकना चाहते थे।

प्रस्तुत अध्याय की एक अहम और दुःखद घटना यह है कि ब्रेनहेमरेज से कस्तूरी का निधन हो जाता है। सुखद बात यह है कि उस समय कस्तूरी अपने डॉक्टर दामाद सुभाष के साथ थी। यहाँ हमें कस्तूरी की तीन पीढ़ियों की कथा मिलती है। कस्तूरी मैत्रेयी – मैत्रेयी की बेटियाँ। इदन्नमम उपन्यास की

मंदाकिनी की तीन पीढ़ियों की कहानी इससे तुलनीय है । कस्तूरी की मृत्यु के उपरांत मैत्रेयी का जमीन-जायदाद हासिल करने के लिए जो प्रयास करती है यह उसकी बेटियों को भी अखरता है । उन्हें उसमें माँ की कठोरता लगती है । परंतु मैत्रेयी को डर था कि कहीं उसकी इस स्थिति का लाभ लेते हुए उसकी जमीन-जायदाद को मामा के लड़के हथिया न लें । अतः मैत्रेयी के इस कार्य को अमानवीयता या कठोरता के रूप में नहीं लेना चाहिए । मैत्रेयी का यह कथन बड़ा ही सूचक है – "हमारे यहाँ मतलब कि इस कुल में मृत्यु का दुःख मनाने के लिए रोने और शोक करने की मोहलत नहीं ।"[22]

(7) तृषावंत जो होयगा

"तृषावंत जो होयगा........." अध्याय लगभग 12 पृष्ठों में (पृ. 124-140) उपन्यस्त् हुआ है । यहाँ भी मैत्रेयी आत्मकथा की कालक्रमिक पद्धति का अनुसरण न करके औपन्यासिक कथानक पद्धति पूर्वदीप्ति का प्रयोग करती है । बल्कि यहाँ तो पूर्वदीप्ति में भी पूर्वदीप्ति मिलती है । डॉक्टर साहब से विवाद के उपरांत मैत्रेयी का रचनाकार एक तरह से मर-सा गया था । कभी कभार अपने ह्रदय के आंतरिक उद्‌गारों को, रोमेंटिक भावनाओं को वह काव्यरूप देती थी, बच्चियाँ जब छोटी थी तब उनके स्कूल-कोलेज के मेगेज़िनों के लिए भी मैत्रेयी ने कुछ कविताएँ और कहानियाँ लिखी है, परंतु बाद में नम्रता के आग्रह पर मैत्रेयी पुनः लिखने के लिए अपना मन बनाती है । उसके लिए वह डॉक्टर साहब के साथ कई प्रकाशन गृहों के दफ्तरों की खाक भी छानती है । यहाँ पर साहित्यिक जगत का एक बड़ा ही विकृत और भौंडारूप सामने आता है कि जब कोई लेखिका अपनी रचनाओं के प्रकाशन हेतु कहीं जाती है तो पुरूष साहित्यकारों के लिए वह उपभोग की एक सामग्री होती है । वे ज्यादात्तर उसी रूप में उसको लेते हैं और यदि किसी महिला के पति डोक्टर या किसी

उच्चपद पर होते हैं तो उनके उस पद का अपने हक में कैसे प्रयोग किया जाए यहीं उनके लिए विचारणीय मुद्दा बन जाता है । मैत्रेयी चाहती थी कि उसकी रचनाएँ प्रकाशित हों । डॉ. साहब उसके लिए कुछ प्रयत्न भी करते हैं । अपनी अर्थराशि लगाकर वह मैत्रेयी का एक कविता संग्रह – "लकीरें" प्रकाशित करवाते है । परंतु इस प्रकार से कविता संग्रह के छपने में केवल छपाश की एक संतुष्टिभर होती है । डॉक्टर साहब कहते हैं कि यह संग्रह उन्होंने अपने एक मित्र के प्रयास से जहाँ आमंत्रण पत्र कार्ड इत्यादि छपते है, वहाँ से प्रकाशित करवाया हैं । उनके इस कथन को नाटकीय वक्रोति "Dramatic Irony" कह सकते हैं ।[23] क्योंकि डॉक्टर साहब को ज्ञात नहीं है कि इस प्रकार से कविता-संग्रह का छपना न छपने के बराबर है । क्योंकि उसकी प्रतियाँ केवल जान-पहचानवाले कुछ लोगों तक जाती हैं और साहित्यिक तबक्कों में वह पुस्तक अचर्चित, असमीक्षित रह जाती है ।

इस प्रकार की रोमंटिक कविताओं से स्वयं मैत्रेयी का मन उचट जाता है । उसके पास ग्रामीण-जीवन के जो अनुभव हैं, उसको लेकर वह लिख सकती है । परतुं वहाँ पर मैत्रेयी के सामने यह दुविधा है कि उसके जीवन के कुछ ऐसे पक्ष उद्घाटित होंगे । जिनसे डॉक्टरसाहब की इज्जत को बँटा लग सकता है या उनके मन में अपनी पत्नि की हीन पृष्ठभूमि की "अवधारणा" बन सकती है । यहाँ पर पूर्वदीप्ति के रूप में "रामश्रीचाची" की कथा आती है । रामश्रीचाची एक ममतामयी औरत है । वह सरदारखाँ के बच्चों को पालती है ।[24] परंतु इसी औरत पर उसके पति और देवर की हत्या का आरोप लगता है । यह ग्रामीण जीवन का एक बड़ा ही घृणित पक्ष है । वे "रामश्रीचाची" का यौन शोषण किस प्रकार करते हैं, यह यहाँ निरूपित हुआ है और स्त्री जब बलात्कृत होती है तो हर दृष्टि से उसी को दोषी करार दिया जाता है । "कुल्टा" और "वेश्या" वही

कहलाती है । इन प्रसंगों का जिक्र “इदन्नमम” आदि उपन्यासों में लेखिका ने कहीं-न-कहीं किया है ।

(8) मोरा मन मतबारा

“मोरा मन मतबारा” अध्याय 18, 19 पृष्ठों में (पृ. 142 - 161) उपन्यस्त् हुआ है । इस अध्याय में लेखिका अपना मन बना लेती है कि उसे गद्य पर अपनी लेखनी चलानी चाहिए[25] इसमें लेखिका ने यह भी उल्लेख किया है कि उनका गाँव “करबन” नदी के किनारे है । उन्हीं दिनों मे (15 July, 1989) साप्ताहिक हिन्दुस्तान में एक प्रेमकहानी प्रतियोगिता का विज्ञापन प्रकाशित हुआ था । मैत्रेयी अपने प्रेम-अनुभवों के आधार पर एक कहानी लिखती है । मैत्रेयी जब ११ साल की थी और स्कूल में पढ़ने जाती थी, उन दिनों की घटना है रवीन्द्रनारायणसिंह चौहाण चकबंदी के लिए नायब तहसीलदार के रूप में नियुक्त हुए थे । उनके पास एक “रिले साईकिल” थी । उन दिनों में किसी के पास रिले साईकिल होना भी बहुत बड़ी बात समझी जाती थी । बालिका मैत्रेयी को तहसीलदार साहब अच्छे लगते हैं और तहसीलदार भी इस बालिका को पसंद करते हैं । अपने जीवन का पहला प्रेमपत्र वो तहसीलदार साहब को लिखती है, जिसमे उसने लिखा था कि उसने उनका खुश्बूदार रुमाल चुरा लिया है और एक दिन वह उनके “रिले साईकल” पर भी बैठेगी । मैत्रेयी का यह प्रेमपत्र गाँव में काफी चर्चित रहता है । तहसीलदार साहब तक मैत्रेयी से कहते हैं कि “मुन्नी रोना नहीं तुम बड़ी बहादुर हो, तुमने मेरा तबादला करा दिया ।” मैं अपने ट्रांसफर के लिए कितनी अर्जियाँ देता था, तबादला नहीं हुआ । लेकिन मुन्नी मान लेना चाहिए, तुम्हारे लिखे में दम है........मुन्नी लिखती रहना । बड़े होकर और भी अच्छा लिखना । तुम अच्छे अच्छों की छुट्टी कर देना जैसे मेरी की...।[26] जानकी शरण नायब साहब की ये बात बाद में कितनी

सत्य प्रमाणित हुई ये तो हम देख ही सकते हैं। उसके बाद दूसरा प्रेम "मैत्रेयी का अपने एक सहपाठी से होता है । किन्तु ध्यान रहे ये "प्रेम प्रसंग" "एडोलसेंट" पीरियड के हैं और उसे हम शारीरिक नहीं कह सकते। उस उम्र में लड़के-लड़कियों में एक प्रकार का जो स्वभाविक आकर्षण होता है उसका चित्रण यहाँ हुआ है । उस सहपाठी की बचपन में ही शादी हो गयी थी और उसकी पत्नी को "लोक बाग" चढ़ा रहे थे कि वह अपने आदमी को काबू में कर ले और उस रंडी पर सरेआम जूती चलाए[26] मैत्रेयी अपने उस सहपाठी प्रेमी की बहू से टकराने को सोच ही रही थी कि सामने से वह कहती है – "बकने दो, घर भर को । हम तो सब जानते हैं बिटियन की जान से उमर सम्भारते ही बदफैली लग जात है। अब देखा तो जौन लांछन मायके में हमारे ऊपर तौन ही इते....[27] इस तरह अपने कुछ प्रेम-प्रसंगो को लेकर मैत्रेयी ने साप्ताहिक हिंदुस्तान लिए अपनी प्रथम प्रेम-कहानी लिखी।

(9) अखियाँ जान सुजान भईं

"अखियाँ जान सुजान भईं" अध्याय कुल 22 पृष्ठों (162 - 184) का है। इसे मैत्रेयी की विशेषता या संस्कार ही कहना चाहिए कि उनकी इन आत्मकथाओं के उपशीर्षक किसी न किसी कवि की पंक्तियों की मुद्रा लिए हुए होते हैं। पर अधिकांशतः उन्होंने कबीर के पदों से शीर्षक लिए हैं। यहाँ पर जो शीर्षक है, उस पर रीतिकाल के रीतिमुक्तधारा के कवि घनानंद की है । आप किन कवियों या लेखकों से प्रभावित है उससे भी आपके साहित्यिक चरित्र को आँका जा सकता है। अध्याय में एक प्रसंग आया है, मैत्रेयी इल्माना के दफतर में बैठी है तभी एक लड़की आती है। मैत्रेयी के पूछने पर उसने बताया कि वह मन्नू भण्डारी की कहानियों पर शोध कर रही है। तभी मैत्रेयी के मन में एक विचार उगता है कि "क्या कभी कोई मेरी रचनाओं पर भी रिसर्च करेगा? यह

सवाल कबूतर की तरह उड़कर मैत्रेयी तक आया मन को अशांत कर गया।"[28] और आज मैं नही भारतभर के विश्व-विद्यालयों में मैत्रेयी पर कई-कई आयामों के तहत शोधकार्य हो रहा है। मैत्रेयी कभी जिनके भाग्य से हसद करती थी, उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के लिए, उन सबसे आज वे आगे निकल आयी हैं। वस्तुतः देखा जाए तो मैत्रेयी को इस मकाम तक ले जाने में कुछेक व्यक्ति और कुछेक प्रसंग उत्तरदायी है। व्यक्तियों में भगवानदास माहौर साप्ताहिक हिंदुस्तान के सह-सम्पादक, इल्माना, मैत्रेयी की बेटियाँ है। प्रसंगो में हम उस प्रसंग को ले सकते हैं जिनमें मैत्रेयी साप्ताहिक हिंदुस्तान के सह-सम्पादक को मिलने "सोनारूपा रेस्ट्रोरां" में जाती है। अपने भय और पूर्वग्रहों की खोल से निकलकर एक नए अनुभव को वह अर्जित करती हैं। वहाँ जाने से पहले मैत्रेयी के मन में खूब ऊहापोह चलता है जिसे निम्नलिखित पंक्तियोंमें दर्शाया गया है – मैं आपके द्वारा संपादित पत्रिका पर पूरी तरह फिदा हूँ। और आप दीक्षा देने के पहले दक्षिणा के तलबगीर.....वशिष्ठ, याज्ञवल्कय, द्रोणाचार्य, विश्वामित्र जैसे ऋषियों की परम्परा की अगली कड़ी। तय कर रहें है कि स्त्रियाँ गुरूओं को क्या दे सकती हैं। एक विशेष चीज़ अपना शरीर। बेशक मैं आपको अपना हितैषी समझकर यहाँ आयी हूँ। आप मेरी हिम्मत बढ़ायेंगे, मगर आप तो मेरे पति की तरह पेश आ रहे हैं। वही प्यास, वही वासना चहेरे पर कामुक छाया.........निश्चित ही मैं पतिव्रत धर्म से विलग हूँ क्योंकि पति के बिना आज्ञा के चली आई। मगर मैं अपनी चेतना से लैश हुई, कभी चौंकठ लाँधी, क्या ये बात समझ रहें है आप? नहीं समझ रहे तो समझ जाइए कि साहित्य, कला और राजनीति जैसे क्षेत्रों में आने के बहाने हम ऐसी छूटें नहीं चाहते जिन्हें मौज-मस्ती से जोड़ा जाता है। बस मनमानी करते हैं कि हमारी रचनात्मकता को जमीन मिले।[29] मैत्रेयी वहाँ जाती तो है पर सांकेतिक भाषा में सह-सम्पादकजी

को बता देती है कि उसके पति भी वहाँ आ सकते है । उसके बाद सह-सम्पादकजी मेत्रैयीको कुछ रचनात्मक परामर्श देते है । वे उन्हें समझाते हैं कि उनको कोई उपन्यासिका लिखनी चाहिए । “चैम्मीन” नामक उपन्यास का हवाला भी देते है जो “मछुआरे” शीर्षक से हिन्दी में प्रकाशित हुआ है । “धीरे बहो दोन” को पढ़ने की सलाह भी देते हैं । रेणु की भाँति अपने आँचलिक अनुभवों और संदर्भों को प्रयुक्त करने की प्रेरणा भी देते हैं । और पथप्रदर्शक की भूमिका में कहते है – “याद रखना कि साहित्य की दुनिया भी बेईमान, झूठे और मक्कार लोगों से भरी पड़ी है । गंदगी क्या होती है, कहाँ होती है इस बात को एक ही तरीके से नहीं जाना जा सकता है । खुद को बचाया जा सकता है ।”[30] साप्ताहिक हिंदुस्तान में मैत्रेयी की कहानी प्रतियोगिता के निकष पर असफल रहती है । नतीजे में प्रथम स्थान कानपुर के राजेन्द्रराव को मिला था ।[31] परंतु सह-सम्पादक की बातों को गाँठ में बाँधकर मैत्रेयी “रामश्री चाची” की घटना को लेकर ”आक्षेप” नामक कहानी लिखती है जो 8 अप्रैल 1990 के साप्ताहिक हिंदुस्तान में प्रकाशित होती है । एक प्रतिष्ठित पत्रिका में कहानी प्रकाशित होने का पहला अनुभव मेत्रैयी को होता है ।

प्रस्तुत अध्याय में मैत्रेयी के जन्म की बात आयी है । खुरजा के बाबूलाल पंडित को नामकरण के लिये बुलाया गया था जो रिवाज के मुताबिक लड़की का नाम किसी फूल से रखनेकी सलाह देते हैं । उसकी जन्मराशि सिंह थी । अतः वे “मैत्रेयी ” का नाम सुझाते है और साथ ही याज्ञवल्कय और मैत्रेयी की कथा भी बताते हैं कि किस प्रकार मैत्रेयी याज्ञवल्कय के धन, धान्य को नहीं परंतु उनकी विद्वता को प्राप्त करना चाहती थी । पंडितजीने मैत्रेयी शब्दका अर्थ भी बताया था । मैत्रेय अर्थात् हमदर्द, दोस्त और मैत्रेयी उसका स्त्रीलिंग है ।[32]

प्रस्तुत अध्याय में यह भी बताया है कि पति के पूछने पर मैत्रेयी सच-सच बताती है कि वह “सोनारूपा रेस्ट्रोरा” में सह-सम्पादक को मिलने गयी थी । इस पर पतिदेव ने सुनाया भी था । “अच्छा साहित्य हैं, इसकी आड़ में रोमांस”[33] इस तरह यह भी द्योतित होता है कि मैत्रेयी को मैत्रेयी बनने के लिए किस प्रकार ब्राहय, आंतरिक संघर्षों और दबाबों से जूझना पड़ा होगा । एक ही अध्याय में मैत्रेयी के लेखिका होने का जिक्र और साथ ही उनके जन्म की कहानी । अभिप्राय कि यहाँ भी आत्म कथावाली कालक्रमिक्रता को उन्होंने तोड़ा है ।

(10) कहूँ रे जे कहिबे भी होय

उपर्युक्त अध्याय कुल 15 पृष्ठ (पृ. 185-200) में आकलित हुआ है । यहाँ लेखिकाने अपने संघर्ष के दिनों का यथार्थ चित्रण किया है । इसके पहले हमने देखा कि साप्ताहिक हिंदुस्तान में लेखिका की कुछ कहानियाँ प्रकाशित होती है, परंतु एक ही पत्रिका में कहानियों का प्रकाशित होना भी किसी नवोदित लेखक लेखिका के लिए स्वस्थ नहीं समझा जाता है । फलतः मैत्रेयी अपने कहानियों के प्रकाशन का व्याप बढ़ाना चाहती है । उन्हीं दिनों में लेखिका अपनी एक कहानी का पुंलिदा लेकर उस पत्रिका के कार्यालय पहुँचती है और शिकायत करती है कि उनकी कहानी को बिना पढ़े ही लौटा दिया गया है । उनको कहा जाता है कि संपादकजी अभी आते होंगे, यदि कहानी बिना पढ़े लौटी होगी तो निश्चित ही पढ़वायी जाएगी । मैत्रेयी संपादकजी की प्रतीक्षा करती है । थोड़े समय में एक पचास साला व्यक्ति आता है । निमोहियाँ होठों के बीच, पान की पीक छल-छला रही है और होठों के कानों से बह रही है । पैण्ट्-कोट कुछ मलीन से हैं । गले में मफलर.....सबकुछ ढ़ीला-ढ़ाला और बेतरतीं । मैत्रेयी सोचती है “ये सम्पादक है । अगर है तो इनको क्षमा कर देना चाहिए,

कहानी की तमीज कहाँ से आए, कमीज के कोलर मुड़े – तुड़े । कहाँ ये और कहाँ – मनोहरश्याम जोशी अपने सह – सम्पादकजी तस्वीर में देखे धर्मवीर भारती साक्षात दर्शन देनेवाली मृणालपाण्ड़े । ये तो हमारे गाँव के गोपीचंद हलवाई से मिल रहे है ।"[34] संपादकजी के आने पर कार्यालय के उस व्यक्ति ने कहा कि ये जो मेड़म आयी हुयी हैं, इनकी शिकायत है कि उनके द्वारा भेजी हुई कहानी बिना पढ़े ही लौटा दी गयी है । इतना सुनते ही संपादकजी लेखिकाके हाथ से कहानी लेकर उसे उलटने पलटने लगे । फिर वे मुस्कुरा के कहते हैं – "अबकी बार बिना पढ़े ही लौटा दी कहानी । अगली बार इसे पढ़कर लौटा देना" ।[35] संपादकजी की बात को सुनकर लेखिका तिलमिला जाती है । इसके बाद दैनिक हिंदुस्तान के संपादक विजयमोहन मानव से लेखिका का परिचय होता है । उसमें लेखिकाकी कई कहानियाँ लगातार प्रकाशित हुईं । इससें लेखिका की गणना नामी-गिरामी साहित्यकारों में भले न हुयी हो परंतु इतना तो सत्य था कि इस समाचारपत्र ने उनको एक विशाल पाठक समुदाय दिया था । विजय किशोरमानव मैत्रेयी को कहते हैं कि - "आप की कहानी पर जब चित्रकार स्कैच बनाता है । मुझे बधाई देने आता है, बंगाली बाबू । उसका मानना है, यातनाओं के मार्मिक वर्णन करना एक बात है मगर उस यातना से सामना करने के बाद मनुष्यता बरकरार रख पाना, संघर्ष के रास्ते पर चलना है ।[35]

अब लेखिका सोचती है कि उसकी कहानियाँ किसी मासिक कथा-पत्रिका में प्रकाशित होनी चाहिए । इसी जद्दोजहद में एक कथा-पत्रिका के संपादकजी से मुलाकात होती है । जब उनको ज्ञात होता है कि लेखिका के पति एम्स में डॉक्टर हैं तो वे उसे दवाइयों की एक सूची थमा देते हैं । साथ ही कहते

हैं – "आप लिख सकती हैं क्योंकि आपके पास अनुभव है। इन दिनों साहित्य में लोग अनुभव अर्जित करने नहीं आते। शैलियाँ इजाद कर रहे हैं। लेखनी सूखती जा रही है। नहीं समझ रहे कि प्राइवेसी लिखने के लिए चाहिए, रचने के लिए, उन्हें बाहरी – संसार में निकलना होगा। समाज से नही जुड़ेंगे – पैठ नहीं – बनाऐंगे, खुद-ब-खुद निष्क्रिय होते जाएगें।"[37]

इस तरह लेखिका के सामने साहित्य जगत का एक विद्रूप खुलता है कि ये तथाकथित साहित्यकार विद्धान संपादक महोदय नवोदित लेखकों का शोषण किस तरह करते हैं। बाद में लेखिका को पता चलता है कि उनका केमिस्ट की दुकान पर हिसाब-किताब चलता था। ये संपादक महोदय ऐसे बीमार थे जो दवाइयाँ बेचते थे।[38] इस तरह के प्रसंगो के कारण मैत्रेयी को कई बार गजालतभरी स्थितियों से गुजरना पड़ा है। पति के कटाक्षतीरों से आहत होना पड़ा है। उन दिनों में मैत्रेयी का परिचय एक विदुषी लेखिका से होता है। जिसका जिक्र लेखिका ने "गोडमदर" के रूप में किया है। वे मैत्रेयी को साहित्यिक समारोहों में अपने साथ ले जाती हैं। नए - नए लोगों से लेखिका का परिचय होने लगता है, परंतु उसके लिए लेखिका को "गोडमदर" की सेवा में तत्पर रहना पड़ता है। उनको लाने-लिवाने और विविध स्थानों पर जाने के लिए लेखिका को डॉक्टर साहब की गाड़ी का इस्तमाल करना पड़ता है। एकबार ऐसे ही किसी प्रसंग पर डॉक्टर साहब ड्राईवर कों गाड़ी के लिए मना कर देते हैं, तब मारे अपमान के मैत्रेयी का बुरा हाल होता है कि "काटो तो खून नहीं।" लेखिका की टिप्पणी है – "मेरे पति की इच्छा, इस इच्छा में मेरा दखल भी क्या? सिनेमा, पार्टी, मंदिर और बाजार तक में गाडी में बैठकर जाती हूँ, तब मैं नहीं जाती, डॉक्टर साहब की धर्मपत्नी जाती है। मेरे जाने पर तो उन्होंने मुझे मेरी औकात दिखा दी।"[39]

दूसरी ओर डॉक्टर साहब को बराबर लग रहा है कि लेखिका होने की महत्वाकांक्षा में उनकी पत्नी का लोग कई-कई तरह से शोषण कर रहे हैं । दूसरी ओर मैत्रेयी की लड़कियाँ हैं – "जो चाहती हैं कि मम्मी कहानियाँ लिखेंगी, उपन्यास आऐंगे, मम्मी का नाम चारों ओर फैल जाएगा । अंग्रेजी में अनुवाद होंगे, कथाएँ देश-विदेशों तक जाएँगी, ऐसे जैसे "गोन विथ द विंड" जैसे "द किल ए मोकिंग वर्ड"[40] आज हम देख रहे हैं कि मैत्रेयीजी की बेटियों की ये इच्छाएँ रंग लायी हैं । परंतु इसके लिए मैत्रेयी को कितने पापड़ बेलने पड़े हैं उसका वर्णन इस अध्याय में हुआ है । अध्याय के अंत में लेखिका की जो टिप्पणी है, वह सार्थक और सटीक है – "सरकारी और ट्रस्ट से संचालित साहित्य संस्थाओमें बैठे संपादक खुद को गोडफादर के रूप में प्रस्तुत करते हैं । साहित्य में स्वार्थ साधना ही परम् ध्येय है कि अव्यक्त घोषणा रहती है ।....आज हमारे आगे नतीजा आ गया जब कितने ही साप्ताहिक पत्र और मासिक पत्रिकाएँ परिदृश्य से गायब हो गए । उनकी हत्या उनके संपादकों के हाथों हुई । ऐसे संपादकोंने पत्र पत्रिकाओं का ही नहीं, नए प्रतिभाशाली, कल्पनाशील, मगर साधनहीन लेखकों, कवियों की संभावनाओं का खात्मा किया है, रचनाएँ अकाल मौत मरी होंगी । कैसा अपराधिक मामला है, जिसकी सुनवाई के लिए कहीं न्यायालय नहीं । कहते हैं साहित्य व्यक्ति की चेतना, संपन्नता, स्वतंत्रता और जीवन की बेहतरी के लिए रचकर प्रकाशित होता है । लेकिन यहाँ तो साहित्य, साहित्य के आकाओं की दी गयी संस्थाओं का गुलाम है । इससे बड़ा साहित्यिक अनाचार क्या होगा? मास्टर और सर्वेन्टरूल के चलते दूसरा अत्याचार क्या होगा? मैंने शोषण का अद्‌भूत तमाशा साहित्य के क्षेत्र में देखा ।[41]

(11) "मच्छी रूखां चढ़ गई"

"मच्छी रूखां चढ़ गई" कबीर भी एक प्रसिद्ध उलटबासी है । कुंडलिनी शक्ति जब जागृत होती है तब चेतना के भ्रमरंद में पहुँचने की योगसाधनाकी जो स्थिति है उसके लिए कबीर ने इस ऊल्टबांसी का प्रयोग किया है । सीधी-सादी भाषा में उसका अर्थ होगा "सिद्धि को प्राप्त करना" "गंतव्य को पा लेना" । प्रस्तुत अध्याय कुल 10 (पृ.201 से 211) कुल 10 पृष्ठों में उपन्यस्त् हुआ है । पूर्ववर्ती अध्यायों में हमने देखा कि मैत्रेयी की कुछ कहानियॉं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं और पाठकों का एक विस्तृत दायरा भी उन्हें मिलता है । परंतु अभी स्थापित या प्रतिष्ठित लेखिकाओमें उनकी परिगणना नहीं होती थी । स्ट्रग्ल के अपने इन दिनों में वह साहित्य जगत में कुछ कर गुजरने के लिए "गोडमधर" के चक्कर भी काटती थी । उन दिनों लेखिका का रोलमोडल "गोडमधर" ही थी । इसे एक सुखद संयोग ही कहना चाहिए कि उन्ही दिनों ही लेखिका का परिचय सुप्रसिद्ध लेखिका "मन्नूभण्डारी" से होता है । मैत्रेयी 103, हौजखास, दिल्ली – मन्नूभंण्डारी के यहाँ आने-जाने लगती है । मन्नू को मैत्रेयी की ग्रामीण-पृष्ठभूमि और उसके ग्रामीणजीवन के अनुभव आकृष्ट करते हैं । अतः वह मैत्रेयी से कहती है कि उसे अपनी कहानियॉं हंस को भेजनी चाहिए । इस सिलिसिले में मैत्रेयी का परिचय हंस संपादक राजेन्द्र यादव से भी होता है । यादवजी मैत्रेयी की कहानी ओ पढ़कर उसे लौटा देते हैं । उसे वे हंस के स्तर के अनुरुप नहीं समझते थे ।[42]

प्रस्तुत अध्याय में हिमांशु जोशी प्रणीत "छायामत छूना मन" तथा राजेन्द्रयादव प्रणीत "सारा आकाश" का जिक्र भी मिलता है । लेखिका की उपन्यासिका "स्मृतिदंश" तब तक आ चुकी थी । उपन्यासिका लिखने की प्रेरणा मैत्रेयी को सह-सम्पादन के द्वारा मिलती है । उनका मानना था कि साहित्य में लेखिकाओं को उपन्यास के क्षेत्र में भी आना चाहिए, कयोंकि हर कोई चेखव,

मण्टो या गुलेरी नहीं होता जो कहानियों के बल पर ही साहित्य में स्थापित हो जाय । “नेहबंध”, “मन नाहि दस बीस” जैसी कहानियाँ “डिक्टेटर” (राजेन्द्रयादव) लौटा चुके थे । मैत्रेयी को माताजी (कस्तूरी) की बातें याद आती हैं कि “दुःखों को दिल में जमा करते जाओ, वे खाद की तरह ताकतवर होते जाते हैं और जो आये दिन नयी पौंध को बढ़ाकर खड़ा करते हैं ।[43] कस्तूरी की ये बातें मैत्रेयी को टूट ने नहीं देती है । “मन नाहि दस बीस” में मैत्रेयी ने अपने बालसखा “एदल्ला” की स्मृति को ताजा किया है ।[44] यहाँ पर लेखिका ने विवाह और प्रेमविवाह के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि मनुष्य कभी-कभी अपने ही संस्कारों से हारता है । विवाह अगर जाति, धर्म, मर्यादा और परंपरा को लेकर रुढ़ है । तो प्रेमविवाह ही वह आधुनिक चलन है जो जाति, धर्म और मर्यादा को तोड़ देता है लेकिन हंस संपादक का कहना था – “असल समस्या तो प्रेमविवाह के बाद खड़ी होती है । लड़का-लड़की, माता-पिता और परिवार द्वारा दिए गए धर्म जाति रीति-रिवाजों को तोड़ देते है । मगर जब एसे ही सरोकार खुद से जुड़ते हैं, तो उनमें दुविधा पैदा होती है । (मन्नूजी की त्रिशंकु कहानी) यहाँ दृष्टव्य रहेगी । अंतर्द्वन्द में फँस जाते हैं । बहुत जगह ऐसा देखने में आता है कि पति मंदिर जाता है और पत्नी नमाज़ पढ़ती है । (शैलेष मटियानी की “कठफोड़वा” कहानी इस संदर्भ में दृष्टव्य कहीं जा सकती है) कहने को उसके पास धार्मिक स्वतंत्रता है मगर यह स्वतंत्रता उन्हें एक नहीं होने देती । कई बार इस व्यवहार से कुंठाओं का जन्म होता है । यही जातियों का चक्कर है । लड़की छोटी जाति की है और लड़का बड़ी जाति का, विवाह के समय या किसी भी जाति के नहीं होते, धीरे-धीरे दोनों के भीतर जातियाँ सिर उठाती है । लड़की को दोहरा उपमान सहना होता है स्त्री होने का और नीची जात होने का । (गोपाल उपाध्याय कृत “एक टुकडा इतिहास”

इसका उदाहरण है ।) यदि लड़का छोटी स्थिति में है तो उसके पुरुष अहंकार को बात-बात पर ठेस लगती है । महत्वहीन भावनाएँ सिर चढ़कर बोलती है । कहानी इस कशमकश को रेखांकित करती जाए कैसे बाहरी स्थितियों से लड़नेवाले अपने भीतरी मोर्चों पर संस्कारों से हारते हैं ।[45]

यहाँ पर लेखिका ने शहर और गाँव के लोगों के अंतर भी रेखांकित किया है । यथा- "यह मेरी कुंठा या हीनता ग्रंथि ही है जो मानती है कि पढ़े-लिखे शहरी लोग सभ्यता का पाखंड़ कर रहे हैं कि शहरी लोगों की जीवन-कथाएँ गाँव में चलते चुटकुले से ज्यादा नहीं, ये कि गाँव में प्रेमविवाह ही सबसे बड़ी क्रांति है ।[46] इस वैवाहिक जद्दोजहद में मैत्रेयी - कहानी लिखती है । वह तीन महीनों के बाद तीसरी - कहानी थी पर वह भी लौट आती है । चौथी कहानी "कृतज्ञ" भी लौटा दी जाती है । उस समय मैत्रेयी का स्वगत कथन है – "आप कहते हैं मैं अब नहीं आऊँ । मैं बता रही हूँ कि मैं आऊँगी । आप कहते हैं कि आप मेरी कहानी नहीं छाप पाऐंगे । मैं कह रही हूँ, मैं एक और कहानी लाऊँगी । मैं आउँगी" राजेन्द्रयादव हंस संपादक ।[47] और फिर मैत्रेयी "चकबंदी" के कारण अपनी गयी हुई जमीन को वापस पाने के संघर्ष की कथा को लेकर आती है । कहानी का शीर्षक लेखिका ने "सेंध" रखा था । यहाँ मैत्रेयी का बुंदेलखण्ड़ी, ग्रामीण महिला की जीवटवाला चरित्र मिलता है । यहाँ पर लेखिका ने "रक्कस की प्रथा" का भी उल्लेख किया है । यह प्रथा बुंदेलखण्ड़ की है । यह रस्म लड़के के लड़के की एक साल की अवस्था से 3 साल की उम्र तक की जाती है । बच्चे की माँ, बुआ, दादी, चाची, ताई के साथ मोहल्लें का स्त्री-समुदाय पूरी-पुआ, पपरिया, गुलगुला बनाकर खेतों पर जाता है । धरती की पूजा होती है । बच्चे को तिलक लगाते हैं । घूँटा बाँधते हैं (काला धागा कमर में) और फिर अपने खेतों की सीमा दिखाते है । यह तेरी भूमि, तेरे पुरखों की जमीन। अब तेरे

हवाले है। इसकी रक्षा तू करेगा दुश्मन तेरे खेत की मिट्टी न छुए ।[48] परंतु मैत्रेयी तो लड़की थी उसको "रक्कस" नहीं दिया गया था । आदमी वयस्क होने पर अपनी जमीन को वापिस पाने के संघर्ष की भूमि पर यह कहानी लिखी गई थी । हंस में छपनेवाली प्रथम कहानी थी जिसका शीर्षक था "जमीन अपनी अपनी" । जिस संपादक ने लेखिका के रचनात्मक वजूद को पाँच बार धूल में रगड़ा था । वही हंस संपादक उस अंक लेकर मन्नूभण्डारी के साथ मैत्रेयी के घर गये थे ।[49] यहाँ पर राजेन्द्रयादव का वह वाक्य भी लेखिका ने दिया है। जिसमें वह कहते हैं – "साहित्य के मामले में मैं बहुत हरामजादा हूँ ।" तब लेखिका मन ही मन कहती है – "आप किस मामले में इस कोटि के नहीं है? गोडमधर बोतें करती थी अपनी सखियों सें मैं ध्यान हीं देती थी लेकिन अब जान गयी वे आप ही थें ।"[50]

यहाँ एक बात स्पष्ट हुई है कि राजेन्द्र यादव कहानी चयन के विषय में किसी प्रकार की रियायत नहीं बरतते हैं । किसी की शेहशर्म में आकर कहानी छापना उनकी फितरत में नहीं है । यदि व्यक्ति में लिखने की लगन और हौंसला है तो वह राजेन्द्रयादव से बहुत कुछ सीख सकते हैं । राजेन्द्रयादव के संदर्भ में महिला तबकों में किसी प्रकार की गल्तफहमियाँ थीं; उसका भी उद्घाटन यहाँ हुआ है । हंस में कहानी को छपना मानों लेखक की कुंड़लिनी जाग्रत होना है । सहीं मायनों में मछली रुखा चढ़ गई ।

काजल केरी कोठरी

"काजल केरी कोठरी" (पृ.212 से 230) में उपनयस्त् हुआ है । शीर्षक काजल केरी कोठरी – प्रतीकात्मक है । जिस प्रकार काजल केरी कोठरी में

कोई बेदाग नहीं रह सकता ठीक उसी प्रकार साहित्यजगत की कोठरी भी काजल की कोठरी के समान होती है । यहाँ पर पुरुषों के साथ में ढला नारी लेखन तो विवादों के ज्यादा घेरें में नहीं आता पर उस ढाँचे से बाहर कदम रखनेवाली साहसिक लेखिकाओं को तरह-तरह के चारित्रिक कठघरों में खड़ा किया जाता है । कृष्णासोबती तथा मैत्रेयी इस दूसरी कोटि में आती हैं । "बेतवा वहती रही" कि सर्वसहा भारतीय नारी की छबि कई समीक्षकों को अच्छी लगी जिनमें नवभारत टाइम्स के संपादक और जाने माने भाषा विद् डॉ.विद्या निवास मिश्र भी आते हैं । परंतु राजेन्द्रयादव और मन्नूभण्डारी को मिलने के बाद मैत्रेयी को अपनी जमीन मिल जाती है । बेतवा वहती रही कि उर्वशी के ठीक विपरीत "इदन्नमम" की "मंदा" है । इस प्रकार का उपन्यास लिखने का विचार और साहस राजेन्द्रयादव की प्रेरणा है । "इदन्नमम" का ग्रामीण बुंदेलखण्ड़ और उसके जीवानानुभव स्वयं मैत्रेयी पुष्पा अर्जित किए हैं । इदन्नमम की रचना प्रक्रिया के दौरान मैत्रेयी रेणु के प्रभाव में थी । इसका उल्लेख प्रस्तुत अध्याय में हुआ है, जिस प्रकार रेणु अपनी जमीन से अपने पात्रों को उकरते है । ठीक उसी प्रकार मैत्रेयी इदन्नमम में बुंदेलखण्ड़ की धरती से पात्रों को उकेरती हैं । उपन्यास के प्रकाशित होते ही हिन्दी साहित्य जगत में एक तहलका सा मच जाता है । डॉ. नामवरसिंह, डॉ.मनोहर श्यामजोशी जेसे राजेन्द्रयादव, मन्नू भण्डारी, निर्मलाजैन जैसे हिन्दी के सुधी-समीक्षक इदन्नमम् की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं । बंग्लोर से सारस्वती संस्था द्वारा नंजनागुरु तिरुम्लम्बा पुरस्कार भी प्राप्त इदन्नमम् के लिए होता है । जो पाँच साल में हिन्दी उपन्यास को दिया जाता था । उसके पहले "फैंसला" कहानी को कथा पुरस्कार और "चिन्हार" कहानी हिन्दी अकादमी का कृति-सन्मान मिलता है ।[51] इदन्नमम् के कारण मैत्रेयी हिन्दी साहित्य जगत में एक स्थापित लेखिका के रुप में स्वीकृत होती है । निर्मलाजैन ने अपने लेख में लिखा था – "इदन्नमम् पढ़ने के लिए

बेतवा बहती रही" पढ़ा, लगा कि मैत्रेयी ने लंबी छलाँग लगा दी है।"[52] परंतु इस के कारण गोडमधर संदेह में आ जाती है जो गोडमधर "मैत्रेयी को लेकर साहित्यिक समारोह में जाती थीं, वही अब मैत्रेयी से किनारा करने लगती हैं, इतना ही नही, बल्कि उस पर तरह-तरह के लांछन भी लगाती है। साहित्यिक चोरी का भी आरोप लगाया जाता है। यहाँ एक बात स्पष्ट होती है कि जब तक मैत्रेयी इतनी प्रतिष्ठित नहीं हुई थी, उसके भीतर की आग बाहर नहीं आयी थी, तब तक ये लोग मैत्रेयी को आगे बढ़ाने के प्रयत्न कर रहे थे। परंतु जैसे ही - मैत्रेयी अपनी स्वयं की उर्जा और प्रतिभा से ऊपर उठती है, वहाँ ईर्ष्या के कारण यही लोग मैत्रेयी पर तरह-तरह के आरोप लगाते हैं कि मैत्रेयी तो अपने समीक्षकों को मिठाई के डिब्बे बाँट रही है। इस तरह के आरोप प्रायः वे लोग लगाते थे। जिन्होंने अपनी रचनाओंके प्रकाशन पर शराब की पार्टियाँ तक एरेंज की थीं।

प्रस्तुत अध्याय में मनोहरश्यामजोशी के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया है। "तीसरी कसम" गीतापुष्पशॉ, रोबिनपुष्पशॉ आदि के उल्लेख भी मिलते हैं। साहित्यिक लांछनाओं के माहौल में सबसे ज्यादा संबल मैत्रेयी को मन्नूजी से मिलता है। लेखिका ने एक स्थान पर टिप्पणी की है –

"मैं सोच रही थीं, गोडमधर शायद इस भाव से आहत है कि चीज जहाँ पहुँच गयी है, वहाँ मुझे अब उनकी जरुरत नहीं है।"[53] इन्हीं गोडमधर के संदर्भ में ही एक स्थान पर कहा गया है –

"गोडमधर ये साहित्यकार जैसे धर्मवीर भारती, विष्णुप्रभाकर, मन्नू भण्डारी, उषाप्रियंवदा, गिरिराज किशोर जो कुछ कह रहे हैं, कहने दीजिए ये

आपकों चिढ़ा नहीं रहे एक नयी लेखिका को प्रोत्साहित कर रहे हैं । यकीन मानिए इस प्रोत्साहन से आगे की रचना भले करुँ गुरुर नहीं करुँगी ।"[54]

इदन्नमम् के साथ ही साथ सुरेन्द्रवर्मा कृत "मुझे चाँद चाहिए" उपन्यास भी आया था और तब सन् 1993 के आस-पास हंस तथा अन्य अनेक पत्रिकाओं में समीक्षात्मक लेख भी आए थें। जिनमें इन दोनों उपन्यासों के नारी-विमर्श पर तुलनात्मक विचार भी हुआ था। इदन्नमम् को हिन्दी का एक श्रेष्ठ उपन्यास माना गया है, वहाँ पर हिन्दी आलोचकों का एक तबका ऐसा भी है, जहाँ उसे तीसरे और चौथे दर्जे की रचना कहा गया है । उत्तर आधुनिकता के व्याख्याकार सुधीशपचौरीजी ने तो इदन्नमम् को "अधूरी अहीर कथा" कह कर उसे ध्वस्त करने का आनंद भी उठाया है । इदन्नमम् के कारण जहाँ मैत्रेयी को अकूत ख्याति प्राप्त हुई । वहाँ उसने कुछ नए साहित्यिक शत्रु भी पैदा किए। लेखिका पर यह भी इल्जाम लगाया जाता है कि उसने वरिष्ठ और विदुषी लेखिकाओं का हक भी मारा है उनकी जगह हड़प कर बैठ गई है और यह सब किया है उसने राजेन्द्रयादव की कृपा से ।[55] यहाँ मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगी कि मैत्रेयी पुष्पा ने साहित्य जगत में जो मकाम हासिल किया वह अपने संघर्ष कामी जीवनानुभावों के कारण है और लिखने की एक जहदोजहद और आग के कारण है । ये न हो तो हजार राजेन्द्रयादव भी मैत्रेयी पुष्पा जैसी लेखिका को नहीं गढ़ सकते । राजेन्द्रयादव ने मैत्रेयी पुष्पा के भीतर की "मैत्रेयी" को जगाया है। आगे का काम स्वयं मैत्रेयी ने अपने बल-बूते और प्रतिभा पर साधा है ।

पति संग जागी सुन्दरी

“गुड़िया भीतर गुड़िया” का 12 वां अध्याय “पति संग जागी सुन्दरी” (230-252) पृष्ठों में उपन्यस्त् हुआ है । प्रस्तुत अध्याय में लेखिका ने “इदन्नमम्” तथा “चाक” के संदर्भ में उनकी रचना प्रक्रिया के संदर्भ में, उनमें निरुपित जीवनानुभावों के संदर्भ में काफी जानकारियाँ दी हैं। इसमें लेखिका ने यह भी बताया है कि उन्हीं दिनों में उन्होंने कृष्णाबती के उपन्यास “जिन्दगीनामा” को भी पढ़ा था। उपन्यास यदि ग्रामीण परिवेश को लेकर आता है तो उसमें मानक भाषा के स्थान पर बोली का ही प्राधान्य रहता है और रहना चाहिए । यहाँ पर लेखिका ने अपने साहित्य विषयक प्रयोजन को भी स्पष्ट किया है। उनके यहाँ लिखना जीने की एक अनिवार्य शर्त के रुप में आता है। बड़ौदा में हुई एक संगोष्ठी में मैत्रेयीजी ने बताया था कि उनकी वास्तविक जिंदगी का प्रारंभ कब और कैसे हुआ? उसमें उन्होंने स्पष्ट किया था कि जब से उन्होंने गरीबों के अधिकारोंको लेकर लिखने की शुरुआत की वहीं से उनकी जिंदगी भी शुरु होती है।[56] प्रस्तुत अध्याय में लेखिका ने यह भी बताया है कि इदन्नमम और चाक के कारण सोनपुरा और जुझारपुरा गाँव में मैत्रेयी पुष्पा को लेकर कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हुई थीं । इन गाँवों में उक्त दो उपन्यासों को लेकर इतनी तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि स्वयं मैत्रेयी को “ओरछा” पुलिस संरक्षण में जाना पड़ा था। जाति और गोत्र को लेकर जो विवाद खड़े होते हैं उसके संदर्भ में लेखिकाने खापपंचायतों और “ओनर किंलिग” का भी उल्लेख किया है । उन दिनों में बबलू और मुनिया नामक दो युवक-युवती भागकर प्रेमविवाह कर लेतें हैं, जिनको भगाने में मंदा का हाथ है ऐसा कहा जाता है । उस लड़की को ढूँढने के लिए लोग मैत्रेयी के निवास स्थान “नोएडा” तक जाते हैं। उन्हें आशंका थीं कि मैत्रेयी ने ही उनको संरक्षण

दिया होंगा।[57] मुनिया और बबलू एक ही जाति के थे, गोत्र भी भिन्न था। परंतु यहाँ ग्रामीण लोगों के अपने रिवाजों के कारण उस विवाह का विरोध हो रहा था। और इन सब घटनाओं के पीछे मैत्रेयी के लेखन को उत्तरदायी ठहराया जा रहा था। थोड़े से समय में मैत्रेयी पुष्पा को साहित्यजगत में जो प्रतिष्ठा मिली है उसके कारण कई लोगों को उनसे इर्ष्या भी होने लगी है। परंतु यहाँ इस तथ्य को गौरतलब रखना चाहिए कि इस प्रकार के लेखन के लिए कैसे-कैसे और कितने-कितने जोखिम उठाने पड़ते हैं। मैत्रेयी की लेखन में हमें कथनी करनी का अंतर नहीं मिलता। बिछियाँ और करवाचौथ को त्यागने के कारण उनके अपने वैवाहिक जीवन में कटुता आई है। उनकी द्वितीयपुत्री मोहिता की गृहस्थी ध्वंस होने के कगार पर है।[58] करवाचौथ के व्रत को मैत्रेयी पति के प्रति पत्नी की वफादारी का रिन्युअल बताती है।[59] इनकी ऐसी खर बातों के लिए उन्हें अनेक आलोचनाओं का भी शिकार होना पड़ता है। जहाँ सुष्मा स्वराज करवाचौथ के व्रत को भारतीय संस्कृति और भारतीयनारी की पतिभक्ति का प्रमाण बताती है। वहाँ मैत्रेयी उसे “वफादारी” का रिन्युअल कहकर खारिज कर देती है।[60] “चाक” उपन्यास की सारंग के कारण भी बुदेलखण्ड़ के ग्रामीण तबकों में काफी हलचल मच गयी थी। स्वयं मैत्रेयी के पति डॉक्टर साहब को यह लगता है कि “चाक” की सारंग का चरित्र-चित्रण मैत्रेयी ने अपने वैयक्तिक अनुभवोंसे ही किया है। सरल शब्दों में सारंग और कोई नहीं मैत्रेयी ही है। जहाँ सुधीशपचौरी जैसे आलोचक इदन्नमम को “अधूरी अहीरकथा” कहकर कटु आलोचना करते है। वहाँ पर कमलाप्रसाद, गिरिराजकिशोर, डॉ.चन्द्रकांत वांदिवेडेकर आदि ने इन उपन्यासों की भूरि भूरि प्रशंसा भी की है। प्रस्तुत अध्याय में खेरापतिन दादी और **“ललमनियाँ”** नृत्य का भी उल्लेख आया है। गाँव में जो लोकगीत गाये जाते हैं, उनमें समय समय पर नए-नए बंध भी जोड़े

जाते है । कई बार तत्कालीन घटनाओंको भी उनमें जोड़ लिया जाता है । खेरापतिन दादी के गीतों में हमें "रामकथा" का एक नया विमर्श भी मिलता है ।[61] इस संदर्भ में खेरापतिन दादी का यह कथन दृष्टव्य रहेगा – "बेटी, साँच को अगिन में न तपाया जाए तो झूठ जिन्दा कैसे रहे? बस, यही अगिन परीच्छा थी। नहीं तो आग की लपटों में बैठकर कोई जिन्दा बचा है? हम तो यह जानते हैं कि या तो वह आग नहीं थी या फिर हाडमांस की सीता नहीं थी। वैसे भी रामजी को सोने की सीता बनवाकर रखने की लत थी। अपनी महिमा और मर्दानगी की खातिर सोनेकी सीता आग में उतार दी हो और सोने की काया कुन्दन हो गई हो ...." सच्ची बात तो यह है कि खिसियाकर रामजी ने सीताकी अजुध्या छीन ली। गंगाजी हथियाली। पत्नी को देस निकाला दे दिया। लो, इसी बात पर रामजी से लवकुश लड़े। नाइंसाफी करनेवाला उनका बाप था भी या नहीं? सीता ने ऐसे पति का मुँह नहीं देखना चाहा। भूमि समाधि लेनी पड़ी। सो देखलो कि लवकुश ने रामजी को जलसमाधि दे दी। तुम बेटौं को अपना अंस नही मान पाए लो बेटा तुम्हें बाप कैसे मानें?"[62]

इसी अध्यायमें मैत्रेयीजी ने लिखा है – सच तो यह है कि जिस तरह मैं सोचती हूँ, उसी तरह लिखती हूँ। कहानियाँ और उपन्यास औरत की जिंदगी के दस्तावेज हैं तो वे निश्चित तौर पर मेरे तजुर्बों से गुजरे हैं। क्या स्त्री और पुरुष में प्रेमकी आकांक्षा एक सी नैसर्गिक भावना नहीं? अगर कुछ अलग-अलग दिखता है तो वह संस्कार जन्म अहंकार नतीजा है कि पुरुष का प्रेम पराक्रमी दिखता है, जबकी स्त्री अहंकार से मुक्त होकर प्रेम करती है।"[63] लेखिका ने हमारे समाज की इस अंतर्विरोध को भी सामने रखा है कि भारतीय स्त्री को न आर्थिक आत्मनिर्भरता सुखी कर सकती है, न चेतनासंपन्नता उसकी सहायक हो सकती है। बस, उसे पारंपरिक कर्मकांड़ ही सुखी और सुरक्षित

रहने की गारंटी देते हैं। अपनी पूरी ताकात लगाकर भी मैत्रेयी नवयुवाबेटी का दांपत्य नहीं बचा पाती है। प्रस्तुत अध्याय में यह भी बताया है कि इन दो उपन्यासों के कारण समाजमें वह जितनी आहत हुई है, उतना ही उनका आत्मविश्वास भी बढ़ा है। लेखिका अनुभव करती है कि संघर्ष भी आनंद का माहौल रच सकता है। अध्याय अंत इन पंक्तियों के साथ हुआ है – "

चकल्लसों, हलचलों और विवादों के भँवर में मैं हूँ तो क्या हुआ? बहर हाल मेरा आत्मविश्वास बढ़ने लगा। शीर्ष लेखिका कृष्णासोबती को "चाक" बहुत पसंद आया। वीरेन्द्रयादव ने मेरे भावों को रचनात्मक सौंदर्य के रुपमें देखा और गिरिराज किशोर लगातार लिखने के लिए आगे बढ़ने की हिदायत देते थे। तब मैंने समझा, मैं किसी विरोधी के निमंत्रण में आनेवाली नहीं, दुःख ने मेरे मन को परिष्कृत ऐसे ही किया है, जैसे गाँवो में सघन पीड़ा की स्थितियों में चंग बजती है, ढमरु मादंग पर मनोहर राग तैयार होता है।"[64]

यह तन जारों, मसि करों

चौदहवाँ अध्याय "यह तन जारों मसि करों" कुल 29 पृष्ठों में (253-281) उपन्यस्त् हुआ हैं। इसमें मैत्रेयी ने "इदन्नमम" और "चाक" के उपरांत के महत्वपूर्ण उपन्यास "अल्मा कबूतरी" (सन् 2000) के लेखन की पृष्ठभूमि को निरुपित किया है।

उक्त दो उपन्यासों की जो समीक्षाएँ आईं और हिन्दी के कई सुधी समीक्षकों ने उनकी जो भूरि-भूरि प्रशंसा की उसके कारण मैत्रेयीजी का साहस और विश्वास और बढ़ गया। और एकदम आगे बढ़कर उन लोगों के जीवन पर उपन्यास लिखने का मन बनाया, जिनको हमारे सरकारी दफतरों में गजटोंमें जन्मजात अपराधी जातियों में परिगणित कर दिया है। परिगणित करके उनके

मानवीय अधिकारों पर एक प्रश्नचिहन दाग दिया है । वस्तुतः इसकी शुरुआत ब्रिटिशशासन में ही हो गयी थी । परंतु आज़ादी के बाद उसमें परिवर्तन आना चाहिए था । भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नहेरुने इन जातियों के दुःख-दर्द के संदर्भ में व्याख्यान भी दिया था, परंतु इस दिशा में कोई ठोस और कारगर कार्य नहीं हुआ । सरकार और पुलिस का रवैया इन जातियों के लोगों के प्रति वैसा ही बना रहा क्योंकि इनमें इनको सबसे बड़ी सुविधा यह होती कि कहीं चोरी और डकैती होने पर ज्यादा छान-बीन नहीं करनी पड़ती । कुछ कुख्यात जातियों के लोगों को धरपकड़ लिया जाता है । और उनसे जबरदस्ती अपराध अंगीकृत करवाया जाता है । बुंदेलखण्ड के कुछ जिलोंमें "कबूतरा" नामक जाति है । जिनकी गणना इस प्रकार की अपराधी जातियों में होती है । "अल्मा-कबूतरी" से पूर्व डॉ.रांगेयराघव ने "कब तक पूकारुँ" उपन्यास में राजस्थान की इसी प्रकार की जनजाति "कर्नटों" के जीवन पर उपन्यास लिखा था । उसके बाद एक लंबे अंतराल के पश्चात मैत्रेयी इस अछूत विषय को उठाने का साहस करती हैं । इस संदर्भ में मैत्रेयीने प्रस्तुत अध्याय में कहा है – "विमुक्त जातियों का आधार, प्रधानमंत्री का भाषण गणित का रुप ले गया, इस गणित के कर्ता-धर्ता बड़े समाज के मानवरुपी गिद्ध बने । यह मैं क्या सोच रही हूँ? कि अपने आत्मीयजनों में शामिल दतिया के बी.एल.पांडे, झाँसी के मदनमानव (ध्यानरहें यह वही मनदमानव है जब मैत्रेयी झाँसी कोलेज में थी तब छात्रनेता थे और जिसके चुनावप्रचार में मैत्रेयी ने भी अपना योगदान दिया था), खिल्ली-मडोराँ खुर्दे के देवीदयाल और कबूतरा जनजाति पर शोधकरनेवाले प्रो.पी.आर.शुक्ल के साथ मिलकर सुधारवादी नीति की बखिया उधेर रही हूँ? आँकडे देखते हुए लगता है, खिल्ली-मडोस खुर्दे की कबूतरा बस्तियाँ विभिन्न नामों से पूरे देश में फैल गयी हैं । इन बस्तियों के ऊपर चीलें उड़ रही हैं, नीचे गिद्ध घेर रहे हैं, वे

उनको खींच- खींचकर वहाँ ले जा रहे हैं । जहाँ दौड़ कर उन्हें रौंद लिया जाय, आखिर छह करोड जन्मजात अपराधियों को विमुक्त मनुष्य बनाना ।"[65]

मैत्रेयीजी जब खिल्ली में यादव परिवार में रहती थीं, तब खिल्ली के इन कबूतराजातियों से थोड़ा-बहुत परिचय था । पर यदि उपन्यास लिखना है तो उतने से काम नहीं चलता। अतः वह बाकायदा शोध अनुसंधान की योजना बनाती है । आंग्लविवेचक और उपन्यासकार जायस कैरी महोदय ने उपन्यास लेखन में इस प्रकार के अनुसंधान को अत्यंत आवश्यक बताया है । यथा – "Mr. Carry explained that he was now 'plotting' the book. There was research yet to be done. Research, he explained, was sometimes a bore, but it was necessary for getting the political and social background of his work right."[66]

इस अध्याय में यह ज्ञापित हुआ है कि मैत्रेयी अपराधी जनजातियों को लेकर उपन्यास रचना की योजना बना रही है । सुप्रसिद्ध लेखिका (तत्सम् उपन्यास की लेखिका) राजीसेठ को मैत्रेयी की यह भूमिका नापसंद आयी ।[67] परंतु मैत्रेयी अपना मन बना चुकी थीं । किन्तु इसी बीच सबसे छोटी बिटिया सुजाता के विवाह को लेकर लेखन में कुछ व्यवधान आया । सुजाता स्वयं डॉक्टर थी और एक डॉक्टर लड़के से प्रेमविवाह करना चाहती थीं । परंतु वह लड़का अनुसूचितजाति (SC) का था । फलतः प्रथम द्रष्टया मैत्रेयी इन सबंधो को लेकर हिचकिचाती है । यहाँ पर हमारें सुशिक्षित बुद्धिजीवी संभ्रांत वर्ग के लोगों की दोगली नीति का भी मैत्रेयी ने उल्लेख किया है । जिसमें यह कहा जाता है, कि प्रेम करो प्रेमविवाह भी करो परंतु इन बातों का ध्यान रखो कि लड़का शुद्रजाति का न हो, मुसलमान न हो और ईसाई न हो ।"[68] इस दृष्टि से मन्नू भंण्डारी की "त्रिशंकु" कहानी दृष्टव्य रह सकती है । नारीविमर्श,

नारीमुक्ति आदि की बातें करनेवाली और लिखनेवाली मैत्रेयी भी एक बार तो सकते में आ जाती है । परंतु उस लड़के से मिलने के बाद और उसकी शालीनता भरी और संस्कारयुक्त बातों को सुनने के बाद मैत्रेयी उन दोनों का विवाह न केवल करवाती है परंतु बाकायदा उसे सामाजिक द्वष्टया स्वीकृति भी प्रदान करती है, इसे मैत्रेयी का एक साहसिक कदम कहना चाहिए । प्रायः लेखकों में कथनी करनी का अंतर मिलता है । परंतु मैत्रेयी इस अंतर को पाटने में सफल रहती है । डॉक्टर साहब क-मन से ही सही पर अंततः इस रिश्ते को स्वीकृति देते हैं । इस के उपरांत मैत्रेयी पुनः कबूतराजाति पर लिखने का मन बनाती है और उसके कारण वह दिल्ली से झाँसी और खिल्ली की अनेक यात्राएँ करती हैं । कबूतराओं से संपर्क स्थापित करने में उसको धर्मभाई "सोबरन" जो दादा चीमनसिंह यादव का बेटा था, खूब सहायता करता है । सोबरन चीमनसिंह का बिगड़ा हुआ बेटा था, क्योंकि उसका उठना, बैठना, खाना-पीना सब कबूतरों के साथ था । कबूतरी औरतों के साथ उसके संबंध भी थे । इस प्रकार सोबरन यादव होते हुए भी संस्कारों की दृष्टि से कबूतरा ही बन गया था । "अल्मा कबूतरी" उपन्यास का "मंसाराम" सोबरन से ही निर्मित हुआ है ।[69] कबूतरों के जीवन पर शोध करके लिखना तलवार की धार पर चलने के मानिंद था । अंग्रेजी मुहावरे का यदि प्रयोग करें तो – "It was not a cup of tea" कबूतरा बस्तियों में घूसना, कबूतरा लोंगो की गंदी, अश्लील गालियों और बातों को सुनना । किसी भी शिक्षित संभ्रांत महिला के लिए बड़ा ही कष्ट प्रद हो सकता है । प्रथमतः वह लोग "कज्जों" पर विश्वास ही नहीं करते । कबूतरा लोग अन्य उच्च जातियों के लोगों को "कज्जा" कहते हैं । और कज्जा लोगों से घृणा करते हैं ।[70] यह समाज-मनोविज्ञान (Social-Psychology) का एक रसप्रद विषय हो सकता है कि निम्नजाति के लोग अपनी

घृणा या नापसंदगी को व्यक्त करने के लिए उच्चजातियों के लिए इस प्रकार के शब्द ढूँढ लेते हैं। गुजरात के ग्रामीण इलाकों में कहीं-कहीं पर राजपूत ठाकुर के लिए "डूचा" बारहैया क्षत्रियों के लिए "कोरा" शब्द प्रचलित है।[71] एक स्थान पर तो मैत्रेयी को बड़ी यंत्रणापूर्ण स्थिति से गुजरना पड़ा था, जब एक कबूतर युवक अपने "यौनअंग" को पकड़कर उनके सामने खड़ा हो गया था।[72] और उसने मैत्रेयी को भी उसका घाघरा ऊपर उठाने के लिए कहा था। इन्हीं सब कबूतरा-कबूतरियों के बीच एक तेजतर्रार कबूतरी से मैत्रेयी की मुलाकात होती है। वही इस उपन्यास की नायिका "अल्मा कबूतरी" है। प्रस्तुत अध्याय में मन्नू भंण्डारी "महाभोज" तथा लक्ष्मण गायकवाड प्रणीत "उच्चिलया" का भी उल्लेख हुआ है। सन् 2000 में "अल्मा कबूतरी" उपन्यास प्रकाशित होता है और उसे "सार्क लिटरेरी" अवार्ड भी मिलता है।[73] कबूतरों से जुड़े हुए अनेक प्रसंगों का वर्णन लेखिका ने इस अध्याय में किया है। इससे प्रस्तुत उपन्यास की रचना प्रक्रिया को समझने में आसानी रहती है।

धरती बरसै अंबर भीजै

"गुड़िया भीतर गुड़िया" का यह पंदरहवां अध्याय कुल 24 पृष्ठों में (पृ.282-306) उपन्यस्त् हुआ है। इसका शीर्षक भी मैत्रेयीजी ने कबीर की उलटबासी से रखा है। प्रकटतः यह पंक्ति उल्टी लगती है क्योंकि अंबर बरसता है और धरती भीगती है परंतु इसके विपरीत कथन है। कारण हमारे इस समाज में भी ऐसा ही होता है लोग कहते कुछ हैं करते कुछ हैं। इसमें मैत्रेयीजी ने "रेणु" और राजेन्द्रयादव से उनका जो रागात्मक संबंध है उसे स्वीकार किया है। राजेन्द्र यादव के प्रति एक प्रकार का भक्तिभाव मैत्रेयीजी में

दृष्टिगोचर होता है और यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि राजेन्द्र यादव ने मैत्रेयी की भीतरी ऊर्जा को पहचानते हुए, उनकी अपनी जमीन को पहचानते हुए, उनको अपनी जमीन की और जमीर की कहानियों से उनको जोड़ा। इसे भी एक संयोग ही समझना चाहिए, मन्नुजी द्वारा यदि राजेन्द्रयादव से परिचय न होता तो मैत्रेयी कवयित्री और लेखिका तो शायद बन जाती पर नारीविमर्श की इतनी सशक्त लेखिका नहीं बनती। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि मैत्रेयी का लिखा हुआ राजेन्द्रयादवजी का लिखा हुआ है, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं। राजेन्द्रयादव ने उनकी ऊर्जा और प्रतिभा को एक सही दिशामें मोड़ने का काम किया है। अन्यथा राजेन्द्रयादव स्वयं रेणु सरीखे बड़े लेखक नहीं बन जाते। अनुभव लिखने की जद्दोजहद संघर्ष भाषा के तेवर, यह सब मैत्रेयी करती है। अतः "राजेन्द्रयादव के प्रति मैत्रेयीजी का भक्ति भाव स्वाभाविक ही समझा जाएगा। डॉक्टर साहब का अपनी पत्नी और राजेन्द्रयादव के प्रति जो व्यवहार है वह प्रकटतः एक अनबूज पहेली सा है, परंतु मनोवैज्ञानिक दृष्टया विचार करें तो उसे स्वाभाविक ही समझा जाएगा। क्योंकि जिस तरह हजारों साल से स्त्रियों को गढ़ा गया है वैसे ही हजारों साल से पुरुषों को भी तो गढ़ा गया है। लाख पढ़-लिखलें, लाख वैज्ञानिक सोच को विकसित करलें, सैंकडों वर्षों सें उनके भीतर पितृसत्ताक समाज द्वारा विकसित जो पुरुष अहम् है, जो सामंतवादी सोच है, उसे दूर होने में कुछ तो समय लगेगा। अतः राजेन्द्रयादव और मैत्रेयीजी की नजदीकियाँ (भावात्मक और साहित्यिक ही सही) डॉक्टर साहब के मनमें शंका-कुशंका के वर्तुलों की सृष्टि करते रहते हैं। डॉक्टर साहब बेचारे क्या करे उनके भीतर भी एक द्वंद्व निरंतर चलता ही रहता है। इस द्वंद्व के चलते वे राजेन्द्रयादव की फोटो को तोड़ते भी रहते है। "रेणुजी" के प्रति उस प्रकार का इर्ष्याभाव नहीं है क्योंकि वे दिवंगत हो चुके हैं। परंतु राजेन्द्र यादवरुपी "यह बूढ़ा" उनकी नैया को गर्क करता रहता है। प्रस्तुत

अध्यायमें मैत्रेयी और डॉक्टर साहब के बीच की इन लड़ाइयों का और उनके दांपत्य में निर्मित होती दरारों का वर्णन हम देख सकते हैं । तो दूसरी तरफ मन्नूजी और राजेन्द्रयादव के संबंधों में भी कड़वाहट आ जाती है । यहाँ तक कि दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और राजेन्द्रयादव को "हौजखासवाला" मकान छोड़कर "मयूरविहार" जाना पड़ता है ।[74] परंतु यहाँ एक अनल गौन यह होता है कि भारतीय समाजमें जहाँ स्त्री को निकाला जाता है, यहाँ स्त्री द्वारा एक पुरुष को निकाला जा रहा है । यह मन्नूजी की आर्थिक निर्भरता के कारण ही हुआ है । यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा । राजेन्द्रयादव और मन्नूजी के दांपत्य में यह जो खाई निर्मित हुई उसके पीछे राजेन्द्रयादव के कौन सी स्त्री के साथ के संबंध है वह यहाँ स्पष्ट नहीं हुआ है । डॉक्टर साहब एक स्थान पर कहते हैं कि उनके सामने उनके दांपत्य की जो तस्वीर आई है वह एक पक्ष है, मैत्रेयीजी द्वारा बताया हुआ पक्ष । परंतु वे उसके दूसरे पक्ष को जानते हैं जो मन्नूजी के कारण उनके सामने आया है । परंतु स्पष्टरुप से कोई बात ऊभर कर आती नहीं है ।

प्रस्तुत अध्यायमें मैत्रेयीजी ने "कर्नल स्लीमेन की पुस्तक" "अमीरअली ठग की आत्मस्वीकृतियाँ" तथा डॉक्टर रांगेयराघव के नटों पर लिखा उपन्यास "कब तक पुकारुँ" का जिक्र किया है । इनके अतिरिक्त हावर्डफास्ट, दोस्तोंवस्की, टोलर्स्टाय मराठी-साहित्यकार आनंद यादव, स्टीफन-ज्विग आदि के उल्लेख भी मिलते हैं । वर्जीनिया वुल्फ का भी जिक्र लेखिका ने किया है । "पाकीजा" की बात भी आई है । गोवा विश्व विद्यालय के प्रोफसर एवम् विभागाअध्यक्ष डॉ.रोहिताश्व के कार्यक्रम का उल्लेख हुआ है । उस कार्यक्रम में मैत्रेयीजी को राजेन्द्र यादव के साथ गोवा जाना था परंतु पति के दोहरे व्यवहार

के कारण वह उस कार्यक्रम में नहीं जाती । जबकि डॉक्टर साहब “एर” की टिकिट भी निकाल लाये थे ।[75]

प्रस्तुत अध्याय में अरविंदजैन, गिरिराज, केदारनाथसिंह आदि के भी उल्लेख मिलते है। “हौजखास” का मकान छोड़कर राजेन्द्रजी मयूरविहार जिस फ्लेट में जाते हैं । वह फ्लेट केदारनाथसिंह का हैं । यहाँ प्रकारांतर से मैत्रेयीजी ने कालीदास की शकुंतला को भी याद किया है । अंतर यह है कि वहाँ शकुंतला पितृगृह छोड़कर जा रही थी, यहाँ पर डॉ.राजेन्द्र यादव अपना मकान छोड़कर जा रहे थे ।[76] राजेन्द्रयादव और मन्नूजी के दांपत्य जीवन की फलश्रुति के रुप में उनकी बेटी रचना है उसका भी उल्लेख प्रस्तुत अध्यायमें आया है। मैत्रेयी तथा डॉक्टर साहब मिलकर उनके नए फ्लैट में जरुरी सामान रखवा देते हैं । एक स्थान पर राजेन्द्रयादव यह भी कहते हैं कि उस मकान में सबसे पहला प्रवेश मैत्रेयीजी का हो ।[77] इस प्रकार यहाँ बहुत सी स्थितियाँ कबीर ऊल्टबासी की भाँति अस्पष्ट सी है । अध्याय के ये वाक्य बहुत कुछ कह जाते हैं – “मैं इस बात पर क्या कहती? सारा राज खुल चुका था । राजेन्द्रयादव का डॉक्टर साहब क्या बिगाड़ सकते थे । कटघरे में मुझे खड़ी कर दिया । मैंने बस इतना ही कहा – जवाब मांग रहे हो, बोलने का मौका दे रहे हो, तो बस इतना ही कहूँगी, लोग प्रशंसा देते हैं, प्यार करते हैं, धन-दौलत भी दे सकते हैं, मगर ऐसे विरले ही होते हैं । जो सच्चा भरोसा देते हैं ।[78]

प्रस्तुत अध्यायमें लेखिकाने अपने नेपाली-नौकर शिब्बूका भी उल्लेख किया है। मैत्रेयी शिब्बू को अपना बेटा मानती है और शिब्बू भी मैत्रेयी के साथ एक बेटे की तरह उनका सहायक बनता है। अध्याय के प्रारंभ में ही “अल्मा कबूतरी” के प्रकाशन पर जो लेखकों, समीक्षकों की मिली-जुली समीक्षाएँ थीं

उसका भी वर्णन किया है । राजेन्द्रयादव "अल्माकबूतरी" को मैत्रेयी के लेखन का एक महत्वपूर्ण मोड़ मानते हैं । जिसने हिन्दी समीक्षकों को अजीब कस्मकश में डाल दिया है ।[79] हिन्दी में इस उपन्यास को लेकर समीक्षक दो वर्गों में विभक्त हो गए हैं । कुछ लोगों की दृष्टि में "अल्मा कबूतरी" मैत्रेयी के लेखन का एक महत्वपूर्ण मोड़ है, जो उनको रांगेयराघव आदि से जोड़ता है तो कलावादी – रुपवादी समीक्षक उसे उतना अच्छा नहीं मानते ।

अंतर भीगी आत्मा

"अंतरभीगी आत्मा" अध्याय कुल 12 पृष्ठों में (पृ.301-319) में उपन्यस्त् हुआ है । इसमें लेखिकाने पत्र शैली का प्रयोग किया है । रक्षाबंधन के पर्व पर अचानक डॉ.राजेन्द्रयादव मैत्रेयी जी के यहाँ प्रकट हो जाते है, और अपने राजेन्द्रीय अंदाज में कहते हैं – "डॉक्टरनी राखी ले आओ । हम राखी बंधवाने आयें हैं, क्योंकि और कुछ तो तुम्हारे बस का नहीं ।"[80] यहाँ "क्योंकि" के बाद का वाक्य राजेन्द्रजी की बदमाशी को व्यक्त करता है । यह वाक्य बहुत कुछ कह जाता है । प्रस्तुत अध्याय में लेखिकाने "रक्षाबंधन पर्व" के प्रति शैशवकाल से ही उनमें जो ललक थीं उसे बताया है, कारण भी स्वाभाविक है । मैत्रेयी को कोई भाई नहीं था । अतः भाई की कमी का खलना स्वभाविक है । बरअक्स मैत्रेयी की माताजी कस्तूरी की यह सोच है, उनको यह सब सामाजिक ढ़कोसला लगता है । भाई-बहन के संबंधो और पित्तृसत्ता या पतिसत्ता के प्रति विद्रोह का भाव कस्तूरी में दृष्टिगत होता है । यह भी मनोवैज्ञानिक दृष्टया स्वाभाविक ही कहा जाएगा । क्योंकि भाई की ओर से मिले धोखे और पति के परस्त्रीगमन को वह अपनी आँखोंसे ही देख चुकी थी । "कस्तूरी कुण्ड़ल बसै"

आत्मकथा में कई स्थानों पर कस्तूरी और गौरा के समलैंगिक संबंधो के संकेत मिलते हैं । यौन मनोविज्ञान के अनुसार “लेस्बियानिजम” उन स्त्रियों में पाया जाता है जो किन्हीं कारणों से स्त्री-पुरुष संबंधो को “घृणाकी” नजर से देखती हैं ।[81] शैशव में भाई के लिए जो मैत्रेयी की ललक थीं, उसके कारण कस्तूरी ने चिढ़कर अपनी सहेली के बेटे “शिवकुमार” को मैत्रेयी का भाई बनवा दिया था । बाद में तो खिल्ली के दादा चीमनसिंहयादव के सभी लड़के भी मैत्रेयी के भाई बनते हैं और आत्मकथाओं में मैत्रेयी ने यह भी स्पष्ट किया है कि चीमनसिंहयादव के बेटोंने ताजिन्दगी सगे-भाइयों के मानिन्द “पुष्पा” को अपनी बहन माना है । इतना ही, नहीं हरदम वे उसकी रक्षाहेतु प्रस्तुत हुए हैं । रक्षाबंधन को लेकर सुभद्राकुमारी चौहान की कुछ पंक्तियों को भी लेखिकाने यह उद्धृत किया है । यह भी संकेतित हुआ है कि “इदन्नमम” में मंदा का जो निवास बताया है वह चीमनसिंहयादव का ही निवास था । जिसे वह लोग कचहरी कहते थे और जिसके बड़े से पक्के रंगीन चबुतरे पर पंचायतें, यहाँ लेखिकाने आगरा-अलीगढ़ के उस विशेष खाने का भी उल्लेख किया है जो होली-दिवाली पर बनता था । जिसमें ब्रज के पकवान, पूरी-कचौड़ी, आलू की सब्जी और सन्नाटा (रायता) आदि होते थे । राजेन्द्रजी आगरा पतूला तेजमिर्च के थे तो डॉक्टर साहब अलीगढ़ के । आगरा और अलीगढ़ पास-पास है । अतः इस प्रकार का खाना दोनों को पसंद है । इसमें लेखिका ने श्रीरामसेंटर “रास” कहानी के मंचन का भी उल्लेख किया है । जिसकी सफलता का श्रेय वह राजेन्द्रयादव को देती है । उस समय भाव-विभोर होकर लेखिका ने यादवजी को गले भी लगाया था ।[83] समकालीन लेखिका जयाजादवानी का उल्लेख भी मिलता है । इस अध्याय का दूसरा मुख्य प्रसंग है - 2 अक्तूबर 1993 की वह रात जो कानपुर में पहली “संगमन गोष्ठी” के दौरान लेखिका और

राजेन्द्रयादव के बीच गुजरी थी । किसी राष्ट्रीय गोष्ठीमें बोलने का मैत्रेयी का यह पहला प्रसंग था और राजेन्द्रयादव चाहते थे कि लेखन के साथ-साथ मैत्रेयी वक्तारुप में भी स्वयं को सशक्त प्रमाणित करें । गोष्ठी के बाद जहाँ उनको ठहराया गया था वहाँ मैत्रेयी और राजेन्द्रयादव के कमरे आमने-सामने थे, मैत्रेयी ने राजेन्द्र के संदर्भ में "गोड़मधर" और दूसरी लेखिकाओं से जो सुन रखा था उसके कारण उनके मन में एक भय समाया हुआ था । इस भय के संदर्भ में लेखिका ने "बीस सालबाद" फिल्म का उल्लेख भी किया है। मैत्रेयी जब अपने कमरें की ओर जा रही थी तब राजेन्द्रजी की वैसाखियों की खटखट उनमे एक डर पैंदा कर रही थी । किसी तरह मैत्रेयी अपने कमरें का दरवाजा खोलती है और अंदर चली जाती है, उनके सर में भयंकर दर्द था उसके लिए दवाई लेनी थी, कमरे में पानी नहीं था पानी के लिए कमरा खोलकर एक बार तो राजेन्द्रजी के कमरें को खटखटाने का विचार लेखिका करती है । परंतु हिम्मत नहीं जुटा पाती और सूखे कंठ से और (सरदर्द के साथ पूरी रात गुजार देती है । जिसके कारण दिल्ली जाकर वह बीमार भी पड़ जाती है और उनको I.C.U. में भी रखना पड़ता है । यहाँ लेखिका ने स्पष्ट किया है कि राजेन्द्रजी से उन्हें डर नहीं लग रहा था । परंतु जो कुछ उन्होंने प्रदर्शित किया था, वह लोगों का दिया हुआ डर था । लेखिका को स्वयं यह अंतर्विरोध खलता है कि लेखन में निर्भीक नारी चरित्रों का निर्माण करनेवाली बहादुर लेखिका कितनी डरपोक और कमजोर है । अध्याय के अंतमें "मदनमानव" का भी उल्लेख मिलता है जो बाद में गुंडा हो गया था ।

तन छूटे मन कहाँ समाई

सत्रहवाँ अध्याय “तन छुटे मन कहाँ समाई” 12 पृष्ठो में (पृ.320-321) उपन्यस्त् हुआ है। प्रस्तुत अध्याय में लेखिकाने बाबरी मस्जिद ध्वंस घटना, “छाँह” “फैंसला”, आदि कहानियों का जिक्र, मनीषा के आग्रह पर उसके पत्रमें स्तंभ लिखने की तैयारी, उस संदर्भ में (कैकयी, शूपर्नखा आदि के संदर्भ में) लेखिका के अपने विचार, इन पर “आदमी के निगाह में औरत” (डॉ.राजेन्द्रयादव) पुस्तक का प्रभाव, डॉक्टर राजेन्द्रयादव का वह छत्ताछेड़ कथन हनुमानजी के आतंकवादी होने के कथन, सन 2002 तक “कस्तूरी कुंडल बसै” को समाप्त कर लेने का उल्लेख विश्व पुस्तक मेले में उसकी विशेष चर्चा डॉ.अर्चनावर्मा द्वारा स्त्री विमर्श पर हंस का विशेषांक निकालना उसमें स्त्री-विमर्श पर मैत्रेयी से लिखवाने का आग्रह आधुनिक बैंक प्रणाली के कारण किसानों की आत्मकथाएँ, आत्मकथ्य लिखने की दुविधा, दलित लेखकों द्वारा लिखी जानेवाली आत्मकथाओंमें उनके साहस की स्वीकृति, “कस्तूरी कुंडल बसै” में कस्तूरी का नायिकारुप में उभरकर आना, वीरेन्द्रयादव की समीक्षा) खाना बदोश, (अजीत कौर), नंगे पाँवो का सफर, माय फ्यूडल लोर्ड (तहमीनादुरानी) तस्लीमा नसरीन की आत्मकथा के 5 खण्ड़ दोहरा अभिशाप (कौशल्या बैसंत्री) आदि आत्मकथाओं का जिक्र, हैदराबाद से गोरखनाथ तिवारी का पत्र – जिसमें उनका कथन कि उनके प्रोफेसर टी.मोनहसिंह सभी छात्रों से कहते हैं कि मैत्रेयी पुष्पा 20 वीं सदी की सबसे प्रसिद्ध ग्राम्य जीवन पर लिखनेवाली एक मात्र उपन्यासकार है। गोरखनाथजी का निर्णय कि मैत्रेयी की पुस्तकों पर ही पी-एच.डी करेंगे, बेंगलोर, मद्रास, कोल्हापुर, उदयपुर, जयपुर, सूरत, शिमला, लेह तक आदि प्रदेशों और नगरों से देश के कोने-कोने से विद्यार्थियों और विद्वानों की मैत्रेयी के उपन्यासों और आत्मकथा (कस्तूरी

कुंडल बसै) सकारात्मक टिप्पणियाँ आदि का उल्लेख मिलता है । दिल्ली विश्वविद्यालय तथा जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के हिन्दी विषय को पढ़नेवाले तमाम छात्र-छात्राएँ भी अपना पाठकीय समर्थन मैत्रेयीजी को देते रहते हैं । डॉ.मैनेजर पाण्डेय ने हंस "पत्रिका में (कस्तूरी कुंडल बसै) को उत्कृष्ट आत्मकथा घोषित किया है ।[84] अपने उपन्यासों तथा कस्तूरी कुंडल बसै के कारण जहाँ सभी कोनोंसे प्रगतिवादी जीवन मूल्यों और सरोकारों से संबंध रखनेवाले पाठकों और विद्वानों द्वारा मैत्रेयीजी का स्वागत हो रहा था वहाँ कुछ फण्डामेन्टालिस्ट प्रकृति के लोगों द्वारा मैत्रेयीजी की निंदा भी हो रही थी और उनके लेखन को अश्लील करार दिया जा रहा था । एक पत्रिका में तो लेख छपा था – "मैत्रेयी पुष्पा का सेक्स संसार" इन सबके कारण डॉक्टर साहब मैत्रेयी से नाराज और खिन्न रहते है । मैत्रेयी ने "कस्तूरी कुंडल बसै" को डॉक्टर साहब से छिपाकर रखी थी । परंतु अंत में वह साहस कर के डॉक्टर साहब को यह आत्मकथा देती है यथा – "मुझमें तो तुम्हें पुस्तक देने की पहले दिन से ही हिम्मत थी, लेकिन तुम्हारा रवैया देखकर रुक गई क्योंकि तुम में इसे पढ़ने का हौंसला मुझे दिखाई नहीं दिया ।" परंतु दो, ढाई दिन के बाद डॉ.साहब ने पूरी पुस्तक पढ़ने के बाद कहा – "चलो घर का कारागार टूट गया (जैसा कि तुमने लिखा है ।) अब अर्चनावर्मा को मेरी ओर से शुक्रिया कह दो कि माताजी की कहानी के साथ इसमें हम भी जुड़ते चले गए । और डार्लिंग, स्वीट कीस फोर्म माय साइड कहकर वे मेरे करीं से करीं आते स्पर्श के लाहक में...”[85]

प्रस्तुत अध्याय में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि आत्मकथा लिखना उपन्यासों और कहानियों लिखने की तुलना में कितना दुर्घर्ष और कठिन कार्य है । अपने भीतर के नग्न सत्यों को खोलने का साहस सभी में नहीं होता, परंतु

मैत्रेयीजी में यह साहस है । इस के कारण एक तरफ इनकी पुस्तकों का स्वागत हो रहा है, वहाँ दूसरी तरफ कुछ लोग उनकी निंदा भी कर रहे हैं और उनको “ओवररेटेड” लेखिका घोषित करते हुए उन्हें दूसरे या तीसरे ग्रेड की लेखिका बता रहे हैं । इस समय हिन्दी जगत में विद्वानों के दो वर्ग है । - एक वर्ग मैत्रेयी को नारी-विमर्श और ग्रामीण लेखन की सशक्त लेखिका मान रहा है तो दूसरा वर्ग उनके लेखनको सामान्य प्रकार का बता रहा है ।

हम न मरहिं मारहिं संसारा

“गुड़िया भीतर गुड़िया” का यह अंतिम अठारहवाँ अध्याय का शीर्षक भी कबीर की उलटबासी से ही रखा गया है । – “हम न मरहिं मारहिं संसारा” यहाँ लेखिकाने पाठमें थोड़ा अंतर किया है, “मरहिं के स्थान पर मारहिं” कर दिया गया है जिससे लेखिका को शायद यह अभिप्रेत है कि संसार में लोग नहीं मरते है वस्तुतः संसार द्वारा, लोगो द्वारा उनको मार दिया जाता है । यह अध्याय लगभग 20 पृष्ठों में (पृ.331-352) विन्यस्त हुआ है । उसका प्रारंभ राजेन्द्रयादव के 75 वे जन्मदिवस को (अमृतमहोत्सव) के रुप में मनानेवाले प्रसंग से होता है । इस प्रसंग पर मैत्रेयी पुष्पा अपना जो संक्षिप्त वक्तव्य देती है उसको तोड़-मरोड़कर विकृत किया जाता है । कुछ दिनों के बाद लिखित तूफान के रुप में एक हंगामा खड़ा होता है । मैत्रेयी के घर कुरियर से एक पत्रिका आती है – “प्रथम प्रवक्ता” जिसका विषय था – “आज की औरत मुक्मल जहाँ की तलाश” इसमें मैत्रेयी के कथन को कुछ विकृतरुप में प्रस्तुत किया गया था । चर्चा को आयोजित करनेवाली कोई “साधना” नामक महिला थीं । दरहकीकत “अमृत महोत्सव” वाले सभागार में डॉ.निर्मलाजैन को छोड़कर कोई भी लेखिका उपस्थित नहीं थी । तथापि मृदुलागर्ग चित्रामुदगल, चंद्रकांता,

कमलकुमार, नासिरा शर्मा आदि के मैत्रेयी की कटु भर्त्सना करते हुए वकतव्य थे। जिसे पढ़कर मैत्रेयी तिलमिला उठती है। इस विषय पर कमलेश्वर का उत्तर संतुलित एवम् सारगर्भित है – "चुप रहना चाहिए। देखो, साहित्य की दुनिया में विवाद उठते हैं, यह कोई नई बात नहीं। लेकिन नुकशान की बात यह है कि विवाद लेखक को इस या उस गुट से जोड़ देते हैं। इससे रचना-शीलता बाधित होती है। ऊर्जा छीझने लगती है। मेरी बात ध्यान से सुनो मैत्रेयी, समझो कि जिस तरह हम गर्मी में खुद को राहत देने के लिए ठंडी जगह खोजते हैं, पंखा, कूलर का इस्तेमाल करते हैं, सर्दी में खुद को बचाने के लिए गर्म कपड़े पहनते हैं, उसी तरह रचनात्मकता को बचाने के लिए, मन के मौसम को संतुलित रखना होगा।"[86] कमलेश्वरजी की सलाह अनुसार मैत्रेयी स्वयं को नियंत्रित करने का यत्न करती है। परंतु वह सर्वाधिक आहत होती है मन्नू भंण्डारी के वकतव्य पर। बाद में मन्नूजी फोन पर मैत्रेयी से कहती है – "मैत्रेयी, हो सकता है मैं भूल गई हूँ। बीमारी के कारण परेशान रहती हूँ।"[87] इस पूरे प्रकरण में एक बात यह भी ध्यानार्ह रहनी चाहिए कि मैत्रेयी की कटु आलोचना करनेवाली लेखिकाएँ का एक विशिष्टवर्ग की हैं जिनको कदाचित मैत्रेयी के बढ़ते कद से ईष्या हो रहीं थी। कुछ ही वर्षो में मैत्रेयी एक सशक्त नारी लेखिका के रुप में उभर रहीं थी। शायद कइयों को खटकने लगा था। अन्यथा आयोजिका महोदय ने कृष्णासोबती, अनामिका, क्षमाशर्मा रोहिणी अग्रवाल जैसी लेखिकाओं को उस परिचर्चा में शामिल क्यों नहीं किया? यहाँ यह बात ध्यान रहनी चाहिए कि लेखक, लेखिकाएँ कोई देवी, देवता नहीं होते उनकी अपनी जरुरतों के हिसाब से उनमें भी उदारताऐं सदभावनाऐं कुंठाएँ और कभी-कभी कच्ची हरकत भी मिल सकती है। रामचंद्र शुक्ल, रामविलास शर्मा, नामवरसिंह के नाम पर हम उन्हें ऐसे देखते हैं जैसे

उनका लिखा / बोला वेद वाक्य हो, सत्य और अमर अजर । डॉ.निर्मलाजैन से बड़ी कोई समीक्षक महिला नहीं, जो कह दे पत्थर सी लकीर मगर, आज का नया साहित्य अनेक नई चुनौतियों को लेकर आता है । मैत्रेयी का यह कथन बड़ा सारगर्भित है – "पत्थर की लकीरें पानी के बल-बुलों में कब डूब जाएँ, वह भी नहीं जानते । स्थापित व उभरते समीक्षक अपने कद में डॉ.मैनेजरपांडेय हो, डॉ.विजय बहादुरसिंह, वीरेन्द्रयादव, मधुरेश के साथ रोहिणी अग्रवाल की प्रखरता अपने आप में कम तो नहीं । डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव का ज्ञान क्षीण तो नहीं हुआ, भले पक्षपात का आरोप लगता रहे । वह लोग आज के साहित्य को ठीक तौल रहे हैं ।[88]

यहाँ हम यह देखते हैं कि समीक्षकों का एक वर्ग जहाँ मैत्रेयी को एक सशक्त लेखिका मानता है । वहाँ कुछ लोगों की निगाह में मैत्रेयी का इधर का साहित्य सामान्य प्रकार का है। यथा निर्मलाजैन का यह कथन "इदन्नमम्" और "गोमा हँसती है" से उसने अच्छी शुरुआत की थी लेकिन आजकल स्त्री विमर्श में खुलीं खिड़कियोंसे, जिस तरह की बातें करती है । उसके लेखन में कोई दम नहीं । बल्कि कहना चाहिए कि "कस्तूरी कुंडल बसै" और अभी-अभी प्रकाशित "कहीं इसुरी फाग" उपन्यास के नाम पर धोखा है । वैसे मेरा संवाद मन्नू भण्डारी से तो हो सकता है, लेकिन मेरी दृष्टि में मैत्रेयी ऐसी बड़ी लेखिका नहीं जिसके लेखन पर में टिप्पणी करुँ ।"[89]

कमलेश्वरजी की तरह ही राजेन्द्रयादव ने भी कहा था – "डॉक्टरनी आज समझ लो और हमेशा के लिए गाँठ बाँध लो, जो ऊलू-जलूल बक रहे हैं, वे तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी हैं । उन्हें न तुम्हारे रुप-रंग से कुछ लेना-देना है न तुम्हारे और मेरे सम्बन्धों की पड़ताल से । उन्हें बस भय है तुम्हारे लेखन से । और धुँआंधार अनवरत लेखन से.... । मैत्रेयी हम जिसको लाख कोशिश के बाद भी

अपने काबू में नहीं कर पाते, उसके बारे में झूठी-सच्ची कहानियाँ प्रचारित करते हैं । स्त्री हो तो उसको अश्लील और बदचलन कहना बड़ा आसान हो जाता है । तुम लिखने से बाज नहीं आओगी और नए बिंदु तलाशती जाओगी तुम्हारी "सहेलियाँ" तुम्हें जिन्दा न छोड़ें तो ताजुब्ब क्या है? "सुन रही हो न?"[90]

इस प्रकार प्रस्तुत अध्यायमें मैत्रेयी पुष्पा को लेकर लेखिकाओं के एक वर्ग में जो ईर्ष्याप्रेरित विरोध को दर्शाया गया, वहाँ लेखिका उनके कारण अपराधबोध से मुक्त होकर आगे के मोर्चे के लिए तैयार होती हुई दृष्टिगोचर होती है । अध्याय के अंत में "फोर्टिस" अस्पताल वाला प्रसंग है । जिसमें राजेन्द्रयादव का ओपरेशन होना था । मैत्रेयी पर राजेन्द्रयादव का फोन आता है – डॉक्टरनी ओपरेशन होने जा रहा है । तुम्हें मालूम है । मैं तैयार कर दिया गया, लेकिन यहाँ ओपरेशन के लिए अपनी कंसेंट (रजामन्दी) देनेवाला कोई नहीं । इस लिए अब यह काम तुमकों ही करना होगा डॉक्टरनी ।"[91] इस पर मैत्रेयी के पति महोदय डॉक्टर साहब की टिप्पणी है – "क्या बुद्ढा अस्पताल में भी तुम्हें बुला रहा हैं?[92] यहाँ मैत्रेयी थोडे से झूठ का सहारा लेती है और कहती है मुझे नहीं बल्कि आपको बुला रहे हैं राजेन्द्रयादव । उसके बाद लेखिका का आत्मविश्लेषण – क्यों बोली में ऐसा? सचकी जगह झूठ क्यों बोली? किसके साथ न्याय करे? किसे धोखा दिया? में तिकड़म कर गई? फिर उसका प्रत्युत्तर भी मैत्रेयी स्वयं देती है – "जो भी हुआ यही मेरी जिंदगी का रुप है । यही सम्बल है, यही जीवन का आधार... "त्रियाचरित्र" कहो तो कह सकते हो । इस पौराणिक शब्द को मैं ने गाली नहीं माना । इसे में (सर्वाईवल ऑफ फिटेस्ट) मानती हूँ । जिंदगी को बचाकर रखने का तरीका ।[93] यादवजी

के ओपरेशन के लिए डॉक्टरसाहब अपना कंसेट देते हैं और फिर ओपरेशन संपन्न होता है। अध्याय का अंत, और "गुड़िया भीतर गुड़िया" का भी अंत इन वाक्यों से होता है – मैं कहाँ से कहाँ तक पहुँच गई। इस जगह को क्या नाम दूँ? शीश झुकाऐं हुए प्रार्थना बस। क्योंकि कितनी-कितनी दुआएँ कबूल हुई... क्या पाया और हमारा क्या-क्या नष्ट हुआ सब कुछ इस कहानी में है। अब हम वैसे कहाँ रहे, जैसे कि हुआ करते थे। सम्भवतः यही रचनात्मक जीवन दृष्टि है। और यही है साहित्य की शक्ति।"[94]

"गुड़िया भीतर गुड़िया की विश्लेषणात्मक विवेचना"

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का यह दूसरा भाग है। इसमें निम्नलिखित अट्ठारह अध्याय हैं – (1) काहे री नलिनी तू कुम्हलानी (2) तेरा झूठा-मीठा लागा (3) जो पै पिय के मन नहिं भायी (4) एक सुहागिन जगत पियारी (5) जियरा फिरे उदास (6) धिय सबै कुल खोयो (7) तृषांवत जो होयगा (8) मोरा मन मतबारा (9) अखियाँ जान सुजान भईं (10) कहूँ रे जो कहिबे की होय (11) मच्छी रुखां चढ गई (12) काजल केरी कोठरी (13) पति संग जागी सुन्दरी (14) यह तन जारों मसि करों (15) धरती बरसै, अम्बर भीजै (16) अन्तर भीगी आत्मा (17) तन छूटे मन कहॉ समाई (18) हम न मरहिं मारहिं संसारा। ध्यान रहें कुरुक्षेत्र का युद्ध भी 18 दिन ही चला था। मैत्रेयीजी की यह आत्मकथा किसी कुरुक्षेत्र से कम नहीं है। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र में अपने ही अपनों के सामने लड़े थे ठीक उसी तरह यहाँ पर मैत्रेयी को अपने ही (Nearest and dearest) लोगों से टकराना पड़ा है। जिस तरह वहाँ मोहभंग हुआ है, यहाँ भी कुछ परिस्थितियों में मोहभंग हुआ है। जिस तरह वहाँ कुछ छल छद्मों से काम

लिया गया था, यहाँ भी कुछ छल छद्मों से काम लिगा गया हैं। जिसे लोग "त्रिया-चरित्र" कह सकते हैं। पर इसे मैत्रेयी का साहस ही कहना चाहिए कि उन सबको यहाँ साफ-साफ तरीके से उजागर कर दिया है, उसे उजागर करने के खतरों का पुर्णरुपेण बोध होते हुए प्रायः लोग सुविधाजनक स्थितियों को बचा ले जाते हैं। मैत्रेयी ने कुछ बचाया ही नहीं है, डॉक्टर साहब और मैत्रेयीजी के संबंध टूट सकते थे। परंतु उसका भी खतरा उठाते हुए मैत्रेयीजी ने यह आत्मकथा लिखी है। इस प्रकार का साहस कुछ ही लोग कर सकते हैं। जिनमें प्रभा-खेतान, कृष्णासोबती, अमृताप्रीतम, तस्लीमा नसरीन, तहमीनादुरानी, मन्नू भंण्डारी आदि – आदि। अब इस पंक्ति में मैत्रेयी पुष्पा का नाम भी जुड़ गया है। अध्यायों के शीर्षक काव्यात्मक है। जिनको प्रायः कबीर के पदों या साखियों से लिया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि कबीर मैत्रेयी के पसंदीदा कवियों में रहें होगें। इससे भी मैत्रेयीजी के आंतरिक व्यक्तित्व को आँका जा सकता है। मैत्रेयीजी शुरु में कुछ भावनात्मक प्रकारकी कविताएँ, लेख एवम् कहानियाँ लिखती रही है। परंतु उनकी प्रतिभा को पहचानते हुए, डॉ. राजेन्द्र यादव उनके लेखन की दिशा को ही मोड़ दिया है। अनेक स्थानों पर मैत्रेयीजी ने इस बात का स्वीकार किया है कि डॉ.यादव के दिशानिर्देश के कारण ही उनके लेखन में आमूल परिवर्तन आया है। गुजराती का एक मुहावरा है – "आंगळी चिंध्यानु पुण्य" अर्थात् अंगुली निर्देश करने का, रास्ता बताने का पुण्य। तो यह पुण्य कर्म डॉ.यादव ने किया है। मैत्रेयीजी के उपन्यासों और कहानियों में बुंदेलखण्ड़ का ग्रामीण जीवन, उसके यथार्थ स्वरुप में चित्रित हुआ है। इस संदर्भ में फणीश्वरनाथ रेणु उनके आदर्श रहे हैं। रेणु और राजेन्द्रयादव की तस्वीरें वह अपने घर में रखती हैं और इन दोनों के प्रति भक्तिभाव या पूज्यभाव मैत्रेयीजी में रहा है। इस हद तक कि कई बार उनके पति डॉ.साहब को इन दोनों की ईर्ष्या भी होती रही है। रेणु तो दिवंगत हो गए, परंतु

राजेन्द्रयादव तो जीवित है । अतः कई बार पतिसाहब की दृष्टि का कोपभाजन हुए है और उनके फोटो को चूर-चूर किया गया है । पर फिर क्रोधावेश के समाप्त होने पर वे ही डॉ.साहब उस फोटों को फिर से जुड़वा भी लाए हैं और ऐसा एक बार नहीं अनेक बार हुआ है । जिस प्रकार का संतुलन मैत्रेयीजी के लेखन में है, ठीक उसी प्रकार का संतुलन डॉ.साहब में हमें दृष्टिगोचर होता है । शायद यही संतुलन है जिसके कारण मैत्रेयी पुष्पा और डॉक्टर साहब का दांपत्यजीवन साबूत रह पया है । अन्यथा अनेक बार ऐसी-स्थितियों का निर्माण हुआ है, जिनके चलते उनका विवाह – विच्छेद हो सकता था ।

"गुड़िया भीतर गुड़िया" आत्मकथा है । पर लेखिका ने आत्मकथा के A to Z वाली क्रमक्रिता को न अपनाते हुए औपन्यासिक शिल्प को अपनाया है । फलतः प्रथमतया कई लोगों को "कस्तूरी कुंडल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया", उपन्यास ही लगे थे । कइयों ने उनका उपन्यास के रुप में उल्लेख किया था । प्रतिष्ठित आलोचक डॉ.निर्मलाजैन ने विरोधी स्वर में भी सही कहा है – "बल्कि कहना चाहिए कि "कस्तूरी कुंडल बसै" और अभी-अभी प्रकाशित "कहीं ईसुरी फाग" उपन्यास के नाम पर धोखा है ।[95] अभिप्राय यह कि निर्मलाजैन भी "कस्तूरी कुंडल बसै" को "उपन्यास" ही कह गई है । जबकि "कस्तूरी कुंडली बसै" मैत्रेयी की आत्मकथा का प्रथम भाग है । जिन लोगों को मैत्रेयीजी के संदर्भ में, उनके सगे रिश्तेदारों के संदर्भ में उनके माता-पिता के नामों के संदर्भ में तथ्य मालूम ना हो और वे यदि इस किताब को पढ़े तो निर्मला जैन की भाँति वह भी उसे उपन्यास ही मानते । इस प्रकार आत्मकथा में उपन्यास का सा रस था आनंद प्राप्त होता है । इसे भी मैत्रेयी की सफलता ही कहना चाहिए । मैत्रेयी ने इन दो आत्मकथाओं को आत्मकथा की विधा के रुप में लिखा है । परंतु उन्होंने "शिल्प" उपन्यास का लिया है । इस लिए अनेक स्थानों

पर उसमे पूर्वदीप्ति के सहारे आगे की घटना पीछे और पीछे की घटना आगे हो गई है। कहीं पर वो “इदन्नमम” और “चाक” के लेखन की बात कर रही है तो कहीं किसी शब्द या प्रसंग को लेकर वह अपने अतीत में चली गयी है और लेखिका होने से पहले की घटनाओं का उल्लेख करने जाती है । कहीं पर उल्लेख मिलता है कि उनकी बेटियाँ जवान हो गई हैं। डॉक्टर बन गई हैं और फिर तुरंत इस के बाद स्मृतियों के सहारे वह उस लोक में पहुँच जाती है जहाँ वे छोटी बच्चियाँ है, या उनका जन्म भी नहीं हुआ है। शिल्प की भाँति भाषिक संरचना भी उनकी उपन्यास के अति अनुकूल है । जो भी हो, ये दोनों आत्मकथाएँ मैत्रेयी पुष्पा के लेखन की पृष्ठभूमि को जानने के लिए अत्यंत उपयोगी संदर्भ ग्रंथ प्रमाणित हो सकते हैं । मैत्रेयी के समय की सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक परिस्थितियाँ भी सामने आतीं हैं । इन दों आत्मकथाओं का जो समय है। उसमें स्वाधीनता पूर्व के अंग्रेजो के जुल्मीशासन से लेकर स्वाधीनता के उपरांत सन् 2002 “गोधरा कांड तक की” घटनाओं को समेकित किया गया है । अंग्रजों के शासन में लगान के लिए किस प्रकार किसानों को कोड़े से पीटा जाता था उसके कई हदयद्रावक चित्र “कस्तूरी कुंडल बसै” में मिलते हैं पर पूर्वदीप्ति की पध्धति के कारण “गुड़िया भीतर गुड़िया” में कहीं उनका चित्रण मिल जाता है । मैत्रेयीजी की माताजी “कस्तूरी” को वस्तुतः लगान की रकम चुकाने के लिए ही बेचा गया था। अवांछित स्थितियों में विवाह के कारण कस्तूरी अपने वैवाहिक जीवन से संतुष्ट कभी नहीं रहीं । इसका जिक्र “गुड़िया भीतर गुड़िया” में भी मिल जाता है। स्वाधीनता के उपरांत देश में किस कदर भ्रष्टाचार का बोलबाला हुआ और किस तरह गलत और अनैतिक कार्य करनेवाले लोग “नवधनिक” वर्ग में तबदील होते गए । उसका यथार्थ वर्णन इन आत्मकथाओं में उपलब्ध होता है । कस्तूरी की पीढ़ी गांधीवादी वातावरण की पीढ़ी है । जिसमें कुछ नैतिक जीवन मूल्य और जीवनादर्श थे।

प्रगतिवादी जीवनमूल्य थे । स्वतंत्रता के उपरांत इस पहिये को आगे बढ़ना चाहिए था । परंतु उसके विपरीत हुआ है । अतः कई बार लगता है कि वह पुरानी पीढ़ी वर्तमानपीढ़ी की तुलनामें अधिक प्रगतिवादी थीं । स्वतंत्रता के बाद तो शायद हर क्षेत्र में पीछेहट हो रही है । विज्ञान और प्राद्योगिकी के कारण विकास होता हुआ दिख रहा है पर जल, जमीन और जंगल की लड़ाइयाँ तो अभी भी चल ही रही हैं । सांप्रदायिक भावनाएँ पहले की तुलना में और अधिक पनप रही हैं । कुछ लोग संकुचित सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काकर अपने स्वार्थ की रोटियाँ सेकने में सफल भी हो रहे हैं । पंड़ित जवाहरलाल नेहरु, लालबहादुरशास्त्री, इंदिरागांधी से लेकर इधर के प्रधानमंत्रियों तक के हवाले हमें इन आत्मकथाओं में प्राप्त हो रहे हैं । यह भी एक दिलचस्प तथ्य है कि समय-समय पर लेखिका ने उन फिल्मों के नाम भी दिए हैं जो कभी प्रचलित रही हैं । और इस प्रकार फिल्मों के जरिए भी एक समययात्रा तय हो रही हो ऐसा प्रतीत होता है ।

"कस्तूरी कुंड़ल बसै" मेत्रेयी की आत्मकथा और कस्तूरी की जीवनी सी पतीत होती है । कई आलोचकों को और सहदृय पाठकों के मतानुसार कस्तूरी का चरित्र का मैत्रेयी पुष्पा से भी ज्यादा दमदार लगत है । ऐसा लगता है कि कस्तूरी के चरित्र में नारीवाद के अभिलक्षण मिलते हैं । पश्चिम का नारी मुक्ति आंदोलन, वहाँ की "सिमोन बुआ" सरीखी नारीवादी लेखिकाओं के विचारोंसे कस्तूरी के विचार बहुत मेल खाते हैं । उसके मन में पुरुषों और मर्दवादी वर्चस्व के प्रति धृणाभाव है । वह सोचती है कि लड़कियों को पढ़-लिखकर अपने पैरो पर खड़े होना चाहिए । ठीक "अन्यासे अनन्या" की "अम्मा" की तरह । प्रभा खेतान की अम्मा प्रभा और गीता से कहती थी कि तुम लोग भी शब्द पढों लिखो और रुपिया कमाओ ।[96] कस्तूरी भी चाहती थीं कि मैत्रेयी पढ़-लिखकर अफसर

बने। उसे ज्यादा पढ़ने का मौका नहीं मिला। अतः थोडा-बहुत पढ़कर सरकारी नौकरी में लग गई। परंतु वह चाहती थी कि उनकी बेटी उससे भी आगे बढे। पर प्रायः देखा जाता है कि संतानो में अपने माँ-बाप के प्रति प्रतिक्रिया का भाव मिलता है। कस्तूरी विवाह संस्था से जितनी घृणा करती थी, मैत्रेयी में विवाह के लिए उतनी ही ज्यादा ललक भी। यौन समानता भी उसमें पहले से आ गई थी और वह चाहती थी कि किसी अच्छे लड़के से विवाह कर के घर-गृहस्थी बसाये। माँ की भाँति वह पुरुषोंसे नफरत नहीं करती थी बल्कि सुदर्शन पुरुषमूर्तियाँ उसे लुभाती थीं। इतना जरुर है कि वह दान-दहेज देकर विवाह नहीं करना चाहती थी, वह चाहती थी कि उसकी अपनी योग्यताओं शिक्षादिक्षा के आधार पर लड़का उसे स्वीकार करे। मैत्रेयी स्त्री-पुरुष बराबरी और दोस्ती में विश्वास करती है। मर्दवादी वर्चस्व उसे भी पसंद नहीं है। और सद्भाग्य से उन्हें डॉक्टर शर्मा के रुप ऐसा पति मिल जाता है जो दान-दहेज के स्थान शिक्षाको प्रमाणपत्रों को अहमियत देते हैं जो कुंडलिनी नहीं सर्टीफिकेटों में विश्वास रखते हैं। "गुड़िया भीतर गुड़िया" में अनेक स्थानों पर हम देखते हैं कि मनभेद होते हुए भी डॉ.साहेब मैत्रेयी के साथ अनुकूलन बना लेते हैं। आत्मकथामें सैकड़ो बार मैत्रेयी के लिए "जानम" संबोधन आया है। जिससे प्रतीत होता है कि मैत्रेयी की बहुत सी बातों को नापसंद करते हुए भी वे उन्हें तहेदिल चाहते हैं। एकबार पहले मनाकर देते हैं। परंतु आखिर कार होता वही जो मैत्रेयी चाहती है। स्मृति में एक शेर क्रौंध रहा है -

"बस यूँ ही कहा था, ज़रा तुमने

बात तेरी सदा मनमानी हुई

एक राजा हुआ एक रानी हुई"[97]

ठीक उसी तरह डॉक्टर साहब कई बातों में मैत्रेयी पर बरसते रहे पर अंततः वही हुआ जो मैत्रेयी चाहती थी। मैत्रेयी को मैत्रेयी बनाने में डॉ.साहब के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। मैत्रेयी पुष्पा एक सशक्त नारी – विमर्श की लेखिका के रुप में बुंदेलखण्ड़ के ग्रामीण जीवन के सशक्त चितेरे के रुप में उभरकर आयी उसमें कई-कई लोगों का योगदान है। प्रथमतः मैत्रेयी की अपनी प्रतिभा जीवनानुभवों की पूंजी और स्मृति। द्वितीयतः मैत्रेयी की बैटियों की चाह थी, उनकी मम्मी कुछ ऐसा लिखे कि जिससे उनको "नाम और दाम" दोनों मिले। तृतीयतः "लिज लिजी छायावादी भावनाओं के खोल से बहार निकालकर यथार्थवाद के राजमार्ग पर ले आने का श्रेय हंस संपादक डॉ.राजेन्द्रयादव को जाता है। चर्तुथतः डॉ.साहब की वह संतुलन साधने की क्षमता, पंचमतः मेडम इल्माना की प्रेरणा तथा मन्नू भंण्डारी से मिलना, षष्ठतः छात्रजीवन का मैत्रेयी का वह प्रेमी जिसने उनको प्रेम पत्र लिखा था। यह प्रेमपत्र भी मैत्रेयी के लेखन की नीव को पुख्ता करनेवाला है। इस प्रकार मैत्रेयी को लेखिका बनानेवाले कई आयाम हैं। पर इन सब में कहीं न कहीं कस्तूरी भी है जो चाहती थी कि उनकी बैटी बड़ी अफसर बने, भले अफसर न बनी पर साहित्य की दुनियाँ में अपना विजयकेतु फहराकर अपनी माता कस्तूरी को सच्ची श्रद्धांजलि देती है।

पूर्ववर्ती अध्याय में मैत्रेयीजी की आत्मकथाओं के संदर्भ में डॉ.विभूति नारायणराय के कथन को लेकर जो बवंडर उठा था उसका जिक्र हम कर चुके है। डॉ.रायकी बडी ही कुत्सित, अश्लील और अभद्र टिप्पणी थी कि इधर लेखिकाओं में इसकी होड़ मची है कि कौन कितनी बड़ी "छिनाल" है। और यह भी कहा था कि आत्मकथा का नाम "कितने बिस्तर कितनी बार" होना चाहिए।[98] बाद में लेखिकाओं द्वारा विरोध होने पर डॉ.राय ने "छिनाल" शब्द की

व्युत्पत्ति छिन्न+नाल से बताते हुए उस पर लीपा-पोती करने का प्रयत्न भी किया, पर उस दूसरी टिप्पणी का क्या? अब इन दोनों आत्मकथाओं को साधन्त देख जाने पर अधिकार पूर्वक में कह सकती हूँ की मैत्रेयी ने अपनी आत्मकथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में ऐसे किसी प्रसंग का उल्लेख नहीं किया, जिससे उनके चरित्र को लांछित किया जा सके, बल्कि ऐसे कई प्रसंगों में वह स्वयं को बचा ले गई है। उसका ज्वंलत उदाहरण तो कानपुरवाली वह गोष्ठी है जिसमें भयंकर सिरदर्द होते हुए पानी न होने के कारण वह गोली नहीं ले सकी। क्योंकि सामने के कमरे में डॉ.राजेन्द्रयादव को ठहराया गया था। मैत्रेयी एक बार अपने कमरे में बंध हो जाती है। फिर उसे खोलने का साहस तक नहीं कर पाई है जिसके कारण बाद में वह, बीमार भी पड जाती है और उनको आई.सी.यु. में भर्ती भी कराना पडता है।[99] यहाँ लेखिकाने अपनी टिप्पणी भी दी है – "यदि मुझे सच बोलने का मौका दिया जाए तो कहूँगी कि राजेन्द्रजी मुझे आपसे डर नहीं लग रहा था। जो कुछ मैं ने प्रदर्शित किया, वह लोगों का दिया हुआ ड़र था।[100] सह सम्पादक वाले प्रसंग में भी वही चार्तुयपूर्ण ढ़ंग से अपना बचाव कर ले जाती हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि पैंतालिस साल के बाद मैत्रेयी तीन-तीन बैटियों के जवान होने पर उनके ही आग्रह से लेखन के क्षेत्रमें आई थी। उम्र का यह पड़ाव, डॉ. राय ने जिस प्रकार लिखा है, उस प्रकार का तो कतई, कतई नहीं हो सकता है। आत्मकथा में मैत्रेयी के छात्र-जीवन के और वैवाहिक जीवन के बाद के डॉ.सिद्धार्थवाले प्रसंग की बात करें तो इन सभी प्रसंगोमें कहीं भी शारीरिक स्तर पर स्खलन की कोई बात नहीं है। पुराने जमाने की बात और थी जब 10-12 साल की उम्र में लड़की की शादी कर दी जाती थीं और समग्र जीवन पति-परमेश्वर की सेवा मे व्यतीत होता था। पर आज जब लडकियाँ पढ़ने लगी है। महा-विद्यालय और कोलेजों में जाने

लगी और उनकी शादियाँ 25-30 साल की उम्र के बाद होती है तो कोई भी सुशिक्षित महिला प्रमाणिकता से यह नहीं कह सकती की उसका पति ही वह पहला पुरुष है जो उसके जीवन में आया हो । क्योंकि भावनात्मक स्तर पर उसके पूर्व भी कई-कई लड़के उसके जीवन में आ चुके होते हैं । मैत्रेयी के जीवन में भी आये हैं, ये केवल “भावनात्मक लगाव” है । शरीर तो पूर्णरुपेण मैत्रेयी ने अपने पति को ही दिया और ताजिंदगी उसका निर्वाह भी किया है । इसे मैत्रेयीजी का साहस, ईमानदारी और प्रमाणिकता ही कहना चाहिए कि उन्होंने विवाह पूर्व के प्रणय प्रसंगों का वर्णन किया है ।

डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र ने मैत्रेयी की आत्मकथा “गुड़िया भीतर गुड़िया” के संदर्भ में कहा है – “गुड़िया भीतर गुड़िया” शीर्षक पढ़कर आत्मकथा साहित्य के पाठक को अंग्रेज कवि “स्टीकन पेंण्डा की आत्मकथा “दुनियाँ भीतर दुनियाँ” (World within World) के शीर्षक का स्मरण हो जाता है । एक नारी के अंदर कई नारियाँ मौजूद होती है । वह पत्नी भी है और लेखिका भी । पत्नी पर पड़नेवाले प्रभावों से लेखिका अप्रभावित नहीं रह सकती । यही बात “मन्नू भंण्डारी” ने अपनी आत्मकथा “एक कहानी यह भी” में बड़ी सिद्दत के साथ कही है । पत्नी जब लहू-लुहान हुई तो लेखिका भी घायल हो धीरे-धीरे निष्क्रिय हो गई । मैत्रेयी के साथ ऐसा नहीं हो पाया क्योंकि उसके पति संकट में उसे सहारा देते हैं । दोनों के बीच गल्त फहमियाँ होती हैं लेकिन दूर भी हो जाती है ।”[101]

डॉ.शर्मा जब अलीगढ़ से दिल्ली एम्स में आ जाते हैं तब वे भी एक प्रकार के दोहराव से गुजरते हैं । ग्रामीण संस्कारोंवाली मैत्रेयी जब पति के साथ राजधानी दिल्ली में पहुँचती है । तब स्वाभाविकतया डॉ.शर्मा चाहते हैं कि उनकी पत्नी आधुनिक बने । दूसरी तरफ वह उस पर नियंत्रण का कसाब भी

बराबर बनाए रखते हैं । यह स्थिति अंधेरे बंध कमरे के "हरवंश" जैसी है । हरवंश अपनी पत्नी निलिमा को मोडर्न बनाने के लिए उसके भीतर की कलात्मक ऊर्जा को जगाता है और जब वह उसके कारण हरवंश के मित्रों में आकर्षण का केन्द्र बनती है तो वह पुराने पारंपारिक पति की तरह अपने नियंत्रण में भी रखना चाहता है । एक स्थान पर निलिमा हरवंश कहती है – "तुम सिर्फ इस हीन भावना के शिकार हो" के लोग मुझे तुम से ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है वह तुम्हारे विषय में न होकर मेरे विषयमें होती है । तुम्हें यह बात खाए जाती है कि लोग तुम्हारी चर्चा निलिमा के पति के रुप में करते है । तुम्हें डर लगता है कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ तो लोग मुझे और ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा महसूस करोंगे ।"[102] परंतु यहाँ स्थिति थोड़ी भिन्न है । हरबंश-निलिमा एक ही क्षेत्र के है । अकादमिक जगत से जुडे हुए, जबकि डॉ.शर्मा और मैत्रेयी के क्षेत्र अलग-अलग हैं । डॉ.शर्मा एम्स के एक माने हुए डॉक्टर हैं । अतः हरबंश जैसी हीनता ग्रंथी का भाव उनमें नहीं हो सकता । दूसरी बात यह है कि डॉ.शर्मा जब एम्स में जाते हैं तो स्थिति उस प्रकार की नहीं थी । बाद में मैत्रेयीजी जब एक सिध्धहस्त लेखिका हो जाती है और साहित्य जगत में अपना एक अलग वजूद बनाती है, तब ऐसी स्थिति आ सकती थी और कई बार आई है । परंतु डॉ.साहब के स्वभाव में ही एक गजब प्रकार की संतुलन शक्ति है कि मैत्रेयी के "गोड़फाधर" जैसे राजेन्द्र यादव को खूसट, बुड्ढा लोगों की बीबियों को बरगलानेवाला, औरतों को फंसानेवाला कहें और उनकी तस्वीरों से लड़ें लेकिन फिर उन्हीं राजेन्द्रयादव को "व्रजवासी दावत" दे । बीमार अवस्था में उनकी सेवामें पूरी तरह से तत्पर रहे, घर से बेदखल करने पर वह मकान में उनको पूरी सुख-सुविधा के साथ स्थापित करने का प्रयास करें । मैत्रेयी पुष्पा भले ही अपने पति महोदय के "जलकूकड़" कहती हो । परंतु मैत्रेयी पुष्पा को मैत्रेयी

पुष्पा बनाने में उनका जो योगदान है उसे नकारा नहीं जा सकता। डॉ.शर्माकी उदारता और उनकी सोच की इससे बड़ी मिशाल और क्या हो सकती है? कि एक स्थान पर उन्होंने इकरार किया है – "जानम, जब गोष्ठियों में जाती है, बहार तो हमारा दुःख इंतिहा पर होता है, शक-संदेह ऐसे उठते हैं जैसे गैरमर्दों के आकार रुप हो और तुमसे अठखेलियाँ करते हों। बताओ कि इतना कष्ट पाकर में तुम्हें घर से निकाल देता हूँ?"[103] (पृ ३०५)

डॉ.सिद्धार्थ के प्रति मैत्रेयी का जो आकर्षण है उसके पक्ष में वह तर्क देती है – "नाचना मेरी इच्छा का नतीजा था, मेरी अपनी निजी इच्छा... नाच कर में उस गँवार शब्द के शहरी हथियार का साहस के साथ सामना कर रही थी। जिसने अभी तक मुझे नीचा दिखाने के लिए अपना इस्तेमाल कराया है.... मैं ने अनुमति के लिए पति की ओर देखा नहीं। अपना निर्णय अपने हाथ में लिया, खतरों के बारे में सोचा नहीं।[104] इस प्रकार मैत्रेयी का यह कदम उसकी अपनी हीनताग्रंथि को दूर करने का था। वह अपनी नगरीय सहेलियों को बता देना चाहती थी कि वह भी एक आधुनिका की तरह किसी पर-पुरुष के साथ नृत्य कर सकती है। यहाँ मैत्रेयी ने डॉ.सिद्धार्थ के उन गुणों का भी जिक्र किया है, जिनके कारण उनका खिंचाव उनकी तरफ था – "डॉ.सिद्धार्थ मौसमों की रंगतों, हवा की सुगंधों में रचे-बसे लोकगीतों का अर्थ जानते हैं। यही था मेरे जुड़ाव का कारण।"[105] इस तरह मैत्रेयी पुष्पा की लोकगीतों वाली वह भूमिका ही उनको डॉ.सिद्धार्थ की ओर ले गई थीं। ये लगाव और खिंचाव कोई और रंग दिखावे उससे पहले ही डॉ.सिद्धार्थ विदेश चले जाते हैं।"[106]

"गुड़िया भीतर गुड़िया" में अनेक अंतविरोध भी मिलते है। जैसे छोटी बेटी सुजाता जब किसी निम्नजाति के लड़के से विवाह करना चाहती है तो

मैत्रेयी सोच - विचार मे पड़ जाती है । हाँलाकि बाद में वह उन दोनों को विवाह की अनुमति देती है और विवाह भी करवाती है । परंतु यहाँ भी वह ऐसा कर पाई है उसमें कहीं न कहीं डॉक्टर शर्माकी वह समझौतावाली नीति रही हैं । बिछियाँ और करवाचौथव्रत को तिलांजलि देनेवाली लेखिका अपनी मित्र इल्माना के बुर्के को मुस्लिम संस्कृति का हिस्सा मानकर वैध ठहराती है ।"[107] इसे भी मैत्रेयी का वैवाहिक अंर्तविरोध ही कहना चाहिए । इसी तरह बांग्लादेश का युद्ध छिड़ जाने पर एम्स की कोलोनी में जब इल्माना "शक" के घेरे में आ जाती है और एम्स के कई लोगों द्वारा उनका "बायकाट" होता है तब मैत्रेयी देशकी सुरक्षा का हवाला देते हुए ऐसे नाजुक वक्त पर सावधान रहना और इल्माना से दूर रहना ही श्रेयस्कर समझती है ।[108] इसे भी उनका वैचारिक अंतर्विरोध समझना चाहिए ।

पति से संबंध विच्छेद के विचार मैत्रेयी में कईबार आते है । परंतु राजेन्द्रयादव और मन्नू भंण्डारी के विच्छेद पर उनका दिल दहक उठता है । यथा – "यहाँ तो स्थिति और भी भयंकर ... वृद्धावस्था में अलग-अलग होना... आप दोनों में से एक कोई बीमार हो गया तो क्या होगा? सेवाशुश्रुषा ना बन पाए न सही, शहर में नौकर बहुत है । मगर घर में अपने सिवा दूसरे की उपस्थिति ही कम आस्वस्तिदायक नहीं होती ।"[109] इस प्रकार मैत्रेयी संबंध विच्छेद का विचार रखते हुए भी उस प्रकार का साहस नहीं कर पाई है । इसके पीछे भी शायद डॉ.साहब का ही हाथ है क्योंकि मन्नू-राजेन्द्र में कोई जुकने को तैयार नहीं था । दोनों के अपने – अपने अहम् थे । परंतु मैत्रेयी के प्रसंग में डॉ.साहब अपने अहम् की कईबार कुर्बानी दे देते है और स्थितिओं को संभाल लेते हैं । अन्यथा आत्मकथा के ऐसे कही प्रसंग और उदाहरण आए है जहाँ मैत्रेयी अपने वौवाहिक जीवन से असंतुष्टि का संकेत देती है। डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र ने ऐसे ३

प्रसंगो का उल्लेख किया है – (1) माताजी मैं अब विधवा कब होंगी?" (पृ.288) (2) आज अपने ब्याह के पुराने फैसले पर दुःखी हूँ या ब्याह की वर्जनाओंको तोड़ने के नए संकल्प पर पस्ता रही हूँ। पत्नी की भूमिका अपनी कसावट में यंत्रणा दे रही है। (पृ.295) (3) इस आदमी से अलग ही हो जाऊँ... विवाह का गठबंधन चाहत का गला घोंट रहा है, दुहानेवाला यहाँ कोई नहीं। जब कि मैं दम दे रही हूँ... मेरे चाल-चलनकी तेजी और आकांक्षाओं के महत्व से तड़प उठते हैं... मैं इस आदमी को छोड़ ही दूँ, मेरे भीतर हूँक उठी।" (पृ.293-294)

यहाँ डॉ.सरजूप्रसाद मिश्रकी इस टिप्पणी से सहमत हुआ जा सकता है – इसे सुख से दुःखी होना ही कहा जाएगा। यदि एक सामान्य परिवार की लड़की की शादी उज्जवल भविष्यवाले डॉ.शर्मा से न होती तो मैत्रेयी का जीवन क्या होता, इसे आसानी से समझा जा सकता है।... वस्तुस्थिति यह है कि डॉ.शर्मा अपनी पत्नी के हितों की सुरक्षा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है। उसके साहित्यिक अभियानों को सफल बनाने में योगदान करते हैं।"[110]

डॉ.परमानंद श्रीवास्तव ने "गुड़िया भीतर गुड़िया" की समीक्षा करते हुए लिखा है – "कईयों का मानना है कि "गुड़िया भीतर गुड़िया" रचना प्रक्रिया या संघर्ष के सफरनामे – सरीखी कृति है और सच-झूठ का कोलाज है।"[111] डॉ.श्रीवास्तव के इस कथन की आलोचना करते हुए डॉ.सरजूप्रसाद मिश्र लिखते हैं – समीक्षक ने इस कथन की जाँच-पडताल न करते हुए उसे "आत्मकथा" से अधिक सिद्ध करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैत्रेयी विवाह संस्था और पति के खिलाफ बहुत कुछ लिखती है। जो कुछ लिखा गया है, उसे सत्य की कसौटी पर कसने की जरुरत है मैत्रेयी विवाह संस्था

तत्संबधी परम्पराओं और पति से विरोध का चित्कार - फुत्कार परख वर्णन करती है । मंगलसूत्र उनकी दृष्टि में "घटमल्ला" है । अपनी मित्र इल्माना से वह कहती है – हमें अपनी निष्ठा और पति के प्रति वफादारी को भूखे रखकर निभाना होता है । करवाचौथ के साथ पति भी उम्र का चक्कर तो बेकार लगा दिया है ।" (गु.पृ.63) एक अन्य स्थान पर लिखा है – "करवाचौथ के व्रत से ही पूरी साल ड़रा करती थी कि अब वह काल का दिन आने वाला है ।" (पृ.93 गु.) विश्वास न होने पर भी किसी रुढ़ि का अनुकरण क्रांतिकारिता नहीं दर्शाता ।"[112]

मेरे नम्र मत के अनुसार श्रीवास्तवजी यदि प्रस्तुत कृति को "आत्मकथा से अधिक सिद्ध करने में लगे हुए हैं तो उसे भी उपयुक्त नहीं कहा जा सकता । आत्मकथा आत्मकथा ही होनी चाहिए । न अधिक कम न ज्यादा । द्वितीयतः मैत्रेयी जी ने अपनी आत्मकथा में विवाह संस्था तथा परंपराओं के प्रति जो उद्गार निकाले हैं, वे उद्गार उनके जीवन के विविध प्रसंगो के परिप्रेक्ष में आए हैं, उन संदर्भो को काटकर उनको देखना अनुपयुक्त है । तृतीयतः मैत्रेयी जी ने कही भी अपनी "क्रांतिकारिता" के संदर्भ में कहा नहीं है । वस्तुतः मैत्रेयी जी एक बनी हुई लेखिका नहीं है । वह एक बनती हुई लेखिका है । अतः वैचारिक अंतर्विरोध रह सकते हैं । मैत्रेयीजी ने स्थान-स्थान पर अपनी भीरुता को भी बेपर्द किया है

"गुड़िया भीतर गुड़िया" शीर्षक प्रतीकात्मक है । विश्लेषण अनेक स्तरों पर हो सकता है । लेखन पूर्व की मैत्रेयी वह गुड़िया है जो रीति-रिवाजों और मान्यताओं की डोर से परिचालित होती रही है । उस गुड़िया का संचालन कभी माँ के द्वारा, कभी समाज द्वारा तो कभी पति द्वारा होता रहा है । परंतु इसी गुड़िया के भीतर से एक नयी गुड़िया ने जन्म लिया है, जो मैत्रेयी की लेखन के

बाद की गुड़िया है । उसका संचालन लेखिका की लिखने की जद्दोजहद और लेखकीय संघर्ष और जीवानुभवों के द्वारा हुआ है ।

निष्कर्ष :

दोनों अध्यायों के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुँच सकते हैं-

1. "कस्तूरी कुंडल बसै" लेखिका की आत्मकथा का प्रथम भाग है । "गुड़िया भीतर गुड़िया" आत्मकथा का दूसरा भाग है । प्रथम खण्ड़ की नायिका हमें कस्तूरी प्रतीत होती है । कस्तूरी का चरित्र अत्यंत सक्षम है । वह एक जीवटवाली संघर्षकामी जूझारु औरत है । यदि कोई बात वह ठान लेती है तो ताल ठोककर वह उसके पीछे पड़ जाती है । इस तरह कई दृष्टियों से कस्तूरी का चरित्र हमें मैत्रेयी के चरित्र से भी अधिक सशक्त प्रतीत होता है ।
2. मैत्रेयी में अनेक स्थानों पर कई अंतर्विरोध मिलते हैं । कस्तूरी में उस प्रकार के अंतर्विरोध कम हैं । कहना चाहें तो कह सकते हैं कि कस्तूरी का चरित्र नारीवादी चरित्र है जब कि मैत्रेयी का चरित्र नारीविमर्श वाली नारी का है ।
3. कस्तूरी अपने जीवन के यौवनकाल से एक सशक्त नारीपात्र के रुप में उभरती है । मैत्रेयी में कस्तूरीवाली यह बात बहुत बाद में प्रगट होती है । लगभग प्रौढ़ावस्था में ।
4. मैत्रेयीजी अपनी आत्मकथाओं के अध्यायों के जो शीर्षक देती हैं उनसे इस तथ्य की प्रतीति होती है कि उनके ऊपर कबीर का विशेष प्रभाव है । कबीरकी ऊलटबासियों में जो जटिलता और संलिष्टिता है उसी प्रकार की जटिलता और संलिष्टिता इस आत्मकथा में भी पायी जाती है ।

5. मैत्रेयी पुष्पा की ये दोनों आत्मकथाएँ अपने समसामायिक जीवन को समझने के लिए “आईना” का काम करती है । विभिन्न समकालीन ऐतिहासिक संदर्भो की नोंध लेखिका ने ली है । कई स्थानों पर सम-सामायिक फिल्मों और गीतों का भी उल्लेख लेखिकाने किया है । इस प्रकार आत्मकथा में सहजता आयी है ।

6. आत्मकथा लेखन की तुलना “नट कर्म” से हो सकती है । नट रस्सी पर चलने के लिए अपने हाथ में धारण किए बांस का उपयोग संतुलन साधने में करता है । ठीक उसी प्रकार मैत्रेयी की इन आत्मकथाओं में उनकी दृष्टि और विवेकने संतुलन का काम किया है । जिन बातों को स्वीकृत करने में किसी को झिझक हो सकती है । ऐसी बातों का खुलासा भी लेखिका ने साहस-पूर्ण तरीके से किया है । इस प्रकार का लेखन किसी भी स्त्री के दांपत्य जीवन में खतरे पैदा कर सकता है, पर लेखिकाने उस प्रकार के खतरों को उठाया है ।

7. मैत्रेयी के उपन्यासों और कहानियों की भाँति ये आत्मकथाएँ भी इस बात का प्रमाण है कि सशक्त साहित्य के लिए लेखक या लेखिका को कहीं-न-कहीं संघर्ष - टकराहट का सामना करना ही पड़ता है । इन से बचकर जो लिखा जाता है । उस प्रकार के “सुष्टु सुष्टु” प्रकार के लेखन में कोई दम नहीं होता ।

8. “गुड़िया भीतर गुड़िया” आत्मकथा में हमें मैत्रेयी के कई उपन्यासों और कहानियों की पृष्ठभूमि उपलब्ध होती है । अतः उन उपन्यासों और कहानियों को सही परिपेक्ष्य में समझने के लिए आत्मकथा एक अत्यंत आवश्यक स्त्रोत ग्रंथ का कार्य करती है ।

संदर्भसंकेत

1. गुड़िया भीतर गुड़िया : मैत्रेयी पुष्पा : निवेदन से : पृ. ७
2. दृष्टव्य : वही : पृ. २०
3. दृष्टव्य : वही : पृ. ४१
4. दृष्टव्य : अलग - अलग वैतरगी पृ. : ५
5. From :- An interview of Mahesh Bhatt : Times of India : Baroda Times – Page : 8 : 22/8/11
6. Times of India : 26/8/11 : They said it : Quotation from Lady Gaga – A Pop Singer : Page No. 12
7. दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया – मैत्रेयी पुष्पा – पृ. ६४
8. दृष्टव्य :वात्सायन कामसूत्र और An Abz of love Stelen and Hingë
9. दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ७६
10. दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ६१
11. तुलनीय हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिलाओं का चित्रण : रोहिणी अग्रवाल
12. दृष्टव्य :बात बोलेगी : संजीव : हंस
13. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ८३
14. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ८०
15. दृष्टव्य :वही : पृ. ९१
16. दृष्टव्य :वही : पृ. १११
17. दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुडिया : पृ. ११६
18. वही : पृ. ११०
19. दृष्टव्य :वही : पृ. १२३

20. दृष्टव्य :वही : पृ. १०३
21. See : Times of India : P : 9
22. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १२८
23. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १३७
24. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १४०
25. वही : पृ. १४२
26. वही : पृ. १५५
27. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १६१
28. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १७८
29. वही : पृ. १७७
30. वही : पृ. १७९
31. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १७३
32. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १८३
33. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १८१
34. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १८८
35. वही : पृ. १८९
36. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १९०
37. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १९१
38. वही "" : पृ. १९१
39. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १९६
40. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. १८९
41. वही : पृ. २००
42. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २०४
43. दृष्टव्य : वही : पृ. २०५

44. दृष्टव्य : वही : पृ. २०५

45. दृष्टव्य : वही : पृ. २०६

46. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २०७

47. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २०९

48. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २१०

49. दृष्टव्य : वही : पृ. २०९ से २११

50. दृष्टव्य : वही : पृ. २०९

51. दृष्टव्य : वही : पृ. २२०

52. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २२२

53. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २२१

54. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २२२

55. वही :पृ.२२३

56. दिनांक - ३/२/१२ (गुजरात रिफाइनरी बड़ौदा में मैत्रेयी द्वारा दिया गया वकतव्य)

57. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २३५

58. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २४७

59. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २४५

60. टिप्पणी १३४ के अनुसार

61. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २४०

62. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २४०

63. वही : पृ. २४६

64. वही : पृ. २५२

65. वही : पृ. २७२

66. ज्योर्स कैरी, A Writer at work, first series (1958) P : 60

67. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २५४

68. वही : पृ. २५७

69. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २६५

70. दृष्टव्य : वही : पृ. २७३

71. प्रोफेसर पारूकांत देसाई के एक व्याख्यान से।

72. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. २७७

73. दृष्टव्य :वही : पृ. २७९

74. दृष्टव्य :वही : पृ. २९९

75. दृष्टव्य :वही : पृ. २९३

76. दृष्टव्य :वही : पृ. ३०२

77. दृष्टव्य :वही : पृ. ३०३

78. वही : पृ. ३०६

79. हंस नवम्बर : २००० के संपादकीय से।

80. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ३०९

81. See : An ABZ of Love : Dr. Hinge and Sten Hegelar

82. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ३०८-३०९

83. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ३११

84. दृष्टव्य :गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ३३१

85. वही : ” ” : पृ. ३३१

86. वही : ” ” : पृ. ३३६

87. वही : ” ” : पृ. ३३६

88. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ३३७

89. वही : पृ. ३३४

90. वही : पृ. ३४१

91. वही : पृ. ३४९

92. वही : पृ. ३४९

93. वही : पृ. ३५०

94. वही : पृ. ३५२

95. वही : पृ. ३३४

96. वही : पृ. ३३

97. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ८१

98. हंस : "विभूति नारायण राय की टिप्पणी पर प्रकाशित अंक" :

99. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ३१६

100. वही : पृ. ३१६

101. हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ : डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र : पृ. १२१

102. अंधेरे बंध कमरे : मोहन राकेश : पृ. ३४५

103. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ३०५

104. वही : पृ. १४

105. वही : पृ. १४

106. गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. ६३-६६

107. वही : पृ. ८३

108. वही : पृ. २९९

109. हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ : डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र : पृ. १२३

110. वही : पृ. १२२

111. वही : पृ. १२२

112. हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ : डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र : पृ. १२२

पंचम् अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

पंचम् अध्याय
: मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन :

प्रास्ताविक :

मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवम्बर, 1944 को अलीगढ़ जिले के सिर्कुरा गाँव में हुआ था। उनके औपन्यासिक लेखन का प्रारंभ "स्मृति दंश" (1990) नामक उपन्यासिका (लघु उपन्यास) से हुआ था। अर्थात् उम्र की छियालीस दिवालियों के बाद उनका औपन्यासिक लेखन शुरु होता है। "स्मृति दंश" के पश्चात् उनका एक लघु उपन्यास "बेतवा बहती रही" सन् 1993 में प्रकाशित होता है। उभय का कथापट "कथा" की दृष्टि से बड़ा मार्मिक है। भावुक पाठकों को भरपूर रुलाने वाला, कलेजा की कोमल कोर से लिखा हुआ। लेकिन उपन्यास को लिखने के लिए कलेजा को कठोर भी बनाना पड़ता है। उसमें "कर्ता" (Creator) की भाँति समय आने पर कठोर और क्रूर भी होना पड़ता है। औपन्यासिक विजन और यथार्थ की गहरी समझ उत्पन्न करने वाली दृष्टि का होना बहुत ही जरुरी है। बिना उसके कलागत ताटस्थ्य नहीं आ सकता। ये सब गुण हमें सर्वप्रथम मैत्रेयी के "इदन्नमम" (1994) उपन्यास में सम्प्राप्त होते हैं। इसी एक उपन्यास से मैत्रेयी हिन्दी उपन्यास – जगत पर छा जाती है, जैसे कभी "मैला आंचल" के द्वारा रेणु रातोंरात हिन्दी कथा-जगत पर छा गये थे। इसके बाद "चाक" (1997), "झूला नट" (1999), "अल्मा कबूतरी" (2000), "अगनपाखी" (2001), "विजन" (2002), कही ईसुरी फाग (2004), "त्रिया-हठ" (2005) और "गुनाह-बेगुनाह" (2011) आदि उपन्यास आते गये और मैत्रेयी ने प्रेमचंद और रेणु के बाद की एक सशक्त लेखिका के रुप में अपना सिक्का गालिब किया। हिन्दी के औपन्यासिक आलोचक इस बात से भौंचक्के रह जाते हैं कि केवल दो दशक में यह कैसे संभव हो सकता है? पर आलोचकों को मैत्रेयी का लेखन काल तो याद है पर उनके भीतर का कथाकार

जो कई-कई बरसों से अपना पिण्ड तैयार कर रहा था वह नहीं याद रहा। अनुभव संपन्नता हासिल करने पर ही मैत्रेयी इस दिशा में अग्रसर हुई है। जिस प्रकार हिन्दी उपन्यास के इतिहास में सन् 1936 का महत्व है, सन् 1954 का महत्व है, सन् 1960 का महत्व है; ठीक उसी तरह उपन्यास साहित्य के इतिहास में सन् 1990 का भी महत्व है, तभी तो सुप्रसिद्ध कथा-आलोचिका डा. रोहिणी अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ "स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प" में एक पूरा का पूरा अध्याय" क्यूं लेती हो थोड़ी-सी रोटी, थोड़ी-सी दया (1990 के बाद का स्त्री-कथा लेखन और स्त्री-प्रश्न : नयी दिशाएं, नये संकल्प") सन् 1990 के बाद के स्त्री-लेखन को दिया है।[1] प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम मैत्रेयीजी के उपन्यासों पर विश्लेषणपरक दृष्टिपात का है। "स्मृतिदंश" एक उपन्यासिका है जिसे हम लम्बी कहानी कह सकते हैं। अतः यहाँ "बेतवा बहती रही" से गुनाह-बेगुनाह तक की उनकी औपन्यासिक-सृष्टि पर विचार किया जा रहा है। ऐसा कहा जाता है कि उपन्यास सम्राट प्रेमचंद अपनी रचनाओं में गांव की स्त्रियां लाए थे, मैत्रेयी अपने लेखन में स्त्रियों का गाँव लेकर आई हैं।[2]

(1) बेतवा बहती रही (1993) :

"बेतवा बहती रही" – बुंदेलखण्ड के आंचलिक परिवेश पर आधारित मैत्रेयी का प्रथम लघु उपन्यास है। प्रकाश उदय के शब्दो में – "स्त्री के एक अनवरत अपमान का एक पूज्य पर्याय है सीता। सीता की एक अनवरत रामकहानी है। इस राम कहानी को मैत्रेयी पुष्पा ने "बेतवा बहती रही" नाम से लिखा है।[3] बेतवा प्रतीक है स्त्री के निरंतर अश्रु बहाने की प्रक्रिया का। "बेतवा बहती रही" में त्रिकाल सक्रियता की अनवरतता है। रामायण-महाभारत की स्त्री भी आंसू बहाती थी, मध्यकाल की सामंतयुगीन नारियों के चेहरे भी अश्रुविगलित

हैं और आज की, इस आधुनिक युग की नारी की नियति भी आंसू बहाने की है। डा. प्रभा खेतान के उपन्यास "आओ पेपे घर चलें" की आईलिन कहती है – औरत कहां नहीं रोती और कब नहीं रोती? वह जितना भी रोती है, उतनी ही औरत होती है।"[4] यह उस अमरीकी महीला का कथन है जो अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र और आधुनिक मानी गई है। सीता के आंसुओ की यह रामकहानी यहाँ उर्वशी की कथा-व्यथा के रूप में कही गई है। डा. वेदप्रकाश अमिताभ ने प्रस्तुत उपन्यास की कथा को "नारी के सहने, झेलने और जूझने की कथा" कहते हुए लिखा है – "मैत्रेयी पुष्पा ने बुंदेलखंड़ी आंचलिक परिवेश में उर्वशी की व्यथा-कथा को कुछ इस तरह से औपन्यासिक रचाव दिया है कि वह नारी मात्र के सहने, झेलने और जूझने की कहानी बन गई है। आंचल में दूध और आंखो में पानी लिए वह सनातन नारी पुरुष-प्रधान व्यवस्था की निरंकुशता से टकराकर लहू-लुहान होती रही है और आंसू से भीगे अंचल पर अपमानजनक शर्तों के संधिपत्र लिखने के लिए सदैव बाध्य हुई है।"[5]

उपन्यास की कुल कथा इतनी है : उर्वशी "गुलाब के फूल-सी एक मोंडी है। उसका सौन्दर्य अद्‌भुत है। बुंदेलखंड़ के राजगिरी की वह कन्या है। उसका शैशव विपन्न अवस्था में गुजरता है। जब सर्वदमन नामक युवक के साथ उसका विवाह होता है तो लगता है कि उर्वशी के दुःख के दिन समाप्त हो जायेंगे। पितृगृह की दारूण गरीबी अब उसके सौभाग्य के आड़े नहीं आयेगी। लेकिन एक दुर्घटना में सर्वदमन की मृत्यु हो जाती है और उसका भविष्य पुनः अंधकारमय हो जाता है। दुर्निवार अद्‌भुत सौन्दर्य और सामने वैघव्यकी कालिमा। बहुत पहले जैनेन्द्र ने "त्यागपत्र" में मृणाल के अद्धितीय सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहा था – "बुआ (मृणाल) का तबका रूप सोचता हूँ, तो दंग रह जाता हूँ। ऐसा रूप कब किसको विधाता देता है। जब देता है, तब कदाचित्

उसकी कीमत भी वसूल कर लेने की मन-ही-मन नीयत उसकी रहती है ।[6] उर्वशी और सर्वदमन के सुखी दाम्पत्य को भी मानो किसीकी नज़र लग जाती है । वह अपने पुत्र देवेश का लालन-पालन करते हुए वैधव्यपूर्ण जीवन बिता सकती थी । उसे दाऊ का स्नेह-सरंक्षण भी प्राप्त था । परंतु उसका भाई अजीत अपराधी मनोवृत्ति का था । माता-पिता की जायदाद में उर्वशी को कुछ देना न पड़े इस उद्देश्य से वह अपनी ही बहन तथा दाऊ पर कई प्रकार के लांछन लगाता है । भारतीय ग्रामीण समाज में एक विधवा का जीवन कितना कष्टप्रद हो सकता है उसका अंदाज लगाया जा सकता है । अपनी कामुकता पर तो कोई काबू पा भी ले, परंतु लोगों की कुटिलता का क्या करें । अजीत की कुटिलता के आगे उर्वशी को झुकना पड़ता है और न चाहते हुए भी बरजोर जैसे नरपशु से विवाह करने पर मजबूर होना पड़ता है । उसके पुत्र को भी उससे अलग किया जाता है । बरजोर कामुक प्रकृति का है । वह स्त्री-मन का नहीं, स्त्री देह का पुजारी है । उसका वासना लिप्त मन उर्वशी को केवल वासना तृप्ति का साधन ही समझता था । अतः उर्वशी जैसी भावुक और संवेदनशील नारी उसके साथ सुखी कैसे रह सकती है । पति के रहते हुए भी वह स्वयं को विधवा ही समझती है । उनके दाम्पत्य जीवन पर गृह-कलेश और शंका-कुशंका के बादल मंडराते रहते है । “त्यागपत्र” के मृणाल के साथ भी यही होता है । फलतः बरजोर सिंह के कहने पर वैद्य उर्वशी की दवाई में विष मिला देता है और यह जहर ही उसकी मृत्यु का कारण बनता है ।

लेकिन मरने से पहले उर्वशी एक ऐसा कार्य कर गुजरती है जिससे ग्रामीण परिवेश की नारी-चेतना को एक नयी दिशा मिलती है । यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि छोटी जातियों में विधवा विवाह होते हैं, परंतु उंची जातियों में उसका चलन नहीं है । उर्वशी का विवाह अपनी मर्जी से नहीं हुआ था । अजीत की कुटिलता के चलते उसे विवश होकर “अनचाहत को संग” करना

पड़ा था। बरजोर जैसे नर-पशु से निबाह करना सरल नहीं था और बरजोर ने ही विष दिलवाकर उसे मुक्त कर दिया। पर मरने से पहले वह अपने बड़े भाई विजय की विधवा का विवाह उदय नामक युवक से कराने में सफल हो जाती है। जो साहस और हिम्मत उर्वशी अपने लिए नहीं कर पायी, वह उसने दूसरों के लिए की।

वैधव्य के विष से उर्वशी परिचित है। अतः विजय की युवा-विधवा के प्रति उसके मन में गहरी सहानुभूति है और परिणाम स्वरूप वह उदय को उसके लिए राजी करती है। बरजोर आदि की ओर से इसका पूरजोर विरोध होता है, परंतु अपने मामले में कमजोर पड़ जाने वाली उर्वशी अन्याय और अत्याचार के विरोध में पूरी प्रगल्भता के साथ सामने आती है – "कह लई सब? तुम हमें काहे के लाने लाए, सो हमें जानने की जरूरत नहीं है। बस, तुम इतनी सुन लो कि हम काहे के लाने आए हैं – अन्याय हम नहीं होने देंगे, हमारे रहते जा अनरथ नहीं हो सकता।"[7]

उर्वशी जो विधवा-विवाह करवाती है उसके संदर्भ में नागार्जुन के "उग्रतारा" उपन्यास का स्मृति में कौंधना अस्वाभाविक नहीं होगा। "उग्रतारा" का कामेश्वर भी एक ऐसा ही नवयुवक है। उगनी विधवा है। फिर भी कामेश्वर उससे विवाह करना चाहता है। गाँव के बूढ़े नहीं चाहते कि उग्रतारा उर्फ उगनी विवाह करें क्योंकि इन विधवाओं के कारण ही उनकी वासनापूर्ति होती है। तब कामेश्वर उगनी को गाँव से भगा ले जाता है, परतुं गाँववाले उसे झूठे केस में फँसा देते हैं और उसे नौ महीने की सजा हो जाती है। इधर उगनी मढिया-सुन्दरपुर के नर-राक्षसों द्वारा बलात्कृत होती रहती है। अंततः एक बूढ़े सिपाही भभिखनसिंह से जबरदस्ती उसकी शादी करवा दी जाती है। भभिमखनसिंह से उगनी को गर्भ भी रहता है, तथापि उपन्यास के अंत में बताया गया है कि

कामेश्वर उगनी को ऐसी अवस्था में भी अपना लेता है क्योंकि लेखक के ही शब्दों में कामेश्वर "नये भारत का नया युवक है, पुराने ढंग का छिछौरा नौजवान नहीं।"[8] प्रस्तुत उपन्यास का उदय भी कामेश्वर जैसा ही नये भारत का नयी सोच रखने वाला युवक है, जबकि उपन्यास में ही ग्रामीण समाज के नवयुवको के संदर्भ में एक टिप्पणी आयी है – "नई पीढ़ी के जवान लरका दूसरे की पीर महसूस नहीं करते, बस अपनी-अपनी सोचत।"[9] लेकिन उदय इनमें अपवाद है।

उपन्यास में एक स्थान पर ग्रामीण-परिवेश में नारियों की (बेटियों की) स्थिति के संदर्भ में एक टिप्पणी आयी है – "बेटी तो मुंह जोहती गैया है रे.....काऊ खूंटा बांध दो। भोली बछिया सी चल दे है, जितै चाहौ उतै ही....."[10] लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में इस सोच को एक नया आयाम मिलता है उर्वशी और उदय के माध्यम से। यहाँ इसे भी गौरतलब करना होगा कि उदय बरजोर का ही लड़का है, पर बाप जहाँ राक्षस है वहाँ उदय में मानवीय-मूल्यों की धरोहर हम देख सकते हैं। उदय और मीरा भाई-बहन है किन्तु दोनो संवेदनशील है। मीरा उर्वशी की बाल-सखी है और बरजोर से विवाह के उपरान्त वह उसकी नयी माँ बनती है। मीरा और उदय दोनों पर उर्वशी का अच्छा प्रभाव है।

उपन्यास में कई नये समीकरण हमें प्राप्त होते हैं। ज्यादातर देखा गया है कि दूसरी मैया (स्टेप मधर) का व्यवहार बच्चों के साथ अच्छा नहीं होता, जबकि यहाँ उर्वशी का व्यवहार उदय और मीरा दोनों के लिए अच्छा है। मैत्री और सख्य का व्यवहार है यहाँ। उर्वशी को तो अपने पुत्र देवेश को भी छोड़ना पड़ा था। ऐसी स्थिति में उसके मन में कड़वाहट होनी चाहिए, पर उर्वशी नये जमाने की माँ है। वह सौतेली माँ के "मिथ" को यहाँ तोड़ती है। डा. वेदप्रकाश

अमिताभ ने उपन्यास की समीक्षा करते हुए कहा है कि - "नारी स्वातंत्र्य की चेतना अपने स्तर पर रूढ़ियों और अनीतियों का मुखर प्रतिवाद करने में भी कम सार्थक और महत्वपूर्ण नहीं होती । मैत्रेयी पुष्पा की इस कृति से यह भी ध्वनित है कि नारी की लड़ाई अंततः नारी को ही लड़नी है ।"[11] डा. वेदप्रकाश की यह बात सौ फी सदी सच है । यहाँ मेरी स्मृति में डा. पारूकान्त देसाई का एक दोहा कौंध रहा है –

"पूछेगा गर तू नहीं, ना पूछेगा कोई ।
अश्रु फूटे ना आंख से, घुटने काहे रोय ।"[12]

अतः नारी की लड़ाई एक नारी ही उत्कटता और प्रगल्भता से लड़ सकती है । इसकी शुरूआती गुंज हमें इस उपन्यास में सुनाई पड़ती है ।

प्रकाश उदय के शब्दों में कहें तो ऐसा उपन्यास में बहुत कुछ हैं, जिसके चलते यह बेतवा के किनारे का है । भाषा, संवाद, नदी, नाव, रीति, विश्वास, जगह-जगह गीत, वहाँ के जहाँ की यह रचना है । जगह के अलावा एक जाति का उल्लेख-भर हुआ लगता है । बहती नाक वाली उम्र में वैरागी के निर्विरोध विवाह कर दिए जाने में यादवपन कहा तो गया है, लेकिन कुर्मीपन, लोधीपन के साथ रखकर उसे भी विशिष्ट होने से बचा लिया गया है ।[13] प्रकाश उदय की समीक्षा में हमें "खलपात्र" के वज़न पर "भलपात्र" शब्द मिलता है जो कदाचित् उन्होंने स्वयं मुद्रित किया हो । उपन्यास में यह "सु" और "कु" का विभाजन स्पष्ट रूप से मिलता है । उर्वशी, मीरा, दाऊ, उदय आदि "भलपात्र" या "सु" की कोटि में आते हैं तो अजीत, बरजोर आदि "खलपात्र" या "कु" की कोटि में आते हैं । यह "सु" और "कु" का स्पष्ट विभाजन उपन्यास की एक कमजोरी है ऐसा कहा जा सकता है, क्योंकि उपन्यास में "मानव" का चित्रण अपेक्षित है जो न सौ फी सदी सच्चा होता है, न सौ फी सदी झूठा । "आओ पे पे

घर चलें" की आईलिन को उदृत करें तो उपन्यास जानवर में मनुष्य और मनुष्य में जानवर खोजने की कला है। इसलिए मुंशी प्रेमचंद लिखते है – "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं।"[14] यहाँ "चित्र" शब्द ध्यानार्ह रहे, चित्र बनाने में एक यत्न होता है, एक कोशिश होती है। अतः चित्र कभी सौ फी सदी सही नहीं होता है। जितना ही वह वास्तव के करीब होगा उतना ही उसका कलाकार बड़ा माना जाएगा।

"बेतवा बहती रही" में मैत्रेयी खुल रही है। उनका वह बुंदेलखण्ड़ी अंदाज, वहाँ की मिट्टीं, उसकी खुशबू, वहाँ की नारियां, बोली-बानी, गीत-लोकगीत, उसकी आंचलिकता ये सब यहाँ शनैः शनैः ही खुल रहा है। उसका उघाड़ तो आगे "इदन्नमम", "चाक", "अल्मा कबूतरी" आदि में मिलेगा।

(2) इदन्नमम (1994) :

"इदन्नमम" मैत्रेयी पुष्पा का वह उपन्यास है जिसके प्रकाशन से वह समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की प्रथम पंक्ति में आ जाती है। इसके प्रकाशन के पूर्व उनकी कुछेक कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। मैत्रेयी चाहती थीं कि उनकी कहानी "हंस" में भी प्रकाशित हों। दो-एक बार उनकी कहानियाँ "हंस" से लौटायी भी गयीं। इसी संदर्भ में उनका मन्नूजी के माध्यम से राजेन्द्र यादव से मिलना हुआ। राजेन्द्र यादव ने उनके भीतर बैठे हुए कथाकार को पहचाना और जाना कि उनके पास बुंदेलखण्ड के ग्रामीण जीवन के जो अनुभव हैं, वह उनकी पूंजी है, अपनी ज़मीन है और उसी को लेकर उन्हें लेखन के क्षेत्र में आना है। "इदन्नमम" के आसपास ही सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास "मुझे चांद चाहिए" प्रकाशित हुआ था। उस उपन्यास की नायिका वर्षा वसिष्ठ को डा. पूरबी देसाई ने लेखक की "लोहसंकल्पिनी मानस संतान" कहा है।[15] उपन्यास में शाहजहाँपुर की वर्षा वसिष्ठ जब एन.एस.डी. (नेशनल

स्कूल आफ ड्रामा) में प्रवेश के लिए साक्षात्कार देने जाती है, तब एन.एस.डी. के निर्देशक डा. अटल ने वर्षा वसिष्ठ को "अनकट डाईमण्ड" कहा था, हीरा जो अभी तराशा नहीं गया है। मैत्रेयी पुष्पा भी एक ऐसा ही "अनकट डाईमण्ड" थीं। हिन्दी साहित्य के सद्भाग्य से इस हीरे को तराशने का काम राजेन्द्र यादव ने किया। और उसका परिणाम है – "इदन्नमम"।

उपन्यास के पृष्ठ 217-218 पर "इदन्नमम" का अर्थ हमारे सामने स्पष्ट होता है। उपन्यास की नायिका मंदा अपने कुछ प्रश्नों को लेकर कायले वाले मठ के महंत महाराज के पास जाती है। रात के समय महाराज मंदा को पारीछा के प्रधान टीकमसिंह की संघर्ष-कथा सुनाते हैं। प्रातःकाल महाराज के शिष्य भृंगुदेव हवन करते हैं। उसमें महाराज का स्वर गूंजता है –

"औ म् भूर्भुवः स्वः अग्नि ही ऋषि पवमानः पांचजन्य
पुरोहितः तमीमहे महागमयः स्वाहा।
इदं अग्ने पवनाय इदन्नमम॥"[16]

मृगुदेव, महाराज इस मंत्र के बाद इदन्नमम बोलते हैं क्या अर्थ है इसका? जानते हो? "मंदा ने भृगुदेव से पूछा था और भृगुदेव ने इसका जवाब दिया था – " "यह मेरा नहीं। जो कुछ मैं अर्पण कर रहा हूँ यह मेरा नहीं।" मंदा आश्रम से जाते हुए भृगुदेव को कहती है –" तो इदन्नमम"।[17]

उपन्यास में लेखिका ने जो कुछ लिखा है, कहा है, वह "इदन्नमम" है, अर्थात् वह उनका नहीं है। बुंदेलखण्ड़ का लोकजीवन या ग्रामीण-जीवन यहाँ अपने यथार्थ स्वरूप अरोमानीरूप में उभरकर आया है। इस तरह यह मैत्रेयी का नहीं है, और मंदा श्री भृंगुदेव को कहती है – "इदन्नमम" - अर्थात् यह मेरा नहीं है। अभिप्राय यह हुआ कि इसमें जो कुछ भी कहा गया है, जिनके बारे में कहा

गया है, एक निश्चित समय-सीमा में, वह बुंदेलखण्ड के ग्रामीण स्त्री-पुरुषों का जीवन है, जो मैत्रेयी और मंदा के द्वारा अभिव्यंजित हुआ है।

उपन्यास में बोली-बानी बुंदेलखण्ड़ की है। कहावत – मुहावरे - कुछ विशिष्ट शब्द-प्रयोग, यह सब बुंदेलखण्ड़ का है। अतः पाठक या आलोचक इसे आंचलिक उपन्यास मानने लगे तो आश्चर्य न होगा। परंतु हम भी यहाँ डा. राजबहादुर सिंह की तरह मानते हैं कि उसका शिल्प, अन्तर्वस्तु, आंचलिक उपन्यास का नहीं है।[18] रेणु का आभास देते हुए भी वह प्रेमचंद, नागार्जुन के नजदीक का है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र मंदाकिनी उर्फ मंदा है। प्रारंभ से लेकर अंत तक उपन्यास में मंदा ही मंदा है। जब कि आंचलिक उपन्यास में ऐसा कोई केन्द्रीय पात्र नहीं होता। दूसरे उपन्यास समस्यामूलक है, आंचलिक उपन्यास समस्यामूलक भी नहीं होता। प्रेमचंद के उपन्यासों में भी गाँव है, परंतु वह स्वाधीनता-पूर्व का गाँव है । कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी प्रकार के जीवन-मूल्यों में जीता हुआ गाँव; जबकि यहाँ जो गाँव है आजादी के लगभग चालीस साल बाद का गाँव है, इक्कीसवीं शताब्दी का स्वागत करता हुआ गाँव, राजनीति और हरामीपन में पगा हुआ गाँव, चालाकियों में शहरीजनों के भी कान काटने वाले गाँव। राजनीतिक माफियाओं का गाँव।

उपन्यास 424 पृष्ठ और छब्बीस अध्यायों में विभक्त है। “राग दरबारी” का प्रथम संस्करण भी 424 पृष्ठों का ही था। उपन्यास का प्रारंभ होता है तब मंदा की उम्र तेरह साल की होती है, परन्तु उपन्यास के अंत में वह बाईस-तेबीस साल की युवती हो गई है – जूझारू, जीवटवाली और संघर्षी। श्यामली में जिस सत्रह-अठारह साल के मकरन्द के साथ सगाई हुई भी और मन्दा जिसे चाहती थी वह मकरन्द अब डा. मकरन्द बनकर सोनपुरा में आ रहा है, ऐसा संकेत या संदेश हमें उपन्यास के अन्त में मिलता है। उपन्यास के अंतिम

वाक्य है – "गहरे उच्छ्वासों के बीच तेज गति से चल दी मन्दाकिनी । किसीकी पदचाप अब भी उसके पीछे है ।"[19]

इस समग्र कथा को हम तीन भागों मे विभक्त कर सकते हैं – (1) वह कथा जिसमें बऊ, सोनपुरा के महेन्द्रप्रताप सिंह की माता और उपन्यास-नायिका मन्दाकिनी की दादी, अपने पुत्र की हत्या और उसके बाद माता के रतन यादव के साथ भाग जाने से और जमीन जायदाद के कारण नाबालिक मन्दा का कब्जा मांगने के कारण, सोनपुरा छोड़कर रातोंरात श्यामली पंचमसिंह के यहाँ आ जाती है । पंचमसिंह बऊ को शरण तो देते है, परंतु मंदा को पुलिस सब जगह ढूंढ रही है । अतः उसे पुलिस से छिपाकर रखने के लिए जगह-जगह, गाँव-गाँव डोलना पड़ता है । बारह अध्याय तक यह कथा चलती है । (२) तेरहवें अध्याय में मन्दा अपने गाँव सोनपुरा वापिस आ जाती है क्योंकि मन्दा की मैया ने अपना केस वापस ले लिया था और मन्दा को कहीं छिपने की जरूरत नहीं थी । पर सोनपुरा पहुंचने पर बऊ को पता चलता है कि श्यामली वाले गोविन्दसिंह ने उनकी सारी जमीन अभिलाखसिंह को बेच दी थी । मन्दा और बऊ के साथ बहुत बड़ा धोखा हुआ था । उनकी सारी जमीन-जायदाद और खेत हड़प लिये गये थे । उसके बाद मन्दा का आजीविका के लिए जो संघर्ष है उसकी कथा है । यह संघर्ष उसका अपने लिए है । (३) परंतु सोलहवें अध्याय से एक नयी मन्दा का संघर्ष शुरू होता है । कोयले वाले महाराज की दीक्षा के कारण मन्दा का कायाकल्प हो जाता है । अब उसकी लड़ाई समग्र सोनपुरा और उसके आसपास के गाँव, वहाँ के लोग, महेनतकश मजदूर, यूपी-बिहार से आने वाले राऊत और आदिवासी मजदूर इन सबकी लड़ाई का जिम्मा मंदा उठा लेती है और वहाँ से शुरू होता है एक नया संघर्ष जो ठेकेदारों –

माफियाओं – पुलिसकर्मियों और राजनेताओं के खिलाफ है । यह संघर्ष छब्बीसवें अध्याय तक, अर्थात् उपन्यास के अन्त तक चलता है ।

इन सबके समानान्तर एक प्रेमकथा चल रही है, जो प्रेमकथा मकरन्द और मंदा के बीच की प्रेमकथा है । यह प्रेमकथा किशोरावस्था से शुरू होती है और युवावस्था तक चलती है । मंदा जब श्यामली में पंचमसिंह दादा के यहाँ थी, तब मकरन्द और मंदा का प्रेम शुरू होता है । मकरन्द तब बारहवीं कक्षा का छात्र था । वह पंचमसिंह दद्दा के पुत्र विक्रमसिंह का पुत्र है । सबकी सलाह से मंदा-मकरन्द की सगाई भी हो जाती है पर बाद में रतन यादव के डर से कि कहीं वह राक्षस उनके एकमात्र इकलौते पुत्र को मार न डाले वह सगाई टूट भी जाती है । परंतु इलाहाबाद जाने से पूर्व मकरन्द मन्दा को कौल देता है कि वह अपना वादा जरूर निभायेगा । उसके बाद मकरन्द तो अपनी डाक्टरी की पढ़ाई में खो-सा जाता है और इधर मन्दा श्यामली से अपने गाँव सोनपुरा आ जाती है । बीच-बीच में मकरन्द के पत्र आते हैं । ये पत्र ही मन्दा के प्रेम को संबल प्रदान करते हैं । और उपन्यास के अंत में कदाचित् अपना वह कौल पूरा करने के लिए मकरन्द आ रहा है, डाक्टर मकरन्द बनकर । उपन्यास के अन्त में मन्दा का एक और सपना भी पूरा होते हुए दिखाई दे रहा है । मन्दा के पिता एक आदर्शवादी-प्रगतिवादी आदमी थे और अपने गाँव सोनपुरा में सरकारी अस्पताल बनवाने का उनका सपना था । अस्पताल का मकान भी बन गया था और उसके उद्घाटन समारोह के समय ही भीड़ और घोंघाट - शोरबकोर में महेन्द्रसिंह की हत्या करवा दी जाती है और वह सपना अधूरा ही रह जाता है । श्यामली से सोनपुरा आ जाने पर मन्दा पुनः इस दिशा में सक्रिय हो जाती है और शहरों के सरकारी दफ्तरों के खूब चक्कर काटती है, पर सब पत्थर पर पानी की तरह व्यर्थ हो जाता है । तब मन्दा प्रदेश में होनेवाले चुनावी माहौल का फायदा उठाती है और राजा साहब चुनाव जीतने के

लिए सोनपुरा में डा. इन्द्रनील को एक कम्पाउन्डर के साथ, तमाम असबाब और दवाइयों सहित भेज देते हैं। मन्दा को पहले तो लगता है कि डा. मकरन्द ही आये होगें, पर डा. इन्द्रनील को देखकर उसके सपने का हल्का-सा आघात लगता है। हल्का-सा इसलिए कि डा. इन्द्रनील के आने से मन्दा का एक और सपना तो पूरा होता हुआ नजर आता है। डा. इन्द्रनील अपने सेवाभावी स्वभाव, तत्परता, कर्तव्य परायणता और ग्रामीण प्रतिश्रृतता के कारण कुछ ही दिनों में सोनपुरा तथा आसपास के गाँवों के लोगों का दिल जीत लेते हैं। परन्तु सपना अभी अंकुराया भी नहीं था कि उसके मुरझाने के दिन आ जाते हैं। राजा साहब अपने चुनावी गणित के हिसाब से दूसरी जगह उसका तबादला करवा देते हैं। मन्दा को दुःख भी होता है और राजनेताओं से हिकारत भी। परन्तु कम्पाउण्डर अपनी बात का धनी निकलता है। मन्दा के पूछने पर कि चुनाव तो हो गया तो आप कब जाएंगे कम्पाउन्डरजी? कम्पाउन्डरजी कहते हैं कि वह सोनपुरा से कभी नहीं जाएंगे, यथा – "हमें उन्नति-तरक्की की फिकर नहीं है। कम्पाउण्डर ही तो रहना है। तबादला होगा तो नौकरी छोड़ देंगे। इन लोगों के इशारे पर कब तक नाचते रहें? जितनी तनख्वाह मिलती है, इतना ही तो यहाँ रहकर भी मिल जाएगा। गुजर हो जाएगी।"[20]

उपन्यास को प्रसादान्त कह सकते हैं – न एकदम सुखान्त और न एकदम दुःखान्त। मन्दा का आधा सपना पूरा हो गया है। अस्पताल खुल गया है और कम्पाउण्डर के रुप में आधा डाक्टर भी मिल गया है और डा. मकरन्द के आने का संकेत भी मिल चुका है। यदि डा. मकरन्द आते है तो मन्दा की खुशी दुगुनी हो जाएगी। पिता के सपने के महोरने की खुशी और अपने प्रेम को पा लेने की खुशी। उपन्यास का खलपात्र – अभिलाखसिंह सुगना द्वारा मारा जाता है। सुगना चाकू मारके उसकी हत्या कर देती है, पर बाद में सुगना भी

मिट्टी का तेल छिड़कर स्वयं को जला लेती है और अन्ततः अस्पताल में उसकी मृत्यु हो जाती है। सुगनी के साथ अभिलाखसिंह ने कुकर्म किया था और उससे उसे गर्भ भी रह गया था। सुगना मन्दा की ही प्रतिलिपि थी। मन्दा की बचपन की सहेली। मन्दा कुछ पढ़ी-लिखी और सुगना अनपढ़ पर बहुत कुछ गुनने वाली। अन्याय, अत्याचार के खिलाफ मन्दा की ही तरह ताल ठोककर खड़ी हो जाने वाली एक जूझारू, जीवटवाली लड़की, एक शेरनी। उसका यों मर जाना, मन्दा को ही नहीं, गाँववालों को ही नहीं, पप्पू (पप्पू मन ही मन सुगना को चाहने लगा था, उसके संकेत उपन्यास में मिलते है।) को ही नहीं, संवेदनशील पाठकों को भी रूला जाता है।

ग्रामीण-जीवन में जहाँ स्त्री-पुरूष के बीच अनैतिक संबंधों की जटिलता मिलती है; वहाँ विशुद्ध प्रेम की, निश्छल, निर्द्वन्द, पवित्र प्रेम की भीनी-भीनी खुशबू भी महसूस कर सकते हैं। अतः ग्रामीण जीवन की लगभग तमाम कहानियों में हमें ऐसे प्रेम के किस्से भी श्रृतिगोचर होते हैं। "गोदान", "मैला आंचल" आदि सभी में यह मिलता है। नागार्जुन के उपन्यास भी अपवाद नहीं है। तो मैत्रेयी के उपन्यासों में तो उसे आना ही था। प्रस्तुत उपन्यास में मन्दा-मकरन्द की प्रेम कहानी, कुसुमा और ताऊ की प्रेम-कहानी, सुगना और पप्पू की प्रेम कहानी, भृगुदेव के सुगना के प्रति आकर्षण की कहानी इन मृसण-मीठे प्रेम-सम्बन्धों की महक को बिखेरती हैं। उर्दू का वह शेर स्मृति में कौंधे बिना नहीं रहता है –

"कोई हद ही नहीं यारब, मुहब्बत के फसाने की;
सुनाता जा रहा है जो, जिसको जितना याद आता है।

इन लहलहाती प्रेम-कहानियों से ही तो ग्रामीण जीवन की कटुता, दरिद्रता, शोषण से दो-दो हाथ किए जा सकते है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में निरूपित किया गया है कि “इदन्नमम” की कथा को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है – १. बऊ का मन्दा को लेकर डांव-डांव डोलना, २. मंदा का अपनी जीविका हेतु का संघर्ष और ३. “इदन्नमम” – अर्थात् मंदा का वह संघर्ष जो उसने अपने लिए नहीं किया था, दूसरों के लिए किया था, दूसरों को न्याय मिले इस हेतु किया था, दूसरों के शोषण और अत्याचार के दमनचक्र को भेदने के लिए किया था और यहाँ हमें उस मंदाकिनी के दर्शन होते हैं जो रोना नहीं जानती, झुकना नहीं जानती, जूझना ही जानती है, आगे ही बढ़ना जानती है, रास्ते का यदि “डेड एण्ड” आ जावे तो नये विकल्पों को तलाशना और तराशना जानती है।

प्रथम भाग की कथा उपन्यास के तेरहवें परिच्छेद तक चलती है। प्रथम परिच्छेद में हम देखते हैं कि बऊ (मंदा की दादी) मंदा को लेकर श्यामली आ गई है। बऊ और मन्दा के उपरान्त इस अंश के अन्य पात्रों में गनपत, पंचमसिंह (दद्दा), देवगढ़वारी (पंचमसिंह की धर्मपत्नी), प्रेम (मंदा की माता), रतन यादव, सुगना, जगेस्सर कक्का, गोविन्दसिंह कक्का (पंचमसिंह के भाई), महेन्द्रसिंह (मन्दा के पिता, जिनकी हत्या हो गई है), श्री कमला प्रसाद (उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री), मोदी, चीफ साब (अनवर हुसैन – मोदी और चीफ दद्दा के जिगरी दोस्त है), अमरसिंह (दद्दा के सबसे छोटे भाई जिन्हें परिवार में सब “दाऊजी” कहते हैं), डबल बब्बा (लखना डाकू), मिट्ठू कक्का, ढड़कोले चमार, श्यामलाल, अर्जुन, पन्नी माते, शकील (अनवरी बुआ का लड़का), विक्रमसिंह (दरोगाजी – दद्दा के पुत्र), मकरन्द (विक्रमसिंह का लड़का और दद्दा का पोता), यशपालसिंह (गोविंदसिंह के पुत्र), कुसुमा भाभी (यशपालसिंह की पत्नी), कैलाश सिंह (मन्दा के दूर के रिश्ते के मामा जो

मन्दा को बलात्कृत करते हैं), दारोगिन (विक्रमसिंह की पत्नी), मोदिन काकी, आदि की गणना कर सकते हैं।

उपर्युक्त पात्रों में से कुछेक का परिचय अत्यावश्यक है। उन पात्रों में हम पंचमसिंह (दद्दा), मोदी, चीफ साहब, रतन यादव, गोविन्दसिंह, अमरसिंह (दाऊजी) डबल बब्बा (लखना डाकू), विक्रमसिंह दरोगा, मकरन्द, यशपाल, कैलाशसिंह आदि पुरूष पात्र और मंदा,प्रेम, बऊ, देवगढ़वारी, कुसुमा भाभी आदि नारी पात्रों को उल्लेख्य समझते हैं। सुगना की भूमिका द्वितीय कथा-भाग में आती है, यहाँ तो वह मंदा की स्मृतियों में जरा-तरा आ जाती है।

पंचमसिंह दद्दा, मोदी और चीफ साहब ये तीन श्यामली गाँव के दिग्गज हैं, स्तम्भ हैं, बल्कि उसकी शान है। वैसे गाँव में कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लड़के हैं, पर सरकारी अमलों से बात करने का शऊर तो ये तीन ही रखते है।[21] ये तीनों पुराने जमाने के, पर नये जमाने क स्वागत में तैयार ऐसे न्याय, विवेक और बुद्धिशील हैं। पूरे ज्वार में बऊ को केवल दद्दा पर ही भरोसा था कि फक्त वे ही उनकी "मोंड़ी" को बचा सकते हैं, उसकी रक्षा कर सकते हैं। ये तीनों परम मित्र है। गाँव की प्रगति के सभी कामों में ये तीन एकमत होते है। गाँव के स्त्री पुरूष और नौजवान भी उनकी इज्जत करते हैं। गाँव में उनका एक दबदबा है। यह उस समय की बात है जब मूल्यों और मर्यादाओं का टूटना शुरू नहीं हुआ था। पुराने होते हुए भी दद्दा मानवीय भावों और उसकी कमजोरियों को पहचानने का माद्दा रखते हैं, तभी तो पूरे परिवार में कुसुमा भाभी का पक्ष लेने वाले ओर उसके साथ न्याय करने वाले वे अकेले वीर है। चीफ साहब मुसलमान हैं पर लोग उनकी बहुत ही इज्जत करते है, वे भी हिन्दुओं के तीज-त्यौहारों में बढ़-बढ़कर हिस्सा लेते हैं। गाँव में कौमी एकता पूरी तरह से लागू है और उसके मूल में ये तीन महानुभावों की जोड़ी है।

रतन यादव इलाके का छटा हुआ बदमाश है । किसी प्रकार वह महेन्द्रसिंह की विधवा प्रेम को अपने प्रेमजाल में फांस लेता है । रिश्ते में वह प्रेम का जीजा होता है । प्रेम रतन यादव को चाहती थी । पति की हत्या के बाद वह उस प्रकार का नेग-धरम नहीं निभा पाती, जिसका निर्वाह बऊ ता जिन्दगी करती रही है, वह अपनी जवानी पर काबू नहीं रख पाती । तभी बऊ अपनी इस बहू के लिए वेश्या, रंडी, बेड़िनी जैसे गालीवाचक शब्दों का प्रयोग करती है । रतन यादव प्रेम को भगा ले जाने में सफल हो जाता है । यह सब वह महेन्द्रसिंह की जमीन-जायदाद को हड़पने के लिए करता है । बाद में वह प्रेम को भी छोड़ देता है और उसकी शादी अपने रिश्ते के किसी सम्बन्धी दुहाजू-तिहाजू से करा देता है और यौवन से मदमाती प्रेम की स्थिति बहुत ही जर्जर हो जाती है । उसके चेहरे का नूर उड़ जाता है । प्रेम-वंचना उसे कहीं का नहीं रख छोड़ती । "माया मिली न राम" वाली स्थिति में वह निरंतर झूरती रहती है । उसकी ममता उछाल मारती है, मंदा को पाने के लिए, पर जब उसे ज्ञात होता है कि मन्दा की सगाई अच्छे घर-वर के साथ हो रही है, तब रतन यादव के डर को वह पी जाती है और मंदा को पाने के लिए उसने जो दावा किया था उसे वापस ले लेती है, जिसके कारण बऊ और मन्दा दर-दर की ठोकरें खा रहे थे ।[22]

गोविन्दसिंह कक्का पंचमसिंह के भाई हैं, पर प्रकृति एकदम विपरीत है । हर बात में हिसाब-किताब रखने वाले । मंदा की सगाई मकरन्द से होती है, यह भी उनको पसंद नहीं था, क्योंकि मकरन्द दद्दा के पुत्र विक्रमसिंह का लड़का था । उसका कहना था कि वे लोग बऊ को मुकदमा लड़ रहे है तो मंदा की जमीन जायदाद उनको मिलनी चाहिए । दद्दा ने मंदा की सगाई मकरन्द से करवाई थी उसमें यह सब हिसाब नहीं था । मन्दा मकरन्द को चाहती थी और बऊ तथा मंदा की रजामन्दी से ही यह सगाई हो रही थी । गोविन्दसिंह बड़े घाघ और मुत्सद्दी किस्म के आदमी है । धोखाधड़ी उनकी फितरत है ।

मुकदमे के कागजों में अँगूठा लगवाने के बहाने वह बऊ का अंगूठा ऐसे कागज पर लगवा लेते हैं जिसके चलते वे उनके खेत अभिलाखसिंह को बेच देते हैं। मन्दा और बऊ को तो इसका पता तब चलता है, जब वे श्यामली से सोनपुरा आते हैं, कि अब वे कंगाल हो चुके हैं।[23]

अमरसिंह (दाऊजी) को बचपन में तपेदिक हो गई थी। तबसे उनका शरीर बराबर नहीं पनपा था। अतः उनका ब्याह भी नहीं हुआ था। लोग उनको बाल-ब्रह्मचारी मानते हैं पर कोई उनकी भावनाओं पर विचार ही नहीं करता है। कुसुमा गोविन्दसिंह के सुपुत्र यशपाल की पत्नी है, पर यशपाल पत्नी-धर्म नहीं निभाता, धन-संपत्ति की लालच में वह दूसरी पत्नी ले आता है। कुसुमा भाभी की घोर उपेक्षा होती है। "देह धरी है तो देह का हक्क भी होता है" और यह हक्क कुसुमा भाभी को मिलता है दाऊजी द्वारा। बऊ और मन्दा के साथ गाँव-गाँव, जंगलों में डोलते हुए, एकान्त में इनके देह मिल जाते हैं और आत्माएँ भी।[24] दाऊ से कुसुमा भाभी को गर्भ भी रहता है, तब सारा घर उनके खिलाफ हो जाता है, पर दादा न्याय करते हैं और दाऊजी के न रहने पर उनका हिस्सा भी वह कुसुमा भाभी को दिलवाते हैं।[25] कैलाशसिंह मन्दा के दूर के मामा हैं। जब मन्दा, बऊ और कुसुमा को छिपने के लिए बिरगवां जाना पड़ता है तब मन्दा की बीमारी में हालचाल जानने के बहाने कैलाश मामा मन्दा के पास पहुंच जाते हैं और एकान्त और मन्दा की कमजोरी के चलते वह उस पर बलात्कार गुजारते हैं।[26] उस समय कुसुमा भाभी आ जाती है और कैलाससिंह की बुरी तरह से पिटाई करती है। वह किसी तरह जान बचाकर भाग जाता है। तब कुसुमा भाभी मन्दा को जो हिदायत देती है वह ध्यानार्ह रहनी चाहिए - "बिन्नू, अपने मन में तनिक भी भय मत लाना। झिझक हिचक में मत रहना। जो हुआ उसे भूल जाना। डर मत मानना कभी। जिन्दगानी में, इतनी बड़ी जिन्दगानी में

अच्छा-बुरा घट जाता है बिटिया, उसके कारन मन में गाँठ लगाने से क्या फायदा? जो तुमने किया ही नहीं, उसके लिए अपने को दोसी क्यों मानना? उस कुकरम की भागीदार, मन्दा, तुम तो बिल्कुल नहीं। तनक देर पहले और आ जाते हम, तो खसिया बना देते नासपिटे को।"[27] यहाँ कुसुम भाभी का इस घटना को लेकर जो रवैया है वह बलात्कार की इस समस्या को एक नया आयाम प्रदान करता है।

इसके बाद मन्दा, बऊ और कुसुमा भाभी श्यामली लौट आते हैं। तब तक में प्रेम ने भी अपना केस वापस ले लिया था, अतः बऊ, गनपतकाका और मन्दा अपने गाँव सोनपुरा आ जाते हैं। उसके बाद की जो कथा है उसमें जमीन-जायदाद के चले जाने पर, मन्दा आजीविका के लिए संघर्ष शुरू करती है। पहले फुरसत के समय में मन्दा बऊ को रामायण का पाठ सुनाती थी। अधिक शिक्षा न होने पर भी वह रामायण के नाना प्रसंगों को बढ़िया ढंग से अर्थ देती थी। अपने उस हुनर का प्रयोग अब वह आजीविका कमाने के लिए करती है। कथा बांचती और अर्थाती है और उसके बदले में लोग चढ़ावे में जो देते हैं उसमें उन दोनों की गुजर-बसर हो जाती है। गोविन्दसिंह ने एक खेत छोड़ दिया था, उससे भी खाने भर को अनाज दाना मिल जाता था। सुगना से मन्दा का बहनापा गहराता जाता है। जगेसर काका अभिलाखसिंह की सौबत में अब बिल्कुल बदल गए हैं। मन्दा मकरन्द की याद को अपने दिल में संजोए किसी तरह जी रही थी। तभी कोयलेवाले महाराज से मन्दा की गोष्ठी होती है। महाराज मन्दा के जीवन को एक नया आयाम देते हैं। जीने का एक नया मकसद मन्दा को मिल जाता है। यहाँ से सचमुच में "इदन्नमम" की कथा शुरू होती है।

कोयले वाले महाराज मन्दा को पारीछा के प्रधान टीकमसिंह के आंदोलन की कहानी सुनाते हैं। जनहठ के सामने राजहठ को झुकना पड़ता है

।[28] केस का परिणाम टीकमसिंह के पक्ष में आया। काम तो वे ही हुए जो सरकार चाहती थी, लेकिन हुए टीकमसिंह की शर्तों पर। जमीन बिकी, लेकिन चौगुनी कीमत पर। रोजगार मिला तो पारीछा थर्मल प्लाटं के आसपास बसे गाँवो के निवासियों को। भराई-ढुलाई में प्रभावित क्षेत्र के ट्रैक्टर लगाए गए। अभिप्राय यह कि आसपास के क्षेत्र के लोगों को रोजी-रोटी मिलने लगी। मन्दा को महाराज ने यही दीक्षा दी कि उसे भी अभिलाखसिंह जैसे लोगों से निपटने के लिए वही रास्ता अख्तियार करना होगा। यहाँ से मन्दा के जीवन की दिशा ही बदल जाती है। अब सोनपुरा और उसके आसपास के गाँव के लोगों की सेवा ही उसके जीवन का मकसद बन जाता है। अभिलाखसिंह अपने ट्रेसर के लिए बाहर से – बिहार और यू.पी. से मजदूर बुलाता था, ता कि उसकी शोषण-लीला में कोई रूकावट न आवे। लोकल मजदूर आगे चलकर कोई मुसीबत खड़ी कर सकते थे। अभिलाखसिंह उन मजदूरों को कम मजदूरी देता है, रात-दिन मजदूरी करवाता है, उनका यौन-शोषण करता है, उनको दवा के बदले दारू देता है, उनके व्यसनों को बढ़ावा देता है, लोगों के अन्य ठेकेदारों के पैसे मारता है और पैसा चुकाने में हिले-हवाले करता है। जगेसर के भी उसने कई हजार रूपये उसने दवा लिए है और इसी लिए जगेसर भी उससे दबकर रहता है। अभिलाखसिंह छोटा-मोटा भू-माफिया है। भाईजी भी पहाडों पर ट्रेसरों का काम करते हैं, पर वह सिन्धी व्यापारी है और व्यापार को व्यापार की तरह चलाते हैं। जबान मिठी है पर अपने शत्रु और विरोधी पर कब वार करना चाहिए, उस कला में माहिर है। मन्दा जब भाईजी के पास जाती है अपनी समस्या को लेकर, तब वह बड़े प्यार से उसे समझा देते हैं कि उनके यहाँ काम पाने के लिए ट्रैक्टर का होना बहुत जरूरी है। द्वारका काका तथा प्रधान से मिलकर मन्दा ग्रामीण लोगों की एक सभा करती है, उन्हें आपस में मिलाती है, उनके लाभ और हित किसमें है, वह समझाती है और आपस में

चन्दा करके ट्रेक्टर लाने का संकल्प सबके सामने रखती है । गाँव की स्त्री-शक्ति एकत्रित होती है और जिससे जो बन पड़ता है – रूपय, पैसे, गहने – देते हैं । परभू नाई की माँ ने इस पहाड़ की लड़ाई में अपना एक बेटा खोया था, वह अपना पूरा घर खोद डालती है और पुरखों के समय की सोनमुहरों को ढूंढकर ही दम लेती है । जो रकम इकट्ठा होती है उसमें सिंह-योगदान परभू की माँ का होता है । परभू भी ट्रेक्टर चलाना सीख लेता है और अंततः अनेक बाधाओं के चक्रव्यूह को भेदकर ट्रैक्टर आता ही है ।[29] एक शेर स्मृति में लहरा रहा है –

"इरादों की बुलंदियों के आगे कुछ भी मुहाल नहीं;
बस दो बातें है, इरादा हो और वह पक्का हो ।"[30]

मन्दा अपना यह लौह-संकल्प पूरा करती है । अभिलाख और जगेसर देखते रह जाते हैं । ज्यों-ज्यों मन्दा मजबूत बनकर उभरती है, इनके हौंसले पस्त होते जाते हैं और उसी रूप में उनकी बौखलाहट भी बढ़ती जाती है ।

उपन्यास के इस भाग के प्रमुख पात्र हैं मन्दा, बऊ, प्रेम, सुगना, द्वारिका कक्का, प्रधान, जगेसर, अभिलाखसिंह, भाईजी, कोयलेवाले महाराज, ठकुराइन, भृगुदेव, राजा साहब, डा.इन्द्रनील, उनका कम्पाउण्डर, डा.मकरन्द, दरोगा दीवान, अहल्या राऊतिन, लीला राऊतिन, अभिलाखसिंह की रखैल, गनेसी दद्दा, तुलसिन, अहल्या की मां, पप्पू, द्वारिका कक्का का लड़का, आदि-आदि ।

मन्दा जिन-जिन लोगों से चन्दा लेती है, बाकायदा उनका एक लिस्ट तैयार करवाती है । फिर भी कुछ रकम कम पड़ जाती है तो सारा पैसा चालीस दिन के लिए बैंक में रखकर उसकी पूर्ति का प्रयास होता है ।[31] ट्रैक्टर आता है और गाँवभर के लोगों को भैयाजी के यहाँ काम मिलता है । इस प्रकार गाँव की

बेरोजगारी का प्रश्न मन्दा द्वारिका काका और प्रधान काका की सहायता से हल करती है। जब लोगों के पास दो पैसे आते है तो उनकी माली हालत सुधरती है, साथ ही साथ नयी सोच भी विकसित होती है। प्रेम भी मन्दा को पचास हजार की रकम देती है यह कहकर कि यह उसके बाप के ही पैसे हैं। मन्दा पहले तो मना कर देती है, पर फिर बहुत इसरार करने पर रख लेती है और उन पैसों से दूसरा ट्रैक्टर भी ले आती है ताकि गाँव की खुशहाली डबल हो जाए।[32]

उपन्यास के इस खण्ड की मुख्य घटनाओं में निम्नलिखित मुख्य हैं – मन्दा और बऊ का श्यामली से सोनपुरा आना, अपनी बदहाल बखरी को देखकर दुःखी होना, जगेसर के द्वारा यह मालूम होना कि उनके खेत तो गोविन्दसिंह कक्काजी ने अभिलाखसिंह के हाथों बेच दिए हैं और अब वे, जमीनदार सुभागसिंह का खानदान, पूरी तरह से कंगाल हो चुके हैं, प्रथमतः मन्दा को धक्का पहुँचता है, पर फिर शनैः शनैः ही साधारणता की ओर लौटती है, प्रेम रुपये भेजती है जिसे बऊ वापस कर देती है, रामायण की कथा और भजन-कीर्तन के द्वारा आजीविका कमाने का मन्दा का विचार, दूसरी ओर अस्पताल खुलवाने के प्रयत्न भी जारी, एम.एल.ए तक अर्जी पहुंचाना, पर व्यर्थ, उस सपने का बिखरना, श्यामली से मिट्‌ठु का आना और पंचमसिंह दद्‌दा की बदहाली की बात बताना, अयोध्याकांड के उपरान्त श्यामली ही नहीं दूसरे गाँवों में भी कौमी-एकता में भड़का होना, चीफ का गाँव छोड़कर शहर जाना, आतंकवाद का बढ़ना, ग्रामीण परिवेश में गंदी राजनीति का फैलना, मन्दा और अभिलाखसिंह की टक्कर, कोयलेवाले महाराज का आना, कायलेवाले महाराज द्वारा मन्दा को दीक्षित करना, भविष्य के लोक-आंदोलन के लिए उसे तैयार करना, मन्दा और सुगना के सख्य का बढ़ते जाना, ग्रामीण रोजगारी के लिए मन्दा की योजनाएं, ट्रैक्टर लाने की योजना और उसके लिए

चन्दा संग्रहीत करना, गाँव में उत्साह की एक लहर का उठना, अन्ततः ट्रैक्टर का आना, गाँव के लोगों की बेरोजगारी का दूर होना, प्रेम के पैसों से दूसरा ट्रैक्टर लेना, अभिलाखसिंह द्वारा राऊत मजदूरों का शोषण, राऊतिनों को भी बेच देने के किस्से, हैजे की बीमारी का फैलना, अहल्या-जगेसर की कहानी, डा.मकरन्द के एक-दो पत्रों का आना, भृगुदेव की कहानी, उसके द्वारा आरक्षण की समस्या पर लेखिका की टिप्पणी, चुनाव का माहौल, मन्दा का आसपास के गाँवों और उसके लोगों पर प्रभाव, उसकी लगन और ईमानदारी के चर्चे, एम.एल.ए. राजा साहब तक इन बातों का जाना, राजा साहब का मन्दा को मिलने के लिए आना, मन्दा द्वारा गाँव के लोगों की समस्याओं को प्रस्तुत करना, उसके परिणाम-स्वरुप डा.इन्द्रनील का कम्पाउण्डर के आना, लोगों के मन में उत्साह और उमंग की लहरों का उत्पन्न होना, पर कुछ ही समय के बाद डाक्टर का तबादला, भ्रम का टूटना, मन्दा द्वारा राउत-मजदूरों को संगठित करना, उनका अभिलाखसिंह के खिलाफ खुला विद्रोह, अभिलाख के गुण्ड़ों द्वारा हमला, उसमें दोनों पक्ष के लोगों का हताहत होना, मजदूर-वर्ग से दो-तीन लोगों की मौत, उसके कारण अभिलाखसिंह का लीला को लेकर भाग जाना, बाद में जगेसर के यहाँ छिप-छिप कर आना, पैसों की वसूली के कारण जगेसर का उससे दबना, अपने बेटे से सुगना के ब्याह की बात चलाना, पर छिप-छिप कर सुगना पर बलात्कार गुजारना, सुगना का दिन-ब-दिन मुरझाते जाना, मन्दा से एक दूरी बर्तना, अन्ततः अभिलाख के भांडे का फूटना, सुगना का गर्भ धारण करना, सुगना द्वारा अभिलाखरूपी राक्षस का वध, बाद में स्वयं केरोसीन छिड़ककर आत्महत्या कर लेना, मन्दा द्वारा सुगना को अस्पताल पहुंचाना, पर व्यर्थ, सुगना का दम तोड़ देना, डा.मकरन्द के आने की आशा का संचरित होना, गाँव के लोगों में राजनीतिक समझ का विकसित होना, चुनाव का बहिष्कार करना आदि-आदि ।[33]

इस प्रकार “इदन्नमम” प्रेमचंद की परंपरा का एक पेनोरमिक उपन्यास है, जिसमें बुन्देलखंड़ के एक भू-भाग के ग्रामीण विस्तारों की सामाजिक, राजनीतिक , पारिवारिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का दस्तावेजी चित्रण हमें मिलता है । वहाँ के लोग, उनके तीज-त्यौहार, उनकी मान्यताएं, लोकगीत, होली-दिवाली जैसे बड़े त्यौहारों का उत्सवनुमा आयोजन, वहाँ की बोली-बानी में हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष हुआ है । बऊ, प्रेम और मन्दा के रूप में तीन पीढ़ियों की कथा और उनके आपसी मतभेद, उनके सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारणों की पड़ताल प्रस्तुत उपन्यास में तटस्थता के साथ अभिव्यंजित हुई है । कोयलेवाले महाराज के आश्रम और उसकी प्रवृत्तियों के सकारात्मक चित्रण से लेखिका कदाचित यह बताना चाहती है कि यदि धार्मिक कहे जाने वाले लोग सच्चे अर्थो में धार्मिकता का व्यवहार करें तो बहुत-सी सामाजिक समस्याएं उनके द्वारा हल हो सकती हैं । उपन्यास में बाद में यह रहस्य भी खुलता है कि कोयलेवाले महाराज ही पारीछा के प्रधान टीकमसिंह थे ।[34] मैत्रेयी द्वारा जो ग्रामीण स्त्री-विमर्श प्रकट हुआ है, वह थोपा हुआ या आरोपित बिलकुल नहीं है । कुसुमा भाभी और दाऊजी के सम्बन्ध ग्रामीण सहजता से उभरकर आए हैं । मैं स्वयं यू.पी.के ग्रामीण विस्तार से हूँ और वहाँ इस प्रकार के सम्बन्धों को कई बार उतनी अहमीयत नहीं दी जाती । इसे हम “मैला आंचल” में लक्षित कर चुके हैं । मैत्रेयी ने शास्त्रों के मर्म को स्त्रियों के हक में अर्थाया हैं । यहाँ उनकी गुरुकुल की शिक्षा, शास्त्रों का अध्ययन, संस्कृत का ज्ञान उनके काम आया है । सती के आदर्श को भी उन्होंने उस रूप में नहीं लिया है, जिस रूप में रूढ़ियों और परंपराओं में वह चित्रित हुआ है । उनकी दृष्टि में वह हर नारी सती है जो अपने लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए संघर्ष करती है ।

"इदन्नमम" मैत्रेयी का सर्वाधिक चर्चित उपन्यास है । हिन्दी का कोई ऐसा औपन्यासिक आलोचक न होगा जिसने इस उपन्यास की समालोचना न की हो । हिन्दी के अनेक शोध-ग्रन्थों, सम्पादन ग्रन्थों में इस उपन्यास की उपस्थिति सबका ध्यान आकर्षित करती है । सन् 1994 में यह प्रकाशित हुआ । उस समय हिन्दी की कोई ऐसी पत्रिका न होगी जिसमें इस उपन्यास की समीक्षा न हुई हो । सुरेन्द्र वर्मा का नाटकीय उपन्यास "मुझे चांद चाहिए" भी तभी प्रकाशित हुआ था, अतः बहुत संभव है और स्वाभाविक भी कि नारी-विमर्श को लेकर इन दो उपन्यासों पर जमकर बहसें हुई हैं । हालांकि दोनों उपन्यासों में नायिकाओं की भावभूमि और उनके संघर्ष-क्षेत्र के परिवेश भिन्न-भिन्न हैं ।

"हंस" संपादक राजेन्द्र यादव ने इस उपन्यास के संदर्भ में लिखा है – "बऊ (दादी), प्रेम (मां) और मन्दा तीन पीढ़ियों की यह बेहद सहज कहानी तीनों को समानान्तर भी रखती है और एक-दूसरे के विरूध्ध भी । बिना किसी बड़बोले वक्तव्य के मैत्रेयी ने गहमागहमी से भरपूर इस कहानी को जिस आयासहीन ढंग से कहा है, उसमें नारी-सुलभ चित्रात्मकता भी है और मुहावरेदार आत्मीयता भी । हिन्दी कथा-रचनाओं की सुसंस्कृत सटीक और बेरंगी भाषा के बीच गाँव की इस कहानी को मैत्रेयी ने लोककथाओं के स्वाभाविक ढंग से लिख दिया है, मानो मंदा और उसके आसपास के लोग खुद अपनी बात कर रहे हों – अपनी भाषा और लहजे में, बुंदेलखंडी लयात्मकता के साथ – अपने आसपास घरघराते थ्रेसरों और ट्रैक्टरों के बीच ।[35]

हिन्दी उपन्यास-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा.गोपालराय ने "इदन्नमम" के संदर्भ में जो लिखा है वह उल्लेखनीय कहा जा सकता है --- "इस उपन्यास में एक विजन है जो लेखिका के बुन्देलखण्ड़ी जीवन के प्रामाणिक और अंतरंग अनुभव, पहाड़ी अंचल की बरती और बीहड़ पहाड़ के जीवन के

सामाजिक यथार्थ तथा गहरी मानवीय संवेदना से सम्पन्न है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में मैत्रेयी ने बुन्देलखण्ड की अहीर कन्याओं की करूण नियति कथा, जो किसी न किसी रूप में नारी मात्र की नियति कथा है, गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत की हैं, पर "इदन्नमम" में यह कथा करुण की सीमा का अतिक्रमण करती हुई "जूझारू" हो गयी है। "इदन्नमम" की मंदाकिनी वास्तविक अर्थो में एक जुझारू युवती है जो केवल परिवार और समाज द्वारा स्त्री के लिए निर्मित बंधनों को ही नहीं तोड़ती, वरन् उस शोषण के विरूध्ध भी तनकर खड़ी हो जाती है जो आज के नेताओं और माफिया ठेकेदारों द्वारा आदिवासियों और अन्य ग्रामीणों पर कहर के रूप में बरपा जा रहा है। मैत्रेयी बुन्देलखण्ड के परिवेश और ग्रामीण समाज को उसके पूरे खुरदरे यथार्थ के साथ वैसी ही खुरदरी भाषा के सहारे, जीवन्त रूप में प्रस्तुत कर देती है।[36]

डा.इन्दुप्रकाश पाण्डेय ने प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए यथार्थ ही कहा है, यथा---"मैत्रेयीजी ने मन्दाकिनी के माध्यम से निरन्तर चली आती हुई हवन की वैदिक परंपरा को समझने के लिए विनम्रता के साथ प्रश्न किया है और सम्मानपूर्ण स्वीकृति के साथ उसका अपनी कथावस्तु के संयोजन में रचनात्मक उपयोग किया है। वहीं "मैला आंचल" (1958) में रेणुजी ने भारतीय समाज की इस प्राचीन परंपरा को, गाँव के मठ, उसके मठाधीश महंत सेवादास, रामदास, लरसिंहदास और उनके नागा चेले के भ्रष्ट आचरणों की वजह से, अपमानित और तिरस्कृत किया है। ऐसा मैत्रेयीजी ने नहीं किया। मन्दाकिनी लक्ष्मी दासी की तरह इन दुष्ट मठाधीशों की रखैल नहीं बनती, बल्कि अपने समाज-सुधार के कामों में इनका सही उपयोग करती है। इस पूर्ण यथार्थवादी उपन्यास में मैत्रेयीजी ने भारत की इस प्राचीन साधु-सन्तों की परंपरा को सम्मान दिया है और महाराज और उनके सहयोग को अपनी

औपन्यासिक कृति में सहायक एवं पोषक सरंचना (Structure) के रूप में प्रस्तुत किया है।[37]

किन्तु इन्दुप्रकाशजी ने शायद एक बात पर ध्यान नहीं दिया हैं। दोनों उपन्यासों में महन्तों के चरित्र में आसमान-जमीन का अंतर है। कोयलेवाले महन्त अन्ततः पारीछा के प्रधान टीकमसिंह निकलते हैं जिन्होंने किसी जमाने में किसानों-मजदूरों के लिए सफल आंदोलन चलाया था और जिनकी विचारधारा आधुनिक, वैज्ञानिक व प्रगतिशील है। पूर्ववर्ती पृष्ठों में हमने भी बताया है कि धर्म यदि अपनी सकारात्मक भूमिका अदा करता है तो उससे बड़े-बड़े सामाजिक कार्य चुटकी बजाते हो सकते हैं। परन्तु दूसरी और हमारे देश में ऐसे साधु-महन्तों का टोटा नहीं है जो साधु वेश में किसी शैतान से कम नहीं है। रेणु ने "मैला आंचल" में तथा बाबा नागार्जुन ने "इमरतिया" में इन शैतानों की शैतान-लीला का पर्दाफाश किया है। यथार्थ वह भी है, यथार्थ यह भी है। इन्दिरा दीवान के कम चर्चित "अन्त नहीं" उपन्यास में भी इसी प्रकार के एक स्वामी – स्वामी आनंद स्वामी या अखण्ड़ानंदजी का इसी प्रकार का सकारात्मक चित्रण किया है। डा.पारूकान्त देसाई ने प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखा है –"नागार्जुन का उपन्यास "इमरतिया" हमारे धार्मिक मठों और सम्प्रदायों में चल रही सडांधता तथा भ्रष्टाचार के घिनौने रूप को रूपायित करता है, तो प्रस्तुत उपन्यास (अन्त नहीं) उसकी सकारात्मकता को उकेरते हुए एक दिशा-निर्देश करता है कि लोगों की धर्म-भावना को यदि सही रूप में "चेनेलाइज्ड" किया जाय तो इसके माध्यम से समाज और राष्ट्र के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। अपने इस नवीन दिशा-बोध के कारण प्रस्तुत उपन्यास का स्वागत होना चाहिए।"[38]

इसे एक सुखद आश्चर्य कहना चाहिए कि धर्म के इस सकारात्मक पक्ष को उकेरने वाली लेखिकाएँ महिलाएँ ही हैं । अन्यथा धर्म का वह नकारात्मक रूप भी एक औपन्यासिक फार्मूला बनता जा रहा था। मैत्रेयी ने इसे दूसरे रूप में लिया है । और ऐसे साधु-सन्तों का बिल्कुल अभाव है, ऐसा भी नहीं है, गुजरात के संत मुरारीबापू और नारायण बापू (ताजपुरा) इसके उदाहरण है।

डा. वेदप्रकाश अमिताभ ने "इदन्नमम" की समालोचना करते हुए लिखा है – "लेकिन उर्वशी (बेतवा बहती रही) की कहानी जहाँ "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी" का भाव जगाकर समाप्त हुई है वहीं मन्दा "या देवी सर्वभुतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता" है और कोई बरजोरसिंह उसे जहर देकर या कोई अभिलाष उसे उत्पीड़ित करके नहीं झुका पाता है । उसकी शक्ति भी केवल अपनी निजी न होकर वंचितों की संघर्ष-चेतना से पोषित है। इसलिए यह बेहिचक कहा जा सकता है कि "इदन्नमम" न केवल यथार्थबोध की दृष्टि से "बेतवा बहती रही" का विस्तार है अपितु वैचारिक दृष्टि से अधिक प्रखर, परिपक्व और जनधर्मी भी है। समय की प्रमाणिकता "बेतवा बहती रही" में कम नहीं है, लेकिन विस्तृत एवं संश्लिष्ट रूप में अपने समय का साक्ष्य बनने के प्रमाण "इदन्नमम" में अधिक है । यदि "बेतवा बहती रही" विन्ध्य प्रदेश का "मैला आंचल" है तो "इदन्नमम" उसकी "परती परिकथा" है।"[39]

अपने इसी आलेख के अन्त भाग में डा. वेदप्रकाशजी लिखते हैं –"सबसे बड़ी बात है कि मन्दा, टीकमसिंह, कुसुमा, सुगना वगैरह की लड़ाई व्यक्तिगत नहीं है। अतः उपन्यास का शीर्षक भलीभांति मौजू और सटीक लगता है कि यह मेरे लिए नहीं है अर्थात् सबके लिए है। मुक्तिबोध ने लिखा था कि मुक्ति अगर है तो उसके साथ है। मैत्रेयी पुष्पा भी रुढ़ि, अन्याय, अज्ञान, अत्याचार से मुक्ति के किसी भी प्रयास को तभी मूल्यवान और सार्थक मानती है, जब वह

सबके द्वारा और सबके लिए हों। "इदन्नमम" अपने इस बोध के औपन्यासिक रचाव में पूरी तरह से सफल माना जा सकता है।"[40]

निष्कर्षतः कह सकते है कि मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास "इदन्नमम" अपने रूप-स्वरूप में महाकाव्यात्मक चेतना-संपन्न उपन्यास है। इधर की शायद ही कोई औपन्यासिक किताब मिले जिसमें प्रस्तुत उपन्यास को अनुल्लेख्य छोड़ दिया हो। समसामयिक देश-काल की समस्याओं के साथ उसमें राष्ट्रीय एवं आंतरराष्ट्रीय समस्याओं का आकलन है। राष्ट्रीय समस्याओं में कोमी एकता की समस्या, आरक्षण की समस्या, राजकीय नेताओं के नाकारा होते जाने की समस्या, ठेकेदारों और राजनेताओं की माफिया-गिरी, उसमें पुलिस की सक्रियता, खादी और खाकी के मिल जाने से सामान्य लोगों की जिन्दगी का सांसत में पड़ जाना, स्वास्थ्य-सुविधाओं के अभाव में ग्रामीण लोगों में फैलती बीमारियां प्रभृति की गणना कर सकते है, तो आंतरराष्ट्रीय समस्या में मनुष्य के अमानवीय होते जाने की प्रक्रिया तथा पितृसत्ताक समाज-रचना के चलते स्त्रियों के हर प्रकार के शोषण की समस्या को लिया जा सकता है। पर मैत्रेयी केवल समस्या को प्रस्तुत कर रुक नहीं गई है, मन्दा, सुगुना और कुसुमा जैसे चरित्रों के निमार्ण से उनसे पार पाने के विकल्प भी दे रही हैं। इस तरह प्रस्तुत उपन्यास बिना किसी नारेबाजी के चुपचाप सामाजिक व औपन्यासिक सोच को एक कदम आगे बढ़ा रहा है।

(3) चाक (1997) :

मैत्रेयी पुष्पा का चाक उपन्यास सचमुच में चित्त को चाक कर देने वाला उपन्यास है। "इदन्नमम" की लोकप्रियता के ताम-झाम में प्रायः

अध्येताओं, अनुसंधित्सुओं तथा विद्वानों ने इस उपन्यास पर कम चर्चा की है, हालाँकि मैं तो इसे "इदन्नमम" की टक्कर का उपन्यास मानती हूँ। उपन्यास की नायिका हमारे चित्त के चाक पर ऐसे बैठ जाती है, कि कई बार मन्दा भी पीछे छूट जाती है। नायिका का नाम भी मैत्रेयी ने बड़ा चुनकर रखा है – सारंग, और यह सारंग नैनी नायक श्रीधर ही नहीं कइयों के चित्त को चाक करने की क्षमता रखती है। उपन्यास का नायक श्रीधर पेशे से तो शिक्षक है, पर जातिगत दृष्टि से कुंभकार (कुंभार –प्रजापति) है और कुंभार और "चाक" का नित्य-सम्बन्ध होता है। वैसे तो सारंग के पति का नाम रंजीत है और उस दृष्टि से रंजीत को भी कथा-नायक कहा जा सकता है, परंतु और अनेक रूढ़ियों की तरह इस कथानक-रूढ़ि को भी मैत्रेयी ने तोड़ा है। श्रीधर और सारंग में पति-पत्नी का नहीं, प्रेमी-प्रेमिका का रिश्ता है, यदि उसे रिश्ता माना जाए। वैसे कहा तो यही गया है कि सबसे ऊंची प्रेम सगाई।

"इदन्नमम" की भांति "चाक" भी एक बृहत्काय उपन्यास है जो सत्रह अध्याय और चार सौ पैंतीस पृष्ठों में उपन्यस्त हुआ है। "इदन्नमम" में श्यामली और सोनपुरा गाँव था, तो यहाँ पर अतरपुर गाँव है और समय सन् 1980 से इधर का है। हालांकि औपन्यासिक साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक डा.मधुरेश ने अपनी समीक्षा में उसे "छतरपुर" बताया है, परंतु फिर तुरंत उसके बाद की छठी पंक्ति में उसे "अतरपुर" कहकर अपनी गलती का सुधार भी कर लिया है।[41] इस गाँव पर जाटों का वर्चस्व है, यद्यपि जाटों के अतिरिक्त ब्राह्मण , बनिया, तेली, गड़रिया, कुम्हार, खटिक, चमार, नाई और सक्का मुसलमान जैसी अनेक जातियां भी हैं, जिनमें से दो-एक को छोड़कर प्रायः निम्न कही जाने वाली जातियों में आते हैं।[42]

उपन्यास की शुरूआत में, दूसरे अध्याय में मैत्रेयीजी ने गाँव के जातिगत विधान का खाका रखा है -- गाँव में आज़ादी के दस वर्ष बाद तक जातिविधान अपने-अपने कर्म-विधान से जुड़ा रहा । मसलन चमारों ने मरे पशु ढोए, जूते बनाए, तेलियों ने कोल्हू चलाया, गड़रियों नर भेंड़े पालकर ऊन और दूध दिया, कुम्हारों ने घड़े, दोहनी, शकोरे देकर किसानों की पूर्ति की, नाइयों ने सेवा-टहल, हजामत, दौना-पत्तल और बुलावे का काम संभाला । सक्का लोग द्वारों पर मशक से छिड़काव करते थे और छोटी जातवाले किसान साग-सब्जी उगाकर गाँव की जरूरत पूरी कर देते थे । बदले में बड़े किसान इन लोगों को गुड़, गेहूं , जौ, चना, मटर, सरसों, दालें और भैसों का दूध देते थे ।[43] गाँव में कपड़ा और मिट्टी के तेल के अलावा सबकुछ मुहैया था । बाजार के लिए कभी-कभी हाट-पेंठ जाना पड़ता था । परंतु सन् 1980 से 1990 तक आते-आते अतरपुर में विकास का मूर्तिमान रूप दिखाई पड़ने लगा । चकरोड़ ने गाँव को सड़क से जोड़ दिया । ट्यूबवेल के बहाने बिजली आई । तब दीयों और ढिबरियों के साथ-साथ कुछ घरों में बल्ब भी जलने लगे और कुछ घरों में बिजली के पंखे भी आ गये । रेडियो बजने लगा और सुना है कि गाँव के प्रधान फतेसिंह के यहाँ टेलीविजन भी आने वाला है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उपन्यास में चित्रित अतरपुर गाँव स्वाधीनता के बाद का लगभग पचीस-तीस साल बाद का गाँव है । कुछ अच्छाइयों के साथ बुराइयाँ भी आयीं, शायद बुराइयाँ ज्यादा ।

गाँव में सबसे असरदार आदमी इस समय फतेसिंह प्रधान है । उनके दो बेटे हैं हुकमसिंह और राकेश । फतेसिंह पैंतालीस के आसपास के हैं । दूसरे नंबर पर आते हैं भवानीदास जो सवा सौ बीघा के काश्तकार और पास-पड़ोस के चार गाँवों के साहूकार हैं । उनके भी दो बेटे हैं – अयोग्य बेटा मास्टर और

योग्य बेटा इंजीनियर । तीसरे नम्बर पर आते हैं साधजी जो भवानीदास के ही मोहल्ले में रहते हैं और उनके पास “मनी पावर” भी है और “मसल-पावर” भी । छः बेटों के बाप – थानसिंह, करमवीर, नत्था, डोरिया, भूरा और खूबी । इनमें से ब्याह सिर्फ थानसिंह और करमवीर का हुआ था – थानसिंह का इसलिए कि वह मास्टर था , करमवीर का इसलिए कि वह फौज में नौकर था । नत्था चेचक में मर गया और करमवीर की मृत्यु जहरीली शराब पीने के कारण हुई । नत्था के लिए लड़की खरीदी गई थी जो विधवा हो गई । संयोगवशात् उन्हीं दिनों में थानसिंह की ब्याहता पत्नी का भी देहान्त हो गया था । अतः नत्था की खरीदी हुई लड़की बैकुंठी को थानसिंह ने अपने घर बिठा लिया । डोरिया, भूरा और खूबी अभी कुंवारे हैं और शायद कुंवारे ही रहेंगे, क्योंकि जाति-बिरादरी में कोई उन्हें लड़की देने को राजी नहीं है । चौथे नंबर पर है गजाधरसिंह । उनका मोहल्ला अलग है । व्यक्तित्व भी कुछ अलग-अलग । अंग्रेजों के जमाने में पल्टन में रह चुके हैं । बहू सारंग के प्रति वह हमेशा कोमल और नरमदिल आदमी रहे हैं । सभ्य और सज्जन प्रकृति के गजाधरसिंह को लोग मान-सम्मान देते हैं और ज्यादातर लोग उन्हें बाबा कहकर बुलाते हैं । उनके दो बेटे हैं – रंजीत और दलवीर । रंजीत एम.एस.सी (कृषि-विज्ञान) और दलवीर पुलीस में दीवान है । रंजीत का चचेरा भाई भंवर बी.ए. है । रंजीत और भंवर शिक्षित होते हुए भी काश्तकारी करते हैं और गाँववालों को दिखा देना चाहते हैं कि एक शिक्षित व्यक्ति कैसे काश्तकारी करता है । भंवर सारंग का लाड़ला देवर है और रंजीत और सारंग की लड़ाई में हमेशा सारंग का ही पक्ष लेता है । छोटी कोम के लोगों में कुंवरलाल चमार का झंडा प्रधान के दरवाजे पर लहराता रहता है क्योंकि उसका छोटा भाई पदमसिंह पढ़-लिखकर कलेक्टर हो गया है । सारंग गुरुकुल में ग्यारहवीं कक्षा तक पढ़ी हुई है, सो गाँव की शिक्षित

महिलाओं में उसका शुमार है । गाँव के उत्तरी छोर पर एक विशाल ऊसर हैं । लोगों में मान्यता है कि उस ऊसर के कारण गाँव को बांझ-कोखवाला कहा जाता है और उसी सबब उस पर स्त्रियों के मरने का अभिशाप है ।

अन्य स्त्री पात्रों में लोंगसिरी बीबी, खेरापतिन दादी, कलावती चाची आदि अधेड़ और वृध्द्ध औरतें हैं । रेशम की सास हुकमकौर भी है । युवा स्त्रियों में सारंग, गुलकंदी, बैकुंठी आदि है ।

गाँव में अस्पताल, पोस्ट आफिस, मिडवाइफ केन्द्र जैसे फालतू(?) झमेले नहीं है, क्योंकि प्रधानजी का मत है कि उससे गाँव का माहौल खराब हो जाता है और गाँव का आदमी शहरातियों की तरह चालाक हो जाता है । "एक बार ग्रामसेविका केन्द्र खुलवा लिया था । ग्रामसेविका बहनजी का निवास फत्ते की बैठक में ही था । बी.डी.ओ. आकर बलात्कार कर गया । ग्राम-सेविका ने धरना दे दिया । फतेसिंह प्रधान होने के नाते बहनजी के संरक्षक हुए, और प्रधान होने के नाते ही बी.डी.ओ.के मातहत हुए । बताओ किसकी बजाएं ? दरोगा ने नाक में दम कर डाला । प्रधानजी की पत्नी को रोज गवाही देने जाना पड़ता था । उसने तंग आकर प्रधानजी को गंगाजी का कोंडुआ काढ़कर उसमें खड़ा किया और उनकी वल्दियत के साथ इतरों-पितरों सौगंध धरकर कौल लिया कि आगे से गाँव में किसी बहनजी-फहनजी की सूरत न दिखाई दें । सरकारी लोगों को घर पर पानी भी नहीं पिलाऊंगी ।"[44]

किस्सा-कोताह यह कि गाँव में सरकारी संस्था के नाम पर केवल प्रायमरी पाठशाला है । उसका काम बहुआयामी है – बरातघर, पंचायतघर, दावतघर और प्रधानजी यदि अपनी फसल समय पर न बेचना चाहें तो उनका बीजगोदाम भी । भंवर जैसे युवकों का मानना है आजकल स्कूल राजनीति का

मोहरा बना हुआ है। स्कूल में पढ़ाई कैसे होती है उसका भी नमूना देख लीजिए -- राकेश, चंदन, शेरअली, पाती जैसे अनेक बालक नियम से प्रायमरी पाठशाला जाते हैं और ऊधम मचाकर संध्या समय बस्ता टांगकर घर वापिस आ जाते हैं --- स्कूल में पढ़ाने वाले अध्यापक, जो दूर गाँव से आते रहे, वे नम्बरदार की बैठक में अपनी रिहाइश रखते थे, और दूध-मठा, आटा-दाल, साग-तरकारी, घी-तेल वगैरह गाँव का ही खाते रहे । बालकों को बेंत से पीटते, मुर्गा बनाते और वाहवाही पाते थे। गिरपरसाद मुंशीजी बच्चों की चुटिया डोर में बांधकर खूंटी से अटका देते थे, उनकी प्रशस्तियां तो आज तक गाई जाती हैं – वाह-वाह क्या पढ़ाई, क्या बखत की पाबंधी, कैसी अद्‌भुत लगन। वे जमाने कहां गए ?"[45]

छोटी कौमों में हरपरसाद नाई बम्बई में चम्पी मालिश करके काफी धन कमा लाया है। उसका मुकाबला सेठ भवानीदास से है। सूद पर रूपया उठाना चालू कर रहा है। हजामत का काम अपने बाप को नहीं करने देता। मां बुलावे देना छोड़ चुकी है। उसीकी बहन गुलकंदी है, जिसका अपराध प्रेम-विवाह था और जिसके कारण उसे तथा उसकी मां को अपना ही घर फूंककर जला दिया जाता है । बाद में उसी अपराध में हरपरसाद को धर लिया जाता है । सेठ भवानीदास का कांटा निकल गया। रेशम का हत्यारा डोरिया खुले सांड की माफिक घूम रहा है। पुलिस भी उसका बाल बांका नहीं कर सकी। यही है गाँव का जातिगत समाजशास्त्र। आज़ादी के बाद परिवर्तन आया, पर ऊपर-ऊपर से, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कारण , किन्तु लोगों की सोच वही और वहीं रही । डा. राम-दरश मिश्र के उपन्यास "सूखता हुआ तालाब" में इसका व्यंग्यात्मक रूप दिया गया है कि गाँव में टैक्टर और "डुगडुगी" की आवाज़ साथ में ही सुनाई पड़ रही है।[46] अतरपुर में भी ठीक वही हिसाब है।

उपन्यास का प्रारंभ एक सनसनीखेज और दुःखद घटना से होता है। सारंग की मौसेरी बहन रेशम का ब्याह साधजी के पुत्र करमवीर से हुआ था। करमवीर रेशम को जी-जान से चाहता था। पर करमवीर करम का ही हेठा निकलता है। जहरीली शराब पीकर यह बांका जवान प्रभु को प्यारा हो जाता है। रेशम की जवानी उछाल पर थी, इस पर करमवीर ने उसे और भड़का दिया था। बहुत ज्यादा समय नहीं बीता था पर उसके कदम लड़खड़ाने लगते हैं और गाँव के किसी व्यक्ति से दिल लगाकर उसके गर्भ को ढोने लगती है। साधजी और उसकी धरमपत्नी हुकमकौर रेशम का ब्याह डोरिया से करा देना चाहते हैं, पर रेशम उसके लिए राजी नहीं होती, न ही वह अपने गर्भ को गिराना चाहती है। फलतः "बिटौरा" (कंड़ा और गोबर से बना घरौंदा) में आग लगाकर उसकी हत्या कर दी जाती है और फिर उस हत्या को अकस्मात का रूप दिया जाता है। चंदना की लोककथा पुनः एक बार खेरापतिन दादी दुहराती है। सारंग रंजीत को उकसाने का प्रयत्न करती है पर स्वयं रेशम के माता-पिता (सारंग के फूफा-बुआ) अपनी बेटी के कर्म पर शर्मिंदा है। पराए गाँव में वे गवाह-सबूत कहां से जुटाएं, यह भी एक सवाल है। रंजीत पहले तो तैयार नहीं होते पर सारंग की बलवती इच्छा के आगे घुटने टेक देते हैं और तोता की बहू को गवाह बनाकर तथा अपने बड़े भाई की पुलिस की नौकरी का भरपूर लाभ उठाते हुए डोरिया को गिरफ्तार करवाने में तो कामयाब हो जाते हैं पर अपने "मनीपावर" और "मसल पावर" से मास्टर थानसिंह उसे जमानत पर छुड़वा ही नहीं लाते केस भी रफे-दफे करवा दिया जाता है क्योंकि गवाह थी तोता की बहू। दादा (रंजीत के पिता) सच ही कहते हैं – "केस को सैसन तक पहुंच जाने दें तो समझो कि...छोटी कौम साली। या तो डर के मारे अम्मा के लहंगा में दुबक जाएगी या फिर मौल बिक जाएगी।"[47] तोता पक्का मकान बनवा लेता है। बकौल चरनसिंह बौहरे (ग्राम पंडित) धन धर्म से कई गुना भारी ही पड़ता है

कलयुग में।[47] डा. पारूकान्त देसाईजी की एक व्यंग्य-गज़ल का शेर स्मृति में कौंध रहा है –

"धरम जुड़ता धन के पीछे, सत्ता जुड़ती धन के पीछे

भाग रहे सब धन के पीछे, चाट रहे हैं तलवा तलवा।[48]

उपन्यास का प्रारंभ ही रेशम की हत्या से होता है, जिसे अकस्मात या आत्महत्या का रूप दिया जाता है।

उसके बाद जो घटनाओं का सिलसिला शुरू होता है, वह आजादी के बाद के सातवें-आठवें दशक के ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों को सामने लाता है। रंजीत पहले तो मुकदमें के लिए राजी नहीं होता, पर बाद में सारंग के कारण वह डोरिया को पकड़वा तो लेता है किन्तु कुछ समय बाद वह छूट भी जाता है क्योंकि साक्षियों की खरीद-फरोख्त में मास्टर थानसिंह का पलड़ा भारी पड़ता है। ताव में आकर रंजीत ऊपर तक लड़ने की बात करता है, पर शाम दाम दण्ड भेद की नीति से उसे चूप करा दिया जाता है। डोरिया सारंग के साथ भी बदसलूकी करता है और चंदन (सारंग का बेटा) की नार / गरदन / मसलने की धमकी भी देता है। इन झमेलों के चलते आदर्शवादी रंजीत गाँव छोड़कर शहर जाने की भी सोचता है। उनके बछड़े "प्रथम" को विष देकर मरवा दिया जाता है, जो एक प्रकार से चेतावनी है। पहले मना करने वाली सारंग पुत्र-मोह में उसे आगरा भेजने के लिए तैयार हो जाती है, परंतु एक ही साल में चंदन लौट आता है। चंदन के लौट आने से पहले दूसरे कथा-नायक श्रीधर प्रजापति का कथा-प्रवेश हो जाता है।[49]

उपन्यास की कथा "ए टु झेड" है भी और नहीं भी। "ए टु झेड" इस अर्थ में है कि सारंग क्रमशः अपनी योग्यता और सूझ-बूझ के सहारे, आगे बढ़ती जाती है और अंततः ग्राम-प्रधान (सरपंच) के रूप में चुन ली जाती है। उसके सामने रंजीत एम.एस.सी. होते हुए भी कुछ कर नहीं पाता, बल्कि उसकी चरित्रगत गिरावट बढ़ती ही जाती है। यहाँ "चरित्र" शब्द का वह रूढ़िगत अर्थ नहीं लेना है। एक पढ़ा-लिखा, सुशिक्षित, व्यक्ति क्रमशः ऐसे काम करता जाता है कि उसमें और मास्टर थानसिंह या डोरिया या प्रधान फतेसिंह इनमें कोई अंतर नहीं रह पाता है। वह भ्रष्टाचार के कर्दम में खूंपता ही जाता है। उपन्यास के प्रारंभ में जो सारंग उसे अपना आदर्श पति मानती है, अब सारंग की नज़र में उसकी कोई किंमत नहीं रह गई है। अब उसके मन के सिंहासन पर मास्टर श्रीधर प्रजापति है। पर कथा "ए टु झेड़" इस अर्थ में नहीं है कि बीच-बीच में अनेक अवांतर कथाएं उसमें जुड़ती चली जाती हैं। लेखिका बार-बार पूर्व-दीप्ति का सहारा लेती है। इस पूर्वदीप्ति के लिए वह कभी "शब्द-सहचयन" (Word-Association) तो कभी प्रसंग-सहचयन (Eventual Association) का सहारा लेती हैं। लौंगसिरी बीबी की कहानी, पांचन्ना बीवी की कहानी, गुरूकुल में व्याप्त अनैतिक व्यापार, अनुशासन के नाम पर उनका यौन-शोषण गुरूकुल के ही कर्ता-धर्ता लोगों द्वारा, शकुन्तला, शारदा आदि की आत्महत्याएं या हत्याएं (?), गुलकंदी की प्रेम-कहानी और "आनर-कीलिंग" के रूप में उसकी हत्या, उसके साथ उसकी मां को भी अकारण जला देना जैसी अनेकों कहानियां ग्रामीण-जीवन के जटिल तानों-बानों के कहीं बुनती, तो कहीं कसती, पीड़ित करती चली गई हैं।

उपन्यास में जो कथा-प्रवाह आगे बढ़ता है वह इस प्रकार है - चंदन का अलीगढ़ जाना और वापिस आना, रेशम वाले मामले मे रंजीत का कमजोर पड़ते जाना, आगे मुकदमा लड़ने के विचार को छोड़ देना, इसके कारण सारंग

के मन में एक गांठ का निर्मित हो जाना, डोरिया के मान-मर्दन के लिए पहलवान कैलासीसिंह ताड़फड़ेवाले को निमंत्रित करना, कलावती चाची द्वारा उनकी मर्दानगी और उसी सबब पहलवानी में प्राण फूंकने की बात, फतेसिंह प्रधान द्वारा रंजीत और थानसिंह को मिलाने के प्रयास, स्कूल में नए मास्टर के रूप में श्रीधर का आना, सारंग के मन में श्रीधर को लेकर बढ़ती जाती उत्सुकता, श्रीधर के कारण गाँव में गाँव के बच्चों में और उसी क्रम में उन बच्चों की माताओं में एक नवीन उत्साह और चेतना का आना, श्रीधर मास्टर और थानसिंह में झड़प, थानसिंह का तबादला, मनोहर की बहू जिरौलीवाली की कहानी, श्रीधर द्वारा स्कूल के बच्चों द्वारा एकलव्य नाटक का खेला जाना, उसमें संवाद सारंग के और इस तरह गुरूकुल की संस्कृत शिक्षा का काम में आना, श्रीधर और सारंग को लेकर गाँव की औरतों में कानाफूसी, रंजीत और सारंग के शारीरिक मिलन का वर्णन (क्या यहाँ मैत्रेयी ही सारंग के रूप में उभर आयी है ?), अतरपुर में प्राथमिक स्कूल का बिल्डिंग होते हुए बिल्डिंग फंड को हड़पने के चक्कर में प्रधानजी का श्रीधर के हस्ताक्षर के लिए जाना, श्रीधर की सीधी-सच्ची आदर्शवादी बातें, यह फंड किसी ऐसे गाँव को मिलना चाहिए जहाँ बच्चें अभी भी पेड़ों के नीचे बैठकर पढ़ते है (पृ.238), इस पर प्रधानजी का नाराज होना, इस काम को कराने के लिए तरह-तरह के पैतरे, रंजीत को यह सौपना कि वह सारंग के द्वारा इस काम को करवा लें क्योंकि श्रीधर सारंग को मना नहीं कर पाएगा, परंतु उनका यह पासा भी उल्टा पड़ना, गुलकंदी और बिसुनवा की प्रेम-कहानी, गुलकंदी का बिसुनवा के साथ मेले से भाग जाना, उसको लेकर तरह-तरह की बातें, केका की कहानी, उसे लेकर श्रीधर की बदनामी की बातें, रंजीत को प्रधान द्वारा लालच देना के अगले चुनाव में वह उसीको प्रधान बनाएंगे पर चुनाव के लिए भी पैसे चाहिए इसलिए श्रीधर पर तरह-तरह के दबाव पर श्रीधर के न मानने पर रंजीत और कुंवरपाल के द्वारा

रात के समय मास्टर श्रीधर की बुरी तरह से पिटाई, मास्टर को अलीगढ़ के अस्पताल में दाखिल करना, सारंग की जिद कि वह उसे देखने जाएगी, इसको लेकर सारंग और रंजीत में बढ़ती दूरियां, श्रीधर के अलीगढ़ से वापस आ जाने पर लौंगसिरी बीबी के यहाँ उसको ठहराना, सारंग की सेवा-टहल, उसीमें दोनों का एक-दूसरे के करीब आना, श्रीधर-सारंग का संवनन और मिलन, रंजीत द्वारा सारंग का पीटा जाना, बाबा द्वारा दोनों को समझाना, बाबा की स्वीकृति, शक-संशय के सांप के कारण रंजीत की अम्मा की मृत्यु का एकरार, बाबा के स्वभाव का विश्लेषण, गुलकंदी का पता लगने पर हरप्रसाद नाई का अपनी माता को समझाना कि वह दोनों को अपने घर लिवा लावे ताकि वह सबके सामने अपनी स्वीकृति की मुहर लगाकर उस कलंक-कथा से कुछ मुक्ति पावे, मां द्वारा वैसा ही करना, हरप्रसाद द्वारा ऐन होली वाले दिन अपने ही घर में आग लगवा देना और उसमें गुलकंदी बिसुनवा और हरप्रसाद की मैया का जलकर राख हो जाना, गाँववालों द्वारा उसे दुर्घटना बताने का प्रयास, पर आखिरकार हरप्रसाद का पकड़ा जाना, फतेसिंह प्रधान के चातुर्य के कारण गाँव में कई लोगों के मन में प्रधानी का लड्डू फूटना, चुनावी पैंतरे, गुण्डागर्दी और दारूबाजी की रेलमछेल, बाबा भंवर और श्रीधर का सारंग को चुनाव में खड़े रहने के लिए तैयार करवाना, फार्म भरना, रंजीत का बुरी तरह से आहत होना, और उपन्यास के अंत में सारंग के चुनाव जीत जाने के संकेत आदि-आदि।

इसके साथ ही होली-दिवाली जैसे त्यौहारों का मनना, करवा-चौथ, बासौड़ा, दस्टौन आदि के विधि-विधान, लोककथाएं, लोकगीत, मान्यताएं, गाँव में फैल रहा जातिवाद का जहर, छोटी जातिवाले लोगों की घुड़सवारी पर प्रतिबंध जैसे कई तथ्य भी उपन्यास में यथास्थान आये हैं।

"गोदान" की धनिया की भांति "चाक" की सारंग भी एक पक्के मनोबल वाली महिला है । बरअक्स इसके रंजीत बहुत ही कमजोर और ढुलमुल नायक है । रंजीत कच्चे कान के भी हैं और जल्दी ही लोगों के बहकावें में आ जाते हैं । सारंग भी रंजीत को तहेदिल से चाहती है, परन्तु उसकी चाहत में दरार तब पड़ती है जब रंजीत सच्चाई का रास्ता छोड़कर भ्रष्ट लोगों की संगत पकड़ लेते हैं । श्रीधर के प्रति लाख श्रध्द्धाभाव व प्रेम होने के बावजूद सारंग के मन में चारित्रिक स्खलन नहीं होता यदि रंजीत का व्यवहार उसके प्रति ठीक-ठाक रहा होता । पर वह अपने जाटपने पर उतर आता है और फलतः सारंग के मन से भी उतर जाता है । उपन्यास में एक स्थान पर श्रीधर और सारंग के शारीरिक मिलन का प्रसंग पूरे एक पृष्ठ में वर्णित है ।[50] यहाँ लेखिका ने बड़ी सांकेतिक शैली का प्रयोग किया है । मैत्रेयी के उपन्यासों में ऐसे संभोग-संवनन के प्रसंग प्रायः मिलते हैं । "इदन्नमम" में भी ताऊजी और कुसुमा भाभी वाले प्रसंग का विस्तृत आलेखन मैत्रेयी ने किया है । रेशम की हत्या को रंजीत भूल जाता है, पर सारंग के मन में तो प्रतिशोध की आग धधकती रहती है और इसलिए रेशम के हत्यारे डोरिया को पहलवानी में धूल चटाने के लिए अपने दूर के जीजाजी कैलासीसिंह ताड़फड़ेवाले को निमंत्रित करती है ।

कैलासीसिंह ताड़फड़ेवाले की कहानी उपन्यास के यौन-विमर्श को सामने लाती है । कैलासीसिंह ताड़फड़ेवाले पहलवान तो है, पर एक स्त्री की शिशु-याचना के कारण उसे ऋतुदान देना चाहते तो हैं पर असफल रहते हैं । यह असफलता उनको नपुंसकता की ओर ले जाती है, जिसका प्रभाव उनकी पहलवानी पर भी पड़ता है । उनके मन में जिस यौन-ग्रंथि का निर्माण होता है उसके चलते वह नपुंसकता का अनुभव करते है ।[51] यहाँ राजकमल चौधरी के बहुचर्चित मनोवैज्ञानिक उपन्यास "मछली मरी हुई" का निर्मल पद्मावत हमारी

स्मृति में कौंध जाता है । पहाड़-सा दिखने वाले निर्मल को देखकर कोई नहीं कह सकता कि वह नपुंसक है । युवतियां उसके व्यक्तित्व से आकर्षित होती है पर वह उनसे दूर-दूर भागता है । विदेश में कल्याणी नामक एक सुंदरी युवती द्वारा अपमानित होने के कारण उसमें यह नपुंसकता आयी है । मनोवैज्ञानिक दृष्टया नपुंसकता कभी मनोवैज्ञानिक प्रकार की भी हो सकती है और इस प्रकार की नपुंसकता मनोवैज्ञानिक उपचारों द्वारा संभव हो सकती है ।[52] विदेशों में तो इस प्रकार की नपुंसकता दूर करने वाली महिलाएँ होती हैं जो अपनी सेवाओं द्वारा नपुंसक पुरूष में पुंसत्व की हुंकार भर देती हैं । बेशक उसके खातिर वह बड़ी रकम भी वसूल करती हैं । उपन्यास में यह काम कलावती चाची करती है ।[53] यथा..... "सारंग, वे लल्लू बड़ी देर में निरदंद भए । पर जब निरदंद हो गए तो समझ ले कि मेरी आंखों के अगारी पूरे पुरिख होकर ठाड़े हो गए । मइया इतनी खुस तो मैं तब भी नहीं हुई थी, जब पहली बेर रिसाल के दादा... । वे पुरिख और मैं लुगाई... मैंने उन लल्लू को छाती से चिपकाकर, हार और जीत आनंद में डूबो लिया । रस ही रस फिर तो ।"[54] मर्दानगी के लौटने के साथ ही ताड़फड़ेवाले की पहलवानी भी लौट आयी और उन्होंने डोरिया को धूल भी चटायी ।

डा.मधुरेश ने प्रस्तुत उपन्यास की समालोचना करते हुए कहा है – "मैत्रेयी पुष्पा का "चाक" स्त्री-विमर्श का उपन्यास है, जो इस विमर्श की देशज प्रकृति का खुलासा करता है । वे इस विमर्श को पढ़ी-लिखी, नौकरीपेशा, बुध्दिपेशा, बुध्दिजीवी स्त्री की सीमा से बाहर निकालकर गाँव और खेत-खलिहान में काम करती स्त्री से जोड़ती है । गाँव में स्त्री-उत्पीड़न और हत्या का एक लम्बा इतिहास रहा है । इस इतिहास में रस्सी पर झूलती रूकमणी भी है और कुएं में कूदी रामदेई भी । करबन नदी में नारायणी जैसी न जाने कितनी

स्त्रियां समाधिस्थ है । वे अपने इस शील-सतीस्व के कारण कुर्बान हुई स्त्रियों में है जिन्हें नष्ट करने वाले पुरूष हर सामाजिक दंड –विधान और आचार-संहिता के पकड़ के ऊपर बाहर रहते आए हैं । इसी कड़ी में अब रेशम शामिल है ।[55]

किन्तु अपनी समालोचना के अंत तक आते-आते वे अपने ही कथन के अंतविरोध को बता गए हैं जहाँ वे रेशम के साहस से स्त्री-विमर्श की जो दिशा तैयार की गई है वह उसे कुछ अविश्वसनीय और अप्रामाणिक बना देता है, ऐसा कहते हैं । यहाँ वे ग्रामीण स्त्री की देशज प्रकृति का शायद विस्मरण कर गए है । वस्तुतः मैत्रेयीजी उस ग्रामीण नारी को प्रस्तुत कर रही है जो न देवी है और न ही कुल्टा । उन्होंने नारी का सहज, प्राकृत और देशज रूप रखा है । जो गाँवों में रह चुके हैं, जिन्हें ग्रामीण जीवन और स्त्रियों का अनुभव है उन्हें यह अविश्वसनीय नहीं लगेगा । सारंग जब कलावती चाची से कहती है कि चाची तुमने मेरे खातिर ... तब उसकी बात को बीच में ही काटते हुए कलावती चाची कहती है..... "चल लुच्ची" हम जाटिनी तो जेब में बछिया धरे फिरती हैं । मन आया ताके पहर लिए । तेरी-मेरी खातिर क्या ? अए तो हम्बे । क्या पल्लो (परलय) हो गई ?"[56]

श्रीमान उदयन वाजपेयी ने तो अपने सवापेजी वक्तव्य में "चाक" को "गजेटियर शैली" और कंप्यूटर पर "फीड़" किया गया फार्मूलाबद्ध उपन्यास करार दे दिया है । यथा - "संयोग से यह वह चाक नहीं, जिस पर बर्तन (पात्र) बनते हैं, यह अनोखा चाक है, जिस पर बने-बनाए बर्तन रखे जाते है और उतार लिए जाते हैं, ताकि उनके चाक पर बनने का स्वांग किया जा सके ।"[57]

किन्तु हम उनसे सहमत नहीं है। "चाक" में बंधा-बंधाया कुछ भी नहीं है। यह एक नदी की तरह बहती हुई कथा है। यह "चाक" स्थिर नहीं गतिमान है। और सारंग ही "चाक" पर चढ़ा हुआ मिट्टी का लौंदा है जो श्रीधर जैसे कुंभकार के सधे हुए हाथों से निर्मित हुआ है। सारंग उपन्यास के अंत में वह नहीं रहती, जो वह उपन्यास के प्रारंभ में थी।

इस उपन्यास पर अपनी तरफ से और कुछ अधिक न कहते हुए हम डा.राजेन्द्र यादव और ज्ञानरंजन के अभिमत को उद्‌धृत करना चाहेंगे। यथा – "चाक" सामंती समाज के भीतर व्याप्त हिंसा और स्वार्थों की टकराहट की प्रामाणिक कहानी है। इस समाज का ताना-बाना हिंसा और सैक्स से बना हुआ है। मैत्रेयी इन दोनों को ही एक कथाकार की निगाह से पात्रों के आचार-विचार और सोच के रूप में प्रभावशाली ढंग से पकड़ती हैं। "चाक" में बिना बड़बोलेपन के उन्होंने गाँव की स्त्री की जिस चेतना का विकास किया है वह उपन्यास कला पर उनकी पकड़ को रेखांकित करता है।[58] इस ग्रामीण और सामंतीय जीवन और परिवेश का हिस्सा रही हैं। मैत्रेयीजी, अतः यह उनके सहज अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

ज्ञानरंजन ने मैत्रेयीजी की औपन्यासिक कला में लोकजीवन की महक को महसूस करते हुए लिखा है – "जिस लोकजीवन से हमारी रचनात्मक धारा काफी पहले विमुख हो चुकी थी उसकी अनेक परतें मैत्रेयी पुष्पाने खोल दी हैं। मैत्रेयी पुष्पा को उनकी मामूली जबरदस्त स्त्रियों के कारण याद किया जाएगा।"[59]

<u>(4) झूलानट (१९९९) :</u>

"झूला नट" मैत्रेयी पुष्पा का चौथा और "स्मृतिदंश" को भी हिसाब में ले तो पांचवाँ उपन्यास है। दो बृहदकाय उपन्यासों के बाद यह एक लघु-उपन्यास। लघु पर औपन्यासिक बलबत्ता में लघु नहीं। बुंदेलखण्ड़ की एक और बलवत्तर बलूकी नारी शीलो। नारीवाद के बड़बोलेपन के बिना उनके "चाक" से उतरी ये नारियां शुरू-शुरू में तो रूढ़ियों, परंपराओं, रीति-रिवाजों की जकड़न में पुरुषवादी समाज में, पुरुष के इशारों पर नाचती हैं, पर बाद में संतुलन साध लेने पर उन्हीं पुरुषों को नचाती भी है। साथ ही उनके नारी पात्र पुरूष-सत्ता, पुरूष-अस्तित्व या पुरूष के साथ को नकारती भी नहीं है परंतु उनको अपने हिसाब से मोड़ देती है, अतः पुरूष और प्रकृति की यह "लीला" उनके उपन्यासों में प्रायः उदभासित होती रहती है। और वह यहाँ भी हुई है।

उपन्यास की कुल कथा इतनी है। सुमेर गाँव का एक पढ़ा-लिखा आदमी है। वह बीस हजार रूपया दहेज लेकर शीलो को ब्याह लाता है। उन बीस हजार रूपयों में वह दरोगा की नौकरी खरीद लेता है। अब नौकरियों को भी खरीदना ही पड़ता है। हमारे गुरूदेव ने बिलकुल सही फरमाया है – "ज्ञान को है कौन पूछता ज्ञान गलियों में बीके, काम पाने के लिए अब दाम होना चाहिए।[60] तो दहेज के दाम को रिश्वत में देकर सुमेरजी के एक अच्छी दम-खम वाली नौकरी पा लेते हैं। पर शीलो के जिन रूपयों से खरीदी नौकरी को पाकर वे मौज करते हैं उसी शीलो को ठुकरा देते हैं। उसे पत्नी का दरज्जा नहीं देते। शीलो गाँव की एक साधारण –सी लड़की है, न बहुत सुंदर, न बहुत सुघड़ और लगभग अनपढ़। गाँव में नौकरी करने वाले अन्य युवकों की भांति महीने-पखवाड़े आकर शीलो की खोज-खबर ले जाते तो वह भी बेचारी चूप रह जाती क्योंकि शहराती पढ़ी-लिखी लड़कियों वाला रोग या मनोरोग ये अनपढ़-सी लड़कियों में नहीं होता। वे जानती हैं कि शहर में नौकरी करने वाला आदमी

कई-कई दिनों तक शरीर-भूख से वंचित नहीं रह सकता। वह तो बाहर कहीं मुंह मारेगा ही, यथा – "उनको गुपचुप अंदाज में मालूम रहता है कि स्वामी को बंगाल की जादूगरनी औरतों ने अपने चंगुल में कर रखा है। इसमें खास बात क्या है ? मर्द की मर्दानगी है। ग्रामीण समाज को भी उज्र नहीं होता, तभी न मौन रह जाते हैं लोग। इसमें न्याय-अन्याय की बात कहां आती है ? बिना रोटी के भूखे पेट कितने दिन रह सकता है आदमी ? निद्रा-भय-मैथुन-आहार ... यह दीगर बात है कि औरतों को व्रत-उपवास का अभ्यास आरंभ से ही डाल दिया जाता है"[61]

सुमेर दो-एक बार शहर से गाँव आते हैं पर शीलो से दूर ही दूर रहते हैं। बकौल सत्ते के वे न तो नपुंसक है, न कमजोर।[62] फिर ऐसा व्यवहार क्यों ? बेचारी शीलो सास के कहने पर क्या नहीं करती ? दोरा-धागा, गंडा-तावीज, तंत्र-मंत्र, साधु-फकीर, वशीकरण, शहर का शउर सीखना, बनाव-श्रृंगार करना सब तो वह करती है। पर महादेव हैं कि प्रसन्न होने का नाम ही नहीं लेते हैं। फिर शीला को ज्ञात होता है कि सुमेरबाबू ने तो शहर में किसी को रख लिया है। सरकारी मुलाजिम है। एक पत्नी के रहते दूसरा ब्याह कर नहीं सकते। उसी फिराक में गाँव आते हैं और शीलों से दूर-दूर भागते हैं ताकि वह खुद उन्हें छोड़कर चली जाएँ या तलाक दे दें। पर शीलो ऐसा कुछ नहीं करती।

मैत्रेयीजी के अधिकांश आलोचकों ने प्रस्तुत उपन्यास की शीलो को "गाय की खाल में बाघिन" की उपाधि दी है, बेशक बाद की परिवर्तित शीलो को।[63] परन्तु हम उसका उलट कहना चाहते हैं, शीलो पहले से ही "गाय की खाल में बाघिन" थी, सुमेर का अन्याय, अमानुषी व्यवहार उस बाघिन को जगा देता है।

शीलो अनपढ़ है । उसने न समाजशास्त्र पढ़ा है, न मनोविज्ञान, पर उसमें ग्रामीण औरतों की वह सामान्य सूझ-बूझ (कोमनसेंन्स) है, जिसके चलते वह सुमेर जैसे दावपेंची और कानूनी और सरकारी मुलाजिम को भी धूल चटा देती है । जब सुमेर उसकी शारीरिक जरूरतों से मुंह फेर लेता है तब मां (सास) की शह पाकर ही वह देवर बालकिशन से शारीरिक रिश्ता बना लेती है और उसे "बच्चे" से "पाठा मर्द" बना देती है । पति-पत्नी न होते हुए पति-पत्नी की तरह ही रहते है । पंचायत के कहने पर वह "बछिया-दान" भी नहीं करवाती । बुंदेलखण्ड में स्त्री का दूसरा विवाह बछिया दान करके सादगी के साथ संपन्न किया जाता है ।[64] परंतु शीलो "बछिया-दान" नहीं करवाने देती क्योंकि तब वह सुमेर की ब्याहता न रहती और "बछिया-दान" वाली औरत को कानून की भी कोई स्वीकृति नहीं होती, फलतः सुमेर उसे कभी भी दूध की मक्खी की भांति निकाल बाहर करता । पर जमाने के थपेड़ों ने शीलो को शातिर और होशियार बना दिया है ।

अतः सुमेर प्यार का जाल बुनने के लिए एक बार शीलो को एकान्त में मिलने की बात करता है, तब शीलो अपनी अम्मा (सास) से कहती है – "पहले अपने बेटे को जेठ-बहू का कायदा समझा दो । अब अकेले में मिलने का मतलब ?"[65] इसी तरह जब सुमेर जमीन-जायदाद के बटवारे की बात करता है तब शीलो सुमेर को साफ-साफ सुना देती है – "काये के पति-पत्नी, बाबूजी ? वह अबोध (अर्थात् बालकिशन) मन का बड़ा अच्छा है, सो बस --- तुम्हारी ब्याहता होने के बाद भी ..... पर छोड़ो उस बात को । बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए, जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी दूसरी औरत । बिनब्याही, मनमर्जी की ।..... जमीन-जायदाद की बात यह रहने दो कि यह मामला तो अब भी हमारे-तुम्हारे बीच ही है । बाबूजी, बालकिशन, सिरफ अपने हिस्से का मालिक है ।

वह कौन होता है हमारे तुम्हारे हिस्से में टांग अड़ानेवाला ? बिलकुल ऐसे ही, जैसे तुम्हारी वह बेचारी कोई नहीं होती हमारे-तुम्हारे बीच । ये जर-जोरू के मामले बड़े-कड़े (कठिन) है, बाबूजी ।[66]

शीलो की इस बात से सुमेर तो चारों खानों चित्त हो जाते हैं । साफ तौर पर शीलो ने उसकी जमीन-जायदाद पर कब्जा कर लिया था और वह सरकारी नौकर , करे तो क्या करे ? ताता दूध न निगलते बने, न उगलते बने । उसका गुस्सा बेचारी अम्मा पर फूट पड़ता है – "बेवकूफ़ हो तुम, बूढ़ी । यह औरत इतनी सीधी नहीं, जितनी तुम समझ रही हो । भरोसा कर लिया तुमने ? अपने हाथ कटा लिए । कोई राजी से न दे , तो यह जबर्दस्ती काबिज़ हो जाए ।"[67] और फिर आगे वह जो कहता है उससे खुलासा हो जाता है कि "बछिया-दान" न करवा के शीलो ने कितना बुद्धिमानी का काम किया था । यथा – "सारी गलती तो तुम्हारी है । बछिया क्यों नहीं कराई बालकिशन के संग । बछिया करा देतीं, तो यह सींग फैला कर खड़ी हो जातीं ? छोटा-सा पशु भी उसको बेदखल कर देता सारे हक से । पूरा गाँव गवाह होता...पर अम्मा, दो-चार हजार रूपये का लोभ करके तुमने हमें चित्त कर दिया । अरे! मुझसे कहती, तो मैं भेज देता । अब भुगत लो, लाखों की जायदाद पर दांत गाड़े बैठी है ।[68]

मैत्रेयीजी ने यहाँ भी यौन-आवेगों का खुलकर वर्णन किया है, फिर यहाँ तो विषय भी उसी प्रकार का है । शीलो पति-परित्यक्ता नारी है । ऐसी स्त्री में यौनेच्छा खूब बढ़ी-चढ़ी होती है, क्योंकि उनकी संतुष्टि का कोई उपाय नहीं होता है । बाल-बह्लचारी और उम्र में छोटे ऐसे, शीलो के सामने "बच्चा" – सा दिखनेवाले बालकिशन को शीलो एक पक्का पाठा मर्द कैसे बनाती है, उसका यह चित्र देखिए - "आवेग के क्षण या प्यार का असीम वेग - शीलो भाभी ने

बाहों में भर लिया उसे और चूम लिया। एक बार नहीं, कई बार लिया चुंबन – पुच्च पुच्च पुच्च। ....भाभी के पुचकार भरे हमले जारी थे। अब वह भाभी की गोद में विचर रहा था – रूठे हुए बच्चे के माफिक। बार-बार चूमाचाटी। मन ही मन डर भी लगा। ज्यादा देर यह चलता रहा तो दम न निकल जाए, जब कि एक मन यह भी था कि दम निकालती रहे शीलो भाभी। अंत में समर्पित बालकिशन अपने गाल, होंठ, ठोड़ी, माथा – सब ही खुद ही हाजिर करता रहा। कमरे की हवा बदल गई। देह के जोड़ खुलने लगे। गुनगुनी तरंगो में तैर रहा है वह।...बेकाबू बछड़ा बालकिशन, काबू में कर लिया शीलो भाभी ने। शीलो रूपी औरत की मेहरबानी, बालकिशन पूरा पाठा मर्द कब बन बैठा, याद नहीं। वे होशोहवास के लम्हे न थे। .... बाद में नींद। मुंडेर में कागा बोला। पेड़ों पर चिड़िया चहचहाई। सूरज भगवान का रथ आधे रास्ते आ गया। बालकिशन की नींद नहीं टूटी।...नींद नहीं, मदहोशी ! उंगलियां कांपती हैं – मधुमक्खी का छत्ता निचोड़ेगा। दीन-दुनिया से परे मन में शीलो, तन में शीलो, रंगभवन में शीलो....शीलो....मन के इकतारे पर एक ही नाम निकलता है शीलो। शीलो नाम की ऐसी लगन लगी कि "भाभी" शब्द सदा को भूल गया।"[69]

डा. सुमा वी. राव ने प्रस्तुत उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखा है कि - "मैत्रेयी पुष्पा ने "झूला नट" के रूप में किसे दर्शाया है शीलो को अथवा बालकिशन को? यह निर्णय पाठक महोदय को ही करना है।"[70] हमारी समझ में बात यह आती है कि इसके सभी मुख्य पात्र - शीलो, बालकिशन, सुमेर और मां – "झूलानट" की स्थिति में है। शीलो बालकिशन और सुमेर के बीच में झूल रही है, बालकिशन अपने वर्तमान और भविष्य के बीच में झूल रहा है, सुमेर

ब्याहता और रखी हुई औरत के बीच में झूल रहा है। "झूलानट" एक रस्सी पर बांस लेकर झूलता है। बांस के द्वारा वह संतुलन बनाए रखता है और उस संतुलन पर ही उसका वजूद टीका हुआ है। यहाँ स्थितियों का संतुलन कभी सधता, कभी नहीं। इसलिए मां और बालकिशन के मन में विचलन है। वे कभी एक बात सोचते हैं कभी दूसरी। कभी शीलो उनको अच्छी लगती है तो कभी रंडी, वेश्या, डाकिन और चुड़ैल। इन रिश्तों का क्या भविष्य होगा, सब अनिश्चित है, "झूला नट" की भांति।

उपन्यास की भूमिका में डा. राजेन्द्र यादव लिखते हैं – "पति उसकी (शीलो की) छाया से भागता है। मगर तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुंए - बावड़ी की ओर धकेलती है और न आग लगाकर छुटकारा पाने की ओर। वशीकरण के सारे तीर-तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत - एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा... उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी उंगली ही उसका भाग्य लिख रही है...और उसे ही बदलना होगा।...मुहावरेदार, जीवंत और खुरदरी लगने वाली भाषा की "गंवई ऊर्जा" मैत्रेयी का ऐसा हथियार है जो उन्हें अपने समकालीनों में सबसे अलग और विशिष्ट बनाता है...वह उपन्यास की शिष्ट और प्राध्यापकीय मुख्यधारा की इकहरी परिभाषा को बदलनेवाली निर्दमनीय कथाकार हैं। अपनी प्रामाणिकता में उनका हर चरित्र आत्मकथा होने का प्रभाव देता है और यही उनकी कथा-संपन्नता है। ..."झूला नट" की शीलो हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में एक है। बेहद आत्मीय, पारिवारिक सहजता के साथ मैत्रेयी ने इस जटिल कहानी की नायिका शीलो और उसकी स्त्री-शक्ति को फोकस किया है।"[71]

सचमुच में ऐसी स्त्रियां ही कुछ कर गुजरती हैं । सभ्य समाज की, शिष्ट कही जाने वाली, राई-रत्ती, लाभ-हानि का विचार करनेवाली, समाज की निंदा से फूंक-फूंक कर कदम रखने वाली औरतें क्या खाक जिएगी जिन्दगी? उपन्यास में एक स्थान पर कहा गया है – "शीलो की थू-थू । बालकिशन बेचारा बर्बाद कर डाला इस औरत ने । रखैल से बदतर....रंडी । रद्द की हुई औरत अब बिरादरी से रद्द । चुड़ैल, राक्षसी, बदकार...कमाल है, शीलो को परवाह नहीं । "निंदा" का अर्थ क्या है? उसने सोचना छोड़ दिया है, क्योंकि शाबाशियों ने उसकी जिन्दगी तबाह कर दी । फब्ती और गालियां ही असलियत से मुठभेड़ करती हुई धूल झाड़कर उठती थी बार-बार ।"[72]

डा. खगेन्द्र ठाकुर ने "झूलानट" की कथा को "नारी-भक्ति की नई कथा" कहा है ।[73] इसकी आलोचना करते हुए उन्होंने सुमेर को तो उड़ा ही दिया है – "इस प्रकार तीन मुख्य पात्र मिलकर एक त्रिभुज बनाते हैं, ये पात्र हैं - शीलो, बालकिशन और मां । निःसंदेह शीलोवाली भुजा सबसे बड़ी और सबमें अधिक दबंग है ।"[74]

डा. गोपाल राय ने प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में अपनी संक्षिप्त टिप्पणी में कहा है - "झूलानट" का विषय भी जाट समाज की एक पारिवारिक स्थिति है जिसमें सास-बहू, **माँ-बेटे, पति-पत्नी और देवर-भाभी के सम्बन्धों की कहानी एक खास** अन्दाज़ में कही गयी है । उपन्यास में कोई उल्लेखनीय विजन नहीं है; मां और पत्नीवत् भौजाई के सम्बन्धों के पाट में पिसते एक भोले जाट युवक का मानसिक उद्वेग ही उपन्यास में प्रमुख है । सास-बहू के सम्बन्धों के चित्रण के साथ-साथ शीलो के रूप में एक जाट युवती के परंपरागत मूल्यों को चुनौती देने, स्त्री-संहिता को नकारने और विद्रोह की मुद्रा में तने हुए खड़े होने का

चित्रण भी किया गया है । शीलो का चरित्र अपनी प्रकृति में कुछ-कुछ कृष्णा सोबती के "मित्रो" जैसा है । शीलो में सारंग की ही तरह अद्‌भुत जिजीविषा, अपना भाग्य स्वयं लिखने का संकल्प और समाज से अकेले लोहा लेने की क्षमता है । पर उसमें नारी शक्ति का कोई भास्वर रूप लक्षित नहीं होता ।"[75]

उपर्युक्त आलोचना में जो अंतिम वाक्य है उससे लक्षित होता है कि मन्दा और सारंग की भांति शीलो नारी-शक्ति को जगाने का कोई काम नहीं करती, परंतु ऐसा कुछ कहे और किए बिना ही नारी-स्वतंत्रता का एक बिगुल तो बजा ही देती है कि यदि पुरूष पत्नी के रहते किसी अन्य स्त्री से यौन सम्बन्ध रख सकता है तो स्त्री को भी उसीकी भाषा में जवाब देना चाहिए । और जमीन-जायदाद के मामलों में सुमेर को धूल चटाकर यह कार्य इस जाट युवती ने कर दिखाया है ।

(5) अल्मा कबूतरी (२०००) :

नोबेल पारितोषिक विजेता कथाकार आईजाक सिंगर का एक कथन है कि कथा-लेखन की प्रक्रिया की तीन प्रमुख बातें यह है..... (1) एक मुकम्मल कहानी होनी चाहिए । अभिप्राय यह कि कथ्य तगड़ा होना चाहिए । (2) कथा लिखने की मेरी नीयत होनी चाहिए और (3) मुझे यह अहसास होना चाहिए कि यह कथा में ही लिख सकता हूँ या लिख सकती हूँ ।[76] यह लिखना इसलिए है कि कई बार कथ्याभाव में हमारे कथाकार चमत्कारपूर्ण शिल्प और अचेतन-अवचेतन की भूलभुलैया का सहारा लेते हैं । परंतु हमारा देश इतना विशाल है । उसमें संस्कृतियों, सभ्यताओं और जातियों का इतना वैविध्य है कि कोई जागरूक और संवेदनशील लेखक हो तो अपने मनोनुकूल विषय वह ढूंढ ही लेगा । और यही मैत्रेयी ने इस उपन्यास में किया है । बहुत पहले डा.रांगेय

राघव ने राजस्थान की करनट जन-जाति को लेकर “कब तक पुकारूं” की रचना की थी, लगभग उसी प्रकार का पर कुछ अधिक सफल प्रयास मैत्रेयीजी ने यहाँ किया है । यह बुंदेलखण्ड की एक जरायम पेशा जन-जाति “कबूतरा” को लेकर लिखा गया है । डा.गोपालराय के मतानुसार “अल्मा कबूतरी” उनके अब तक के प्रकाशित उपन्यासों में अधिक नयी और सशक्त रचना है ।[77] इस पर उनको सार्क लिट्रेरी अवार्ड भी मिल चुका है ।[78]

उपन्यास के प्रकाशकीय वक्तव्य में दिया गया है – “कभी-कभी सड़कों, गलियों में घूमते या अखबारों की अपराध-सुर्खियों में दिखाई देने वाले कंजर, सांसी, नट, मदारी, संपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, बावरिया, कबूतरे – न जाने कितनी जन-जातियाँ है जो सभ्य समाज के हाथियों पर डेरा लगाए सदियाँ गुजार देती हैं – हमारा उनसे चौकन्ना सम्बन्ध सिर्फ कामचलाऊ ही बना रहता है । उनके लिए हम हैं कज्जा और “दिकू” – यानी सभ्य-सम्भ्रान्त, “परदेशी उनका इस्तेमाल करनेवाले शोषक -- उनके अपराधों से डरते हुए, मगर उन्हें अपराधी बनाए रखने के आग्रही । हमारे लिए वे ऐसे छापामार गुरिल्ले हैं जो हमारी असावधानियों की दरारों से झपट्टा मारकर वापस अपनी दुनिया में जा छिपते हैं । कबूतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में .. स्त्रियाँ शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर .. इन्हीं अपरिचित लोगों की कहानी उठायी है कथाकार मैत्रेयी पुष्पा ने “अल्मा कबूतरी” में । यह बुंदेलखण्ड़ की विलुप्त होती जन-जाति का समाज-वैज्ञानिक अध्ययन बिल्कुल नहीं है, हालाँकि कबूतरा समाज का लगभग सम्पूर्ण ताना-बाना यहाँ मौजूद है – यहाँ के लोग-लुगाइयाँ, उनके प्रेम-प्यार, झगड़े, शौर्य इस क्षेत्र को गुंजान किए हुए है ।”[79] यहाँ “यह विलुप्त होती जन-जाति का समाज-वैज्ञानिक अध्ययन

बिल्कुल नहीं है" जैसी टिप्पणी इसलिए देनी पड़ रही है कि कई बार आलोचक - बाग इस प्रकार की टिप्पणियां देकर कृति की रचनात्मक ऊर्जा को खारिज कर देते हैं जिसे हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में "चाक" के संदर्भ नें उदयन वाजपेयी की टिप्पणी में रेखांकित कर चुके हैं। गोया उपन्यास-लेखन के पूर्व किसी प्रकार का संशोधन-कार्य करना लेखक के लिए अपराध हो। बल्कि आंग्ल विवेचक व उपन्यासकार जेइम्स जायस कैरी इस प्रकार के "रीचर्स" को बहुत ही आवश्यक मानते हैं।[80]

उपन्यास की कुल कथा इतनी है – मंसाराम कज्जा है और कदमबाई कबूतरा जाति की स्त्री -- कबूतरी। उपन्यास की आधी कथा मंसाराम और कदमबाई के प्रेम और घृणा की कहानी है। मंसाराम अपनी पत्नी आनंदी और कदमबाई के बीच में झूलता रहता है। इन सम्बन्धों के कारण उसके बेटे उससे नफरत करते हैं और जवान होने पर उसे बेदखल तक करने की हिम्मत करते हैं। कदमबाई भी कभी मंसाराम को प्रेम करती है और कभी नफरत क्योंकि उसके पति जंगलिया को मरवाने में मंसा का हाथ था और जंगलिया तब मारा जाता है जब एक खेत में मंसाराम कदमबाई के साथ शारीरिक सुख भोगने में लीन था। अंधकार में पहले-पहले तो कदम समझती है कि जंगलिया है पर बाद में उसके छूने के अंतर मात्र से वह समझ जाती है कि यह मंसाराम माते है पर फिर भी उस लीला में वह भंग नहीं डालती क्योंकि कबूतरा औरतों में यौन-शूचिता के वह ख्याल नहीं होते जो कजाओं में होते हैं। मंसा-कदम के सम्बन्ध से राणा का जन्म होता है। कबूतरा समाज के लोग उसे कबूतरा बनाना चाहते है पर राणा असल में तो एक कज्जा का बेटा है। वह कबूतरों से नफरत करता है और पढ़ना चाहता है। मंसा के प्रयत्नों से राणा को पाठशाला में प्रवेश भी मिल जाता है। मंसाराम के लड़के करन से राणा की मित्रता भी

होती है, पर पाठशाला में राणा के साथ भेदभाव बरता जाता है और एक बार तो उस पर कुत्ते तक छोड़े जाते हैं। फलतः कदम डर जाती है और राणा को रामसिंह के यहाँ भेज देती है। वहाँ पहले रामसिंह की बेटी अल्मा से राणा की मैत्री होती है पर अल्मा के वयस्क होने पर राणा से उसके सम्बन्ध होते है और अल्मा उसे "पाठा मर्द" बना देती है, पर तभी राणा को ज्ञात होता है कि रामसिंह पुलिस का दलाल और मुखबिर बन गया है। इसी बीच एक नये रहस्य का घटस्फोट होता है कि जब किसी डाकू से मूठभेड होती है और उस एनकाउण्टर में डाकू के मरने की खबर प्रसारित होती है, तब वास्तविक रूप में डाकू के बदले किसी और को मारा जाता है। लाश को ऐसा कर दिया जाता है कि कोई उसे पहचान न सके और फिर वह डाकू अपने गाँव-वतन जाकर सफेद बाना धारण कर शेष जीवन आराम से बिताता है। अर्थात् डाकू के बदले किसी अन्य निर्दोष व्यक्ति की बलि चढ़ा दी जाती है। जब राणा को इस बात की गंध लग जाती है तब वह अल्मा को भी संदिग्ध नज़रों से देखने लगता है और एक दिन वहाँ से भाग खड़ा होता है। उपन्यास की नायिका अल्मा है, पर वह लगभग एक तिहाई उपन्यास के बाद पात्र-रूप में उपन्यास में आती है।[81]

राणा रामसिंह के यहाँ से भाग आता है और बेटाराम के बदले में जिन कबूतराओं को मरना था उनको वह सचेत कर देता है, फलतः डाकू बेटाराम वाली मूठभेड़े में रामसिंह की ही बलि चढ़ा दी जाती है। अल्मा अनाथ और निराधार हो जाती है। पुलिसों द्वारा वह अनेक बार बलात्कृत होती है पर वह टूटती नहीं है बल्कि इन्हीं बातों से वह साहस और हिम्मत जुटाती है। रामसिंह की बेटी होने के कारण वह कुछ पढी-लिखी भी थी। वह शीघ्र ही "शिकार" होने की "दीन" अवस्था और अपराध-बोध से बाहर निकलकर, बेबसी हिकारत और तजन्य छटपटाहट के क्षणिक क्रोध से उबरकर एक ऐसी मानसिकता को

धारण कर लेती है जिसमें वह कमजोर व्यक्तियों और जातियों के लिए कुछ कर गुजरना चाहती है। ऐसे में विपक्ष के नेता सूरजमान और समाज-कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री की सोहबत उसे प्राप्त होती है। अपनी कमजोरी को ही वह अपनी शक्ति बना लेती है। सूरजमान और श्रीराम शास्त्री के कारण वह साम्प्रतिक राजनीति के तिकड़मी स्वरूप, उसकी ताकत और प्रभुता को बड़ी गहराई से समझ लेती है। श्रीराम शास्त्री की हत्या होती है और उसके बाद उपन्यास में अल्मा अप्रत्याशित रूप से चुनावी दंगल में कूद पड़ती है। उपन्यास में जिन स्थितियों का निर्माण लेखिका ने किया है उसमें विधान सभा का चुनाव वह जीत जायेगी ऐसे निर्देश प्राप्त होते है और पिछड़ी जनजाति की उम्मीद-वार होने के नाते बहुत संभव है कि वह मंत्री-पद को भी प्राप्त कर ले। इस प्रकार राजनीति के द्वारा "पोलिसी मेकिंग" में प्रत्यक्ष भागीदारी करके वह एक सम्मानजनक स्थान को सुनिश्चित कर लेती है। उपन्यास के इस अंत और अल्मा की इस परिणति को डा.गोपालराय ने लेखिका का नारीवाद को "लहकाने का" प्रयास कहा है,[82] परंतु हमें यह अंत न अप्रत्याशित लगता है, न अवास्तविक, बल्कि हमारे साम्प्रतिक राजनीतिक समीकरणों को देखते हुए यह बहुत सहज और स्वाभाविक लगता है। हमारे सामने मायावती, उमा भारती जैसे अनेक उदाहरण है जिसमें पिछड़े तबके की सतायी हुई और कभी शोषित रही नारियां राजनीतिक क्षेत्र में उभरकर आयी है। मैत्रेयीजी ने तो अपनी उस साम्प्रतिक वास्तविकता को ही उजागर किया है वहाँ नारीवाद का परचम लहराने जैसी कोई बात नहीं है।

बकौल डा.रोहिणी अग्रवाल के "अल्मा कबूतरी" जनजाति की तीन पीढ़ियों की संघर्ष गाथा का रोमांचक इतिहास है। पहली पीढ़ी भूरीबाई और वीरासिंह की, दूसरी पीढ़ी कदमबाई और रामसिंह की और तीसरी पीढ़ी राणा

और अल्मा की या अल्मा और धीरज की ।[83] दूसरी ओर डा.गोपालराय अपनी समीक्षा में "अल्मा कबूतरी" को हारे हुए व्यक्तियों की कथा कहते है ।[84] परंतु हमारी दृष्टि में यह "हारे हुए" लोगों की कथा नहीं है, बल्कि संघर्षशील लोगों की कथा है जिसमें प्रथम दो पीढ़ियां तो फिर भी हारी है ऐसा कह सकते है पर अल्मा को हम हारी हुई नहीं कह सकते । वस्तुतः "हार" और "हारा हुआ" में अंतर है । हम "रंगभूमि" के सूरदास को हारा हुआ नहीं कह सकते । अल्मा कज्जाओं को जीतने के लिए कज्जाओं के ही औजारों का इस्तेमाल करती है, महात्मा गांधी की तरह वह साध्य और साधन की शुध्द्धता का आग्रह नहीं रखती । वह अपनी बदनामी और बेइज्जती को ही अपनी ताकत बना लेती है । डा.गोपालराय ने अपने ग्रन्थ हिन्दी उपन्यास का इतिहास "में प्रथम परिच्छेद में प्रस्तुत उपन्यास की बड़ी अच्छी सार्थक और सटीक समीक्षा की है – "भारत में आज भी कुछ ऐसी अभागी जनजातियाँ है जो आजादी का अर्थ नहीं जानती । उनके पास न अपनी जमीन है, न ठिकाने का घर बार । औपनिवशिक शासन ने इन्हें "जरायमपेशा" जाति घोषित कर न केवल तथाकथित "सभ्य" समाज की नज़रों में उपेक्षा और घृणा का पात्र वरन् पुलिस के अत्याचार का सबसे नरम चारा भी बना दिया । यद्यपि देश के आजाद होने के बाद इन जातियों को समान नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो गया है, पर जीविकोपार्जन का कोई सम्मानजनक साधन न उपलब्ध होने के कारण इनके पुरुष अपराध-कर्म और स्त्रियां देह-व्यापार के लिए विवश होती हैं । भारत की पचपन वर्षों की आजादी ने भी इनकी नयी पीढ़ी को सम्मान-पूर्ण जीवन का कोई विकल्प नहीं दिया है । मैत्रेयी पुष्पा ने "अल्मा कबूतरी" में इस यथार्थ को गहरी संवेदना और जबरदस्त सर्जनात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है ।[85]

कानून या विधि-विधान के द्वारा समान अधिकार देने से भी क्या होगा ? भूरीबाई का पति वीरसिंह इसी सम्मान-पूर्ण जिन्दगी के लिए फौज में भर्ती होता है पर उसकी कबूतरा जाति के कारण वहाँ भी उसके साथ भेदभाव बरता जाता है और अन्ततः इस जातिगत घृणा के प्रदर्शन-स्वरूप ही उसे मार दिया जाता है । भूरी देह के रास्ते से गुजरकर भी अपने बेटे रामसिंह को पढ़ाती है और पढ़-लिखकर वह शिक्षक भी हो जाता है पर पुलिसवालों के लिए तो वह अपराधी ही रहता है और यहाँ भी अपनी कमाई से हप्ता देने के लिए उसे बाध्य किया जाता है, फलतः वह नौकरी छोड़कर उसी अपराध के रास्ते पर आगे बढ़कर पुलिस का ही दलाल बन जाता है[86] और उसीमें अपनी जान भी गंवा बैठता है । अभिप्राय यह है कि जब तक समाज की सोच में मूलभूत अंतर नहीं आयेगा इन लोगों की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता । उसमें अल्मा एक रास्ता निकालती है जो कदाचित कारगर हो सकता है ।

डा.रोहिणी अग्रवाल ने प्रस्तुत उपन्यास की समालोचना करते हुए यथार्थ ही कहा है –"साहित्य का लक्ष्य चूंकि मनुष्य है, इसलिए वह उसके मन, परिवेश, परिस्थितियों, सांस्कृतिक विरासत और इनके बीच चलते निरंतर संघर्ष से अनभिज्ञ रहकर उसकी मुकम्मिल तस्वीर प्रस्तुत नहीं कर सकता । असल में कोई रचना तभी क्लासिक होती है जब वह समाज के जरिए मनुष्य और मनुष्य के जरिए सनातन मूल्यों और सत्यों की प्रतिष्ठा करें --- (लेकिन) "अल्मा कबूतरी" के पात्र अभी संघर्ष के पहले चरण में है । समाज, सामाजिक प्रभुता, पद-प्रतिष्ठा और शक्ति जैसी स्थूल सांसारिक उपलब्धियां उन्हें भरमा रही है । इसलिए फिलहाल उनसे मनुष्यता की बात करना और "मनुष्य" बनने का आग्रह करना बेमानी है ।"[87]

हिन्दी साहित्य में यह उपन्यास एक नये क्षितिज के उद्घाटन के रूप में भी देखा जा सकता है । इसमें लेखिका ने “कबूतरा” जनजाति के जीवन को अपने उपन्यास का कथ्य बनाया है । ब्रिटिशरों के समय से कबूतरा जाति को अपराधी जाति के रूप में घोषित कर दिया गया था । चोरी-चकारी, ठगी, राहजनी, लूंटफाट, अवैध शराब बनाना और बेचना ये सारे गैरकानूनी काम ये लोग करते हैं या उनको ये सब करने का बाध्य कर दिया गया है । उपन्यास में कबूतराओं की जीवन-शैली को चित्रित किया गया है । कबूतरा समाज के लोग अन्य जाति के लोगों को “कज्जा” कहते हैं और उनको नफ़रत और हिकारत भरी नज़र से देखते हैं । ऊपर जिन अपराधों की सूची दी गई है उनमें कबूतरा बच्चों और किशोरों को प्रशिक्षित किया जाता है और इन सबमें जो बच्चा तेज़ होता है कबूतरा-समाज में उसका नाम होता है । कदमबाई का विवाह जिससे होता है वह जंगलिया इन सब बातों में होशियार था । अभिप्राय यह कि सभ्य समाज में जिन्हें दूषण माना गया है, वे तमाम बातें कबूतरा समाज के लिए भूषण है और आजादी के इतने वर्षो बाद भी इनका कोई भविष्य नहीं है । जंगल, जेल और अंततः कुत्ते की मौत मरना यही कबूतराओं का जीवन है । कोई वीरसिंह, कोई रामसिंह निकल भी आवे तो भी उसे आगे बढ़ने नहीं दिया जाता और धरधराकर उसे अपराध के ही रास्ते पर डाल दिया जाता है । बहुत पहले डा.रांगेय राघव ने “करनट” जाति को लेकर “कब तक पुकारूँ” नामक उपन्यास की रचना की थी, उसके बाद मैत्रेयीजी के इस प्रयास को स्तुत्य ही कहा जाएगा । गुजरात के सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष डा.बी.के.कलासवा साहब ने आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों पर कार्य किया है । उनके शोध-प्रबंध में इस कबूतरा जाति की जीवन-शैली, उनके रीति-रिवाज, उनकी मान्यताएं, विश्वास-अविश्वास, लोकगीत, लोककथाएं

इत्यादि का विस्तृत विवेचन किया गया है और उस सबमें प्रस्तुत उपन्यास को ही आधार बनाया गया है ।[88]

"अल्मा कबूतरी" को सार्क लिटररी अवार्ड से नवाज़ा गया है । मैत्रेयी के इस उपन्यास पर जमकर साहित्य-जगत में चर्चाएँ हई हैं, जिनमें सकारात्मक-नकारात्मक दोनों प्रकार की हैं । फाउण्डेशन की अध्यक्षा अजीत कौर ने बताया, हमारी जूरी में यह बात भी उठी थी कि मैत्रेयी पुष्पा के लिए राजेन्द्र यादव लिखते हैं । तब मैंने कहा, राजेन्द्र यादव एक अल्मा कबूतरी लिखकर बता दें, तब मैं मान जाऊं ।[89]

नवम्बर 2000 के हंस की संपादकीय में राजेन्द्र यादव प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में लिखते हैं – "अल्मा कबूतरी" से पहले यदि ऐसा कुछ ध्यान में आता है तो है कर्नल स्लीमैन की पुस्तक "अमीर अली ठग की आत्मस्वीकृतियां" । इसके बाद रांगेय राघव का नटों पर लिखा उपन्यास "कब तक पुकारूँ" भी इसमें शामिल किया जा सकता है । ये अलग तरह की, अलग समाजों की रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं । इन्ही के संदर्भ में कहता हूँ कि उभरती हुई शक्तियों से जुड़ना क्या हमेशा सम्पादकीय पक्षपात या अपराध होता है ? "अल्मा कबूतरी" को मैं मैत्रेयी के लेखन का महत्वपूर्ण मोड़ मानता हूँ? क्योंकि उसने हिन्दी समीक्षकों को अजीब पसोपेश में डाल दिया है ।"[90]

(6) अगनपाखी (2001) :

"अगनपाखी" के संदर्भ में ऐसा कहा जाता है कि वह जलकर जलने के बाद जीवित हो जाता है । प्रस्तुत उपन्यास की नायिका भुवन भी सांसारिक तापों में जलकर – तपकर जीवित हो जाती है । डा. नामवर सिंह ने इस उपन्यास का स्त्रीविमर्श के साथ साथ सती-विमर्श और संपत्ति विमर्श का उपन्यास भी

कहा है । भारतीय सामंती परिवारों में पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी को धर्म, शास्त्र और परंपरा के नाम पर सती बनाने के लिए मजबूर किया जाता है । जहाँ इधर के विधि-विधानों ने स्त्री को उसके पति की संपत्ति में अधिकार दिये हैं पर सामंती मूल्यों में जीनेवाले लोग स्त्री को जबरन सती बनाकर उसे संपत्ति से बेदखल कर देते है । सती प्रथा कानूनन बन्द हो गयी है पर आज भी उसे गौरवान्वित करके देखा जाता है, अन्यथा राजस्थान में राजकुंवर बा सती का मंदिर न बनता । वस्तुतः होना तो यह चाहिए कि सचमुच में कोई स्त्री भावावेश में आकर सती होना चाहती हो तो भी समाज के ठेकेदारों का यह दायित्व बनता है कि उसे समझावे और ऐसा करने से रोके । परंतु यहाँ तो जेठ अजयसिंह भुवन को बाकायदा सती बनने के लिए उसे विवश करते हैं । भुवन के पति कुंवर विजयसिंह के निधन के बाद कुंवर अजयसिंह उसकी तमाम चल-अचल संपति पर कब्जा करने के लिए ही तो यह नाटक रचता है । परतुं मंदिर के पुजारी की सकारात्मक भूमिका के कारण भुवन बच निकलती है । पुजारीजी भुवन को गुप्त मार्ग से बाहर निकालकर घने जंगल में भेज देते है जहाँ निर्धारित स्थल पर चंदर भुवन को मिलता है । दामिनी नामक एक युवती इन दोनों को इन्दरगढ़ में रहने वाले एक सामाजिक कार्यकर्ता डा. सीताकिशोर खरे और डा. कामिनी के पास पहुंचा देती है ।

उपन्यास की कथा कुछ इस प्रकार की है : “अगनपाखी” की कथा की शुरूआत भुवनमोहिनी की चिट्ठी से होती है । भुवन ने यह चिट्ठी चंदर को लिखी थी । चंदर भुवन की बड़ी बहन का बेटा है और इस तरह रिश्ते में वह भुवन का भांजा होता है और वह उसका हमउम्र भी है । उनमें सिर्फ चार महीनों का अंतर है । शैशव और किशोरावस्था दोनों की साथ-साथ गुजरी है । बचपन के खेल, अठखेलियां, पेड़ पर चढ़ना, पत्थर मारकर फल गिराना आदि शरारतें साथ-साथ की हैं । भुवन चंदर को शीतलगढ़ी (भुवन का मायका और चंदर का

ननिहाल) का इतिहास – भूगोल समझाती, मानो शीतलगढ़ी कोई गाँव न होकर इतिहास प्रसिद्ध स्थल हो और भुवन उसकी गाइड।

ब्रज में जिसे "लरिकाई को प्रेम" कहते हैं, वैसा प्रेम भुवन और चंदर के बीच विकसित होता है और किशोरावस्था तक पहुंचते-पहुंचते एक गाढ़ रिश्ते में बदलने लगता है। यहाँ पर मैत्रेयीजी ने किशोरावस्था के इस शारीरिक आकर्षण का बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है। चंदर अपनी भुवन मौसी को प्यार भी करता है और दूसरी ओर अपनी पढ़ाई में भी मन लगाना चाहता है, पर मन बार-बार चलित हो जाता है और वह किसी-न-किसी बहाने शीतलगढ़ी पहुंच जाता है। चंदर और भुवन दोनों में प्रेम हिलोरें लेने लगता है और एक दिन चंदर अपने मन पर काबू नहीं रख पाता और चुपचाप भुवन मौसी के पलंग के सामने जाकर उसे जगाने की कोशिश करता है। भुवन भी कहां सो रही थी। उसे भी शायद इसी क्षण की प्रतीक्षा थी। दोनों एक दूसरे को आलिंगन में भींच लेते है। भुवन भी चंदर को अपने आगोश में ले लेती है और दोनों शारीरिक मिलन में लीन होने ही वाले थे कि दादी ढिबरी जलाकर वहाँ पहुंच जाती है और उनकी रति-क्रीड़ा के रंग में भंग पड़ता है। दोनों को इस विचित्र स्थिति में देखकर दादी तो मानो आगबबूला हो जाती है और क्रोधावेश में रस्सी का फंदा बनाकर आत्महत्या करने का प्रयास करती है। चंदर उनके पैरों में लिपट जाता है और रातोंरात गाँव वापिस चला जाता है।[91]

इधर इस घटना के बाद नानी भुवन की शादी जल्द से जल्द कराना चाहती है। चंदर किसी तरह इस समूची घटना को भुलाकर अपनी "कैरियर" बनाने में जुट जाता है। उसके पिताजी बारंबार एक बात को दोहराते थे कि मर्यादा और परंपरा निभाने वाला बेटा ही सपूत कहलाता है। हो सकता है उन्हें भुवन और चंदर के सम्बन्धों की भनक लग गई हो। अपनी मेहनत और पिताजी

की सिफारिश के कारण चंदर को असिस्टेंट डेवलोपमेण्ट आफिसर की नौकरी मिल जाती है और वह नौकरी के नये काम में लग जाता है और धीरे-धीरे भुवन को भूलने की कोशिश करता है।

इधर भुवन की शादी विराट के अजयसिंह के छोटे भाई कुंवर विजयसिंह से हो जाती है। भुवन भी अपने लरिकाई के प्रेम को भूल जाती और चंदर भी किसी से शादी करके अपना घर बसा लेता क्योंकि अच्छी नौकरी के बाद लड़की वाले लोग रिश्ता लेकर पहुंच जाते हैं। बल्कि उनमें होड़-सी मच जाती है। विवाह में जाति-बिरादरी और एक आर्थिक आधार ही मूलभूत बातें समझी जाती है। परंतु सब ठीकठाक नहीं होता। प्रथा के अनुसार भुवन जब विवाह के बाद शीतलगढ़ पहुंचती है तब मां और बड़ी बहन उसे महामाई का आर्शीवाद दिलाने मंदिर ले जाती है। वहाँ भुवन फूट-फूटकर रोने लगती है और उसके घर वालों को पता चलता है कि उनके साथ, भुवन के साथ बहुत बड़ा धोखा हुआ है। कुंवर विजयसिंह शारीरिक रूप से ठीक नहीं है और उनका मानसिक सतुंलन भी बारबार गड़बड़ा जाता है। ससुराल में पागल पति की सेवा करने के अतिरिक्त भुवन का कोई काम नहीं है। खूब वैभव है, नौकर-चाकर है। पर पति का सुख भुवन को नहीं मिलता।

भुवनमोहिनी पति की सेवा और भक्ति में अपना मन लगाना चाहती है, पर ससुराल वालों को, विशेषतः भुवन की सास, जिठानी कुसुमदेवी और जेठ कुंवर अजयसिंह को यह नागवार गुजरता है कि भुवन रोज-रोज मंदिर पहुंच जावे। भुवन मंदिर में कई बार लीन हो जाती। उसके ससुराल वालों को यह सब पसंद नहीं था। उन्हें दिनरात यह चिन्ता लगी रहती है कि कुंवर विजयसिंह की बीमारी की बात कहीं जाहिर न हो जाए।

इस बिन्दु पर यह कहानी मीराबाई की कहानी से मेल खाती है । मीराबाई का विवाह जिनसे हुआ था वे यक्ष्मा से पीड़ित थे और कुछ ही समय में उनकी मृत्यु हो गई थी । मीरा भी भक्ति करना चाहती थी । मंदिर जाना चाहती थी, पर राज-परिवार को यह सब मान्य नहीं था । अतः मीरा के देवर राणा कई बार मीराबाई को मरवाने के प्रयत्न भी करते है पर हर बार मीरा किसी-न-किसी तरह से बच जाती थी । यहाँ भुवन के साथ भी लगभग यही होता है ।

कुंवर विजयसिंह की हालत और बिगड़ती जाती है, फलतः उनको आगरा के मानसिक रोगियों के अस्तपाल में दाखिल किया जाता है । इधर इस बात को लेकर सास-बहू के रिश्ते भी बिगड़ते जाते हैं और भुवन की सास बात-बात में ताने मारती रहती है क्योंकि उनको यह कतई पसंद नहीं है कि भुवन चंदर को मिले । चंदर को भुवन की जो दूसरी चिट्ठी मिलती है उसमें भुवन के संन्यास लेने की और जोगिनी बन जाने की बात भी थी । इन सब बातों से नानी भी घबड़ा जाती है, अतः वह चंदर को विराट जाने के लिए कहती है कि वह भुवन को संन्यासिनी बनने से किसी तरह रोक ले । विराट पहुंचकर चंदर को सही वस्तु-स्थिति का पता चलता है । भुवन आगरा जाने के लिए कहती है, अतः चंदर उसे लेकर आगरा जाने का फैसला करता है । कुंवर अजयसिंह उसे रोक लेते हैं । इसी बीच कुंवर विजयसिंह की मृत्यु हो जाती है और चंदर को एक और भयानक खबर मिलती है कि भुवन सती होना चाहती है ।

वास्तविकता यह थी कि भुवन को सती होने के लिए विवश किया जा रहा था, ताकि कुंवर विजयसिंह की संपत्ति को कुंवर अजयसिंह अकेले डकार ले । भुवन तो अपने मायके शीतलगढ़ी जाना चाहती थी, पर न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी वाली कहावत को उसके जेठ चरितार्थ करना चाहते थे । इस

प्रकार स्त्रियों को जो सती बनने के लिए उकसाया जाता था या उन्हें जबरन सती बना दिया जाता था उसके पीछे के षड्यंत्रकारी कारणों की पड़ताल भी लेखिका यहाँ करती है । इसीलिए डा.नामवरसिंह इसे अपने व्यंग्यात्मक टोन में स्त्री-विमर्श के साथ सती-विमर्श और संपत्ति-विमर्श का उपन्यास भी कहते है ।[92]

प्रस्तुत उपन्यास के कुंवर अजयसिंह बड़ी पहुंची हुई माया लगते हैं । वे तो चंदर का कांटा निकालने के लिए भी उसका विवाह दामिनी नामक लड़की से करा देना चाहते थे, परंतु चंदर इसके लिए राजी नहीं होता क्योंकि चंदर को मालूम था कि दामिनी मंदिर के पुजारी के बेटे राजेश को प्रेम करती है । राजेश ब्राह्मण है और दामिनी गूजर लड़की है इसलिए भी ये लोग विवाह करने से डरते थे । कुंवर साहब एक कंकड़ से दो पक्षी का शिकार करना चाहते थे । चंदर का कांटा भी दूर होता और विराट में ब्राह्मण-गूजर लड़की की प्रेम-लीला को भी रोका जाता । खैर, यह एक दूसरे उपन्यास का विषय है ।

मंदिर के पुजारी की सकारात्मक भूमिका के कारण भुवन को बचा लिया जाता है और चंदर और भुवन को इन्दरगढ़ डा.सीताकिशोर खरे के यहाँ पहुंचा दिया जाता है । दैनिक जागरण में कुंवर अजयसिंह “अनूठा सती अनुष्ठान” शीर्षक से बयान जारी करते हैं कि भुवन साक्षात मां दुर्गा का रूप थी और बेतवा में छलांग लगाकर अपना देह विलय करते हुए वह विराट की सती-परंपरा को निभा गयी । लाश न मिलने पर भुवन का पुतला बनाया गया था और उसे सुहागिन की तरह सजाकर पति के पार्थिव शरीर के साथ चिता में रखा गया था । उस वृतान्त में आगे यह भी लिखा था कि मां दुर्गा की दया रही तो उनके स्वरूप समान भुवन के नामका सोने के छत्रवाला मंदिर भी निर्मित होगा ।[93] यह

सब कुंवरजी ने इसलिए छपवाया था कि अपने भाई की संपत्ति पर उनका कब्जा हो जाए।

भुवन की चिट्ठी मिलने पर चंदर जब विराटा जाता है तब उसे एक और सच्चाई का पता भी चलता है। चंदर के मन में संशय तो था ही कि कुंवर अजयसिंह जैसे नामी-गिरामी और धनवान परिवार ने भुवनमोहिनी जैसी लड़की से कुंवर विजयसिंह का विवाह क्यों करवाया ? पर विराट पहुंचकर उसे यह भी ज्ञात होता है कि उसे पिताजी ने जो नौकरी दिलवायी थी, उसमें ही भुवन के ब्याह का सौदा हुआ था कि चंदर के पिता भुवन से कुंवर के रोगी भाई से विवाह करवा दे और बदले में वे चंदर की नौकरी लगवा देंगे। इस तथ्य को जानने के बाद चंदर का अपराध-बोध और भी बढ़ जाता है। उसे यह बात बारबार कचोटती है कि भुवन की उस बदहाली में वह भी कहीं-न-कहीं जिमेदार है ही।[94] और उसके बाद ही भुवन के लिए कुछ कर गुजरने का माद्दा शायद उसमें पैदा होता है।

वस्तुतः देखा जाए तो “अगनपाखी” मैत्रेयी की उपन्यासिका “स्मृतिदंश” का ही नवीन रूप है। पात्र, स्थल, परिस्थितियां, समस्याएं सभी वही है, परंतु “स्मृतिदंश” की भुवन बेतवा में डूबकर आत्महत्या कर लेती है, जबकि “अगनपाखी” की भुवन तो अपने हक के लिए लड़ती है, वह कचहरी में हलफनामा दाखिल कर अपनी उजदारी प्रकट करती है – “मैं भुवनमोहिनी, पत्नी स्वर्गीय विजयसिंह वल्द स्वर्गीय दुरजयसिंह, निवासी ग्राम विराटा, जिला झांसी, यह दावा करती हूं कि अपने पति के हिस्से की चल-अचल संपत्ति की हकदार हूं। मुझे इत्तला मिली है कि मेरे पति के साथ मुझे भी मृतक दिखाया गया है और मेरे जेठ कुंवर अजयसिंह ने अपने अकेले का हक बरकरार रखा है। क्योंकि स्व. विजयसिंह की कोई संतान नहीं। कचहरी से अर्ज है कि अपने

पति की जायदाद का हक मुझे सौंपा जाए। मैं कुंवर अजयसिंह की हकदारी पर सख़्त एतराज़ करती हूं।"[95]

"तहसील में जब अर्जी पढ़ी गई तो जानकार लोग सन्न से रह गए। कुंवर अजयसिंह का चेहरा पीला पड़ गया जैसे उन्होंने सामने बाघिन देख ली हो, जब कि वहाँ कोई स्त्री उपस्थित नहीं थी।"[96] इस प्रकार "स्मृतिदंश" की "गौ" ने अब "बाघिन" का रूप ले लिया है। "इदन्नमम" की मन्दा, "चाक" की सारंग, "झूलानट" की शीलो और "अल्मा कबूतरी" की अल्मा की भांति प्रस्तुत उपन्यास की "भुवन" भी एक फौलादी औरत है। ऐसा लगता है कि मैत्रेयी की नायिकाएँ शुरु में गौ और दब्बू लगती हैं, परंतु जब उनके अस्ति पर आ बनती है, तब वे संघर्ष के लिए उठ खड़ी होती हैं और अपनी नारी-शक्ति का परिचय करा देती हैं। उपन्यास के एक आलोचक डा.अनंत विजय ने प्रस्तुत उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखा है : "अगर हम मैत्रेयी के सारे उपन्यासों पर निगाह डालें तो देखते है कि इनकी सारी नायिकाएँ चाहे वो "इदन्नमम" की मन्दाकिनी हो, "चाक" की सारंग हो, "झूलानट" की शीलो हो, "अल्मा कबूतरी" की अल्मा हो या फिर "अगनपाखी" की भुवन या "विजन" की डा.नेहा हो, सभी बीस-पचीस साल की युवा है। इसका कोई आलोचकीय महत्व हो या न हो, परंतु यह तथ्य है दिलचस्प। संभवतः यही कारण है कि मैत्रेयी के उपन्यास युवा-वर्ग, गैर शहरी समाज द्वारा पसंद किए जाते है तथा वृद्ध आलोचकों, शहरी संभ्रान्तों द्वारा कम। अपने समकालीनों में मैत्रेयी सबसे अलग हैं महाश्वेतादेवी की तरह।"[97] प्रस्तुत उपन्यास के अन्य आलोचकों में डा.राजनारायण बोहरे ने इसे "ग्रामीण स्त्री की महागाथा" कहा है तो डा.रामप्रकाश द्विवेदी ने इसे "आग से जलते-जूझते पाखी" की कथा कहा है।[98]

उपन्यास की भूमिका "पुनर्नवा" में मैत्रेयीजी स्वयं उपन्यास के संदर्भ में लिखती है – "मुझे "स्मृतिदंश" के पुनः पाठ ने लगभग झकझोर डाला और मैं यहाँ तक आ गई कि -- यह तो वह है ही नहीं. जो मैं कहना चाहती थी । मेरे इस विचार को बल दिया इसी रचना की नायिका भुवन ने । परेशान कर डालने की सीमा तक उसने मेरा पीछा किया । जिद भी बड़ी अटपटी – कि उसे इस रूप में नहीं होना था । ऊपर से असहाय होने के कारण विनम्र दिखने वाली स्त्री भीतर से किस ताकत का सपना देखती है, लेखिका यह क्यों नहीं समझी ? उसके साथ न्याय नहीं हुआ । .. ऐसा करते करते एक-दो साल नहीं, चार-छः वर्ष नहीं, पूरे ग्यारह साल बीतने को है । मैं उसे निरंतर टालती रही । एक दिन अचानक लगा कि उसने मेरी कलम पकड़ ली है । कागज़ पर कब्ज़ा कर लिया है । .. आश्चर्य तब हुआ जब लिखते-लिखते लगा कि भुवन इन बीते वर्षो में मेरे भीतर नया आकार लेती रही है । नया कलेवर उसने कैसे धारण किया ? उसका पहला रूप झूठा था, या यह दूसरा ? शायद वह मेरा उस समय का सच था, और यह आज का । मैं ही खुद को भुवन के रूप में रखकर अपने आप से लड़ रही थी और परिवर्तन के लिए विद्रोह तक जाने में कभी चार कदम बढ़ाती तो कभी दो कदम पीछे हटती ।"[99]

(7) विज़न (2002) :

"काम्पेक्ट आक्सफर्ड रेफरन्स डिक्शनरी" में "विज़न" शब्द के निम्नलिखित अर्थ दिए है – 1. The Faculty of being able to see अर्थात् देखने की शक्ति – दृष्टि : 2. The ability to think about the future with imagination or wisdom अर्थात् भविष्य के सम्बन्ध में कल्पना या समझदारी से सोचने की शक्ति; 3. An experience of seeing

something in the mind अर्थात् किसी के मन में चल रही किसी बात को समझने का अनुभव और 4. The images seen on a television screen[100] अर्थात् दूरदर्शन के पर्दे पर दिखनेवाले बिम्ब । मोटे तौरे पर इन सबका मिलाजुला अर्थ है दृष्टि और दृष्टिकोण । उपन्यास की कथावस्तु "नेत्र-चिकित्सा" से जुड़ी हुआी है, अतः उसका एक प्रथम और प्रत्यक्ष अर्थ तो दृष्टि से है । दूसरा अर्थ व्यंजक और व्यंग्यात्मक है । पढ़े-लिखे, सुशिक्षित, "वेल एज्युकेटेड" व्यक्ति के दृष्टिकोण में व्यापकता और उदारता और मानवता अपेक्षित है, परन्तु यहाँ उसका विलोम देखा जाता है । मेडिकल सायन्स में "नेत्र-विशेषज्ञ" प्रायः मास्टर डीग्री वाले डाक्टर होते हैं, सामान्य एम.बी.बी.एस. नहीं । ऐसी आंखो की अस्पताल में जो बड़े-बड़े डाक्टर हैं उनकी सोच कितनी छोटी और घटिया, उनका "विज़न" कितना संकुचित और स्वार्थलिप्त होता है, उस बात को मैत्रेयीजी यहाँ लेकर आयी हैं । यह तो सर्वविदित तथ्य है कि मैत्रेयीजी के पति डाक्टर हैं और पहले अलीगढ़ और बाद में एम्स् में सेवारत रहे हैं । अतः मेडिकल-जगत के अपने अनुभवों के आधार पर मैत्रेयीजी ने यह उपन्यास लिखा है । पिछले एक दशक में मैत्रेयीजी एक लेखकीय चुनौती के रूप में उभर आयी है, एक से एक नये विषय, नया अनुभव जगत और एक से एक नयी मानवीय समस्याओं और सरकारों से सीधी प्रत्यक्ष भिड़न्त । इसके कारण हिन्दीतर क्षेत्रों में तथा ग्रामीण क्षेत्रों में मैत्रेयीजी की कलम का लोहा मानने वाले लोग बहुत हैं, परंतु इसके कारण ही उनकी अपनी बिरादरी-लेखिकाओं की बिरादरी में उनके कुछ शत्रु या विरोधी भी बढ़ रहे हैं ।

मैत्रेयीजी का यह उपन्यास एक और दृष्टि से भी महत्वपूर्ण और अलग है, क्योंकि इसमें इन्होंने पहली बार नगरीय-महानगरीय जीवन को लिया है ।

डा.अर्जुन चव्हाण के शब्दों में कहें तो "यह सच है कि उपन्यास हो या कहानियाँ, अब तक न मैत्रेयी ने गाँव का दामन छोड़ा और न गाँव ने मैत्रेयी का । यही वजह है कि आलोचना-जगत में मैत्रेयी को लेकर जो विशिष्ट धारणा बनी वह गंवार गाँव की लेखिका के रूप में ही है ।"[101] हालांकि इसे स्वस्थ आलोचना नहीं कह सकते । "फीनलैंड" जैसे छोटे-से प्रदेश पर ही लिखने वाले एक उपन्यासकार को नोबेल पुरस्कार तक मिला है । अपनी जड़ों को तलाशना और अपनी जड़ों में जाना लेखकीय ईमानदारी है और उसकी सराहना ही होनी चाहिए, न कि आलोचना । सही आलोचना और फतवेबाजी में अंतर होना चाहिए ।

पश्चिम में अलग-अलग प्रोफेशन को केन्द्र में रखकर भी उपन्यास लिखे गए हैं । हमारे यहाँ इसका सर्वथा अभाव है, ऐसा तो नहीं कह सकते, पर हाँ, ऐसे कम उपन्यास लिखे गए हैं । गोविन्दवल्लभ पंत का "मदारी", सत्यकेतु विद्यालंकार का "मोडर्न होटल", संजीव के "सर्कस" और "सावधान नीचे आग है" आदि को "प्रोफेशन सैण्टर्ड" उपन्यास कह सकते हैं ।[102] वेश्यावृत्ति को यदि प्रोफेशन माना जाए तो मधु कांकरिया कृत "सलाम आखिरी" को इस सूची में शामिल किया जा सकता हैं क्योंकि उसमें कलकत्ता के रेड लाइट एरिया "सोनागाछी" और "बहु बाजार" आदि की वेश्याओं पर लिखा गया है । इस प्रकार के उपन्यासों को "अनुसंधानमूलक" उपन्यास भी कह सकते हैं । प्रस्तुत उपन्यास "प्रोफेशन सैण्टर्ड" की कोटि में तो आता ही है, अनुसंधानमूलक भी है । किन्तु इस उपन्यास की यह भी एक विशेषता है कि "मेडिकल फील्ड अर्थात् नेत्र-चिकित्सा के क्षेत्र पर केन्द्रित होते हुए भी एक समकालीन भारतीय जिन्दगी के विशाल कैनवास को प्रस्तुत करता है । इसमें दिल्ली तथा आगरे जैसे महानगर की महंगी जिन्दगी, वहाँ का शिक्षित एवं वेतनधारी मध्यवर्ग,

शिक्षा क्षेत्र का कृष्ण-धवल रूप, स्थापितों द्वारा नयी पीढ़ी का शोषण, बेरोजगारी का शिकार युवा वर्ग, स्वदेश में शिक्षा ले विदेश में सेवा करने वाला युवा वर्ग, नौकरी की नियुक्तियों में हो रही गन्दी राजनीति, सच्चाई को दफनानेवाली और झूठ को अपनाने वाली घोर व्यवस्था, पुरूषों के वर्चस्व में दबी अवसर से वंचित नारी, विद्रोही और नौकरीपेशा नारी के चित्रण के साथ-साथ विज्ञान, तकनीक, औद्योगिकीकरण, महानगरीयकरण तथा वैश्वीकरण के बढ़ते माहौल में वर्तमान मानव की द्वन्द्वात्मक और संघर्षपूर्ण जिन्दगी के बीच स्वस्थ दृष्टि की ही नहीं बल्कि दृष्टिकोण की भी तलाश है ।”[103]

कई बार ऐसा लगता है कि हमारा देश, समाज, राष्ट्र, संस्कृति सर्वत्र दोहरें मूल्यों का बोलबाला है । सब जगह हाथी के दिखाने और चबाने के दांत अलग-अलग है । मसलन धर्म को ही लें तो उसमें तत्वतः जो हमें बताया या सिखाया जाता है, व्यवहारतः नजारा कुछ और है । वही बात शिक्षा इत्यादि पर भी लागू होती है । कई लोग शिक्षा में आरक्षण का विरोध करते हैं और तर्क यह देते हैं कि कम मैरिट वाले लोग एंजिनियर या डाक्टर बनेंगे तो उनमें वह दक्षता नहीं आयेगी ; अब जो धनवान मां-बाप हैं वे चालीस-पचास या साठ लाख का डोनेशन देकर अपने बच्चे को (बेशक, कम मैरिट वाले को) एंजिनियरिंग या मेडिकल में प्रवेश दिलवाते हैं तो क्या अब दक्षता या गुणवत्ता का नुकसान नहीं हो रहा है या “सर्व गुणा : कांचनम् आश्रयन्ते” के न्याय से वे कम मेरिट वाले भी दक्ष और निष्णात हो जाते हैं ।

चूँ कि उपन्यास का परिवेश मेडिकल-फील्ड का है, अतः इसके अधिकांश पात्र डाक्टर्स हैं, जैसे – डा.आर.पी.शरण, डा.अजय शरण, डा.नेहा भटनागर (बाद में डा.नेहा शरण), डा.आभा, डा.मुकुल, डा.अनुज वर्मा. डा.चोपड़ा, डा.आलोक, सरोज आदि-आदि । इनमें से डा.नेहा, डा.आभा,

डा.आलोक आदि मानवीय मूल्यों में जीनेवाले कुछ आदर्शवादी पात्र हैं । मेडिकल कालेज में सर्विस करते समय डा.अनुज वर्मा सरोज नामक एक स्त्री का बलात्कार करता है । परंतु डा.चोपड़ा हेड आफ द डिपार्टमेण्ट थे और उनकी सहायता से डा.वर्मा बाइज्जत बरी हो जाते हैं । इस बात को लेकर डा.आभा और डा.चोपड़ा में खूब लिखा-पढ़ी होती है, जिसके कारण डा.चोपड़ा डा आभा को मां-बहन की गालियां तक देता है । डा. नेहा और डा.अजय पति-पत्नी है और दोनों "आई स्पेशियालिस्ट" है और डा.आर.पी.शरण के "शरण आई सेण्टर" से संलग्नित है । बल्कि डा.आर.पी.शरण डा.अजय के पिता है । डा.आभा और डा.मुकुल भी पति-पत्नी है । डा.आलोक भी एक प्रतिभासंपन्न और आदर्शवादी डाक्टर है । डा.चोपड़ा का विरोध और डा.आभा का साथ देने के कारण डा.चोपड़ा डा.आलोक को एक मौत के केस में फंसा देता है, जिसके कारण डा.आलोक को वहाँ से त्यागपत्र देना पड़ता है । उसके बाद वह बरनवाल के प्राइवेट अस्पताल में नौकरी करते हैं परंतु वहाँ भी उन्हें सताने और ठगने का उपक्रम चालू रहता है, फलतः थक-हारकर डा.आलोक विदेश चले जाते है । उपन्यास का देशगत परिवेश दिल्ली, आगरा, बरेली आदि का है, जिनमें से प्रथम दो की गणना महानगरों में हो सकती है ।

मेडिकल-जगत का परिवेश होने के कारण इसमें उससे सम्बन्धित समस्याओं को उठाया गया है । अभी कुछ महीनों पूर्व आमीरखान के टी.वी.प्रोग्रेम" सत्यमेव जयते" में भी इन प्रश्नों को उठाया था कि किस प्रकार यह मानवता और सेवा का व्यवसाय फक्त आर्थिक मुनाफा कमाने का व्यवसाय होता जा रहा है, इलाज कैसे दिन-ब-दिन महंगा होता जा रहा है, बिन-जरूरी टेस्ट करवाकर कैसे अपने मित्र डाक्टरों का या मिलीभगत वाले डाक्टरों का फायदा और उसमें उनका अपना कमीशन कमाना और बीमारों को लूटना, इलाज के प्रति लापरवाही, उसमें लोगों की जानें तक जाना जैसी अनेक

चौंकानेवाली बातें आयी हैं । डा. आर. पी. शरण का “शरण आई सेण्टर” ऐसी ही एक पैसा कमानेवाली फैक्टरी है ।

अस्पतालों में नियुक्तियों से लेकर तमाम प्रकार के जो गोरखधंधे चलते हैं, गन्दी राजनीति चलती है उसका पर्दाफाश डा. आलोक के इस कथन से हो जाता है – “घटिया हमारा कालेज है या आल इण्डिया इंस्टिट्यूट आफ मेडिकल साईसेज? महाघटिया इंस्टिट्यूट है साली ! हर शाख पै उल्लू बैठा है अंजामे गुलिस्तां क्या होगा? हर विभाग में बाप बैठे हैं, बेटों के एलजीबिल होने तक पोस्ट खाली है । साले हेड आफ द डिपार्टमेण्ट हैं या रूलिंग पार्टी के अध्यक्ष? ....सारे डिपार्टमेंट में एडहोक अपाइंटमेंट्स हुए, नेत्र विभाग इकलौता अपने वारिस सलीम की राह देखता रहा, डा. आभा के चार साल बेकार गए । बाद में भी पोस्ट नहीं दी, क्योंकि आभा आगे चलकर पुत्रश्री पर भारी पड़ जाएगी ।”[104]

शिक्षा और चिकित्सा में नियुक्तियों का राजकारण नहीं होना चाहिए, पर ये विभाग भी भ्रष्टाचार से अछूते नहीं रहे हैं । मांझी ही नाव डूबाने बैठे हैं ।

चिकित्सा जगत की तमाम समस्याओं को तो लिया ही है, पर यहाँ भी मैत्रेयीजी अपना अहम मुद्दा नारी अस्मिता का मुद्दा नहीं चूकी है । डा. आभा और डा. नेहा इसका प्रतिनिधित्व करते हैं । इन पढ़ी-लिखी सुशिक्षिताओं का भी आत्म-शोषण और प्रतिभाशोषण हो रहा है । दो डाक्टर जोड़े हैं । डा. आभा और डा. मुकुल तथा डा. नेहा और डा. अजय । डा. आभा दिल्ली के एक अमीर बाप की बेटी है । वह बरेली के डा. मुकुल से विवाह करके बरेली जैसे छोटे शहर में जाती है, पर शीघ्र ही वे दोनों दिल्ली भी आ जाते हैं । फिर दोनों में झगड़े शुरू होते हैं जिनमें डा. आभा झुकती नहीं है, विद्रोह करती है और पति डा. मुकुल को तलाक दे देती है ।

दूसरी तरफ डा. नेहा दिल्ली के एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की बेटी है और एक अच्छी काबिल नेत्र-चिकित्सक है । डा. आर.पी. शरण अपने बेटे डा. अजय का विवाह डा. नेहा से करवा देते हैं । इसमें उनकी व्यावसायिक बुद्धि के दर्शन होते हैं । उन्हें जिन्दगीभर के लिए एक मुफत की डाक्टर मिल जाती है अपने "शरण आई सेण्टर" के लिए । डा. शरण पढ़े-लिखे जरूर है, पर आधुनिक किसी एंगल से नहीं है । उनकी सोच वही मध्यकालीन, सामंतीय, यथास्थितिवादी, पुरूषवर्चस्ववादी और पिछड़ी है । डा. नेहा प्रतिभावान है, काबिल है और डा. अजय से ज्यादा होशियार है अपने क्षेत्र में, पर डा. आर.पी. शरण (ससुर) उसे आगे बढ़ने का या पढ़ने का कोई मौका नहीं देते । बनिस्बत इसके अपने कम प्रतिभावान बेटे को स्नातकोत्तर पढ़ाई के लिए विदेश भेजने का भरसक प्रयास करते हैं पर उसमें सफल नहीं होते । डा. अजय के स्थान पर यदि वे डा. नेहा पर ध्यान देते तो शायद वे जरूर सफल हो जाते । पर बेटे के रहते बहू कैसे आगे निकल जाए? डा. नेहा के जीवन की त्रासदी को गहराने के लिए लेखिका ने एक विलोमी स्थिति का निर्माण किया है । दिल्ली में ही एक डा. बिन्दु हैं – डा. बिन्दु बत्रा । वह डा. जसवीरसिंह की पुत्रवधू है और उनके अस्पताल में वह अपने ससुर की ही बोस है । डा. बिन्दु को देखकर डा. नेहा को लगता है कि "काश ! मेरे भी ससुर छूट देने के पक्ष में होते । मै भी कुछ नया करने के विषय में सोच पाती ।"[105]

डा. नेहा काबिल और योग्य होने के बावजूद परिवार में तीसरे स्थान पर है । पहले स्थान पर ससुर, दूसरे स्थान पर उनका पति अजय और उसके बाद वह । अस्पताल में डा. नेहा की उपेक्षा होती है, ससुर जान-बूझकर किसी मरीज को हाथ नहीं लगाने देते कि कहीं बहू बेटे से ज्यादा निपुण न समझी जाए । यहाँ तक कि एक मरीज को गलत इंजेक्शन दिए जाने पर और उसकी

स्थिति बिगड़ने पर बाहर से डाक्टर बुलाए जाते हैं पर डा. नेहा को नहीं पूछा जाता । यह इंजेक्शन डा. शरण के सुपुत्र डा. अजय ने दिया था । मरीज की उसके कारण मौत हो जाती है और तब बलि का बकरा बनाया जाता है डा. नेहा को । डा. अजय इमोशनल ब्लेकमेलिंग करते हुए डा. नेहा को कहते हैं कि उस मरीज की मृत्यु की सम्पूर्ण जवाबदेही वह अपने ऊपर ले लें । इसके कारण डा. नेहा का मानसिक संतुलन गड़बड़ा जाता है और वह बड़बड़ाने लगती है, तब नर्स डा. अजय की ओर भागती है । उपन्यास का अन्त नर्स के इन शब्दों के साथ होता है – "सर, डा. नेहा को कुछ हो गया है, डा. नेहा....शी इज सिक ।"[106]

इस प्रकार डा. आभा और डा. नेहा के रूप में हमें दो नारी चरित्र मिलते हैं - एक दबंग और एक दबने वाला । एक ही परिणति विवाह-विच्छेद के रूप में होती है और दूसरी त्यागमूर्ति होते-होते पागल हो जाती है । उपन्यास में हमारी आधी-अधूरी आधुनिकता पर भी व्यंग्य किया गया है । डा. आभा के मम्मी पप्पा स्वयं को "मोडर्न" मानते हैं, पर दूसरी ओर उनकी चिन्ता यह है कि उनका लाड़ला (डा. आभा का छोटा भाई) कहीं विदेश जाकर किसी गोरी मेम से शादी न कर लें ।[107] इस प्रकार शिक्षित होने के बावजूद, "माडर्न" होने का दंभ भरने के बावजूद हम अपने संस्कारों या कुसंस्कारों में वही दकियानूस व्यवहार करते हैं । धर्म, शिक्षा, व्यवहार, व्यवसाय, शादी-ब्याह सब जगह हम फक्त और फक्त सुविधावादी हैं और सिद्धान्तों और नियमों को अपनी सुविधानुसार मोड़ देते हैं ।

डाक्टरी तक पढ़े हुए आदमी को हम अनपढ़ तो नहीं कह सकते । पर उनकी यह पढ़ाई उनको कितना संस्कारित करती है उसे हम डा. चोपड़ा के निम्नलिखित कथन में देख सकते हैं । डा. आभा जब उसे धमकी देती है कि

वह उसके सारे काले-करतूतों के बारे में लिखेंगी, तब डा. चोपड़ा कहता है – "लिख, साली लिख। खूब लिख, लिखकर क्या कर लेगी?" डा. चोपड़ा ने शब्द ऐसे चबा चबाकर कहे जैसे वह आभा को ही चबा रहे हों। और फिर अपनी कमर के नीचे हाथ रखकर बोले – "उखाड़ ले मेरा यह।[108] ऐसी भाषा किसी गुण्डें या टपोरी की तो हो सकती है, पर डा. चोपड़ा? मैत्रेयी यही तो कहना चाहती है कि कुछ नहीं बदला है।

अन्त में निष्कर्षत : डा. अर्जुन चव्हाण साहब के शब्दों में कहना चाहूंगी – कि "विजन" की लेखिका ने अस्पताल के माहौल में ऐसा टेथस्कोप दिया है जो वर्तमानकालीन भारतीय जिन्दगी की धड़कन को सुनाता है। यह वह टेथस्कोप है जो हमारे यहाँ के छोटे-मोटे शहरी तथा महानगरीय समाज की धड़कन को नापता है। "विजन" की लेखिका ने नेत्र-चिकित्सा के जरिए उस "लेन्स" की स्थापना करना चाहती है जिससे हमें ऐसी दृष्टि मिले कि वर्तमान सामाजिक विद्रूपताओं को देख सकें, पहचान सकें।"[109]

(8) कही ईसुरी फाग (2004) :

कहाँ से शुरू किया जाय? मैत्रेयीजी के "नारी-विमर्श" की अगली महत्वर्पूण कड़ी है प्रस्तुत उपन्यास – "कही ईसुरी फाग।" इस उपन्यास से दूपरदू – रूबरू होते हुए, मेरे सामने मेरे मानस-गुरू प्रोफेशन, अपनी धुन, अपनी लगन, अपनी कविताई में मस्त रहनेवाले दबंग पढ़ाकू और जुझारू देसाई साहब का यह हश्र? लाचार, विवश और हारा हुआ आदमी। बिल्कुल उपन्यास के नायक ईसुरी की तरह। जिन्दगीभर घर-गृहस्थी से निश्चिंत रहने वाले, यह कहने वाले कि "हैसियत नहीं है हमारी, उन पादशाहों की; पर हम जीते हैं जिन्दगी बादशाहों की।"[110] पर इस समय घर-गृहस्थी ने ही उनकी

ऊर्जा को दबोच लिया है बिल्कुल ईसुरी की तरह ! उपन्यास के ईसुरी के सम्बन्ध में उपन्यास के अंतभाग में जो विवरण आया है वह ध्यानार्ह रहेगा । आबादी बेगम जब धीरे पंडा से ईसुरी फगवारे की जमा अमानत सौंपने की बात करती हैं तब फगवारे यह इच्छा जताते हैं कि वह रकम उसकी बेटी गुरन को भेज दी जाए, जबकि एक बार पहले जब बेगम ने उस अमानत की बात की थी तब ईसुरी ने हंसकर बड़े कोमल स्वर में कहा था – "ये रूपये हमारी प्यार-प्रीति को संवारने के काम आयेंगे । समय आयेगा तब हम खुद ही ले लेंगे । .....आज उस माधुर्य को किसने लूट लिया?" ।[111] जहन में उर्दू के ख्यातनाम शायर जनाब हाली का एक शेर कुलबुला रहा है – "फिर औरोंकी तकते फिरोगे सखावत, बढ़ाओ ने हद से सखावत ज्यादा ।"

धीरे पंडा ईसुरी में आए इस परिवर्तन के, हार के स्वर के संदर्भ में बेगम साहिबा के आगे कहते हैं –"वह खुद जानता है कि उसका अशान्त मन चमगादड़ की तरह फड़फड़ाता है जिसमें जस और जीतों का खोखला अभिमान भरा हुआ है । अभिमान जिसमें रजऊ का जीता हुआ अंश, उस पर अपनी प्रीति की शासनदारी और फागों का अमला....पर वही रजऊ जो कुछ कर गई, भइया जू नहीं कर पाए, मलाल कम नहीं है । बेगम साहिबा जिन्दगी का अकारथ होना, कम सदमें की बात नहीं होती ।"[112]

रजऊ बुंदेलखण्ड़ के लोककवि ईसुरी की प्रेमिका है । ईसुरी अपनी इस प्रेमिका को सम्बोधित करके जो फाग सुनाता था उसकी मस्ती में सब सरोबार हो जाते हैं । उस समय की न जाने कितनी स्त्रियां ईसुरी और उसके फाग की दीवानी थीं और उसकी "संबोधिता" होना चाहती थीं । पर अपने पति प्रताप की शहीदी के बाद रजऊ एक क्षण रूकती नहीं है और भाग कर देशपत दीवान की

स्त्रियों की फौज में शामिल हो जाती है जो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के लिए सन् 1857 में लड़ रहे थे। रजऊ लक्ष्मीबाई के ठीक ढाई महीना पहले लड़ते-लड़ते शहीद हुई थीं" ।[113] प्रेम की फनागिरी में रजऊ जो कर गुजरी वह ईसुरी नहीं कर पाए । रजऊ के प्रेम का उदात्तीकरण होता है और ईसुरी वहीं सिमटकर रह जाते हैं। यही कसक उन्हें सालती है। यह हर हारे हुए पुरूष की कसक है। क्या यह कसक डाक्टर साहब, डा. शर्मा (मैत्रेयीजी के पति) की कसक नहीं हो सकती?

उपन्यास का देशकाल या परिवेश सन् 1857 से सन् 2002 के गुजरात नरसंहार कांड तक विस्तृत है। उपन्यास के नायक नायिका ईसुरी और रजऊ या रज्जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आसपास हैं। और उसके दूसरे समकालीन युग के नायक-नायिका ऋतु और माधव इस इक्कसवीं शताब्दी के हैं। उपन्यास को विश्वसनीय बनाने हेतु जो पद्धति अपनायी गई है वह पद्धति मध्यकाल में मानसकार तुलसीने अपनायी थी और आधुनिक काल में "बाणभट्ट की आत्मकथा के रचयिता आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनायी थी। जैनेन्द्र के "त्यागपत्र" में भी यह पद्धति हमें प्राप्त होती है।

उपन्यास के नायक-नायिका तो ईसुरी और रजऊ हैं, परंतु इनके अलावा भी कई पात्र हैं जैसे – आबादी बेगम, धीरे पांडे, देशपत दीवान, प्रताप, आदित्य, मुसाहिबजू (धौरा का सामंत) , रज्जू राजा (मुसाहिबजू की बेटी), चंपाकली (मुसाहिबजू की नौकरानी), गंगयिा बेडिनी, रामदास (रजऊ के जेठ), लछमन (रजऊ या रज्जो के भाई), पुजारी महाराज (रामदास के सलाहकार), कुंझल शाह (देशपत दीवान के भतीजे), ऋतु, माधव, मामाजी (माधव के मामा), अनवरी बेगम, बेड़िनी करिश्मा, सरस्वती देवी, ओरछा के गाइड शांलिगराम कटारे, एन.सी.सी. के टीचर, ऋतु की मां आदि-आदि ।

उपर्युक्त सूची में कुंझल शाह तक के नाम उस पीढ़ी के हैं जो ईसुरी और रजऊ की पीढ़ी है और उसके बाद के चरित्र हमारे समकालीन युग के हैं ।

आबादी बेगम बधौरा की जमींदारनी हैं और लोककवि ईसुरी की संरक्षिका भी है । ईसुरी के फागों की कद्रदान यह बेगम सन् 1857 के स्वाधीनता-संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई के साथ थी । अनवरी बेगम उनकी ही वंश-परंपरा में आती हैं । धीरे पांडे ईसुरी के अतरंग मित्र है और फाग-मंडली के सूत्रधार भी है । इस नाते वह आबादी बेगम को मिलते रहते है । देशपत दीवान स्वाधीनता संग्राम (सन् 1857) के एक वीर सेनानी है और उनके द्वारा निर्मित स्त्रियों की फौज में रजऊ और गंगिया शामिल हो जाती है और रानी की ओर से लड़ते हुए शहीद हो जाती है । प्रताप रजऊ का पति है और ईसुरी के कारण बदनाम पत्नी के कारण फौज में भर्ती हो जाता है, जहाँ उसकी मृत्यु हो जाती है । आदित्य भी एक सेनानी है । रज्जू राजा धौरा के सामंत मुसाहिबजू की बेटी है । मुसाहिबजू ईसुरी फगवारे को आमंत्रित करते हैं तब रज्जू भी ईसुरी के प्रेम में पड़ जाती है और वह भी ईसुरी के फागों में संबोधिता होना चाहती है । ध्यान रहे रज्जू राजा और रजऊ या रज्जो ये दोनों अलग-अलग हैं । मुसाहिबजू को जब रज्जू और ईसुरी के प्रेम के बारे में पता चलता है तब वे ईसुरी को कैद में डाल देते हैं और रज्जू राजा की संदेहास्पद स्थितियों में मौत हो जाती है । चंपाकली मुसाहिबजू की नौकरानी है । उसे भी ईसुरी के फोगो की संबोधिता होने की चाह है । इस तरह जैसे गोपियाँ कृष्ण की बांसुरी की दीवानी थी, ठीक उसी तरह उस समय की बहुत-सी बुंदेलखण्ड़ की स्त्रियां ईसुरी के फागों की दीवानी थी । इन सबमें रजऊ का स्थान राधा जैसा था, ऐसा कह सकते है । ईसुरी के पीछे पागल स्त्रियों में गंगिया भी है जो पहले रंगरेजिन थी और ईसुरी के प्रेम में बेड़िनी हो जाती है । यही गंगिया बाद में रजऊ के साथ देशपत दीवान की टोली में शामिल हो जाती है । रामदास रजऊ का जेठ है

और प्रताप के निधन के बाद रजऊ से शादी करना चाहता है । तब रजऊ अपनी सहायता के लिए भाई लछमन को बुलाती है पर लछमन भी रामदास के साथ शामिल हो जाता है । लोककथा का भाई तो अपनी बहन को राजा के शिकंजे से बचा लाता है पर यहाँ भाई उस राक्षस के साथ ही मिल जाता है ।[114] तब रज्जो गंगिया के साथ भाग जाती है ।

ऋतु, माधव, मामाजी, सरस्वतीदेवी, ओरछा के गाइड शालिगराम कटारे, एन.सी.सी. टीचर, ऋतु की मां, करिश्मा बेड़िनी आदि हमारे समकालीन पात्र हैं । ऋतु बुंदेलखंड़ के श्रृंगार के कवि ईसुरी पर पी.एच.डी. उपाधि हेतु शोधकार्य कर रही है और उसी सिलसिले में ईसुरी और रजऊ के सम्बन्धों की तलाश में वह बुंदेलखण्ड के कई गाँवो की खाक छान मारती है । माधव ऋतु का सहाध्यायी है । कालेज की प्रतियोगिता में माधव ईसुरी वाले फाग सुनाता है तो ऋतु उन फागों को सुनाती है जो रजऊ को संबोधित किए गए हैं । कालेज की प्रतियोगिता तो ऋतु जीत जाती है, पर अपना दिल हार जाती है । वह माधव को ईसुरी और स्वयं को रजऊ समझने लगती है । यह प्रेम वह रंग लाता है कि माधव भी अपना विषय बदलकर उसे शीर्षक देता है – "ईसुरी का बुंदेली को योगदान ।"[115] अपनी शोध के सिलसिले में वे एन.सी.सी. टीचर, गाइड शालिगराम कटारे, अनवरी बेगम, करिश्मा बेड़िनी, सरस्वतीदेवी आदि से भी मिलते हैं और टुकड़ा टुकड़ा मिलकर ईसुरी-रजऊ की प्रेमगाथा, जो अंततः रजऊ की वीरांगना गाथा बन जाती है, निर्मित होती जाती है ।

उपन्यास में आद्यन्त बुंदेलखंड़ के लोककवि ईसुरी के फागों की चर्चा है । ईसुरी रीतिकाल के कवि हैं परंतु हिन्दी साहित्य के इतिहास की रीतिकालीन परंपरा में या सूची में उनका नाम शामिल नहीं है । जो बुंदेलखंड़ के गाँवो में, उसकें स्त्री-पुरुषो के कंठ में आबाद है, उनके गले का हार है, उसे शास्त्रीय

परंपरा ने नकार दिया है। बल्कि कई लोग, कई विद्धान तो उसे "लंपट कवि" कहते हैं।[116] यहाँ यह बहस "लोक" वर्सिस "शास्त्र" हो गई है। और बाह्यतः "शास्त्र" जीतता है क्योंकि ईसुरी की भांति ऋतु का शोध-प्रबंध भी अमान्य हो जाता है। पर ऋतु-माधव की कथा, ईसुरी-रजऊ की कथा तो अमर हो जाती है। "शास्त्र" की हार और "लोक" की जीत। उपन्यास की भी भूरि-भूरि प्रशंसा अधिकांश विद्धानों ने की है, एक-दो को छोड़कर। जो "लोक" को नकारते हैं, जो केवल शास्त्र की सीमाओं में ही बंधे रहना चाहते हैं, जो कला के शास्त्रीय मूल्यों को सामाजिक सरोकारों पर तरजीह देते हैं ऐसे लोग शायद उपन्यास को "कोरा बकवास" भी कह सकते हैं।

डा. रवीन्द्र त्रिपाठी ने यथार्थ ही कहा है – "ईसुरी यौवन का कवि है। ईसुरी और रजऊ युवा प्रेम के आद्य-बिम्ब बन जाते हैं, कम से कम बुंदेलखंड़ में। लेखिका ने तुलसीराम और मादुरी, ऋतु-माधव, गाइड सालिगराम कटारे-सावित्री जैसे युगल-चरित्रों के माध्यम से यह दिखाया है कि ईसुरी-रजऊ की कहानी आज भी जीवित है। उस कहानी के रूप बदल गए हैं, चरित्र बदल गए हैं, समय और परिस्थितियां बदल गई हैं पर उसका मूल रूप अभी भी मौजूद है।"[117] क्योंकि जब तलक यह दुनिया रहेगी, प्यार और मुहब्बत करने वाले रहेंगे, क्योंकि "कोई हद ही नहीं यारब, मुहब्बत के फसाने की सुनाता जा रहा है जो जिसको जितना याद आता है।" और – "हर दौर के शायर की कोई अपनी सनम होती है; और दूरियां बढ़े जब सनम से तो गज़ल होती है।" तो प्यार की यह गज़ल भी हर दौर के प्रेमी –ईसुरी और रजऊ दोहरायेंगे।

"इस उपन्यास का नायक ईसुरी है, मगर कहानी रजऊ की है।"[118] और यह कहानी जितनी रजऊ की है उतनी ही ऋतु की भी है। रजऊ के साथ

सन् 1857 का स्वाधीनता-संग्राम है, तो ऋतु के साथ सन् 2002 का गुजरात नर-संहार (जीनोसाइड) है। प्रथम रजऊ को वीरांगना बना देता है, तो द्वितीय के कारण बदनाम होकर गुमनामी की दुनिया में चला जाता है। प्रथम के साथ "गौरवपूर्ण इतिहास" है, तो दूसरे के साथ एक ऐसी घटना जिससे लोकतंत्र शर्मसार हो सकता है। उपन्यास में यह अकारण नहीं है कि करिश्मा बेड़िनी ऋतु से कहती है – "ऋतु तुम तो लिखोगी, तुम्हें ये सब बातें लिखनी भी चाहिए कि जो गंगिया, रजऊ, ईसुरी महाराज देशपत जैसे लोग भुगत रहे थे, लक्ष्मीबाई झेल रही थी, वे उन अंग्रेजों के जुल्म थे, जो हमने नहीं बुलाए थे, पर अब, अब जो मारकाट, जलाना-भूनाना, उनके हाथों हो रहा है, जिनको हमने वोट देकर चुना है। यह कलंक कथा, जो अंग्रेजों की नहीं, हमारी है, ऋतु ! तुम्हारी खोज के किस अध्याय में आयेगी? आना चाहिए, भले इसमें गंगिया, झलकारी, काना, मुंदरा, तात्या, मारोपंत जैसे वीर-वीरांगनाओं के नाम न हों। आईना तो होगा, जो डेढ़ सौ साल बाद के आजाद देश के चेहरे की झलकी दिखा देगा। मैं शुरूआत में भी तुमसे यही कहना चाहती थी, मगर अपनी पांच पीढ़ी पहले की गंगिया बेडिन के मोह में ऐसी उलझी जैसे अपने महान इतिहास का छोर हाथ आ गया हो।"[119]

लगे हाथ गोधरा और अहमदाबादकांड विषयक माधव की यह टिप्पणी भी देख लीजिए -- " जो नवयुवक दरिन्दों के रूप में हत्याएँ कर रहे थे, आग लगा रहे थे, बलात्कार कर रहे थे, पैसे की एवज में आए थे। बिना पैसे पाए न कोई कार सेवक था, न कोई धर्मान्धों का दुश्मन, धर्म पैसे का जरिया है और राजनीति पैसे का खजाना। गोधरा और अहमदाबाद कांड भाड़े का सौदा था। ज्यादा से ज्यादा भाड़ा। मेरी मजबूरी समझना ऋतु। मै लौटकर आऊंगा। .....देखो मिले बिना कितने दिन हो गए हैं। मैं जानता हूं कि तुम मुझे बिदा

करने आओगी ।[120] (माधव को मामा प्लास्टिक का काम सीखने के लिए चायना भेज रहे हैं, शायद गुजरात दंगों में वह जो जान गया था, उन सब चीजों से दूर रखने के लिए ।)

किसीके मन में सवाल उठ सकता है, या किसीको सवाल के लिए उकसाया भी जा सकता है कि इस प्रेमकहानी में राजनीति कहां से आ गयी? तो उसका उत्तर यह है कि संसार में कौन-सा ऐसा विषय है जो साहित्य का अंग नहीं बन सकता । जो जागरूक और समाजाभिमुखी सोच रखने वाले हों, जो साहित्य समाज के लिए या जीवन जीने के लिए वाले सिद्धान्त में मानने वाले होंगे उनमें यह सब तो आएगा और उसके लिए उनकी सराहना होनी चाहिए न कि गरियाना चाहिए । "इदन्नमम" से शुरू हुई मैत्रेयी की उपन्यास यात्रा में समसामयिक घटनाओं का संयोजन हुआ है और होना भी चाहिए, उसमें बेवजह कुछ भी नहीं है । प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों के साथ-साथ तत्कालीन इतिहास को यदि खंगाला जाए तो उनमें तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों की चर्चा मिलेगी ही ।

डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव इस उपन्यास की समीक्षा करते हुए लिखते हैं--- "निखालिस प्रेमकहानी शायद वह बात नहीं पैदा कर पाती जो ये प्रसंग पैदा करते हैं । सोचिए, अनवरी बेगम की पूर्वजों ने आजादी का संग्राम लड़ा लेकिन आज़ाद देश में अनवरी इतना डरी रहती है कि गुजरात के गोधरा और अहमदाबाद की बात भूल से भी जुबान पर नहीं लाना चाहती; बाबरी मस्जिद के बारे में बात चलाने पर बात बदल देती है ।[121] क्या ऐसा होना चाहिए? नहीं होना चाहिए लेकिन हो रहा है, अपनी शर्तो पर जीने की लालसा रखने वाली ऋतु को माधव के संपन्न मामा गुण्डे भेजकर डराते हैं – उसकी माँ को भी । वे गुण्डे ऋतु को उस निगाह से देखते हैं कि लगता है जैसे वे कपड़े उतार रहे हों

। याद रखने की बात है कि सरस्वती देवी को भी गुण्डे उनका अपना काम नहीं कर देते । "यह हमारा आज़ाद भारत है, लेकिन इस आज़ाद भारत में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो रज्जो और गंगिया जैसे लोगों को उचित सन्मान भी देते हैं । एन.सी.सी. के जिस अध्याय का जिक्र उपन्यास में आया है, वह ऐसा ही है । हमारे समाज में ऐसे ही पुरुषों की जरूरत है ।"[122]

मुसाहीबूज के सैनिकों में दलित जाति के भी कुछ लोग हैं । उनमें एक है विरतिया । मुसाहिबजू की बेटी ईसुरी को मिलना चाहती है जो मुसाहिबजू की कैद में है । विरतिया उसे ईसुरी तक ले जाता है और बदले में रज्जू राजा को चूमा लेता है और मौका देखकर उसकी छाती को भी दबाता है । रूकमणि जब उसे टोकती है तब विरतिया जो कहता है वह भी उपन्यास के आयाम को हमारे सामने रखता है – "भूल गई कि मुसाहिबूज हमारी बहुओं को पहली रात ही अपने नीचे बिछकाकर मानते हैं ।"[123] डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव ने इस संदर्भ में अपनी सार्थक टिप्पणी दी है – "उपन्यास में ऐसे छोटे-छोटे प्रसंग उपन्यास को बड़ा बनाते है, व्यापकता देते हैं । यह सस्ती लोकप्रियता के लिए प्रयुक्त हथकंडा नहीं है ।"[124]

ऊपर विरतिया ने जो बात कही है उस पर से रमणिका गुप्ता की कहानी "बहूजुठाई" की स्मृति जहन में कौंधने लगती है जिसमें एक ऐसी कुप्रथा की बात कही गई है जहाँ दलित परिवारों की नववधू की डोली ससुराल के द्वार पर नही गाँव के ठाकुर की हवेली पर रूकती है ।[125]

इस प्रकार यह उपन्यास प्रकटतः ईसुरी और रजऊ की प्रेमकथा है, परंतु कथा तो एक बहाना है, लेखिका की आंखे चारों तरफ है । अपने समकालीन समय और उसके खतरों से वह पूरी तरह से चौकन्नी है । भारत का

पढ़ा – लिखा तथा कथितसाक्षर, सुशिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग, उसका अनपढ़ो सा व्यवहार, विश्वबाजार के मुनाफेखोर दलाल, हर बात का यहाँ तक कि कला और लोककलाओं का भी व्यावसायीकरण, लोकतंत्र के लोकघाती पहरेबाज, लोकतंत्र के नाम पर फासीवादी प्रवृत्तियों का बढ़ता जोर, पुरूषवादी सामंतवादी विचारधारा का पुनः पुनः जीवित हो उठना, नव जागरण से आयी चेतना पर पानी फिरते जाना, बाबरी मस्जिद कांड के उपरान्त गंगा-जमुनी संस्कृति का विलुप्त होते जाना, गुजरात के अग्निकांड और नरसंहार की विद्रुपताएँ कुछ भी बचता नहीं है मैत्रेयीजी की जागरूक आंखों से और यही अपेक्षा रहती है या रहनी चाहिए एक बड़े लेखक या लेखिका से।

मैत्रेयीजी के उपन्यासों का शिल्प सीधा-सादा नहीं होता। कथा "ए टु झेड़" कहीं भी फलतः पाठक को बहुत सचेत और सावधान रहना पड़ता हैं। प्रस्तुत उपन्यास का शिल्प तो और भी जटिल है। कथा इकहरी नहीं, दूहरी भी नहीं, तिहरी है। एक तरफ वह ईसुरी और रजऊ की प्रेमकथा है, दूसरी तरफ वह ऋतु-माधव की कथा है, तीसरी तरफ वह उन दोनों की रिसर्च-कथा है। धीरे पांडे और ईसुरी महाराज भी दो-दो हैं। एक रीतिकालीन या सन् 1857 के समय के और दूसरे सरस्वतीदेवी की मंडली में इन दोनों का पार्ट करने वाले। यों कथा के कई-कई स्तर है।

लेखकीय वक्तव्य में कहा गया है : "उसकी (ईसुरी की) अधिकांश फागें एक पुरूष द्वारा स्त्री को दिए शारीरिक आमंत्रणों का उत्सवीकरण है।"[126] उपन्यास के समीक्षा करते हुए यदि उन फागों की बात न हुई तो शायद बात आधी ही रहेगी। यथा –

"बैरी हो गए पुरा भरे के

रजऊ से मेर करें सें

लगी लगन जा छूटत नइयां कोनऊ जतन करे से

वे जै हें, हम जान न दे हें, अपने नजर तरे से

"ईसुर" कात कबै दिन आहै, हम जेवें वे परसें ।"[127] (रजऊ से प्रेम किया तो मुहल्ले भर के लोग बैरी हो गये। ऐसी लगन लगी कि कोई भी यत्न करे नहीं छूटती। वे जाना चाहते हैं और हम उन्हें अपनी नजर तले से दूर नहीं जाने देना चाहते। ईसुरी कहते हैं कि वह दिन कब आयेगा, जब वे परसेंगे और हम जीमेंगे।)

और ---

"बीते जात मायके मइयां

ज्वानी के दिन गुइयां

गादर गाल काटवे लायक, चूमा लाइक मुइयां

छाती जुबन मसक्वे लायक, गहबे लायक बइयां

कहे ईसुरी जौन जौन गुन होत तियन में, एकऊ बाकी नइया[128]

अर्थ स्पष्ट है, अर्थाने की आवश्यकता नहीं है। उपन्यास में ऐसी तो कई फागें है। उद्दाम घनघोर श्रृंगार का काव्य, लेकिन अंत उसका विप्रलंभ में ही हुआ है।

(9) त्रिया-हठ (2005)

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में मंदा (इदन्नमम), सारंग (चाक), शीलो (झूला नट), अल्मा (अल्मा कबूतरी) आदि नायिकाएं जूझारू, संघर्षशील, एक निश्चय के तहत स्वयं को ढालने वाली बड़ी मजबूत और मुकम्मल नारियाँ है। ये रोने वाली कमजोर नायिकाएँ नहीं हैं। कह सकते हैं कि मैत्रेयीजी की नायिकाएँ भी उनके ही साथ मजबूत और परिपक्व हुई हैं। शुरू में डरी हुई, दबी हुई, भीरू; परतुं बाद में पकती और परिपक्व होती गई हैं। वह स्वयं

अनुभव करती हैं कि कथा का क्षेत्र ठोस कठोर यथार्थ का क्षेत्र है, यहाँ कोरी भावुकता से काम नहीं चलता । अतः उनके प्रयोग - काल की उनकी कुछ रचनाओं में ये कमजोरियाँ थी । कुछ आलोचकों को उनमें ही सहजता दिखती है । पर कलागत निर्ममता के पक्षकार उसे कमजोरी समझते हैं, और मैत्रेयी जैसे-जैसे इन बातों को समझती जाती हैं, उनको लगता है कि उनके प्रयोग-काल की कुछ रचनाओं का पुनर्लेखन आवश्यक है । अतः नयी जमीन तोड़ने के साथ-साथ अपने ही लेखन से असंतोष के कारण उनका पुनर्नवित रूप वह रचती गई है । "यह त्रिया-हठ ही है कि मैत्रेयी अपने लिखे को बार-बार उकेरती है । कुछ खोजती हैं नया और उसके लिए पुराने का ध्वंस कर एक नया सच गढ़ती हैं, अपनी ही राख से पुनः पुनः जी उठने वाले "फीनीक्स" (अगनपाखी की तरह) लेखकीय अहं, अपने किए या रचे के महान और अद्भुत होने के मोह को तोड़ती हुई । सच्चे लेखक के भीतर की बैचेनी का ताप उनसे यह सब करवाता है बार-बार । संतुष्ट होना नष्ट होना है, विकास की अवधारणा को भी विनष्ट करना है । मैत्रेयी यह सच अच्छी तरह जानती हैं ।"[129] और इसी उपक्रम में उनके दो उपन्यास आए हैं – "अगनपाखी" (स्मृतिदंश) और "त्रिया-हठ" (बेतवा बहती रही) ।

इस तरह "त्रिया-हठ" उपन्यास "बेतवा बहती रही" का पुनर्नवित रूप है । पात्र और देशकाल वही है, परंतु पात्रों के चरित्र-चित्रण में अंतर आ गया है । उर्वशी पहले गूंगी गौ-सी थी, परंतु इस उपन्यास की उर्वशी भी "अगनपाखी" की भुवन की भांति "बाघिन" – सी हो गई है, लड़ाकू, हठी और जूझारु । इस प्रकार यहाँ बारह साल के बाद लेखिका ने विपन्न, लाचार और भावप्रवण उर्वशी के संघर्षपूर्ण जीवन की गाथा का आलेखन किया है । स्त्री-शक्ति की बात करने वाले, पर मन-ही-मन स्त्री को कमजोर, मजबूर, विवश देखने के इच्छुक लोगों को शायद उर्वशी का यह परिवर्तित रूप पसंद न आये । लेकिन

नारी-सशक्तिकरण से प्रफुल्लित और उल्लसित होने वालों को “त्रियाहठ” की उर्वशी जरूर पसंद आयेगी । मीरा का व्यवहार पहले उर्वशी के प्रति सहानुभूति रखने वाला था, परंतु यहाँ वह उसके विपरीत छोर पर है । उर्वशी का दूसरा पति बरजोरसिंह स्वार्थी, क्रूर और लपंट था; जबकि प्रस्तुत उपन्यास का बरजोरसिंह पश्चाताप की आग में तपा हुआ और उर्वशी के प्रति संवेदनशील है, तभी तो उपन्यास में उर्वशी के अन्त समय पर पंछी के उड़ जाने की मुद्रा में उंगलिया नचाते हुए व्यथित स्वर में बुदबुदाते हैं – “तुम ने तोड़ डाली सलाखें / हम ललचाते रहें तुम्हें / इनके उनके अपने, दोनों के लिए ।”[130]

“बेतवा बहती रही” में उर्वशी-सर्वदमन का पुत्र देवेश अबोध बालक था, जबकि “त्रियाहठ” का देवेश एक परिपक्व, विचारवान एवं तर्कशीलता को प्राधान्य देनेवाला युवक है । वह अपनी माँ की मौत का सच जानना चाहता है । उसे पक्का विश्वास है कि उसकी माँ बदचलन हो ही नहीं सकती, पर बदचलनी- बदकार औरत का तहोमत लगाकर कुछ न्यस्त हित वाले लोगों ने उसे मरवा डाला है ।[131] देवेश की मित्र स्मिता कृष्णा सोबती के उपन्यासों पर शोध कर रही है और वह भी उर्वशी की सच्चाई को जानना चाहती है पर उसका अभिगम “औरत के भीतर की औरत को” विश्लेषित करता है । स्मिता जानती है कि “कोई भी दर्द तब तक साफ नहीं सुना जा सकता जब तक उसका भूगोल न रचा जाए, अपने ही रचे भूगोल पर उतारना होगा उर्वशी को, न कि औरों के इतिहास में देखना ।”[132] स्मिता का चरित्र नया है । देवेश की खोज में यह बात मुख्य है कि वह अपनी मां के बारे में छानबीन कर रहा है और स्मिता की खोज में औरत होने का अहसास और औरत की आकांक्षाएं और कमजोरियों का भी ध्यान रखा गया है ।

"त्रियाहठ" उर्वशी के संघर्ष की कथा तो है ही पर साथ ही उसमें दहेज-प्रथा, स्त्री-शिक्षा, पंचायत-चुनाव में महिला आरक्षण का मुद्दा, स्त्रियों की अपने पति की जमीन में हिस्सेदारी, बेरोजगारी, डाकू समस्या, ग्रामीण व्यवस्था पर पुरूषों की प्रेतछाया जैसे कई मुद्दों को उकेरा गया है। जहाँ तक शीर्षक का सम्बन्ध है राजहठ, बाल हठ और योगीहठ की भांति "त्रियाहठ" का उल्लेख भी हमारे यहाँ मिलता है। मैत्रेयीजी ने इसे स्त्री की कृत-संकल्पता के संदर्भ में लिया है कि नारी एक हद तक बर्दाश्त करती है, पर जब उसकी वह हद समाप्त हो जाती है तब उसका शक्ति-रूप सामने आता है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने बाणभट्ट की आत्मकथा" में कहीं कहा है – "परम् शिव के एक साथ दो तत्व एक साथ प्रकट हुए थे – "शिव" और "शक्ति" । "शिव" विधिरूप है। शक्ति निषेधा रूप है। इन्हीं दो तत्वों के प्रस्पंद-निस्पन्द से यह संसार आभासित हो रहा है। पिण्ड में शिव का प्राधान्य ही "पुरूष" है और शक्ति का प्राधान्य ही "नारी" है।[133] प्रस्तुत उपन्यास की उर्वशी वही "शक्ति-स्वरूपा" नारी है। जो अपने हक की जमीन के लिए और अपने बेटे देवेश के हक के लिए गाँव की पुरूष-सत्ता के खिलाफ खड़ी होती है और जब भी कोई स्त्री अपने हक की लड़ाई के लिए कमर कसती है, उसके साथ ही उसके आगे लगने वाले तमाम विशेषण अपना विलोमी-स्वरूप धारण कर लेते हैं, अर्थात् रंडी, कुल्टा, बेहया, डाकिन, चुडैल आदि-आदि । तभी तो मीरा की दादी उर्वशी को गरियाते हुए कहती है : "खसम खा लिया, इसका पूत मर जाए । दोनों घरों के द्वार बंद हो गए तो अब हमारा घर मिला है डायन को। हमारे नाती-बेटों के पीछे पड़ गई है चुडैल। भगवान ने रांड करी थी, पर वह सांड हुई जा रही है।"[134]

तो दूसरी ओर उर्वशी के मन की व्यथा, उसके दैहिक ताप की बात को भी नजरअन्दाज नहीं किया गया है – "जवानी बुढ़ापा तो नहीं हो जाती विधवा होकर ? जवानी में बूढ़ा बनकर कोई कितनी देर रह सकता है ? एकदम चुप, आंखे-कान-जुबान पर बंधन डालकर । भूल में ही सही, देह कभी तो हिल-डुल ही जाएगी ।"[135]

जिस प्रकार देवेश यह पता लगाने की कोशिश कर रहा है कि उसकी मां की हत्या कैसे हुई, वैसे ही उपन्यास में उर्वशी का भी एक मकसद है । वह यह जानना चाहती है कि उसके आदमी (सर्वदमन) का खात्मा कैसे हुआ और उसके लिए ही वह जिसे फूफा कहती है ऐसे बरजोरसिंह की सहायता मांगती है – "मैं तुमसे कोई वचन नहीं मांग रही फूफा, न कोई धन-दौलत चाहिए । बस, मेरे साथ खड़े हो जाओ । मुझे तुम्हारी जरूरत है ।"[136] गाँव में वह अपने पति की हत्या का रहस्य जानने के लिए आयी थी । वह जानती है कि गाँव में किसी बात का पता एक-दो-दिन में नहीं चल सकता । उसमें तो सालोंसाल लग जाते हैं ।

इस प्रकार "त्रियाहठ" की "उर्वशी" बेतवा बहती रही" की उर्वशी नहीं है । और उर्वशी के साथ अन्य उससे जुड़े चरित्रों का भी कायाकल्प हो गया है । एक स्थान पर उर्वशी मीरा को कहती है : "औरत और जमीन दोनों में से किसी एक को चुनना हो तो पुरूष बेशक जमीन को चुनेगा । औरत का क्या है ? मौत के घाट उतार देंगे । उसकी जगह दूसरी ले आयेंगे । जमीन स्थायी है, औरत ज्यादा से ज्यादा एक पीढ़ी । जमीन फसलों पर फसल देती जाती है, औरत अपनी जिन्दगी में दो-चार बच्चे और सेवा .."[137] और अपने बेटे देवेश को अपने बाप की जमीन का हक दिलाने के लिए ही वह बरजोरसिंह के साथ रह

लेती है और उस जमीन के कारण ही उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है, पर लांछित और बदनाम करके ।

सुश्री कविताजी ने उपन्यास की समीक्षा करते हुए यथार्थ ही कहा है : "त्रियाहठ" को पढ़े जाने के लिए बेतवा का पढ़ा जाना या होना जरूरी है। और कुछ नहीं तो कथा-रस के लिए। सच के ऊपरी परती को घटाकर उसे परखने के लिए। "बेतवा" का बहाव लिए जाता है पाठकों को अपनी सहजता में ; "त्रियाहठ" किनारे के कंकरीले पत्थरों पर ला पटकती है । "बेतवा" में सहज जीवन का भोलापन है, "त्रियाहठ" में कठोर सत्य । "त्रियाहठ" रोकता है, उलझाता है .. अंततः किसी बंधे-बंधाए निर्णय पर नहीं छोड़ता।"[138] "बेतवा में जो सत्य या भावुकता है वह मैत्रेयीजी की सन् 1990-92 के समय की है और "त्रियाहठ" का सच सन् 2005 की मैत्रेयीजी का है, निर्मम, कठोर और परिपक्व।

<u>(10) गुनाह – बेगुनाह (2011) :</u>

"गुनाह-बेगुनाह" मैत्रेयीजी के अभी तक (सन् 2012 तक के) उपन्यासों मे अंतिम हैं । पर जिस तरह मैत्रेयीजी नये-नये क्षितिजों और विषयों को उद्‌घाटित कर रही हैं, आगे भी उनकी रचनात्मकता ऊर्जस्विता के साथ प्रकट होती रहेगी, ऐसी आशा कर सकते हैं। उपन्यास का आवरण चित्र "राजकमल स्टूडियो" द्वारा बनाया गया है जो कई-कई अर्थो में सूचक है। सफेद पृष्ठ पर लाल रंग के धब्बे -- खून के भी है और पान की पिचकारी के भी। अगर खून के धब्बे हैं तो न्याय, विधि, कानून के तहत कानून के रखवालों द्वारा निर्दोष और बेगुनाह लोगों के खून के धब्बे है और अगर पान की पिचकारी के हैं तो हमारी मौजूदा व्यवस्था पर मानो हिकारत और नफरत से किसीने थूक दिया है
।

प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा गया है – "भारतीय समाज में ताकत का सबसे नजदीकी, सबसे देशी और सबसे नृशंस चेहरा है – पुलिस । कोई हिन्दुस्तानी जब कानून कहता है तब भी और सरकार कहता है तब भी, उसकी आंखों के सामने कुछ खाकी-सा ही रहता है । इसके बावजूद थाने की दीवारों के पीछे क्या होता है हममें से ज्यादातर नहीं जानते । यह उपन्यास हमें इसी दीवार के उस तरफ ले जाता है और उस रहस्यमय दुनिया के कुछ दहशतनाक दृश्य दिखाता है और सो भी एक महिला पुलिसकर्मी की नजरों से ।"[139]

इसीमें आगे कहा गया है – इला जो अपने स्त्री वजूद को अर्थ देने और समाज के लिए कुछ कर गुजरने के हौसले को लेकर खाकी वर्दी पहनती है, वहाँ जाकर देखती है कि वह चालाक, कुटिल लेकिन डरपोक मर्दो की दुनिया से निकलकर कुछ ऐसे मर्दों की दुनिया में आ गई है जो और भी ज्यादा क्रूर, हिंसालोलुप और स्त्रीभक्षक हैं । ऐसे मर्द जिनके पास वर्दी और बेल्ट की ताकत भी है, अपनी अधपढ़ मर्दाना कुंठाओं को अंजाम देने की निरंकुश निर्लजता भी । ...अपनी बेलाग और बेचैन कहन में यह उपन्यास हमें बताता है कि मनुष्यता के खिलाफ़ सबसे बीभत्स दृश्य कहीं दूर युद्धों के मोर्चों और परमाणु हमलों में नहीं, यहीं हमारे घरों से कुछ ही दूर सड़क के उस पार हमारे थानों में अंजाम दिए जाते हैं ।"[140]

उपन्यास का शीर्षक "गुनाह-बेगुनाह" भी बहुत कुछ कह जाता है । उसके कई अर्थ-पाठ हो सकते हैं, मसलन--- 1. इसमें ऐसे गुनाह है, जो वस्तुतः गुनाह हैं ही नहीं, अर्थात् बेगुनाह लोगों को गुनहगार बताया गया है, । 2. ये गुनाह उन लोगों ने किए हैं जो बेगुनाह हो सकते थे पर ऐसी मानवीय स्थितियों का निर्माण हुआ कि अगर ये गुनाह न करते तो मनुष्य कहलाने के काबिल ही न रहते , 3. गुनाह और बेगुनाह के बीच एक छोटी-सी विभाजक

रेखा है जो यह घोषित करती है कि इसमें गुनाह क्या है और बेगुनाह क्या है यह स्पष्ट ही नहीं हो रहा है, 4. जिन औरतों को गुनहगार बनाकर पकड़ लाए हैं उन्होंने गुनाह किया है, तो अब पुलिसवाले उनके साथ जो कर रहे हैं क्या वह गुनाह नहीं हैं ? ऐसे कई प्रश्न उठते हैं जब हम इस उपन्यास से गुजरते हैं ।

और वह प्रश्न भी उठता है जो उपन्यास की नायिका इला के मन में उठता है जो एक पुलिस कर्मचारी है । तथा – "ड्यूटी । इला को ताज्जुब होता है, जब लोग उसे उसकी ड्यूटी समझाते है । बूट-वर्दी पहनकर थाने पर जाना, अफसरों को सैल्यूट बजाना, गेट पर चौकीदार की तरह खड़ी होना ता किसी महिला मुजरिम की तलाशी लेना या किसी औरत को किसी गाँव-कस्बे या शहर से गिरफ्तार करके थाने तक लाना । सचमुच ही ड्यूटी है उसकी ? इसीको ड्यूटी कहते हैं ? अपना रूतबा गांठकर रहने वाले लोगों ने उस सारी धरती पर कब्जा कर लिया है जो लड़कियों के हक में थी । उन्हें बेदखल करके चाहे जिधर हांक दिया और अपनी सेवा तथा सेक्स के लिए औरतों को काम में लाए । इसी परंपरा के रीति-रिवाजों पर आज भी ढोल-नगाड़े बजाए जाते हैं । दूल्हों की सवारियाँ निकलती हैं और कुछ दिन बाद हत्या और आत्महत्या से गुजरती औरतों की चिताएं सजती हैं । लाशें जल-समाधि लेती हैं । इला जैसी लड़कियां, समीना और प्रिया जैसी सिपाही मौन हैं । ड्यूटी कर रही हैं, महिला पुलिस कहलाती हैं । इला को हंसी आ गई, खोखली-सी हंसी, उसके एकान्त से आ टकराई ।"[141]

प्रस्तुत उपन्यास से पूर्व लेखिका की स्त्री-विमर्श को लेकर लिखी गई पुस्तक "फाइटर की डायरी" को भी देख जाना चाहिए । यह उपन्यास शायद उसका ही विस्तार है । "फाइटर की डायरी में" संवेदी पुलिस-संवेदी समाज" का नारा देनेवाली हरियाणा पुलिस अकादमी में पुलिस प्रशिक्षण प्राप्त कर रही

संगीता, शबनम, ज्योति, पूजा, ममता, सुनीता, कुलबीर आदि महिला पुलिसकर्मियों के संवाद हैं जिनको मैत्रेयी पुष्पा ने जस का तस रख दिया है। श्री.राकेश बिहारी ने प्रस्तुत पुस्तक के संदर्भ में लिखा है –"स्त्री-जीवन के कई-कई जाने-अनजाने प्रसंगों को खोलती इस संवाद - श्रृंखला के ईट-गारे से एक उपन्यास लिखने की लेखकीय महत्वाकांक्षा को छोड़कर बंद कमरे में हुए इन साक्षात्कारों को बिना किसी आवरण या आडंबर के सीधे-सीधे पाठकों की दहलीज तक का पहुंचाना ही इस पुस्तक के शिल्प और प्रस्तुति दोनों की विशेषता है।"[142] (प्रस्तुत उपन्यास "गुनाह-बेगुनाह" द्वारा वही महत्वाकांक्षा कदाचित साकार हुई है।

"फाइटर की डायरी" में मैत्रेयीजी ने लिखा है –"लड़की को ताकत चाहिए, जिसे उससे लड़की / औरत बनाकर छीन लिया जाता है। माना की औरत मर्द के मुकाबले संवेदनशील होती है, उसका स्वभाव हिंसक नहीं होता, मगर अपनी संवेदनशीलता को बचाने के लिए भी ताकत चाहिए कि सिद्ध कर सके, उसकी संवेदनशीलता कमजोरी नहीं होती। हमदर्दी को कमजोरी मत कहो। यदि कहते या मानते ही रहोगें तो लड़कियों को वही वर्दी, वही राइफल, वही बैल्ट चाहिए जो कमजोरों, नाइंसाफी के मारों के लिए लड़े।"[143]

और यही वह केन्द्रीय भाव है जो मैत्रेयीजी के इस उपन्यास में ही नहीं उनके अन्य उपन्यासों और साहित्य में प्रतिबिम्बित होता रहता है। "वे न कहीं पुरूष के विरोध में स्त्री को खड़ा करने, उनके सहज स्वाभाविक सम्बन्धों में विष घोलने या परिवार के ढांचे को तोड़ने की बात करती हैं और न स्त्री को यौन-मुक्ति की छूट या विवाहेतर सम्बन्ध बनाने को प्रोत्साहन देती है। यौन-मुक्ति यदि उन्हें स्वीकार्य भी है तो इससे उनका आशय यौन स्वतंत्रता का है न कि स्वेच्छाचारिता या यौन अराजकता का। उनकी तो बस इतनी-सी चाह है

कि स्त्रियों को पुरूष की बराबरी का सम्मान मिले । स्त्री होने के नाते उन्हें परिवार या समाज में हेय न समझा जाय और न उन्हें प्रचलित परंपरागत दमन या शोषण का शिकार बनाया जाय ।"[144]

अपने और उपन्यासों में जहाँ मैत्रेयीजी ने बुंदेलखण्ड़ के परिवेश को उठाया है, वहाँ प्रस्तुत उपन्यास में उन्होंने हरियाणा के परिवेश को लिया है । हरियाणा इस समय अपनी मर्दवादी सोच, स्त्रियों के दमन और शोषण, स्त्री-भृण हत्या, लड़कियों पर होनेवाले बलात्कार, दहेज-हत्याएं, खाप पंचायतों के नारी-विरोधी, मानवता-विरोधी, स्त्री-विरोधी फतवों के कारण कुख्यात है । स्त्री-पुरूष बराबरी में मानने वाली लेखिका इन समस्याओं पर न लिखे और इस परिवेश को न उठावें तो ही आश्चर्य है । मैत्रेयी नारीसशक्ति करण की मुहिम में भी मानती है ।

पितृ-सत्ता ने हमेशा से लड़कियों पर अपने अधिकारों और निर्णयों को थोपा है । भाई तो पिता से भी दो कदम आगे निकल जाते हैं । मामला चाहे पढ़ाई-लिखाई का हो, चाहे शादी-ब्याह का, या चाहे पहनावे-ओढ़ावे का, वे अपने निर्णय अपनी बहनों पर थोपते ही जाते है और इस मामले में पिता से इक्कीस ही ठहरते हैं । शिक्षा और व्यवहार का अंतर यहाँ सामने आता है । कई बार लगता है कि तकनीकी दृष्टि से हम ज्यादा से ज्यादा आधुनिक होते जाते हैं पर विचारों के क्षेत्र में फिर से उस अंधकार-युग की ओर लौट रहे हैं । बेटों को बाप की तुलना में ज्यादा तार्किक और आधुनिक होना चाहिए, पर उसका उल्टा हो रहा है । राकेश बिहारीजी बिल्कुल सही कहते हैं कि -- "नौकरी तो ऐसे ही सभ्य समाज में महिलाओं के लिए वर्जित क्षेत्र रहा है । ऊपर से यदि नौकरी पुलिस विभाग की हो तो विरोध के स्वर का तीखा होना स्वाभाविक ही है, लेकिन इस पुस्तक में संकलित संवाद-नायिकाओं की जिजीविषा को सलाम करना चाहिए, जिन्होंने न सिर्फ़ उन अवरोधों के पार जाकर अपने जीवन की

लड़ाइयां लड़ी, बल्कि अपनी आनेवाली नस्लों के लिए साहस के दरवाजे भी खोल दिए।"[145]

और यह उपन्यास उन्हीं लड़कियों पर आधारित है। अतः सुरेश पंडित ने इसकी समीक्षा करते हुए उसका शीर्षक यथार्थ ही रखा है – "उन लड़कियों को सलाम" ।[146] इन लड़कियों में इला, समीना, प्रिया, करुणा श्रीवास्तव, लक्ष्मी, मनीषा, विद्या, विभा, दामिनी, मोनिका, जाहिदा, सुदीपा, रेखा, अंजू, सुरेन्दर कौर आदि हरियाणा की वे लड़कियाँ है जो ट्वेल्थ पास करके स्पोर्टस के कारण पुलिस में चुन ली जाती हैं। यह भी एक अजीब बात है कि पुरुषवादी वर्चस्व, मर्दवादी सोच और मध्यकालीन सामंतवादी मानसिकता हरियाणा में सर्वाधिक रुप से पायी जाती है और उसी राज्य में ये लड़कियाँ कुछ कर गुजरने की मंशा के साथ पुलिस में भर्ती हो रही हैं। उपन्यास के प्रारंभिक पृष्ठों में ही मैत्रेयीजी ने उपन्यास की पीठिका को स्पष्ट किया है –

"यह तब की बात है, जब हमारा हरियाणा प्रदेश इक्कसवीं सदी का पहला दशक खतम होते-होते "स्त्री-संहार" के लिए दुनियाँ भर में मशहूर हो गया था। यहाँ तक कि जो वर्ग धार्मिक जागरण में लगा हुआ था, वहाँ भी उपदेशों के बाद बाकायदा गुरुओं की भीतरी गुफाओं में बलात्कारों के नियमित कार्यक्रम चलते थे। यह आधुनिक भारत का नवजागरण था न जाने कितने मठ, कितने आश्रम, कितने पीठ कुकुरमुत्तों की तरह उदय हुए, जो किलों, गढ़ों और दुर्गो में बदल गए। .. राजनीति का अर्थ है, गिरोहबंध अपराधों को कानूनी मान्यता के रूप में सरंजाम देना। दरअसल सरकारों धन्धे पूरी तरह से भ्रष्टाचार पर टिके थे। अलबत्ता राजनीतिज्ञों ने इन्हें "आम आदमी" से जोड़ रखा था। इन राजनीतिज्ञों में हरियाणा की तीनों पार्टियों के कर्ता धर्ता और प्रमुख थे। अपनी पूरी शक्ति के साथ शामिल थे। तभी तो वे सब कन्या हत्या

या स्त्री-हन्ता होने को समर्थन दे रहे थे। आखिर उन्हें भी तो अपनी "इज्जत " का खयाल था।"[147]

उपर्युक्त उद्धरण में दो वाक्य गौरतलब हैं । "यह आधुनिक भारत का नवजागरण था ।" उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न "नवजागरण" ने स्त्रियों और दलितों को जो दिया था, आधुनिक (?) भारत का यह नवजागरण वह सब उनसे छीनकर उनको फिर से मध्यकाल की ओर खदेड़ रहा था । दूसरा वाक्य है – "आखिर उन्हें भी अपनी "इज्जत" का ख्याल था ।" यहाँ "इज्जत" शब्द में अर्थ-संकोच आ गया है । चोरी करना, धोखा देना, अपनी बात से मुकर जाना, किसी की पीठ में छूरा भोंक देना, हत्या करना, बलात्कार करना, चीजों में मिलावट करना, धोखाधड़ी से किसीकी जमीन हड़प लेना ये सब "बेइज्जती" के काम हैं । पर इन सबमें हमारी इजत नहीं जाती है, बल्कि ये सब करनेवाले "इज्जतदार" लोग कहलाते हैं । दरहकीकत बलात्कारी को "बेइज्जत" होना चाहिए, पर होता उल्टा है, जिस पर बलात्कार होता है उसे लोग "बेइज्जत" हो गयी ऐसा कहते हैं । हमारी सारी इजत और चरित्र केवल स्त्री में सिमट आये है । कोई लड़की प्रेम करे, अपने प्रेमी के साथ विवाह करना चाहे, विवाह में अवरोध उत्पन्न होने पर अपने प्रेमी के साथ भागकर शादी कर ले, किसी लड़की को अपने ही गोत्र के किसी लड़के से प्रेम हो जाए और उससे वह शादी करना चाहे या शादी कर ले ; दूसरी जाति या दूसरे धर्म के व्यक्ति के साथ विवाह करे, इन सबमें हमारी इज्जत चली जाती है और उसके लिए लोग कन्याओं की और उनके प्रेमियों की भी हत्या कर डालते हैं और उसे "ओनर-कीलिंग" जैसा खूबसूरत नाम दिया जाता है । अलबत्त तकनीकी और वैज्ञानिक उपकरणों में हम आधुनिक हो रहे है, लेकिन विचार के क्षेत्र में पुनः पशुता की ओर जा रहे हैं । इन सब मुद्दों को इला, समीना, प्रिया, मनीषा जैसी

पुलिस कर्मचारी लड़कियों के माध्यम से लेखिका उठा रही हैं। कहा जाता है – "नोवेल इज़ ए बन्च आफ स्टोरीज़।" तो यहाँ भी ढेरों कहानियां है, पर ये सभी कहानियां इला, समीना या जयंत (इला का पुरूष-मित्र) से सम्बद्ध है या उपन्यास में वर्णित परिवेश और उसकी समस्याओं से सम्बन्द्ध है और इस तरह ये सब कहानियां एक उपन्यास का रूप ले लेती है।

जिस प्रकार कहा जाता है कि -- नोवेल इज़ ए बन्च आफ स्टोरीज़", उसी तरह यह भी कह सकते हैं कि -- "नोवेल इज़ ए बन्च आफ जेनर्स" अर्थात् उपन्यास में अनेक विधाओं का समावेश होता है। उसमें कहानी, संस्मरण, रिपोताज, निबंध, पत्र, डायरी आदि अनेक विद्याओं का समन्वय होता है। प्रस्तुत उपन्यास में भी हम इसे देख सकते हैं।

उपन्यास की नायिका इला शादी के मंडप से भागकर सीधे पुलिस में भर्ती हो जाती है और प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षित होकर बाकायदा एक पुलिस कर्मचारी हो जाती है। बड़ी बहेन के साथ उसका भी ब्याह हो रहा था, बहन के देवर के साथ और इला उस समय विवाह नहीं करना चाहती थी। इला में हमें वह लड़की मिलती है जो अपने वजूद को तलाशना और तराशना चाहती है। पुरूषों की बनाई हुई इस दुनिया में वह नाचने वाली गुड़िया नहीं बनना चाहती थी। कहा जाता है – "मैन इज़ नोन बाय द बुक्स टू व्हिच ही / शी रीड़ज़"। इला की जो सोच है उसके पीछे भी उसका अध्ययन है। "यह तो समीना और प्रिया भी कहती है कि इला ने सिमान द बोउवार से लेकर वर्जीनिया वुल्फ, जर्मन ग्रियर, महादेवी वर्मा, इस्मत चुगताई से तस्लीमा नसरीन तक की किताबें पड़ी है।"[148] और यह सब पाश लायब्रेरी, करनाल के कारण हो पाया था।

उपन्यास में महिला पुलिस अफसर सुरेन्दरकौर का जिक्र भी आता है जिसका मानना है कि -- “ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को पुलिस में आना होगा । इस सर्विस के लिए औरतों का सबसे ज्यादा उपयुक्त पक्ष है उनका हमदर्दी भरा व्यवहार । हमदर्दी से हिम्मत आती है तभी तो ज्यादातर केसों में महिलाएँ पुरूषों के मुकाबले ज्यादा निष्ठावान साबित हुई हैं ।”[149] इला जब अपने विभाग की करतूतों से निराश हो जाती हैं तब समीना उसे समझाती है – इला, इतनी उदास मत हो, निराशा में मत डूबो । सुरेन्दरकौर की मुरादें सुनो । उनकी पुकार पर गौर करो । इरादा तो ऐसा ही है न कि तुम हो या मैं, मैडम विश्नोई नहीं बनेंगे । मैडम सांगवान होने के लिए यहाँ हम नहीं आए कि सताई गई औरतों के दर्द से खेलें । माना कि ढर्रा तोड़ना करीब-करीब नामुमकिन है, मगर इसे मंजूर कर लेना सबसे बड़ा गुनाह है ।”[150]

समीना एक मुस्लिम लड़की है । उसके अब्बू और अम्मी कतई नहीं चाहते थे कि समीना आगे ज्यादा पढ़े या नौकरी करे । पर समीना भी इला की तरह दूसरी मिट्टी की बनी थी । अतः पहले वह पत्रकार बनती है और इला से सम्पर्क में आने के बाद पुलिस कर्मचारी । समीना के अम्मी-अब्बा इसके लिए राजी हो जाते है क्योंकि मौलवी साहब समीना के मन-माफिक रिश्ता लाते हैं । बदरुद्दीन खान का बेटा आसिफ खान समीना के लिए माकूल शौहर ही था । समीना की हर मुराद का ख्याल रखा गया, यहाँ तक कि निकाह की तारीख भी उससे पूछकर तय की गई । आसिफ का मिजाज और चलन देखकर समीना को लगा कि अब्बू के बाड़े से तो आसिफ का साथ कहीं बेहतर है, जहाँ बुर्का-नकाब तो दूर, शलवार-कमीज पर दुपट्टे का बंधन तक नहीं था । आसिफ का कथन था – “दुपट्टा । कपड़े के ऊपर कपड़ा ओढ़ना मेरी समझ में नहीं आता ।”[151] समीना ऐसे शौहर को पाकर खूब खुश थी और शायद उसकी यह

खुशफहमी बनी रहती यदि समीना को लक्ष्मी मैडम न मिलती । लक्ष्मी मैडम, गुड़गाव में एस.एच.ओ. थी । घरेलू हिंसा के संदर्भ में शान्ता नामक एक औरत अपने पति के खिलाफ एफ.आई.आर दर्ज करवाने आती है, तब उसी सिलसिले में लक्ष्मी मैडम अपना किस्सा सुनाती है कि जब तक वह अपनी सारी कमाई ससुर और पति के हाथ में रख देती थी तब तक वह हीरा बहू थी । सती थी, सीता और सावित्री की तरह पर जब उन्होंने बेंक में अपना खाता खुलवाया कि कभी अपने पर या बच्चों पर अपनी तरह, अपनी तरफ से कुछ खर्च कर सकें ।" बस हो गया शाबाशियों और नेक औरत का अन्त । अब उनकी निगाह में मैं एक नाजायज औरत थी जो तनख्वाह मिलते ही यारों के साथ गुलछर्रें उड़ाने निकल जाती हैं । .. समझीं यह औरत की आर्थिक मजबूती का खामियाजा है ।"[152] समीना को तनख्वाह दो तारीख को मिलती थी और आसिफ मियां पांच तारीख को आकर सारे रूपये बटोर जाते थे । लक्ष्मी मैडम की बात को सुनकर जब समीना ने भी वही रास्ता अख्तियार किया तो आसिफ मियां की सारी आशिकी का पर्दाफाश हो गया । समीना एक फाहिशा औरत हो गयी थी । लक्ष्मी मैडम सही कहती थी – "तुम लोग नये जमाने की नयी औरत के रूप में उभर रही हो । पहले कमाने का जिम्मा मर्द का होता था, अब औरत भी अपने पांवों खड़ी हो रही है । खड़ी तो हो रही है लेकिन उसे खड़ी रहने देते कहां हैं ?"[153]

उपन्यास एक नयी जमीन को लेकर आया है । वैसे तो अनेक उपन्यासों में पुलिसों की करतूतें यदा -कदा चित्रित हुई हैं, परंतु समूचा उपन्यास पुलिस कर्मचारियों, विशेषतः महिला पुलिस-कर्मियों के आसपास बुना गया हो, कदाचित ऐसा पहली बार हुआ है । इधर जो महिला सशक्तिकरण के तहत नये कायदे बन रहे हैं उनके अंतर्गत किसी महिला अपराधी को पकड़ लाना हो तो उसके लिए महिला पुलिस को साथ लेकर जाना पड़ता है । फलतः इला,

समीना आदि महिला पुलिसकर्मियों की जरूरत पड़ती है। इनकी ड्यूटी के संदर्भ में इला ने बड़ी ही तीखी टिप्पणी की है जिसका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं।[154] इला, समीना आदि पुलिस की निम्न कैटेगरी में आती हैं, पर इधर आई.पी.एस. करके या ग्रेज्युएशन करके प्रमोशन पाते हुए कुछ महिलाएं पुलिस विभाग में ऊंचे ओहदों तक पहुंची हैं। किरण बेदी उनका रोल मोडेल होती है। उनमें कुछ तो सचमुच में उन आदर्शों का निर्वाह करती हैं, ऊपर सुरेन्दर कौर और लक्ष्मी मैडम का उदाहरण तो दिया ही गया है, इनके अतिरिक्त करुणा श्रीवास्तव, सोमा दीदी, सुशीला दीदी, आदि के नाम भी लिए जा सकते हैं।[155] लेकिन इन अच्छी अफसरों की तुलना में खराब, दुष्ट, भ्रष्ट महिला अफसर ज्यादा हैं जिनमें रमा बंसल, सरिता विश्नोई, विमला उपाध्याय, संतोष शर्मा, कामिनी जैसवाल, मैडम सांगवान आदि हैं। भ्रष्ट, शराबी-कबाबी और चरित्रहीन पुलिस अफसर तथा पुलिसकर्मी ज्यादा हैं, लेकिन यहाँ भी मरुद्वीप की भांति एस.पी. मित्तल साहब, जयंत, एस.एच.ओ आर.पी.सिंह, डी.जी.पी.सर, लाल बहादुर सर, राजकुमार सर जैसे चन्द अच्छे लोग भी हैं। लब्बोलुबाव बात यह है कि उपन्यास का समग्र परिवेश पुलिस-विभाग और उसकी कारगुजारियां है।

उपन्यास में ऐसी कुछ पूरजोर आवाजें हैं जिनको गुनाह के स्वर मानकर सजाओं से गुजारा गया हैं। इसमें रेशमी की कहानी है जिस पर उसके ही बाप ने बलात्कार किया था और इस तरह उसे वेश्या होने के लिए मजबूर कर दिया गया था,[156] लगभग ऐसी ही कहानी रौनक नामक लड़की की थी,[157] सुनीता की कहानी है जिसको उसके चाचा ने एक ट्रकवाले के हाथों बेच दिया था, जब ट्रक वाले का दिल भर गया तो उसने दूसरे ट्रकवाले को पांच हजार रुपये में बेच दिया था,[158] ममता का पति कैदखाने में था, वह अपने पति की रिहाई की

गुहार लगाने थाने आयी थी तो थाने के ही लोगों ने उसका गैंग-रेप किया,[159] शान्ता घरेलू हिंसा का शिकार है, उसका पति बेरहमी से उसकी पिटाई करता रहता था,[160] अर्चना तो पढ़ी-लिखी और नौकरीशुदा औरत है, महीने पन्द्रह हजार रूपये कमाती है फिर भी मैके से और पैसे ऐंठने के लिए उसे जब-तब बुरी तरह से पिटा जाता है, इतना कि उससे आरिज आकर वह पति को तलाक देना चाहती थी पर विमैन सेल की अफसर रमा बंसल उसे समझा-बुझाकर घर भेज देती है और दो महीने के बाद खबर मिलती है कि विष देकर उसकी हत्या की गई है, दूसरी ओर उसका पति उसे आत्महत्या बताता है,[161] शीतल पर पति की हत्या का आरोप है जो अपने शराब-कबाब और जुए के लिए अपनी ही पत्नी का दोस्तों द्वारा बलात्कार करवाता था,[162] इला-समीना के सामने एक ऐसा केस आता है जिसमें लड़की का बलात्कार उसका चचाजाद भाई प्रेमपाल करता है और एफ.आर.आई में से उसका नाम खारिज कराने के लिए उसके ताऊ और गाँव का संरपंच तक एड़ी-चोटी का जोर लगा देते है,[163] मुजरिम 302 चार-पांच लड़कियों की मां है, उस पर अपनी बेटी के सास-ससुर की हत्या का आरोप है, उसकी बेटी गुलाब की हत्या उसके पति ने की थी और अब उसके सास-ससुर अपनी सारी जमीन बेटी-दामाद को दे रहे थे, इस प्रकार यह एक उलजा हुआ केस है जिसमें कई चीजें गड्डमगड्ड हो गयी हैं, यह वही केस है जिसे रोलर की थर्ड डिग्री दी जाती है और उसीमें थाने में ही उसकी मौत हो जाती है,[164] (रोलर की सजा में औरत को नंगी करके उसकी जांघों पर रोलरनुमा डंडा रखा जाता है और फिर उस पर दो-चार सिपाहियों को चढ़ाया जाता है।)[165] शारदा है जिसने अपने बेटे की हत्या की है क्योंकि बेटा सुनील अपनी ही सहोदरा कंचन के साथ बलात्कार करता है, सुनील और कंचन की मां शारदा, बाप अलग, सुनील के पिता की मौत के बाद शारदा ने

अपने देवर से शादी कर ली थी, कंचन उसीसे थी, सुनील को अपनी मां से नफरत थी, कंचन पर बलात्कार करके सुनील ने संजय नामक युवक को उसमें फंसा दिया कि बलात्कार संजय ने किया है, पहले उसका सम्बन्ध उसकी मां शारदा से था, जब मां से दिल भर गया तो लड़की को फंसा दिया (ऐसा था नहीं, ऐसा सुनील पुलिस में लिखाता है), लड़का राक्षस हो रहा था, अतः सगी माँ ने उसकी हत्या कर दी थी,[166] ये और ऐसी अनेकों अपराध-कहानियाँ है। अपराध जो औरतों ने किए है पर क्यों किए है उसकी तफतीस में कोई नहीं जाना चाहता। उपन्यास के अंत भाग में इला यथार्थ ही कहती है –"जो औरतें यहाँ मुजरिम की तरह लाई जाती हैं, उनको गौर करके देखो, कुछ सिपाही हैं कुछ शहीद। वे जुल्म के खिलाफ़ जंग लड़ती हैं और कसूरवार ठहराई जाती है।"[167] अन्यत्र इला के मनोमंथन में यह टिप्पणी आई है – "कानून को अपने हाथ में लेनेवाली औरतें क्या करें ? जब मर्दो का जत्था इस कदर बिगड़े सांड़ों का दल बन जाए ? बेटी के रूप में वेश्या बनाई गई लड़की क्या करे जब उसकी खुली देह को नौंचा-खसोटा जाए ? फूलनदेवी। तुमने पैगाम दे दिया कि हौंसला ऐसा होता है। सैक्सुअल तमाशे का हश्र हत्या में गुजरता है। अब इला थाने के कानून को कैसे मानेगी, कैसे निभाएगी ?"[168] इस प्रकार के कई प्रश्नों को उकेरता है उपन्यास।

कई दिनों के बाद जब इला को उसके परिवार में स्वीकृति मिल जाती है और इला के पिता धनंजयसिंह जब अपनी वर्दी वाली बेटी पर फक्र करने लगते हैं तब इला अपने गाँव जाती है कुछ दिनों के लिए। तब मां की बातों के जरिए खाप पंचायतों के मनस्वी क्रूर पैशाचिक फतवों और "ओनर किलिंग" के बहुत से किस्से सामने आते हैं। कई युवक-युवतियों को मौत के घाट उतार दिये जाते हैं। पुलिस-प्रशासन सब उनके साथ होते हैं। इस संदर्भ में स्विटी नामक

एक लड़की का कथन आया है जो चौका देनेवाला है और हमारे तथाकथित लोकतंत्र पर सवालिया निशान करता है – "आइए प्रवीण अग्रवाल साहब, आपका खाप पंचायतों में स्वागत है। घबराईए मत, गर्व कीजिए कि आप भी हरियाणा की मिट्टी की शानदार पैदावार हैं .. धरती से जुड़े लोग ऐसे ही होते हैं, हमारी युवा पीढ़ी को नया ज्ञान हुआ है .. ज्ञात हुआ हैं कि बबली और मनोज के हत्यारों को जिस महिला जज ने फांसी की सजा सुनाई है, उसका आप घोर विरोध करते है .. संस्कृति की रक्षा ऐसे ही होती है साहब। .. अब कैसे कहें कि मै शिल्पी उर्फ स्वीटी, मेरा साथी विजेन्द्र दोनों भगोड़े हैं .. जिन्दगी बचाने का उपाय केवल भगोड़ा बनना रह गया था क्योंकि आप जैसे देश के कर्णधारों के सामने हम अपने नागरिक अधिकारों का जिक्र तक नहीं कर पाएंगे। हम जैसे कितने ही युवक-युवतियाँ है, जिनको वोट देने का अधिकार तो संविधान ने दे दिया, अपने चुनाव का सामाजिक न्याय अब तक नहीं मिला .. लोकतंत्र पर गौर करिए.. अग्रवाल साहब, हमारे इलाके से सांसद के तौर पर ख्याति-पुरूष हैं। पढ़े-लिखे ज्ञानवान माने जाते हैं। आप यह बात तो जानते होंगे कि औरतों की जाति क्या होती है ? कोई जाति नहीं है हमारी। हम पिता की जाति से निकलकर पति की जाति में बिला जाते हैं .. फिर हमें क्यों जाति की सूली पर चढ़ाया जा रहा है ? इसलिए कि हमें सलीब पर लटकाकर जो नुमाइश होगी, उसका आप उद्घाटन करेंगे और आपका जय-जयकार होगा। आपका वोट-बेंक निरंतर बढ़ता जाएगा क्योंकि अकेले कुरूक्षेत्र में कुल जनसंख्या का सत्रह प्रतिशत जाटों (खापों) का गणना अंक है। और शुमार कराइए कि खापों ने कितने कत्ल कराए, कितनी लाशें बिछाईं, कितने शानदार रूप में पेड़ों पर झूलते शव .. हरियाणा के पर्यटन स्थल अपनी श्री सुषमा के लिए देश-विदेश में मशहूर हो गए हैं, अपनी पीठ थपथपाइए।"[169] "जाटों" के ब्रेकेट में "खापों" को रखकर लेखिका ने अपने कथा-चातुर्य को प्रकट किया है।

राजेन्द्र यादव ने "फतवों की दुनिया" नामक अपने संपादकीय में लिखा है – "अजीब बात है कि एक ही क्षेत्र में जाट, गुर्जर और यादव जातियों के शक्तिशाली संगठन हैं। मगर "खाप" जैसी किसी संस्था का नाम इन शेष दोनों जातियों में सुनाई नहीं देता। क्या अब समय नहीं आ गया है कि साहसपूर्वक वोट की राजनीति से ऊपर उठकर इन खापों को समाप्त कर दिया जाए।"[170]

अंततः यह कहना होगा कि पुलिस में इला, समीना, प्रिया, सोमा दीदी, सुशीला दीदी, सुरेन्दर कौर जैसी महिलाएं यदि आ जाएं तो बहुत-सी "बेगुनाह" औरतें "गुनाह" करने से बच जाएं। अभी हाल ही में सुमन नलवा नामक पुलिस-ओफिसर का नाम आया है जो "क्राइम अगेइन्स्ट विमेन सेल" के अंतर्गत महिलाओं को आत्मरक्षा में दक्षता प्राप्त करने के गुर सिखा रही हैं।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरान्त हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं –

(1) मैत्रेयी पुष्पा के औपन्यासिक लेखन का प्रारंभ सन् 1990 में "स्मृतिदंश" नामक उपन्यासिका से हुआ था, जिसका ही कथा-विस्तार हमें "बेतवा" बहती रहीं" (सन् 1993) में मिलता है, किन्तु ये दोनों रचनाएं अति-भावुकता से ग्रसित है। उपन्यास के लिए जिस निर्मम कठोरता की आवश्यकता होती है, विजन और यर्थाथ की पकड़ जो होनी चाहिए, उसके दर्शन हमें सर्वप्रथम "इदन्नमम" (1994) में होते हैं। वस्तुतः यह वही उपन्यास है जिसके द्वारा उपन्यास-साहित्य में मैत्रेयीजी की एक पहचान बनती है।

(2) "इदन्नमम" के उपरान्त मैत्रेयीजी के निम्नलिखित उपन्यास आते है : "चाक" (1997), "झूलानट" (1999), "अल्मा कबूतरी" (2000),

"अगनपाखी" (2001), "विजन" (2002), "कही ईसुरी फाग" (2004), "त्रियाहठ" (2005), "गुनाह-बेगुनाह" (2011) । इस तरह "स्मृतिदंश" को यदि गिना जाय तो अधावधि उनकी ग्यारह औपन्यासिक रचनाएं हमारे सामने आती हैं ।

(3) "इदन्नमम" के उपरान्त उनके औपन्यासिक कौशल का ग्राफ निरंतर ऊपर उठता हुआ गया है । हिन्दी उपन्यास साहित्य का शायद कोई ही समीक्षक होगा जिसने प्रस्तुत उपन्यास की चर्चा न की हो । इस प्रकार उनका अधावधि औपन्यासिक लेखन पन्द्रह-सोलह साल का ठहराता है । इस बीच में उनकी दो आत्मकथाएं भी आयी है -- कस्तूरी कुण्डल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया । "चिन्हार", "गोमा हंसती है", "ललमनियां तथा अन्य कहानियां", पियरी का सपना, प्रतिनिधि कहानियां" आदि कहानी-संग्रह भी इसी बीच आते हैं । "खुली खिड़कियां" तथा "सुनो मालिक सुनो" उनके स्त्री-विमर्श से सम्बद्ध किताबें हैं । इसके अलावा "फाइटर की डायरी" रिपोर्ताज है । अंतिम (अद्यावधि-पर्यन्त) उपन्यास "गुनाह-बेगुनाह" फाइटर की डायरी पर ही आधारित है । पन्द्रह-सोलह साल की अवधि में इतना विपुल साहित्य कइयों को आश्चर्य में डाल देता हैं । परंतु यह तो उनका "जुगाली" का समय हैं । पचास साल के बाद तो उन्होंने लिखना शुरू किया है, अतः जीवनानुभवों के अर्जन का काल उनका बड़ा सुदीर्घ रहा है । जीवनानुभवों की प्राप्ति के उपरान्त परिपक्वावस्था में उनके लेखन का प्रारंभ होता है । दूसरे नौकरीशुदा न होने के कारण भी उन्हें लिखने का अधिक अवकाश मिला है ।

(4) "विजन" को छोड़कर उनके शेष उपन्यास ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित है । "गुनाह-बेगुनाह" में मिश्रित परिवेश है, पर उसमें जिन स्त्रियों को अपराधी के रूप में लाया जाता है वे प्रायः ग्रामीण पृष्ठभूमि से है ।

"विजन" में दिल्ली-आगरा आदि का महानगरीय परिवेश है । "गुनाह-बेगुनाह" को छोड़कर अन्य ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों में बुंदेलखण्ड के ग्रामीण परिवेश को लिया गया है । "गुनाह-बेगुनाह" का देशगत परिवेश हरियाणा का है ।

(5) मैत्रेयी पुष्पा के प्रायः सभी उपन्यास नायिका प्रधान हैं । ऐसा कहा जाता है कि प्रेमचंद अपनी रचनाओं में गाँव की स्त्रियों को लाए हैं, लेकिन मैत्रेयी पुष्पा अपने लेखन में स्त्रियों का गाँव लेकर आयी हैं । "बेतवा बहती रही" की उर्वशी को छोड़कर प्रायः उनके सभी उपन्यासों की नायिकाएँ बड़ी सशक्त, जूझारू, जीजिविषा संपन्न और जीवटवाली रही हैं । यह शक्ति इन नायिकाओं ने संघर्ष के द्वारा प्राप्त की है । इन नायिकाओं में "इदन्नमम" की मंदा, "चाक" की सारंग, झूला नट" की शीलो, "अल्मा कबूतरी" की कदमबाई और अल्मा, "अगनपाखी" की भुवन, "विज़न" की आभा, "कही ईसुरी फाग" की रजऊ, "त्रिया-हठ" की उर्वशी ("बेतवा बहती रही" की उर्वशी का पुनर्पाठ), "गुनाह-बेगुनाह" की इला आदि नायिकाओं को हिन्दी उपन्यास का पाठक अपने स्मृति-कोश में रखना जरूर चाहेगा ।

(6) मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का कालगत परिवेश स्वाधीनता के उपरान्त लगभग सातवें-आठवें दशक के बाद का है । लेखिका ने बाबरी-मस्जिद-ध्वंश और उसके दुष्परिणाम (इदन्नमम), गाँवों में पनपती गन्दी घिनौनी संकीर्ण राजनीति (इदन्नमम, चाक) जमीन-जायदाद के झगड़े (इदन्नमम, चाक, झूला-नट, त्रिया-हठ), सन् २००२ का गुजरात-नरसंहार (कही ईसुरी फाग), मेडिकल-जगत की विसंगतियां (विज़न), स्त्रियों पर होनेवाले अत्याचार, बलात्कार, जलात्कार, हत्याएं, घरेलू हिंसा, खाप पंचायतों के अमानवीय फतवे (इदन्नमम,

चाक, बेतवा बहती रही, झूला नट, त्रिया-हठ, अगनपाखी, विजन, गुनाह-बेगुनाह) इत्यादि का चित्रण यथास्थान किया है ।

(7) परिवेश की दृष्टि से उनके निम्नलिखित उपन्यास अलग पड़ते है – विज़न, अल्मा कबूतरी, कही ईसुरी फाग, गुनाह-बेगुनाह । विजन का परिवेश महानगरीय है और उसमें मेडिकल जगत की कुछ विसंगतियों को उकेरा गया है । "अल्मा कबूतरी" में बुंदेलखण्ड की कबूतरा जाति के जीवन-संघर्ष और उनके मानवीय अधिकारों को केन्द्रस्थ रखा गया है, कही ईसुरी फाग का कालगत परिवेश विस्तृत है । उसमें सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम की घटनाओं से लेकर गुजरात के गोधरा-कांड तक की घटनाओं को समेटा गया है । "गुनाह-बेगुनाह" में हरियाणा के परिवेश को चित्रित किया गया है ।

(8) मैत्रेयीजी का नारी-विमर्श स्त्री बनाम पुरूष वाला नहीं हैं । वह दोनों में बराबरी की पक्षकार हैं । स्त्री दासी या सेविका न होकर सच्ची जीवन-सहचरी बने यही उनकी मंशा रहती है । हर प्रकार के दमन, अत्याचार, अन्याय और शोषण के खिलाफ उनका लेखन है । उन्हें मानवीय मूल्यों और धर्म-निरपेक्ष मूल्यों (सेक्यूलरीज़म) की दरकार है ।

(9) योनि-शुचिता और सती विषयक उनके ख्याल भी दकियानुस प्रकार के नहीं है । उनके यहाँ संघर्षकामी और जीवन के संकटों से जुझने वाली स्त्री ही सती है । योनि-शुचिता के परंपरागत मूल्यों को भी वह नकारती हैं" । माना कि बलात्कार एक धिनौना अपराध है । असंदिग्धतया वह नारी का अपमान है, परंतु स्त्री को इससे ऊपर उठना चाहिए । बलात्कृत होने के बावजूद इदन्नमम की मंदा अपनी शक्ति और संघर्ष से अपनी एक पहचान बनाती है । समाज में बलात्कारी व्यक्ति को धिक्कारा जाना चाहिए, न कि बलात्कृत स्त्री को । उनके लिए यौन-मुक्त का अर्थ यौन

स्वेच्छाचार नहीं है । स्त्री की परिवार-प्रतिबद्धता को वह भी स्वीकार करती हैं, परंतु उसमें किंचित् से विस्खलन को वह ज्यादा तरजीह नहीं देती । यौन वंचिता स्त्री के यौनाधिकार को भी वह अंगीकृत करती हैं । कुसुमा भाभी और शीलो इसके उदाहरण है । स्त्री-पुरुष के संयोग-चित्रों में उन्होंने संकेतात्मक शैली का निर्वाह किया है । इस प्रकार के चित्र उनके उपन्यासों में प्रायः मिलते हैं ।

(10) उनके उपन्यासों में लोकभाषा, लोकगीत, लोक-नाट्य, फाग-गान-परंपरा इत्यादि का निर्वाह उपलब्ध होता है । शादी ब्याह या तीज-त्यौहारों मे गाए जाने वाले गीत की परंपरा उनके उपन्यासों में मिलती है । उनकी स्त्रियाँ प्रायः ग्रामीण हैं, जो गाती-गुनगुनाती है । सम्प्रति लखनऊ में संपन्न "असहमति के स्वर : लोकतंत्र और कथा-साहित्य" की एक संगोष्ठी में प्रथम सत्र की अध्यक्षता करते हुए मैत्रेयीजी ने कहा था : "असहमतियों का जीता-जागता उदाहरण स्त्रियाँ हैं । जब कथा साह्त्यि नहीं था तब से वह अपनी असहमतियाँ लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती आ रही है ।" (प्रस्तुति- मनोजकुमार वर्मा, हंस-दिसम्बर-2012, पृ. 89) अतः प्रायः सभी उपन्यासों में लोगगीतों की उपस्थिति हमें मिलती है ।

(11) मैत्रेयीजी का औपन्यासिक शिल्प संश्लिष्ट और जटिल होता है । कथा कहीं भी "ए टु झेड" नहीं चलती । अनेक स्थानों पर अधोमुखी कथा-प्रवाह दृष्टिगोचर होता है । पूर्व-दीप्ति, स्वप्न, प्रसंग-सहचयन, शब्द-सहचयन आदि के सहारे उनकी कथा आगे-पीछे चलती रहती है । अतः पाठक को बहुत ही सजग रहना पड़ता है । पत्र, डायरी, रिपोर्ताज, संस्मरण, निबंध आदि अन्य काव्यरूपों का प्रयोग भी उनके उपन्यासों में

मिलता है । इस तरह वस्तु और शिल्प उभय दृष्टि से मैत्रेयीजी के उपन्यास महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय बन जाते हैं ।

===== x x x x =====

:: सन्दर्भानुक्रम ::

(1) दृष्टव्य : "स्त्री-लेखन : स्वप्न और संकल्प" : डा. रोहिणी अग्रवाल : पृ. २०२-२४० :

(2) दृष्टव्य : "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : संपादक-दया दीक्षित : पृ. ३०३ ।

(3) वही : लेख-प्रकाश उदय : पृ. ५० ।

(4) आओ पेपे घर चलें : प्रभा खेतान : पृ. ३५ ।

(5) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : लेख - डा. वेदप्रकाश अमिताभ पृ. ४६ ।

(6) त्यागपत्र : जैनेन्द्र : संस्करण – १८८१ : पृ. ८ ।

(7) बेतवा बहती रही : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. १४२ ।

(8) उग्रतारा : नागार्जुन : पृ. ४२ ।

(9) और (10) : बेतवा बहती रही : पृ. क्रमशः ३४, ३२ ।

(11) "मैत्रेयी पुष्पा : सत्य और तथ्य" : लेख-डा. वेदप्रकाश अमिताभ : पृ. ४७-४८ ।

(12) मानसमाला : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. ३५ ।

(13) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : लेख-प्रकाश उदय : पृ. ५२ ।

(14) कुछ विचार : प्रेमचंद : पृ. ४६ ।

(15) "हिन्दी की उपन्यास-त्रयी : राग दरबारी, मुझे चांद चाहिए तथा काशी का अस्सी - का भाषिक-संरचना की दृष्टि से अध्ययन" डा. पूरबी पारूकान्त देसाई (शोध-प्रबंध : म.स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा) पृ. ११५ ।

(16) इदन्नममः मैत्रेयी पुष्पा : पृ. २१७ ।

(17) वही : पृ. २१८ ।

(18) दृष्टव्य : आधुनिक हिन्दी उपन्यास : खण्ड-२ : सं. डा. नामवर सिंह : पृ. ।

(19) और (20) : इदन्नमम : पृ. क्रमशः ४२४, ४१५ ।

(21) से (25) : दृष्टव्य : वही : पृ. क्रमशः

(26) : इदन्नमम : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. १०५ (27) वही : पृ. १०७

(28) दृष्टव्य : वही : पृ. २१६ । (29) वही : पृ.

(30) से (32) : दृष्टव्य – वही : पृ. क्रमशः २४६, ३१३, १७३-४२४ ।

(33) दृष्टव्य : वही : पृ. ।

(34) वही : द्वितीय मुखपृष्ठ से ।

(35) हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा. गोपालराय : पृ. ३८७ ।

(36) हिन्दी के अधुनातम नारी उपन्यास : डा. इन्दुप्रकाश पाण्डेय : पृ. ७५ ।

(37) आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. १३९ ।

(38) हिन्दी उपन्यास की दिशाएं : डा. वेदप्रकाश अमिताभ : पृ. १७५

(39) वही : पृ. १७८ ।

(40) दृष्टव्य : मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य : पृ. ५७

(41) से (44) : चाक : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. क्रमशः २५, २५, २८, २८।

(45) दृष्टव्य : "हिन्दी उपन्यास साहित्य की परंपरा में साठोत्तारी उपन्यास" : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. २२०।

(46) और (47) : चाक : पृ. क्रमश : ३३, ४१।

(48) सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. ७२।

(49) से (51) : दृष्टव्य : चाक : पृ. क्रमशः १२३, ३२४, ९९।

(52) दृष्टव्य : "हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन : "डा. मनीषा ठक्कर : पृ. २३४-२३५।

(53) और (54) : दृष्टव्य : चाक : पृ. क्रमशः १०३-१०४, १०४।

(55) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : मधुरेश : पृ. ६१।

(56) चाक : पृ. १०४।

(57) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : उदयन वाजपेयी : पृ. ६४

(58) चाक : द्वितीय मुखपृष्ठ से।

(59) ज्ञानरंजन : द्वितीय मुखपृष्ठ से।

(60) सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. ६२।

(61) झूला नट : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. ६२-६३।

(62) दृष्टव्य : झूलानट : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. ६३।

(63) दृष्टव्य : डा. सुमा वी. राव तथा डा. शोभा यशवंते : ग्रन्थ क्रमशः मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में मानवीय संवेदना" और "मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में नारी-जीवन"।

(64) दृष्टव्य : झूलानट : पृ. ७४।

(65) से (69) : झूलानट : पृ. क्रमशः १०८, ११२, ११३, ११३११३, ७२-७३ ।

(70) मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में मानवीय संवेदना : डा. सुमा वी. राव : पृ. १३० ।

(71) झूलानट : भूमिका से ।

(72) वही : पृ. ८४ ।

(73) दृष्टव्य : "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य : पृ. ३२-३६ ।

(74) उपरिवत् : पृ. ३२ ।

(75) हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा. गोपालराय : पृ. ३८८-३८९

(76) दृष्टव्य : चिंतनिका : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. १०९ ।

(77) हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा. गोपालराय : पृ. ३९०

(78) दृष्टव्य : गुडिया भीतर गुडिया : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. २७९

(79) अल्मा कबूतरी : मैत्रेयी पुष्पा : द्वितीय मुखपृष्ठ से ।

(80) See : Writers at work, First series (1958) P. 60

(81) दृष्टव्य : अल्मा कबूतरी : पृ. १०३ ।

(82) हिन्दी उपन्यास का इतिहास : पृ. ३९० ।

(83) दृष्टव्य : डा. रोहिणी अग्रवाल : "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : पृ. ३९-४३ ।

(84) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : पृ. ३८९ ।

(85) वही : पृ. ३८९ ।

(86) अल्मा कबूतरी : पृ. १०४ – १०५ ।

(87) डा. रोहिणी अग्रवाल : "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : पृ. ४२ ।

(88) दृष्टव्य : "हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन : डा. बी.के. कलासवा : पृ. २२१-२५४ ।

(89) गुड़िया भीतर गुड़िया : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. २७९-२८० ।

(90) वही : पृ. २८२

(91) दृष्टव्य : अगनपाखी : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. ५३ ।

(92) दृष्टव्य : सुश्री अनंत विजय : मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य : पृ. ६४ ।

(93) से (96) : अगनपाखी : पृ. क्रमशः १७५, १०१-१०२, ७, ७ ।

(97) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : लेख-स्त्री अस्मिता के सती और संपत्ति : डा. अनंत विजय : पृ. ६८ ।

(98) वही : पृ. क्रमशः ६९-७१, ७१-७६ ।

(99) अगनपाखी : भूमिका – पुनर्नवा : पृ. ५ – ६ ।

(100) Compct Oxford reference Dictionary : Pg. 943

(101) आधुनिक हिन्दी कालजयी साहित्य : डा. अर्जुन चव्हाण : पृ. २०२ ।

(102) और (103) वही : पृ. क्रमशः २०२, २०२ ।

(104) विज़न : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. ३३ ।

(105) से (108) : विज़न : पृ. क्रमशः १७१, २१२, ८५, १७५ ।

(109) आधुनिक हिन्दी कालजयी साहित्य : डा. अर्जुन चव्हाण : पृ. २०४ ।

(110) सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. ८७ ।

(111) कही ईसुरी फाग : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. ३३६ ।

(112) से (113) : वही : पृ. क्रमशः ३३८, ३३८ ।

(114) दृष्टव्य : लेख - जितेन्द्र श्रीवास्तव : "अपने मन जैसा जीवन जीने की लालसा : हंस-नवम्बर-२००४ : पृ. ९२ ।

(115) दृष्टव्य : कही ईसुरी फाग : पृ. १५ ।

(116) वही : प्रथम मुखपृष्ठ से ।

(117) डा. रवीन्द्र त्रिपाठी : लेख - सर्जक से आगे सृजन : हंस : नवम्बर : २००४ : पृ. ९० ।

(118) कही ईसुरी फाग : लेखकीय वक्तव्य से ।

(119) से (121) वही : पृ. क्रमशः २६१, ३०६ – ३०७ ।

(122) लेख - “अपने मन जैसा जीवन जीने की लालसा : जितेन्द्र श्रीवास्तव : हंस : नवम्बर-२००४ : पृ. ९३ ।

(123) कही ईसुरी फाग : पृ.

(124) “१२२” के अनुसार : पृ. ९३ ।

(125) दृष्टव्य : डा. रोहिणी अग्रवाल : “स्त्री-लेखन : स्वप्न और संकल्प” : पृ. ३०५ ।

(126) कही ईसुरी फाग : लेखकीय वक्तव्य से ।

(127) वही : दूसरे मुखपृष्ठ से ।

(128) वही : पृ. ५४ ।

(129) कविता : “त्रिया हठ” का सच ” : हंस : सितम्बर-२००६ : पृ. ८९ ।

(130) त्रिया-हठ : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. १७० ।

(131) दृष्टव्य : वही : पृ. १७ ।

(132) कविता – “१२९” के अनुसार : पृ. ९० ।

(133) उदृत द्वारा : डा. अनिला पटेल : “हिन्दी महिला कथाकारों के साहित्य में नारी-विमर्श : संपादक द्वय – डा. दिलीप मेहरा तथा डा. प्रतीक्षा पटेल, पृ. २०८ ।

(134) से (137) : त्रिया-हठ : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. क्रमश : ११८, ११८, १२९, १४४

(138) हंस : सितम्बर-२००६ : पृ. ९०

(139) प्रकाशकीय वक्तव्य : गुनाह-बेगुनाह : मैत्रेयी पुष्पा : प्रथम फ्लेप से ।

(140) वही

(141) गुनाह-बेगुनाह : पृ. १८२ :

(142) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : लेख - "फाइटर की डायरी के बहाने कुछ जरूरी सवाल" : राकेश बिहारी : पृ. २५७ ।

(143) हंस : सितम्बर-२०११ : आलेख - "उन लड़कियों को सलाम" सुरेश पंडित : पृ. ७५ ।

(144) वही : पृ. ७५

(145) "मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य" : पृ. २५७ ।

(146) दृष्टव्य : हंस : सितम्बर-२०११ : पृ. ७५ ।

(147) से (153) : गुनाह-बेगुनाह : पृ. क्रमशः ११, १४१, २८१, २८१, ६६, ७८, ७७ ।

(154) देखिए संदर्भ टिप्पणी नं. १४१ अथवा "गुनाह-बेगुनाह" पृ. १८२ ।

(155) दृष्टव्य : पृ. ३४, ५६, १२४, २५१ ।

(156) से (165) : गुनाह-बेगुनाह : पृ. क्रमशः २७, ३१, ३७, ५५, ७५, ८७-९०, १०३, १३६-१३७, २७७, २०९ ।

(166) से (169) : वही : पृ. क्रमशः २६१, २८२, २१६, १७५-१७६ ।

(170) हंस : दिसम्बर-२०१२ : पृ. ३ ।

===== x x x x =====

षष्ठ अध्याय

आत्मकथाओं के प्ररिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यासों का विश्लेषण एवम मूल्यांकन

: षष्ठ अध्याय :

: आत्मकथाओं के प्ररिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यासों का विश्लेषण एवम मूल्यांकन :

प्रास्ताविक :

मेरे शोध-प्रबंध का विषय है – "मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन ।" मैत्रेयीजी ने अपनी आत्मकथा को दो खण्ड़ों में लिखा है - कस्तूरी कुण्डल बसै और गुड़िया भीतर गुड़िया । "प्रथम आत्मकथा में मैत्रेयीजी ने अपनी माता कस्तूरी के जीवन-संघर्ष को आलेखित किया है । आधी-पौनी आत्मकथा तो उसीमें निकल जाती है, परंतु उसके साथ ही मैत्रेयीजी ने अपने शैशव और शिक्षाकाल तथा विवाह और उसके बाद मैत्रेयी के प्रथम पुत्री के जन्म तक की कथा को आकलित किया है । पुत्री-प्रसव पर आसपास जुटी स्त्रियों में किसीने टिप्पणी की – रेंढ़ा लौंडिया हुई है । लेखिका की टिप्पणी है – "थाली नहीं बजी, तवा बजा - एक लोमहर्षक ध्वनी उठकर डूब गई ।[1]"

यह आत्मकथा कुल 332 पृष्ठों की है । दूसरी आत्मकथा है – "गुड़िया भीतर गुड़िया"। वह 352 पृष्ठों में उपन्यस्त हुई है । समय सन् 1972 का है, जहाँ से आत्मकथा का यह दूसरा खण्ड शुरु होता है । डाक्टर साहब अलीगढ़ से दिल्ली आ जाते हैं । साथ में मैत्रेयीजी भी । साहित्य का एक विस्तृत आकाश यहाँ उनकी प्रतीक्षा कर रहा है । इसमें मैत्रेयीजी ने अपने साहित्यिक संघर्ष की कथा कही है । "स्मृतिदंश" औपन्यासिका से प्रारंभ करके सन् 2008 तक की साहित्यिक-यात्रा इसमें निरुपित है । सन् 1972 से सन् 1990 – अठारह वर्ष । साहित्यक अनुभवों को अर्जित करने का समय है । उसके बाद के अठारह वर्ष साहित्य के एक के बाद एक शिखर वह सर करती गई हैं । अनेक साहित्यक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त करती गई, साथ ही अनेको की ईर्ष्या और हसद की शिकार भी । राजेन्द्र यादव की बीमारी और उसमें डाक्टर साहब – मैत्रेयीजी के पति - की तीमारदारी के साथ कथा विरमती है । मैत्रेयीजी नानी बन गई हैं । बेटी के भी बेटी है – वासवदत्ता, जो दिल्ली के किसी पब्लिक-स्कूल में पढ़ती है ।[2] मैत्रेयीजी अपनी साहित्यक-यात्रा में इतना आगे बढ़ गई है

। राजेन्द्र यादव उनके सम्बन्ध में लिखते है – “अगर मैं कहता हूँ कि स्वतंत्रता के बाद रांगेय राघव और फणीश्वरनाथ रेणु के साथ मैत्रेयी तीसरा नाम है, जो कथा-साहित्य में धूमकेतु की तरह आया है। तो, न तो किसी पर एहसान करता हूँ, न नए नक्षत्र की खोज का श्रेय लेना चाहता हूँ। सिर्फ उस लेखन से जुड़ना चाहता हूँ, जो हिन्दी के संकुचित फलक का विस्तार कर रहा है” ।[3] यह राजेन्द्र यादव ने कहा था अपनी पत्रिका “हंस” में । तो अशोक वाजपेयी “जनसत्ता” में लिखते हैं – “दिल्ली से झांसी और उरई की यात्रा। ... यात्रा के दौरान एक बात तो यह समझ में आई कि मैत्रेयी पुष्पा को बुंदेलखण्ड़ में अपने लेखक के रूप में व्यापक मान्यता मिली है । हमने उनका घर-गांव आदि भी देखे और वे स्थान भी, जो उनके उपन्यासों में आए है” ।[4] इन दोनों के उदाहरण हमने इसलिए दिए हैं कि एक यदि समाजवादी सोच रखता है तो दूसरा कलावादी या व्यक्तिवादी । परंतु दूसरी और कम समय में विपुल साहित्य-सृजन को लेकर कौआ-रौर भी मची हुई है। अनेक महिला लेखिकाएं भी उनके “कीचड़-उछाल” कार्यक्रम में लगी हुई हैं। कदाचित् इसीलिए राजेन्द्र यादव को कहना पड़ा – “डाक्टरनी, आज समज लो और हमेशा के लिए गांठ बांध लो, जो ऊल-जूलूल बक रहे हैं, वे तुम्हारे प्रतिद्वन्दी है। उन्हें न तुम्हारे रुप-रंग से कुछ लेना-देना है, और न तुम्हारे और मेरे सम्बन्धों की पड़ताल से । उन्हें बस भय है तुम्हारे लेखन से। कहूं कि एकदम नये और महत्वपूर्ण लेखन से। और धुंआधार अनवरत लेखन से। मैत्रेयी, हम जिसको लाख कोशिशों के बाद भी अपने काबू में नहीं कर पाते, उसके बारे में झूठी-सच्ची कहानियां प्रचारित करते हैं। स्त्री हो तो उसे अश्लील और बदचलन कहना बड़ा आसान हो जाता है । तुम लिखने से बाज नहीं आओगी और नए बिन्दु तलाशती जाओगी, तुम्हारी “सहेलियां”, तुम्हें जिंदा न छोड़े तो ताज्जुब क्या है ? “सुन रही हो न ?...” रही बात मेरे और तुम्हारे सम्बन्ध की, बहुत सोचा अपने रिश्ते को क्या नाम दूं ? क्या हम आपस में ऐसे नहीं, जैसे कृष्ण और द्रौपदी रहे होगें ? बहुत आत्मीयता, बहुत भरोशा और सेक्स का लेशमात्र नहीं” ।[5] तो प्रस्तुत अध्याय में हमने यह दिखाने का यत्न किया है, कि किस तरह मैत्रेयीजी के उपन्यासों में अनेक जीवनानुभव गूथित-अनुगूथित हुए हैं । उपर्युक्त आत्मकथाओं में वर्णित जीवन-संघर्ष में, उसमे रसे-बसे जीवनानुभव ने किस तरह उनकें सृजन के पिण्ड़ को तैयार किया है। ये जीवनानुभव की पूंजी उन्हें

उनकीं सृजन-यात्रा में किस कदर सहायक हुई है। थोड़े से वर्षो में मैत्रेयीजी ऐसे-ऐसे बृहदकाय उपन्यास कैसे लिख गई उसका उत्तर भी हमें यहा मिलता नज़र आ रहा है। लेखक दो तरह के होते हैं, एक तो वह, जो जैसे-जैसे अनुभव प्राप्त करते है, वैसे-वैसे उन अनुभव को अपने उपन्यासों और कहानियों में ढालते जाते हैं। प्रेमचंद नागार्जुन, मटियानी आदि लेखक इस कोटि में आते हैं। परंतु लेखक की एक दूसरी कोटि भी होती है। अर्जित जो पहले तो अनुभवो का अर्जन करते हैं और उसके बाद सृजन की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। रेणु और मैत्रेयी इस दूसरी कोटि में आते हैं। जिन्हें पशुपालन का अनुभव होगा वह जानते हैं कि पशु - गाय, भैंस इत्यादि – पहले तो खूब सारा खा लेते हैं और फिर बाद में अवकाश के समय में उस खाये हुए की जुगाली करते हैं। मुझे मालूम है यह प्रक्रिया, क्योंकि मैं यादव-कन्या हूं और मैत्रेयी भी आधी तो यादव-कन्या हैं ही। तो इस कैटेगरी के लेखकों का सृजन जुगाली के रूप में होता है। मैत्रेयीजी का बहुत-सारा लेखन इस प्रकार की जुगाली का लेखन है। हां इधर वह नये अनुभवों की तलाश में भी रहती है। उनकें उपन्यासों में "विज़न" तथा "गुनाह-बेगुनाह" जैसे उपन्यास, या "अल्मा कबूतरी" या कही ईसुरी फाग "जैसे उपन्यास उनके बाद के अनुभव और अध्यवसाय पर आधारित हैं।

प्रस्तुत अध्याय में हमने यह विश्लेषित करने का प्रयास किया है कि उपन्यासों में निरुपित देशकाल या परिवेश या वातावरण तथा चरित्र और घटनाएं किस तरह उनके औपन्यासिक लेखन में प्रतिबिंबित हुई हैं। आत्मकथाओं में जिया हुआ उनका जीवन उन्हें उनके औपन्यासिक सृजन में किस तरह काम आया है। पहले अनुभव प्राप्त करना, फिर उसे अभ्यास की खराद पर चढ़ाना और फिर कलात्मक लेखन के क्षेत्र में आना, यह एक प्रक्रिया है, जिसे मैत्रेयीजी ने अंगीकृत किया है। और ऐसे लेखक फिर दूसरों की तुलना में कम समय में विपुल की रचना कर सकते हैं क्योंकि "कच्चा माल" तो उनके पास है ही। ठीक यही बात शोध-अनुसंधान में भी होती है। कुछ अनुसंधित्सु जैसे-जैसे पढ़ते जाते है, साथ ही साथ लिखते भी जाते है; कुछ ऐसे भी होते हैं जो पहले पढ़ते और नोट्स तैयार करते है फिर लेखन में जुड़ जाते हैं। और तब एक मुश्त में सारा काम हो जाता है। मैत्रेयीजी ने कम सालों में इतने विपुल साहित्य की रचना कैसे की। इसका प्रत्युत्तर भी यही है। प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं सब मुद्दों और बिन्दुओं पर अपना ध्यान केन्द्रित

करेंगे । तृतीय और चतुर्थ अध्याय में हम क्रमशः “कस्तूरी कुण्डल बसै” और “गुड़िया भीतर गुड़िया” पर विस्तृत विवेचना कर चुके हैं, तथापि यहाँ बहुत संक्षेप में उनके विहंगावलोकन का उपक्रम है ।

(अ) कस्तूरी कुण्डल बसै :

“कस्तूरी कुण्डल बसै” भारतीय नारी की दो पीढ़ियों की कारागार-मुक्ति की कारगर कथा है । भारतीय नारी पर कारागार की जो दीवारें हैं उनमें से कुछ दीवारों को कस्तूरी (मैंत्रेयीजी की माताजी) तोड़ती है । स्त्री को शिक्षा का अधिकार, संपत्ति में हिस्से का अधिकार, पुरुष की भांति नौकरी या व्यवसाय करके आत्मनिर्भर होकर स्वामिमान से जीने का अधिकार, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ना जैसी दीवारों को कस्तूरी अपने लौह-निर्णय से तोड़ती हैं । यह पहली पीढ़ी की लड़ाई है । परंतु इन दीवारों को ढहाने में कुछ मनोवैज्ञानिक दीवारों को खड़ी करने का काम भी कस्तूरी करती हैं । माँ द्वारा रचित कारागार की दीवारों को ढहाने का काम मैत्रेयी करती हैं । अपने इस संघर्ष में कस्तूरी पुरुष और प्रणय विद्वेषिनी हो जाती है । कस्तूरी की इस मानसिकता की तुलना हम पश्चिम की नारी-मुक्ति आंदोलन से कर सकते हैं, जहाँ स्त्री पुरुष को अपना प्रतिपक्षी और विरोधी मानती है । परिणामस्वरुप मैत्रेयी के किशोर और युवावस्था में वह निषेधों की एक दीवार-सी खड़ी कर देती है । वस्तुतः मुक्ति पुरुष से नहीं पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था से होनी चाहिए, पुरुष की अनौचित्यपूर्ण सत्ता से होना चाहिए, उन परंपराओं और रुढियों से होना चाहिए जो स्त्री को उसके मानवीय अधिकारों से वंचित करती हैं और उसे दोयम दर्जा देती है, मुक्ति पुरुष की आत्मदया से होनी चाहिए, हीन-भावना से होनी चाहिए और इस कारा को तोड़ने का काम मैंत्रेयी करती है । वह पुरुषों से विद्वेष नहीं रखती है । बल्कि स्त्री की जैविक आवश्यकताओं को समझते हुए पुरुष की आवश्यकता पर तवज्जो देती है । वह विवाह और प्रणय के विरोध में नही है । वह ऐसे पुरुष की कामना करती हैं जो स्त्री को बराबरी का दर्जा दे । स्त्री-पुरुष में बराबरी और दोस्ती की वह पैरोकार है और यह बात उनकी इस आत्मकथा और उपन्यासों में भी दिखती है ।

डा. सरजूप्रसाद मिश्र ने “कस्तूरी कुण्डल बसै” की समीक्षा करते हुए निष्कर्ष रुप में कहा है - “कस्तूरी कुण्डल बसै” में मां - बेटी के व्यक्तित्वों के द्वन्द बखूबी चित्रित है । इस द्वन्द का मनोवैज्ञानिक आधार बहुत स्पष्ट है । अपने वैवाहिक जीवन में कस्तूरी ने नाममात्र को भी सुख नहीं पाया । विकट

संघर्षो से गुजरकर वह निष्कर्ष पर पहुंची कि पुरुष के कारण ही नारी की जिन्दगी नरक बनी हुई है। वैवाहिक जीवन से वह नफरत करती है। जबकि प्रेम और विवाह उसकी जवान बेटी की स्वाभाविक आवश्यकता है। वह स्वयं को अपनी बेटी समक्ष आदर्श के रुप में प्रस्तुत करना चाहती है। बेटी को गृहस्थ जीवन में आकर्षण है इसलिए वह विवाहेच्छुक है। नौकरी के कारण वह बेटी को दूसरों के यहाँ रखती है। वह भूल जाती हैं कि पुरुष की गिद्ध निगाहे हरदम उसकी बेटी की अस्मत पर रहती है। कस्तूरी अपनी बेटी की स्वाभाविक इच्छाओं को समझकर उसके साथ उचित न्याय नहीं कर पाती है। बेटी का मां के प्रति सम्बन्ध घृणा और प्रेम का है।"[6] इस प्रकार विवाह और नौकरी में मां कस्तूरी नौकरी को प्राथमिकता देती है। वह चाहती हैं कि बेटी मैत्रेयी खूब पढ़े और अफसर बने, लेकिन लाख प्रयत्न करने पर भी जब कस्तूरी अपनी बेटी को विवाह-विरुद्ध नहीं कर सकती तब वह उसके लिए वर की खोज शुरु करती है। पर उसमें भी उसका आग्रह हैं कि वह किसीको फूटी कौडी दहेज के रुप में नहीं देगी। लड़की की शैक्षिक योग्यता को देखकर कोई लड़का यदि उसका हाथ मांगता है तो उसे आपत्ति नहीं होगी। इस तरह अन्ततः अलीगढ़ के डाक्टर शर्मा से मैत्रेयीजी का विवाह संपन्न हो जाता है। अब आत्मकथा की कुछेक प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करना चाहेंगे।

1. कस्तूरी के जन्म की कथा – यह सतमासी तब जन्मी थी, जब बड़ा बेटा मरा था। सत्यानाशिनी का जन्म ही एक जंजाल बन गया। पेट में मांने पसेरी मार ली थी, वह फिर भी नहीं मरी। पैदा होते ही भंगिन से फ्किवाई जा रही थी कि अभागी रो पड़ी। मां को दया आ गयी। मां का मानना था कि संसार में औरत के मुकाबले सख्त-जान और कोई नहीं। कहावत भी है - गाय मरे अभागे की, बेटी मरे सुभागे की।[7]
2. लगान वसूली के लिए अंग्रेजी शासन में अधिकारियों तथा जमीनदार के कारिन्दों का अत्याचार पूर्ण रवैया। लगान न भरने पर कोड़ो की मार खानी पड़ती थी। कुर्की-निलामी से लगान की भरपाई न हो तो जमीनदार अफसर से मिलकर किसानों की बुरी तरह से पिटाई करवाते थे। और अपनों पर जुल्म को एवजी में अफसर तथा जमीनदार तरक्की और इनाम-खिताब पाते थे।[8]

3. कस्तूरी का ब्याह - कस्तूरी विवाह नहीं करना चाहती थी क्योंकि बचपन से ही उसके मन में सती होने का डर बैठ गया था। इस पर मां और भाभी के व्यंग्यबाण और गालियां झेलनी पड़ती है। मां और भाभी का मानना था कि बेटी धान का पौंधा होती है, जिसे समय रहते दूसरी जगह रोप देना ही अच्छा है। पर कस्तूरी का विवाह, विवाह नहीं सौदा था। भाभी के गहनों और लगान-वसूली के लिए उसे आठ सौ रुपये कलदार में बेचा गया था।[9]

4. राधा भाभी का किस्सा – भूख के मारे रोटी खा लेने पर मारे डर के लोटा लेकर खेतों की ओर निकल गई थी क्योंकि सास ने उसे खाते देख लिया था। सवेरे दूसरे गांव का धोबी उसे अपने संग लेकर आया और उसने कसम खाकर कहा कि राधा भाभी उसके लिए बहन के समान है, पर सास ने हरजाई कहते हुए जीभ पर गर्म चिमटा दगवाया। जबान बन्द हो गयी। महीनों तड़पती रही और अन्ततः मर गई।[10]

5. मैत्रेयी का जन्म-मैत्रेयी का जन्म 30 नवम्बर 1944 को, अलीगढ जिले के सिकुर्रा गांव में हुआ था। नाम तो पुष्पा रखा गया पर पिता हीरालाल ने उसका नाम रखा मैत्रेयी। जब बच्ची का जन्म हुआ तब हीरालाल बीमार थे। कहने लगे कि ग्रह-नक्षत्रों ने रास्ता दिया। क्रिद्धि-सिद्धि साथ हो लिये। पंडितजी ने यही कहा था न ? और यही हमने देखा, हमारे घर में अन्न और दूध कि सारे गांव में अमन चैन ! मैत्रेयी आयी है हमारे घर। बीमार आदमी से क्या कहती कस्तूरी नहीं कह पाई कि अमन-चैन क्यों है ? फसलें क्यों अच्छी हुई ? जानवर क्यों दूध देने लगे ? इसलिए कि अब कहीं आजादी की आहट सुनाई पड़ रही है। गोरों का कोड़ा ढीला हो गया है। गांधीजी का आंदोलन रंग ला रहा है। मैत्रेयी के जन्म के बाद हीरालाल मोतीझला की बीमारी में तड़प-तड़प कर, बाय में अनाप-शनाप बकते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है।[11]

6. कस्तूरी का पढ़ने जाना – आज़ादी के बाद देश के नेताओं का सूत्र-वाक्य-स्त्री-शिक्षा और विधवा कस्तूरी के जीवन ने भी करवट ली। ढाई कोस चलकर इगलास किताब-कापी भरा बस्ता लिए-लिए कस्तूरी जाने लगी। उसके इस दुस्साहस में साथ दिया ससुर मेंवाराम ने।[12]

7. चन्दना का गीत – मैत्रेयी पढ़ने जाती है, पर ध्यान उसका पढ़ने में कम और दूसरी बातों में ज्यादा रहता है। उन्हीं दिनों मैत्रेयी का संग गांव की बूढ़ी पुरोहितानी खेरापतिन से होता है। खेरापतिन दादी उसे चंदना का गीत सुनाती है। ब्याही चंदना सुनार के लड़के से प्रेम करने लगती है और उसीके कारण कुंवरजी द्वारा मार दी जाती है। कस्तूरी चाहती है कि पुष्पा खेरापतिन से दूर रहे, पर उतना ही ज्यादा वह उनसे और उनके गीतों से जुडती जाती है।[13]

8. चमार के लडके एदल्ला से मैत्रेयी की दोस्ती – जाटों और ठाकुरों के बच्चे एदल्ला से बोझा उठवाते, अपना बस्ता उठवाते यह मैत्रेयी को अच्छा नहीं लगता था, अतः एदल्ला से उसकी घनिष्टता बढ़ती गई।[14]

9. कस्तूरी का सरकारी नौकरी में लगना-रामावातार चाचा जो पास के गांव के अध्यापक थे, उनके प्रयत्नों से कस्तूरी को सरकारी नौकरी मिलती है। इस प्रकार वह गांव की स्त्रियों के लिए एक नजीर (उदाहरण) बन जाती है। रामावतार चाचा के कारण ही मैत्रेयी का परिचय "नवभारत टाइम्स" से होता है।[15]

10. कस्तूरी के ससुर और मैत्रेयी के बाबा (दादा) मेवाराम की मृत्यु – रुढ़ि-परंपरा का विचार न करते हुए बाबा ने कहा था कि उनका क्रिया-कर्म और श्राद्ध उनकी पोती करेगी और वही उनकी जायदाद की वारिस भी होगी।[16]

11. ग्राम-सेविका के रुप में कस्तूरी की पहली पोस्टिंग जिला झांसी में होती है। अतः मैत्रेयी को अलीगढ़ में पढ़ाई के लिए रखा जाता है। पहले संयोजिका के घर उसके ठहरने का प्रबंध किया जाता है, लेकिन वहाँ एक जवान लड़के का त्रास था। दूसरे घर पर रखा तो एक बूढ़ा परेशान करने लगा।[17]

12. अन्य घटनाएं : कस्तूरी और मैत्रेयी के कुरीतियों के प्रति आक्रोश के भाव, मैत्रेयी को लेकर कस्तूरी की निराशा, उसे भी महिला-विकास की नौकरी में लगवा देना, कस्तूरी और गौरा के बीच के सजातीय सम्बन्धों के संकेतात्मक चित्र, कस्तूरी और मैत्रेयी के विवाह के सम्बंन्ध में परस्पर विपरीत विचार, आजादी के बाद में कुछ परिवर्तन ;[18] मैत्रेयी के

वर की खोज को लेकर कस्तूरी की परेशानियां कथासरित्सागर की शेर पर विराजमान लड़के की कहानी से प्रेरित होना, अद्रू के नगलावाले अयोध्याप्रसाद का अपने एंजीनियर बेटे के लिए राजी होना पर दहेज की बात के कारण बात का न बनना, अंततः कस्तूरी की ननद विधा के प्रयत्नों से अलीगढ़ के डाक्टर का रिश्ता मिलना जो कस्तूरी की ही तरह कुण्डली नहीं उपाधि-पत्रों में मानता था ;[19] डाक्टर की मैत्रेयी से सगाई, अलीगढ़ से मैत्रेयी पर डाक्टर का तार, तार की बात से ही आतंक का फैलना, मैत्रेयी की उलझन- डाक्टर के आने का आनंद भी और अपनी पिंजड़ेनुमा कोठरी में ठहराने की चिन्ता भी, नन्ही की कहानी, रघुवीर काछी उर्फ पोलेबाबा की कहानी, नंदकिशोर से मुलाकात की कहानी, कालेज की लड़कियों का मैत्रेयी से दुर्व्यवहार, छात्र-नेता मदन मानव से दोस्ती और उसके चुनाव-प्रचार में मैत्रेयी का सहयोग, अंग्रेजी भाषा का डर, जादूनाथ के बाड़े की औरतों पर मैत्रेयी की व्यंग्य कविता जिसके कारण ही उसे बाड़ा छोड़ना पड़ा था और उपर्युक्त पिंजड़ेनुमा कोठरी में आना पड़ा था, राज-कुमारी का अपने हक के लिए लड़ना, बिछड़े हुए साथी के लिए कविता लिखना, कालेज में आकर पढ़ाई का असली अर्थ समझना, आलमआरा के बुर्का छोड़ने पर उसे बेइज्जत करना, आज की तथाकथित सुशिक्षित स्त्रियों पर मैत्रेयी का कटाक्ष, निशि की आत्महत्या (विधुर से विवाह करवाने की विवशता से प्रेरित) मैत्रेयी की महिला-मंगल की सेवादारिनियों से चिढ़, मैत्रेयी का संस्कृत एसोशिएशन की सेक्रेटरी होना, मैत्रेयी का मानना कि लड़कियों को भी राजनीति से सरोकार रखना चाहिए, चीमनसिंह यादव के बेटे युवराज और रतनसिंह मैत्रेयी के मुंहबोले भाई, रतनसिंह के संदर्भ में यादवों में बालविवाह की चर्चा, मैत्रेयी के विवाह को लेकर उपाध्यायजी का चिढ़ना, इस संदर्भ में उपाध्यायजी के विचार, खाप-पंचायतों की अमानवीय हरकतें, सल्लो की कहानी, शकुन की त्रासदी कि स्वंय पति द्वारा उससे धंप करवाना, शकुन के आदमी प्रभुदयाल की कहानी, युवराज की सहायता से प्रभुदयाल की मदद करने का मैत्रेयी का प्रयास, अलीगढ़ डाक्टर को तार भेजना कि "मेरा पत्र मिलने के बाद ही आना";[20] कस्तूरी का विचार कि मैत्रेयी की शादी सिकुर्रा से ही की जाए जबकि गांव के बनिये भगवान-दास का परामर्श कि शादी शहर से

हो जिससे कस्तूरी को कर्ज लेना पड़े और उसका फायदा हो, सिकुर्रा के नम्बरदार का उदार चरित्र शादी में बारिश के कारण विघ्न, विधाबुआ और मैत्रेयी की भाभी के बीच वाक्‌युद्ध, कलावती चाची और लौंगसिरी बीबी के गाली गीत, हबीबन को लेकर कस्तूरी का जातिवादी कट्टरता पर झगड़ पड़ना, कस्तूरी के विद्रोह को लेकर औरतो में झगड़ा, कस्तूरी द्वारा माफी मांगना, मैत्रेयी के आगे अपनी भड़ास निकालना, कलावती चाची और मामी के बीच झड़प, बारात का आगमन, किसी शरारती लडके द्वारा घोड़ी की पूंछ को मरोड देना, अनिष्ट का होते-होते बचना, परंपरगत रुढ़ियों को लेकर कस्तूरी का अड़जाना, मैत्रेयी का विवाह सिकुर्रा में परंपरा-तोड़ विवाह, बिना दहेज-मिलने की शादी का राम-राम करके संपन्न होना ।[21]

13. दुनियां की माओं से उल्टी कस्तूरी की हिदायतें, डाक्टर और मैत्रेयी के प्रथम मिलन का सांकेतिक वर्णन, संभोग-क्रिया में मैत्रेयी की ही पहल, विपरीत रति द्वारा संपन्न, डाक्टर का पहले खुश होना पर फिर मर्दवादी सोच के कारण मैत्रेयी को लेकर संशय के चक्रव्यूह में फंसना, डाक्टर का बीमार हो जाना, माताजी द्वारा लिबउआ भेजना, मैत्रेयी का पगफेरे के लिए कस्तूरी के पास आना, जेवर-गहनों को लेकर चलने की मैत्रेयी की जिद जबकि दूसरी ओर माताजी का पत्र कि वह गेहने-जेवर न लावें, बहू की उल्टी रीत से ससुरालवाले चकित कि मां से बिदाई के वक्त मैत्रेयी रोई नहीं थी और अब ससुराल से पीहर जाते हुए रो रही है ।[22]

14. छः महीने तक जब कोई लेने नहीं आया तब मैत्रेयी का चिंतित होना, डाक्टर का अजीब व्यवहार कभी लाड़ बरसाना तो कभी गुस्से में बरस पड़ना, डाक्टर के विचार की मैत्रेयी स्त्री की तरह रहे और उसमें लज्जा, सहनशीलता और त्याग जैसे भावों की प्रधानता रहे, मदन मानव द्वारा मैत्रेयी को पत्र लिखने के लिए प्रेरित करना, डाक्टर का आना, कस्तूरी का प्रसन्न होना, कस्तूरी का अपने दामाद के प्रति लगाव, दामाद द्वारा माताजी को प्रसन्न करने के प्रयत्न, कस्तूरी के लाख प्रयत्नों के बावजूद बेशरम होकर डाक्टर- मैत्रेयी का मिलन संपन्न होकर रहता है, मैत्रेयी द्वारा मां को कोसना, डाक्टर द्वारा माताजी को समझने का प्रयास और उनमें अपनी मां की छवि को देखना, कस्तूरी

डाक्टर के साथ मैत्रेयी को नहीं भेजती, डाक्टर का लौट जाना, मैत्रेयी का गर्भवती होना, कस्तूरी को यह पसंद न आना, कस्तूरी द्वारा परिवार-नियोजन के साधनो की प्रशंसा, मैत्रेयी द्वारा पत्र लिखकर डाक्टर को सूचित करना ।[23]

15. संयोजिका और सुबोध बाबू का प्रेमिका और प्रेमी का रिश्ता, सुबोध बाबू की औरत द्वारा माताजी की चोटी पकड़ना, कस्तूरी के सूई के दर्द का पांव तक आ जाना । पति के लिए मैत्रेयी का ऊहापोह, गर्भवती होते हुए भी मैत्रेयी का मां कस्तूरी को देखने जाना, मुख्यमंत्री द्वारा कस्तूरी के विभाग को बन्द करवाना, मुख्यमंत्री की उल्टी अप्रगतिवादी सोच, कस्तूरी की नारीवादी सोच, नेताओ की मर्दवादी सोच पर कस्तूरी के व्यंग्य, आजादी के बाद मोहभंग, प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को कस्तूरी द्वारा मेंमो भेजना, महिला-प्रधानमंत्री से भी कस्तूरी का मोहभंग, कस्तूरी का महिला-मंगल को लेकर आक्रोश, अहिंसा-विषयक गांधीजी के विचार मैत्रेयी का पुत्री-प्रसव, औरतों की जली-कटी बातें, मैत्रेयी की लड़की भी सतमासी, कस्तूरी द्वारा मैत्रेयी को कहना कि व्रत मत रखना वह सबसे बड़ा पाखंड है, बीमारी के बाबजूद कस्तूरी का महिला-मंगल आंदोलन में कूद पड़ना और जेल जाना, कस्तूरी की थैली में हथगोले रखकर उसे फंसाने का षडयंत्र, मैत्रेयी का मां के लिए दुःखी होना, कस्तूरी को छुड़ाने के लिए डाक्टर के प्रयास, नम्बर-दार, रामावतार, चरनसिंह आदि का भी लखनऊ आना, मैत्रेयी को यह अहसास होना कि मानो कस्तूरी पलंग के पास आकर बैठ गई हो और उसे एक से दो और अब दो से तीन होने की संतुष्टि हो रही है मानो उसके घर का कारागार टूट रहा है ।[24]

इस तरह कस्तूरी के विवाह से शुरु होकर मैत्रेयी के पुत्री-प्रसव तक की घटनाओं को प्रस्तुत आत्मकथा में संजोया गया है ।

"कस्तूरी कुण्डल बसै" में अभिव्यक्त कुछ विचार-सूत्र :

1. "पहलेपहल मैत्रेयी को आश्‍चर्य हुआ था कि सभ्य-शिक्षित दिखनेवाली इन महिलाओं को न अखबार में दिलचस्पी, न किताबों से कोई मतलब... मगर ये पढ़ी-लिखी हैं । अब समझ में आया उनका तो आनंदलोक अलग है - कपड़े, गहनें, उम्दा खानें, अच्छे घर के साथ

नौकर-बान्दी । पढ़ाई की सनदों का हासिल, यह सब, कम तो नहीं ? साथ ही तो जान छिड़कनेवाला पति और वात्सल्य के आधार बच्चे । इस खजाने के आगे अपनी जिन्दगी का क्या मोल ? कितना सुन्दर संसार है । न सवाल, न जवाब, कैसी शान्त दुनिया है ।"[25] (जदूनाथ के बाड़े की औरतों को लेकर व्यग्य)

2. "बच्चे देने की मशीन में तब्दील हो जाना है तुम्हें ? जिन्दगीभर सिर नहीं उठा पाओगी । बच्चों का पालन और पति की खिदमत, यही तो स्त्री-धर्म माना गया है । तुम्हारी शिक्षा का यही मतलब निकलता है तो फिर इस मुहल्ले की अनपढ़ औरतें क्या बुरी हैं ? उम्मीद थी कि तुम यहाँ की अनपढ़ स्त्रियों को उनकी दशा के प्रति सचेत करोगी । औरत की बात औरत जल्दी समझ सकती है न ?"[26] (उपाध्यायजी की सीख और लगभग इसी प्रकार विचार रखती है कस्तूरी भी)

3. "लाली, चल तेरी खातिर कुछ न किया, पर यह तो किया । नहीं तो गंगाजल की बूंदों से क्या हर आदमी पवित्र हो जाता है ? मुसलमान से हिन्दू हो जाता है ? हिन्दू से ब्राह्मण जैसा पूजनीय ।"[27] (मैत्रेयी की शादी में कस्तूरी का झुकना । जातिवादी के खिलाफ कस्तूरी के विचार ।)

4. "लाली, ब्याह तो हो गया, पर तू नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना । पांव-फांव मत पूजना किसीके भी । सुन ले कि रोटी छुआई की रस्म नहीं तुझे चूल्हे चौके से बांधने का महूरत निकलेगा । साफ मना कर देना । तेरी कुछ किताबें मैंने अटैची में रखी थीं, अटैची टूट गयी । रेशमी साडियों का वजन साधने वाली नाजूक अटैची भला किताबों का बोझ सह सकती थीं ? मेरी भी मत मारी गई । ले चाबी, लोहे के बक्से में तेरी किताबे हैं । बस मेरी तो मां के नाते इतनी ही कहावत है कि सिंगार-पटार में मत लगी रहना । तुझे बड़ा शौक है बिन्दी-महावर का । अलीगढ़ यूनिवर्सिटी जाना । देखना कि पी.एच.डी. बात बनेगी या नहीं ?"[28] (कस्तूरी की बातें मैत्रेयी को बिदाई के समय । कहना न होगा कि ऐसे अवसरों पर मांए इससे विपरीत प्रकार की सीख ही देती है । इससे कस्तूरी की मानसिक ऊंचाइयों का पता चलता है ।)

5. “मैत्रेयी को ऐसे कई दृश्य याद आये, जो उसकी स्मृतियों में घटित हो चुके थे और गांव में लोकप्रिय कामकला के उदाहरण थे। कुछ न सोचा फिर पिया को आनंदलोक में खींच लिया। वे खिंच भी आए, क्योंकि सचमुच आनंद पा रहे थे। सारी पर्देदारियों से मुक्त होकर जो आदिम दृश्य बना, उसमें थल नहीं जल-ही जल था। जल की तरंगें उल्टी थीं। उलटी लहरों की बात ने बिसात पलट दी। श्रृंखला की कड़ियां टूटीं। प्रियतम चकराए, मगर लड़की चकराने का मौका दे तब न ? लहरों पर लहरें चली आईं। सिलसिला बीच में टूटे तो भंवर पड़ जाएगा, यह बात डाक्टर ने भी समझ ली।”[29] (प्रथम मिलन का सांकेतिक वर्णन। हमारे यहाँ प्रायः शुरुआत पुरुष से होती है, परंतु यहाँ उलटी धारा बहती है। श्रृंखला की कड़ियों के टूट ने की जो बात कही है वह इसी संदर्भ में है। ऐसे में प्रायः पुरुष स्त्री को चरित्रहीन मान बैठता है।)

6. “कैसा अच्छा जमाना है, कैसी सहूलियतें हैं कि औरत के सारे बन्धन कट गए। बेचारी कभी पेट में बच्चे पालती, कभी गोद में गोद का बड़ा न होता, तब तक फिर पेट में आ जाता। चालीस की होते-होते देह झोला हो जाती और बच्चा जनने में एक दिन खत्म हो जाती। यही थी औरत की कहानी। मैं तो कहती हूं कि इस जमाने ने स्त्री की आज़ादी की शुरुआत कर दी, अब बच्चे-कुच्चे क्या महत्व रखते हैं, उसकी इच्छा पर निर्भर रहेगा। जनने-पालने के चक्कर से छूटेगी, अपने लिए कुछ सोचेगी। लाचारी से मुक्त होना ही तो ताकतवर बनना है।”[30] नये जमाने के बारे में कस्तूरी के विचार। प्रायः स्त्रियां और पोंगा-पंडित जब इस जमाने को कलियुग कहकर कोसते हैं, वहाँ कस्तूरी इस नये युग का स्वागत करती है और उसे स्त्री-मुक्ति की मुहिम से जोड़ती है।

7. “लाली, तू तो यह बता कि देश आजाद किसने मान लिया ? औरतों की आजादी तो गुलाम पड़ी है। बस मर्दो का आजाद होना देश का आजाद होना है ? स्वतंत्रता संग्राम में औरतों ने लाठियाँ खायी, अस्मत लुटाई, उनकी स्वतंत्रता कब आएगी ? वे तो तुमने भी गायों की तरह लाठियों से हांक दीं और खूटों से बांध दीं। अब उनका रस्सा कौन खोले ?”[31] (कस्तूरी के विचार, दूसरी ओर प्रदेश का मुख्यमंत्री स्त्रियों के बदले पुरुषों को नौकरी देने के पक्ष में था।)

8. "लाली, हम औरतों ने अपने हाथों अपने पांव कुल्हाड़ी मारी है। सजने-संवरने का शौक औरतों से ज्यादा किसीको नहीं, यह बात आदमी तो क्या चिड़िया-कौआ भी जानते हैं। चूड़ी, बिछिया, मेहंदी, महावर पा गई तो समझ लो जहान का राजपाट मिल गया। हमने तो साथियों से कहा, जाओ खूब सिंगार करो। सिंगार से तुम्हारा पेट नहीं भरता। दफ्तर में भी रंगी पुती, चमकती-दमकती आती हो, जैसे काम नहीं करना, नाचना है।"[31] (कस्तूरी के नारीवादी विचार)

9. "भई, बड़े चालबाज निकले ये तो। देश आजाद होते ही आंखे बदल दीं। गद्दियां, कुर्सियाँ संभालते ही राजा हो गए। तमाम राजा-महाराजा अपना-अपना फरमान लिए चले आ रहे हैं। रिआया औरत जात, थोड़ा-बहुत देकर बहला दो। दूसरा कहता है, दिए हुए को छीनकर औकात दिखा दो। औरत घर में रहे, आज्ञा ढोए, सेवा करे, बेटे पैदा करती जाए। तब ये हमारे ऊपर अहसान करेंगे। औरतों के बेटों को रोजगार देंगे। बस, मर्द होना ही योग्यता है, उसके आगे औरत की तमाम जरुरतें कहां ठहरती है ?"[32] (आजादी के बाद की स्थितियों पर कस्तूरी का आक्रोश)

10. मनुष्य के रुप में अगर सबसे कठिन, चुनौती भरी जिन्दगी को पाया है तो स्त्री ने या कुदरत को ही उससे बैर था ? या कि सृष्टि के कर्ता-धर्ता की ही कोई साजिश..... मादा बनाने के बाद मादा होने की सजा का नाम औरत धर दिया। क्योंकि साथ में दिमाग-दिल और विवेक भी दे दिया।"[33] (तुलनीय-औरत होने की सजा अरविन्द जैन या "औरत के हक में – तस्लीमा नसरीन। मैत्रेयी के पुत्री-प्रसव पर औरतों की जली-कटी बातो को लेकर।)

11. "लाली, सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपने हिसाब से आदमी रिवाजों को मानता है, उससे बात नहीं बनती तो धर्म-शास्त्रों का सहारा लेता है, वहाँ भी विश्वास नहीं जमता तो गुरु-पैगम्बर खोजता है और जब कहीं पेश नहीं जाती तो अपनी अन्तरात्मा ही खंगालता है, जो उसका आखिरी आसरा है।"[34] (कस्तूरी के विचार धर्म और शास्त्रों के बारे में)

<u>(आ) गुड़िया भीतर गुड़िया :</u>

"कस्तूरी कुण्डल बसै" के प्रकाशन के समय मैत्रेयी शायद पेशोपेश में थी कि उसे उपन्यास कहें या आपबीती ? इसका उल्लेख पुस्तक के प्रांरभ में

संक्षिप्त भूमिका के रुप में उन्होंने किया भी है ।[35] परंतु "गुड़िया भीतर गुड़िया" के संदर्भ में तो उन्होंने शीर्षक देकर कोष्ठक में स्पष्ट लिखा है कि यह आत्मकथा ही है । प्रथम में कस्तूरी के साथ-साथ और उसके समानान्तर मैत्रेयी की कथा है परंतु प्रस्तुत आत्मकथा में मैत्रेयी की अपनी बात केन्द्र में आ गयी है । पर शायद अब कस्तूरी मैत्रेयी के भीतर आ गयी है । तभी तो उसका शीर्षक है - गुड़िया भीतर गुड़िया । प्रारंभिक निवेदन में मैत्रेयीजी लिखती हैं – "मैं तो पहले ही मां के सपनों को रौंदती हुई वैवाहिक जीवन चुनकर खुद उनसे अलग हुई थी । मक़सद भी साफ था एक पुरुष साथी मिलने से मेरे रात दिन सुरक्षित हो जाएंगे । मैं अपने आचरण से पत्नि लेकिन मानसिक स्तर पर जो दखल देने लगती, वह कौन थी ? कौन थी वह जो धीरे-धीरे मुझे विवाह-संस्था से विरकत करती हुई..... मैं आसपास देखती किस-किस ने तो मेरी दृष्टि बदली और दृष्टिकोण पलटकर रख दिया ? शायद वह मां थी जो परोक्ष रूप से मेरा रास्ता परिवर्तनकामी लोगों की ओर ले गई ।[36] "मुझे किसने बिगाडा ?" शीर्षक लेख पहले "हंस" में आता था । यदि मैत्रेयीजी ऐसा लेख लिखे तो उनको बिगाड़ने वालों की सूची में "माताजी" (कस्तूरी) का नाम शायद सबसे ऊपर रहे ।

मैत्रेयीजी में अन्याय और अत्याचार के खिलाफ जो आक्रोश है, रीति-रिवाजों को लेकर जो ऊहापोह है, स्त्री-पुरुष गैर-बराबरी के प्रति आक्रमक रवैया है, ये सब शायद उनको माताजी से मिला है । स्वाधीनता के बाद "महिला-मंगल" का आंदोलन विफल । कर दिया है । राजनीतिक और प्रशासनिक कार्यालयों से "ग्राम-सेविका" और "सहायक विकास अधिकारी" (महिला) जैसे पद खारिज कर दिए जाते हैं । "महिला-मंगल" की महिला कर्मचारियों को प्रशिक्षित करके स्वास्थ्य-विभाग में नियुक्त किया जाता है । मैत्रेयीजी ने निवेदन में लिखा है कि - "ट्रेनिंग पाकर माताजी जिस-जिस पी.एच.सी. केन्द्र पर रहीं, वहाँ के डोक्टरों और कम्पाउंडरों के लिए आंख के कांटे के रुप में रहीं, क्योंकि सरकारी दवाएं इंजेक्शन और परिवार-नियोजन के उपकरण तथा केसों के मामले में गड़बड़ी माताजी को चैन नहीं लगने देती थी ।"[३७] और ये ही सब काम मैत्रेयीजी अब अपने लेखन के द्वारा कर रही हैं । माताजी उनको बड़ा अफसर बनाना चाहती थीं, पर मैत्रेयीजी अब जो बन गई हैं उन पर माताजी जरुर गर्व करतीं । प्रस्तुत आत्मकथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में इस दूसरी मैत्रेयी के बनने की कहानी मुख्य है ।

डा.सरजूप्रसाद मिश्र ने प्रस्तुत आत्मकथा की समालोचना करते हुए लिखा है - “गुड़िया भीतर गुड़िया” का रहस्य अब खुलता है । घर-गृहस्थी के बंधे दायरे को तोड़कर अपनी रचनात्मकता (साहित्य लेखन) को विकसित करती नारी । मैत्रेयीने साहसपूर्वक लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन किया तभी वह अपने समय पर अपनी छाप छोड़ पाई – “यदि मैंने अपने भीतर सुकुमारता को तोड़ न दिया होता तो सचमुच में मैं आज मनमोहिनी गुड़िया का अनुपम रुप होती । लेकिन मैं सोचकर आश्वस्त होती हूं कि गुड़िया की छवि तोड़ डालने से ज्यादा मुझे कहीं मुक्ति नहीं । हां, इस टूटने का रुप अगनपांखी के राख हो जाने जैसा है ।”(पृ.246) नारी-विमर्श के प्रवक्ता कुछ भी कहें मैत्रेयी ने भारतीय नारी के जीवन-यथार्थ को थोड़े-से शब्दों में बांध दिया है - “भारतीय स्त्री को न आर्थिक आत्मनिर्भरता सुखी कर सकती है न चेतना-संपन्नता उसकी सहायक हो सकती है । बस उसे पारंपरिक कर्मकाण्ड सुखी और सुरक्षित रखने की गारंटी देते हैं । (पृ.247)[38]

प्रस्तुत आत्मकथा से ज्ञात होता है कि मैत्रेयीजी का साहित्य-लेखन ४५ वर्ष की आयु के बाद शुरु होता है । आज लेखन के क्षेत्र में उनकी उपलब्धि है उसका श्रेय उनकी बेटीयों को जाता है । पहले वह अपनी बेटियों के स्कूल मैगेजिन के लिए कविता लेख इत्यादि लिख दिया करती थीं । अब वे ही बेटियां मां से आग्रह कर रही थी कि वह अपने नाम से अपने लिए लिखें । बेटी नम्रता “आखिर क्यों” फिल्म का कैसेट ले आइ जिसमें स्मिता पाटील ने एक संघर्षशील लेखिका का किरदार निभाया है । उन दिनो में साप्ताहिक हिन्दुस्तान में कहानी-प्रतियोगिता का एक विज्ञापन छपा था । उस “प्रेमकहानी-प्रतियोगिता” के लिए मैत्रेयी कहानी लिखती है । नम्रता अपनी डायरी में लिखती है हमारा एफ्र्ट सक्सेसफुल रहा । (पृ.162) लेकिन वह कहानी स्वीकृत नहीं हुई । “सारिका” से भी कहानी वापस आयी । इस प्रयत्न के उपक्रम में साप्ताहिक के सह-सम्पादक से कुछ सम्बन्ध बनता है जिसके फल-स्वरुप 8-अप्रैल-1990 का मैत्रेयी की पहली कहानी “आक्षेप” साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित होती है । उन्ही दिनों में लेखिका का सम्पर्क मन्नू भंडारी से होता है जो उन्हे राजेन्द्र यादव तक पहुंचाती है । हंस के लिए मैत्रेयी कहानियाँ लिखती हैं । लगातार पांच कहानियों के अस्वीकृत होने पर चकबन्दी के अनुभवों पर आधृत “सेंध” कहानी “हंस” में “जमीन अपनी अपनी” शीर्षक से प्रकाशित होती है । स्वयं राजेन्द्र यादव मन्नू भंडारी के साथ हंस के उस अंक को लेकर मैत्रेयी के यहाँ

आते हैं। मानों साहित्य की दुनिया में मैत्रेयी इस कहानी से "सेंध" लगा ही देती है।

फिर तो लेखिका एक के बाद एक शिखर सर करती जाती है और जितनी मजबूत, पक्की, मुकम्मल निर्मम और कठोर वह स्वयं होती हैं उनके उपन्यासों की नायिकाएं भी उतनी ही सशक्त और जोरदार होती जाती हैं। "बेतवा बहती रही" की उर्वशी में भावुकता का छेद लेखिका नहीं उड़ा पायी है, क्योंकि स्वयं भी उसी प्रकार की स्थितियों से गुजर रही थीं। सन 1994 के "पुस्तक मेले" के अवसर पर "इदन्नमम" प्रकाशित होती है। लेखिका का दावा है कि उसके सात ड्राफ्ट बनाए थे। डा. निर्मला जैन ने इस उपन्यास को मैत्रेयी की लम्बी छलांग कहा है, तो सुधीश पचौरी उसे "अधूरी अहीर कथा" के रुप में देखते हैं।[40] राजेन्द्र यादव, सदी के शिखर समीक्षक डा. नामवरसिंह, धर्मवीर भारती, विष्णु प्रभाकर, मन्नू भण्डारी, उषा पियंवदा, गिरिराज किशोर, डा. परमांनद श्रीवास्तव आदि विद्वान और समीक्षक उपन्यास की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं। उपन्यास को दक्षिण का नंजनागुडू तिरूमा-लम्बा पुरस्कार, फैसला कहानी को कथा-पुरस्कार चिन्हार कहानी-संग्रह को हिन्दी अकादमी द्वारा कृति-सम्मान प्राप्त होता है।[41] परंतु इन उपलब्धियों के बाद "गोडमधर" से मैत्रेयी के सम्बन्ध बिगड़ जाते है। गुड़िया भीतर गुड़िया में कहीं भी यह "गोडमधर" कौन है उसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता है, परंतु अभी पिछले साल (सन् 2011) श्री एस.डी.पटेल आर्टस-कोमर्स कोलेज, आंकलाव में हुई एक संगोष्ठी में मेरे एक प्रश्न के उत्तर में उन्होने यह स्पष्ट किया कि वह गोडमधर चित्रा मुद्गल है।

गुड़िया भीतर गुड़िया का प्रकाशन सन् 2008 में हुआ है और उसमें "अल्मा कबूतरी "कही ईसुरी फाग" तथा "खुली खिड़कियाँ" (स्त्री-विमर्श की पुस्तक) तक की रचनाओं का उल्लेख है।[42] कम समय में विपुल साहित्य की रचना और कई सारे साहित्यिक पुरस्कारों और सम्मानों के कारण लेखिकाओं का ही एक ग्रुप मैत्रेयी की न केवल कटु आलोचना करता है बल्कि कई अनर्गल और अश्लील प्रकार की टीका-टिप्पणी भी करने से बाज नहीं आता है। इनमें डा.निर्मला जैन, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, चंन्द्रकान्ता, कमलकुमार, नासिरा शर्मा आदि का उल्लेख कर सकते हैं। ये लेखिकाएं मैत्रेयी को दोयम या तृतियम् दरजे की लेखिका मानती हैं, तो दूसरी तरफ राजेन्द्र यादव,

कमलेश्वर, परमांनद श्रीवास्तव, डा.मैनेजर पाण्डेय, डा.विजयबहादुर सिंह, डा.वीरेन्द्र यादव, मधुरेश, डा.रोहिणी अग्रवाल जैसे कई विद्वान और समीक्षक मैत्रेयी के साहित्य की भूरी-भूरी प्रंशसा करते हैं ।[43] एक प्रश्न यह भी होता है कि यदि मैत्रेयी बड़ी लेखिका नहीं है तो उन्हें इतने सारे पुरस्कार और सम्मान कैसे मिल गये ?

डा.सरजूप्रसाद मिश्र ने प्रस्तुत आत्मकथा के संदर्भ में कहा है । "गुड़िया भीतर गुड़िया" की लेखिका पर कबीर और निर्गुण काव्य-धारा का बहुत प्रभाव परिलक्षित होता है । अध्यायों के शीर्षक कबीर काव्य की पंक्तियो पर आधारित हैं । मां एवं पति के प्रति विरोध एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति द्वारा वे अपने पाठकों तक यह संदेश पहुंचाना चाहती हैं कि वे अपनी नायिकाओं की तरह ही पुरुष-सत्ता के प्रति विद्रोहिणी हैं । डा.शर्मा को सारंग (चाक की नायिका) और मैत्रेयी में साम्य दिखाई देता है - "बात यह है मेरी जान किताब की सारंग, सारंग नहीं लगती, मुझे वह तुम लगती हो, एकदम तुम" (पृ.251) दाम्पत्य-जीवन में जो समझबूझ और समायोजन जरुरी है, वह लेखिका और डा.शर्मा के पास है । तभी सम्बन्ध विच्छेद की नौबत नहीं आती है - "मेरे और डाक्टर साहब के बीच सम्बन्धों में जितनी कडुआहट आती है, हम उतनी ही शिद्दत से एक-दूसरे को क्षमा करते चले जाते हैं । (पृ.300) मैत्रेयी की रचनात्मक्ता लेखन ही नहीं गृहस्थ-जीवन के संतुलन में भी सक्रिय दिखाई देती है ।"[44]

"गुड़िया भीतर गुड़िया" की प्रमुख घटनाओं में हम निम्नलिखित का शुमार कर सकते हैं - डा.शर्मा की दिल्ली की एम्स में नियुक्ति होना, डा.शर्मा द्वारा मैत्रेयी को आधुनिक बनाने का प्रयत्न, मैत्रेयी का डा. सिध्धार्थ के प्रति लगाव, डा.शर्मा के अन्तर्द्वन्द और अन्तर्विरोध, डा.रेखा अग्रवाल से पी-एच.डी. गाईड के संदर्भ में मिलना डा.अग्रवाल की सलाह कि मैत्रेयी लिंग्विस्टिक का कोई कोर्स करे, पति द्वारा इण्टरव्यूकाल के लेटर को छिपा देना, इल्माना नामक मुस्लिम महिला के परिचय में आना, मैत्रेयी का एम्स के डाक्टरों की पत्नियों से मेलजोल, उनकी तरह-तरह की गोशिप, इल्माना के जरिये मुस्लिम औरतों की स्थिति को जानना, इल्माना से सम्बन्ध तोड़ने के लिए पति द्वारा बढ़ता दबाव, नम्रता और माहिता की पढ़ाई की और ध्यान देने की सलाह, १९७१ का बांग्लादेश का युद्ध, डा.अहमद और डा.रिजवी के प्रति एम्स के डाक्टरों का भेदभावपूर्ण व्यवहार, युद्ध के कारण एम्स के परिसर में साम्प्रदायिक विचारों का भड़कना, अविश्वसनीयता का वातावरण युद्ध के कारण दिलों में

दरार का आना, मैत्रेयी और इल्माना के सम्बन्धों पर भी असर, इन्दिरा गांधी द्वारा इमरजन्सी की घोषणा, राजनीतिक मोहभंग "मीसा का कानून, जबरदस्ती नसबंदी का प्रोग्राम रेणु द्वारा पद्मश्री का खिताब लौटा देना, रेणु की जेल यात्रा, सन् 1977 में रेणु का महाप्रयाण, सबसे छोटी बेटी सुजाता का सवाल – "मैं लड़के की उम्मीद में लड़की पैदा हुई थी न ?" सुजाता के सवाल से यादों के प्रकोष्ठों का खुलना और बेटे-बेटी को लेकर मैत्रेयी के मन का ऊहापोह, दूसरी बेटी मोहिता का जन्म "एम्स" में ही हुआ था इसलिए अलीगढ़ वाली फजीहत से मैत्रेयी बच गई थी, मैत्रेयी के पति डा.रमेशचन्द्र का सिकुर्रा जाना, गांव के लोगों और पंचो द्वारा उनको दूसरे ब्याह के लिए उकसाना क्योंकि मैत्रेयी ने तीन पुत्रियाँ दी थीं, पुत्र नहीं पर डाक्टर का अपनी बात पर दृढ़ रहना और इस पर कस्तूरी का प्रसन्न होना, पूर्वदीप्ति द्वारा मैत्रेयी की गुरुकुल शिक्षा का वर्णन, मैत्रेयी की तीनों बेटीयों का डाक्टर होना। "बेतवा बहती रही", "इदन्नमम", "चिन्हार" आदि का प्रकाशन, किसी भी पुस्तक को कस्तूरी को समर्पित न करना, 10 जून 1997 को कस्तूरी की मृत्यु "एम्स" में, डा.सुभाष (दामाद) ही उनको एम्स ले गए थे। जिस दामाद ने शुरु से आखिर तक उन्हें सिर-माथे रखा वे ही सामाजिक विधान के चलते उन्हें कन्धा नहीं दे पाए, (क्योंकि दामाद कन्धा नहीं देते) चुपके से डाक्टर द्वारा कुछ फूल चुनकर अकेले जाकर गंगा में बहा आये यह कहते हुए कि रिवाज तोड़कर उन्होंने माताजी का सच्चा तर्पण किया है, अपनी जमीन-जायदाद बचाने के चक्कर में मैत्रेयी कस्तूरी का शोक भी नहीं मना पाती है इस बात को लेकर नम्रता की अपनी मां मैत्रेयी से नाराजगी, तब तक में "चाक" और "झूलानट" के प्रकाशन की सूचना इन सब घटनाओं के बाद तृषावंत जो होयेगा..... "वाले अध्याय में मैत्रेयी पुनः पूर्वदीप्ति का सहारा लेते हुए बेटियों के आग्रह पर मैत्रेयी के साहित्य-प्रवेश की बात करती है जिन्हें हम पहले निर्दिष्ट कर चुके हैं।

कालक्रमिकता आत्मकथा का एक आवश्यक अंग है, परंतु मैत्रेयी जीने इनका सर्वथा उल्लंघन अनेक बार किया है। "शब्द-सहचयन" और "प्रसंग-सहचयन" की प्रयुक्तियों द्वारा कई बार वह कथा का आगा-पीछा करती हैं। अभिप्राय यह कि स्वरुप आत्मकथा है, परंतु लेखिका ने औपन्यासिक शिल्प का सहारा लिया है या उस शिल्प पर उनकी हथौटी है ऐसा कह सकते हैं। पति के प्रयत्नों से "लकीरें" कविता-संग्रह वहाँ छपता है जहाँ शादी-ब्याह के कार्ड आदि छपवाये जाते है।[45] कविता पर रमानाथ अवस्थी या बच्चन का प्रभाव था

। उससे मैत्रेयी का साहित्य-जगत में कुछ नहीं बना। लड़कियों का आग्रह कि वह कहानी या उपन्यास लिखें। इस संदर्भ में रामश्री चाची और रामावतार चाचा तथा कृष्णावतार चाचा की बात आती है कि किस प्रकार कृष्णावतार चाचा अपनी ही भौजाई पर बलात्कार करवाता था जिसके चलते रामश्री चाची एक दिन उसकी हत्या कर देती है। रामश्री चाची इन लड़कियों की चचेरी नानी लगती है। वह कितनी माया-ममतामयी थी वह बात सरदारखां वाले प्रसंग से सामने आती है कि किस तरह चाची पराए बच्चों को पालती-पोषती है।[४६] प्रेम-कहानी प्रतियोगिता के संदर्भ में उस पहले प्रेमपत्र का जिक्र जो पुष्पा को किसी लड़के ने लिखा था जब वह चौदह-पन्द्रह साल की थीं और बाद में उसका जिक्र ख्याति-प्राप्त लेखिका मैत्रेयी ने बुंदेलखण्ड कालेज झांसी के अपने व्याख्यान में किया था जब उन्हें अतिथि-विशेष के रुप में आंमत्रित किया गया था।[47] चकबंदी वाले तहसीलदार नायब साहब का तबादला मैत्रेयी के पत्र के कारण ही हुआ था और उससे नाराज होने के बदले उन्होंने कहा था कि मुन्नी लिखती रहना, तुम अच्छे-अच्छों की छुट्टी कर दोगी।[48] उसके बाद पुष्पा का एक सहपाठी से प्रेम-लगाव का किस्सा और उस पर बहु का आश्वासन।[49]

मनोहरश्याम जोशी, मृणाल पाण्डे आदि के उल्लेख, इल्माना की सलाह कि मैत्रेयी सह-सम्पादक से सम्बन्ध जरुर रखे, सोना-रुपा रैस्ट्राँ में सह-संपादक को मिलने जाना, 8 अप्रैल 1990 में "साप्ताहिक हिन्दुस्तान में कहानी का छपना, दैनिक "हिन्दुस्तान" के सम्पादक विजय किशोर मानव परिचय, पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों और सह-सम्पादकों का एक कुत्सित पक्ष कि किस तरह वे नवोदितों का शोषण करते हैं, गोडमधर का उल्लेख, मन्नू भंडारी से परिचय और उसके बाद "मच्छी रुखां चढ़ गई" अध्याय में मैत्रेयी के ऊपर उठते जाने की कथा जैसे प्रसंग कहीं सीधे तो कहीं पूर्वदिप्ती से आए हैं। पर इतना तो सहजयता समझ में आता है कि मन्नू भंडारी और उनके जरिये राजेन्द्र यादव से मैत्री सम्बन्ध और यादवजी के मार्गदर्शन के बाद अपनी निजी अनुभवों की पूंजी से पुष्पा मैत्रेयी तक की यात्रा तय करती है।

आत्मकथा के उत्तरार्द्ध में स्थापित लेखिका हो जाने के उपरान्त "अल्मा कबूतरी" के लेखन के लिए खतरों को उठाते हुए भी अपने एक यादव भाई के जरिए कबूतरा बस्ती में पहुँचना, अल्मा कबूतरी के प्रकाशन के उपरान्त उसे सार्क लिटररी एवार्ड मिलना, अत्यधिक ख्याति के कारण कुछ लेखिकाओं की

ईर्ष्याभाजन होना, मन्नू और राजेन्द्र यादव का विवाह-विच्छेद, राजेन्द्र यादव की बीमारी में मैत्रेयी तथा उनके पति रमेशचन्द्र शर्मा उभय की तत्परता और सेवा, सबसे छोटी बेटी सुजाता का विवाह एक अनुसूचित जाति के डाक्टर से करना (इनका जिक्र पहले आ गया है जैसी कई घटनाएं उपन्यस्त् हुई है।)

"गुड़िया भीतर गुड़िया" से निःसृत कुछ विचार-सूत्र

इन विचार-सूत्रों को जानना जरुरी है क्योंकि इनके जरिए ही हम लेखिका की विचारधारा या उनके द्वारा प्रणीत नायिकाओं के विचार-पिण्ड और कार्यकलापों को समझ सकते हैं। अतः बहुत संक्षेप में ऐसे कुछ विचार-सूत्रों को यहाँ उद्‌धृत किया जा रहा है

(1) "दोस्ती का विश्वास, सहयोग का भरोसा और आत्मीयता की उष्मा, जो कुछ है, मेरे लिए यही है। सतीत्व के दम पर मुझे स्वर्ग मिल जाए (अगर मिलता हो तो) वह स्वतंत्रता नहीं मिलेगी, जिससे मैं भविष्य की दिशाएं और रास्ते तय कर सकूं। मैं अपनी जिन्दगी के निर्णायक मंडल की अध्यक्ष या जूरी की जज खुद को फैसला दे रही थी। (डा. सिध्धार्थ से दोस्ती और आत्मीयता के सन्दर्भ में।)"[50]

(2) "माँ, तुम ने यह क्यों नहीं बताया कि ज्ञान बड़ा खतरनाक होता है। जिन्दगी मुहाल कर देता है क्योंकि शान्ति भंग होती है। क्योंकि ज्ञान बदलाव के लिए प्रेरित करता है। काश, माँ तुम मुझे इस ज्ञान से न गुजारतीं।"[51] (मैत्रेयी के मन का हाहाकार जब डाक्टर ने लिंग्विस्टिक कोर्स के इंटरव्यू का कार्ड छिपा दिया था।)

(3) "कंचन, तुम्हारे भाई साब की तरह न जाने कितने डाक्टर-इंजीनियर अपने गांव-कस्बे और शहर छोड़कर यहाँ चले आते हैं। चले आएं, बुराई नहीं, लेकिन यहाँ आकर पीछे छूटी जमीन को मुड़कर देखना नहीं चाहते। (दिल्ली आने पर अलीगढ़ से कंचन का पत्र आता है, तबकी मैत्रेयी की प्रतिक्रिया, ढोला गाती हुई संतो की याद आना।)"[52]

(4) "माताजी का जवाब था - "किताबें और अखबार पढ़ने का, धर्मयुग, त्रिपथगा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसी चीजे पढ़ने का तुझे शौक था, मुझे क्या मालूम नहीं ? पर तू मुझे ब्याह तय करने से पहले बता देती कि कवि बनने का तुझे शौक ही नहीं, जुनून है, तो सच्ची लाली, मैं तेरा ब्याह किसी कवि से ही कर देती। अब तो मुश्किल यह है कि डाक्टर की दुनियाँ में मरीज

और दवा, वहाँ कविता का क्या काम ? रमेश (डा.साहब) तेरे लिए क्या करें ? अखबारों के दफ्तरों में फिरें तो ड्यूटी कब करें ? तू पढ़-लिख के ऐसी पराधीन हो जाएगी, मैंने सोचा न था। अरे दिल्ली बड़ा शहर है तो रहा करे। रास्ते मिलते नहीं तो ढूंढे जाते हैं, लाली।"[53] (कस्तूरी की बात)

(5) "अगर तुम्हारी भाषा में कहूं तो शकुन्तला न होती तो दुष्यन्त न होता। द्रौपदी जवान न होती तो अर्जुन न होता, न दुर्योधन। सीता के होने से रावण हुआ।"[54] (डा.शर्मा का कथन मैत्रेयी की इल्माना से मैत्री के बाद)

(6) "हमें अपनी निष्ठा और प्रीतिभरी वफादारी को भूखे रहकर निभाना होता है। करवाचौथ के साथ पति की उम्र का चक्कर तो बेकार ही लगा दिया है।" (मैत्रेयी का इल्माना से कहना)"[55]

(7) "ठीक कर रही हो इल्माना, राजा शुद्धोधन का बेटा सिध्धार्थ अपनी बीबी-बच्चे को छोड़कर भाग गया था, नल दमयन्ती को जंगल में सोती छोड़कर भागा। लोककथाओं के गोपीचंन्द भागे थे। इतिहास का राजा रतनसेन नागमती को छोड़कर भागा था। गांधी कस्तूर बा से बेफिक्र कहीं भी चले गए। ये सब महान हो गए। इनकी वीरगाथाएं बनीं। इनके चलाऐ धर्म स्थापित हुए। आम आदमी भी घर से भागता है तो कहते है साधु हो गया। लेकिन औरत वह घर छोड़ जाए तो बस एक ही बात कि रंडी, वेश्या हो गई। (मैत्रेयी के कथन इल्मान से)"[56]

(8) "इल्माना..... हम ऐसे पौधें के रुप में जन्म लेते हैं, जिन्हें हिलाने-डुलाने और विकसित करने के लिए हवा जरुरी हैं, लेकिन हमारे माली बने लोग कहते हैं बौनसाई छाया में रहा करते हैं। (औरत की गुलामी का प्रतिक बौनसाई)"[57]

(9) "मरीजों का इलाज क्या धर्म, जात और वर्ण देखकर किया जाता है ? नहीं किया जाता। मरीज का जाति धर्म मरीज ही होता है डाक्टर का डाक्टर। लेकिन यहीं इस आपातकाल में सारा का सारा केम्पस हिन्दुस्तान है, दो मुसलमान डाक्टरों के घर पाकिस्तान। (बांग्लादेश के युद्ध के कारण सांप्रदायिक भावनाओं का भड़कना)[58]

(10) "लाली, तुझसे मुझसे ऐसी उम्मीद नहीं थीं। तू तो सच्ची में बच्चा पैदा करने की मशीन हो गई। दो बच्चीयाँ पालकर तेरा जी नहीं भरा था क्या ? मैं तो कहती रही की एक बबली (नम्रता) ही बहुत है। तू पढ़ी-लिखी

नई पीढ़ी की, इतना नहीं सोच पाई कि परिवार-नियोजन भी कोई चीज है ।..... खैर माना की तेरी लड़कियाँ नार्मल है, नहीं तो तूने कोई कसर छोड़ी नहीं । क्या जाने झाड़-फूंक के परसाद और टोटकों के नारियल तिल चबाएं हों । रंगे चावल और बताशों की मूठ मारी हो । बाबाओ के कमंडल का जल पिया हो..... मुझे अब तेरा विश्वास नहीं रहा लाली....." (तीसरी बेटी के जन्म पर माताजी का कथन, ध्यान रहे उनका यह आक्रोश तीसरी बेटी के लिए नहीं, तीसरे संतान के लिए है । कस्तूरी की सोच मैत्रेयी से ज्यादा आगे है, इससे यह प्रतीत होता है ।)"[59]

(11) "लड़कियों के शिक्षा के बारे में आपने सोचा है कभी ? आपके प्रायमरी स्कूल में लड़के पढ़ेंगे, पढ़ते रहेंगे । शिक्षित पुरुषों की जमाते खड़ी हो सकती हैं । मगर औरतें ? जाहिल ही रहेंगी । जाहिल जिसे चुप रहने का पाठ हम आसानी से पढ़ा सकते हैं ।..... अंग्रेजो ने भी तो यही किया था, भारतीय सिपाहियों का पढ़ना रोक दिया था, क्योंकि ज्ञान पाकर वे सवाल करने लगे थे और सवालों से सरकार दहलने लगी थी । खतरे पैदा हो गए थे ।"[60] (सोनपाल पटवारी का नंबरदार को समझाना कि स्त्री-शिक्षा कितनी जरुरी है ।)

(12) "लोग जानते हैं कि बड़ी जातियों में औरत एक अपवित्र और अशुद्ध-सी प्रजाति है । इसको बिना पति के किसी पवित्र संस्कार को करने की इजाजत नहीं । जब कभी मंगल आयोजनों में चौक पर पंड़ित के सामने बिठाई गई है, वह विवाह संस्कार ही हैं, जिसमें पति के लिए ही सबकुछ माना जाता है, वरन् कथा भागवत्, यज्ञ-हवन में स्त्री को घर के मुखिया के तौर पर बैठने नहीं दिया जाता । भले घर का छोटा-सा लड़का बिठा दिया जाए । हम अस्पृश्य, हम बहिष्कृत क्या मौका पाते ही एक हो गए थे ? नहीं तो उन्होंने अपने संस्कारों के लिए लड़की का चुनाव क्यों किया ? आज तक किसी मंदिर की मुख्य पुजारिन, किसी धर्मपीठ की शंकराचार्य, किसी धर्म की आदि गुरु स्त्री नहीं । भारतीय समाज में ही नहीं पश्चिमी देशो के ईसाई धर्म ने भी किसी औरत को पोप नहीं स्वीकार किया, न मुस्लिमो के यहाँ काजी या मुल्ला के रुप में औरत दिखाई देती है ।"[61] (सिकुर्रा गांव की छोटी जातियों के लोगों ने मैत्रेयी को अपना पंड़ित बनाया था ।)

(13) "रानी बेटी ! मैं मरुं तो तुम भी मत रोना । अपनी जिम्मेदारियों को देखते हुए तुम्हें रोने का समय नहीं मिलेगा । तुम माताजी की नातिन हो, उन्हीं

की तरह साहस की कोई बात करो। हौसले का नाम था कस्तूरी, जो हमारे स्त्री-वंश की अब तक सबसे ज्यादा ऊर्जावान, दूरदर्शी, गतिशील और प्रगतिगामी कड़ी साबित हुई। फिर एक बार यही कि "नानी के नक्शे धेवती में" कहावत तुम्हारे रुप में चरितार्थ हो"। (मैत्रेयी का कथन नम्रता को कस्तूरी की मृत्यु पर जमीन-जायदाद के काम में उलझकर उनके लिए शोक न मनाने पर।)[62]

(14) "साहित्यकार, कलाकार उम्र को सालों से नहीं नापते। उनकी रचनात्मकता जब तक सक्रिय रहे, वे युवा रहते हैं। रविशंकर (सितारवादक) अज्ञेय और रेणु (साहित्यकार) किशोरकुमार, (गायक) उम्र के ढ़लते पड़ाव पर इश्क़ मोहब्बत को परवान चढ़ाते रहे।"[63] (सम्पादकजी की नियत के सदंर्भ में मैत्रेयी की टिप्पणी।)

(15) "मर्द के सामने औरत कुछ ज्यादा ही औरत बन जाती है। बस यहीं से गड़बड़ होने लगती है।..... याद रखना कि साहित्य की दुनियाँ भी बेईमान, झूठे और मक्कार लोगों से भरी पड़ी है। गन्दगी क्या होती है, कहाँ होती है, इस बात को एक ही तरीके से नहीं जाना जा सकता। हां, खुद को बचाया जा सकता है। (मैत्रेयी को जानने-परखने के बाद सह-सम्पादकजी का कथन)"[64]

(16) "आप लिख सकती हैं क्योंकि आपके पास अनुभव है। इन दिनों साहित्य में लोग अनुभव अर्जित करके नहीं आते, शैलियां इजाद कर रहे हैं। लेखनी सूखती जा रही है। नहीं समझ रहे कि प्राइवेसी लिखने के लिए चाहिए, रचने के लिए तो उन्हें बाहरी संसार में निकलना होगा। समाज से नहीं जुड़ेंगे, पैठ नहीं बनाएंगे, खुद ब खुद निष्क्रिय होते जाएंगे।"[65] (मासिक कथा-पत्रिका के सम्पादक का कथन, साथ ही वे दवाइयों की सूची थमा देते हैं जब उन्हें ज्ञात होता है कि मैत्रेयी के पति "एम्स" में डाक्टर हैं।)

(17) "असलियत में हमारा रोल पति की खादिमा, दासी और गुलाम होना है। सलाह-मशविरा कौन करता है, आज्ञा देने का चलन है। पत्नि होकर सम्मान नहीं, अपमान के अभ्यस्त होने में ही कुशल है।"[66] (गोडमधर के लिए कार नहीं भेज सकने के संदर्भ में मैत्रेयी की टिप्पणी)

(18) "दुखों को दिल में जमा करते जाओ, वे खाद की तरह ताकतवर होते जाते हैं, जो आगे नई पौध को बढ़ाकर खड़ा करते हैं।"[67] (मैत्रेयी का चिंतन)

(19) "असल समस्या तो प्रेम-विवाह के बाद शुरु होती है। लड़का-लड़की, माता-पिता और परिवार द्वारा दिए धर्म, जाति और रीति-रिवाजों को तोड़ देते हैं मगर जब ऐसे ही सरोकार खुद से जुड़ते हैं तो उनमें दुविधा पैदा हो जाती है। अन्तर्द्वन्द में फंस जाते हैं। बहुत जगह ऐसा देखने में आता है कि पति मंदिर जाता है और पत्नि नमाज़ पढ़ती है। कहने को उनके पास धार्मिक स्वतंत्रता है, मगर यह स्वतंत्रता उन्हें एक नहीं होने देती। कई बार इस व्यवहार से कुण्ठाओं का जन्म होता है। यही जातियों का चक्कर है। लड़की छोटी जाति की है और लड़का बड़ी जाति का, विवाह के समय वे किसी भी जाति के नहीं होते। धीरे-धीरे दोनों के भीतर जातियाँ सर उठाती हैं। लड़की को दोहरा अपमान सहना होता है स्त्री होने का और नीची जात होने का। यदि लड़का छोटी स्थिति में है तो उसके पुरुष-अहंकार को बात-बात पर ठेस लगती है। महत्वहीन भावनाएँ सिर चढ़कर बोलती हैं और जिन्दगी कशमकश के हवाले हो जाती है। कहानी इस कशमकश को रेखांकित करती जाए कि कैसे बाहरी स्थितियों से लड़ने वाले अपने भीतरी मोर्चो पर संस्कारों से हारते है।"[68] (राजेन्द्र यादव का कथन)

(20) "मैंने आचार्य चाणक्य की विद्वता को चुनौती दी है। वे कहते हैं - धर्म की रक्षा धन से, विधा की रक्षा साधना से और गृहस्थी की रक्षा पतिव्रता स्त्रियों से बताई गई है। निश्चित ही मैं "आपस्तम्ब धर्म" सूत्र के विरुद्ध जा रही हूं, "बृहदा-रण्यक उपनिषद" मुझे शाप देगा, जिसमें स्त्री के लिए अपने पति के सम्भोग को हर हालत में चरितार्थ करना बताया गया है।"[69]

(21) "प्रियतम तुम्हारी दुनिया में सुख तो है मगर घुटन उससे ज्यादा। सुविधा भी है, लेकिन सिकुड़े-संकरे दायरों के बंधन..... सच मेरे स्वभाव में परिवर्तन की बुरी लगन है, मैं तुम्हारे विवाह लगन के योग्य नहीं थी।"[70] (मैत्रेयी का अपने दाम्पत्य-जीवन से सम्बद्ध वक्तव्य।)

(22) "बात यह है मेरी जान, किताब की सारंग, सारंग नहीं लगती, मुझे वो तुम लगती हो, एक दम तुम"[71] (चाक पढ़ने के बाद डाक्टर साहब का कथन)

(23) "लिखनेवाले बहुत हैं बबली, लेकिन जब उनके बच्चों के ब्याह की बात आती है तो कहते हुए पाए जाते हैं - प्रेम करो, प्रेम विवाह करो, हम तुम्हारे साथ हैं। बस शूद्र न हो, मुसलमान या ईसाई नहीं चलेगा।"[72] (छोटी बेटी सुजाता के प्रेम-विवाह के संदर्भ में क्योंकि डा.नवल एस.सी. थे।)

(24) "और सुजाता का विवाह करके उसके पिता में यह आत्मविश्वास आया है कि मुझे लगता है, आत्म-संशोधन करना हो तो आदमी को बेटी का पिता होना चाहिए, क्योंकि जब उसे रुढ़ियों, कर्मकांडों और शास्त्रीय नियमों से उलझाकर बार-बार नीचा दिखाया जाता है, बस यहीं से अपनी बाध्यता तोड़कर स्वतंत्र फैसलों की ओर बढ़ता है।"[73] (लेखिका की टिप्पणी अपने पति के बारे में।)

(25) "ये लोग (याने कबूतरा) तुम्हारे पुलिस विभाग, कानून और राजतंत्र की तरह खुदको किसीसे छिपाते नहीं। न किसी खतरे से ही खुद को बचाते, बस अपने हाथ-पांव साबूत रखने के लिए जंगल में भाग जाते हैं। क्या करें, भूख उनका सबसे खूंखार देवता है। उस देवता के पुजापे के लिए हाथ-पांव चाहिए, तो चोरी-चकारी लाजमी हो जाती है। राहजनी करते हुए बात मार-काट तक पहुंच जाए, तो कोई क्या करें ? काका, खेती नहीं, मजूरी नहीं, तो कोई आदमी धरती फोड़कर अन्न कहाँ से ले आए, जबकि उनके पास फोड़ने के लिए अंगूठे भर अपनी धरती भी नहीं। जो आजीविका है, जैसी-तैसी है, उसीसे ईमानदारी बरतनी।"[74] (सोबरन का कथन कबूतराओं के पक्ष में।)

(26) "जता रही है कि कज्जा (कबूतरा ऊंची जाति के लोगों को "कज्जा" कहते हैं।) लोगों का धर्म उनके समाज और राजनीति में शुद्धता का बोलबाला है। इसलिए अशुद्धता के खाते में डाले रखी है। अशुद्धों से छिपकर ही मिला जाता है। क्या स्त्री की योनि अशुद्ध नहीं होती ?"[75] (कबूतरा बस्ती में मैत्रेयी की सोच कबूतरी स्त्रियों की बातें सुनते हुए।)

(27) "तू लिखती है, यह बात अलीगढ़ तक आ गई है। लोग मुझको ताने सुनाते है - कस्तूरी की लड़की कविता कहानी लिखकर नाम कमा रही है, दामाद तबाह हो रहा है बेचारा। लाली, तू लिख, खूब लिख पर रमेश (मैत्रेयी के पति) को परेशान न कर।..... दामाद तो फिर डाक्टर आदमी, कविता-फविता नहीं समझते, गुस्से होते हैं। मैंने तो पहले ही कहा था ब्याह मत कर, तेरे लक्षण ब्याह वाली लड़कियों से अलग है।..... माताजी की चिट्ठी या मेरी

पांडुलिपि की चिन्दियां मेरा कलेजा तार-तार हो गया और दिल से बस यही निकला - माताजी, मैं अब विधवा कब हूंगी ?"[76] (राजेन्द्र यादव को लेकर पति-पत्नी में झगड़ा हो गया था। मैत्रेयी ने अपनी मदद के लिए माताजी को बुलाया था, माताजी तो नहीं आयी थीं पर पत्र लिखा था। उपर्युक्त पंक्तियाँ उस पत्र से है और उसके बाद मैत्रेयी की प्रतिक्रिया।)

(28) "किसे याद रहता है इन दुर्धर्ष घड़ियों में कि राजेन्द्रजी कितने दुष्ट और दुराचारी थे। जिन्दगी पर बन आए तो दोष ढूंढने की मोहलत कहां होती है ? काश मैं उनके इतने नजदीक रही होती कि दुश्चरित्रता देख पाती। वे मेरे लिए एक शिक्षक, गाइड और बड़े लेखक के अलावा कुछ नहीं है।"[77] (मैत्रेयीजी का कथन राजेन्द्रजी को जब अस्पताल में भर्ती किया था उस समय का)

(29) "पति तो पत्नी को दुख ही देता है। कोई औरत यह कहते सुनी है कि उसका पति उसे सुख दे रहा है; भले बेचारा पति उसे सोने की लंका दे दे। तुम्हारा पति होने के नाते मैं कहूं कि तुम भी मुझे दुख देती हो जोकि मैं कहता हूं यह एक नार्मल बात है। जानम, जब गोष्ठियों में जाती हो बाहर तो हमारा दुख इंतिहा पर होता है। शक-संदेह ऐसे-बैठते हैं कि जैसे गैर मर्दों के साकार रुप हों और तुमसे अठखेलियाँ करते हों। बताओ कि इतना कष्ठ पाकर मैं तुम्हे घर से निकाल देता हूं ?"[78] (डाक्टर साहब का कथन मैत्रेयी को।)

(30) "जवाब मांग रहे हो, बोलने का मौका दे रहे हो, तो बस इतना ही कहूंगी लोग प्रशंसा देते हैं, प्यार करते हैं, धन-दौलत भी दे सकते हैं, मगर ऐसे बिरले ही होते हैं कि जो सच्चा भरोसा देते हैं।"[79] (मैत्रेयीजी का कथन अपने पति के प्रति। यहाँ एक बात हम कहे बिना नहीं रह सकते कि मैत्रेयीजी कुछ भी कहें अपने पति के सन्दर्भ में, लेकिन हमें तो डाक्टर साहब ऐसे बिरले लोगों में ही लगते हैं।)

इस प्रकार गुड़िया भीतर गुड़िया में सन् 2002 तक के ब्यौरे हैं। उसमें गोधरा कांड और उसके बाद के नरसंहार का उल्लेख है। "अल्मा कबूतरी" और "कही ईसुरी फाग" तथा मैत्रेयीजी की स्त्री-विमर्श की पुस्तक "खुली खिड़कियों" का भी जिक्र डा.निर्मला जैन की टिप्पणी के रूप में आया है। लब्बोलुबाव यही कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा हिन्दी की एक बहुचर्चित-बहु विवादित लेखिका हैं। रेणु, राजेन्द्र यादव, मण्टो, मटियानी तस्लीमा,

तहमीना दुरानी, अजीत कौर आदि ऐसे लेखक-लेखिका हैं जिनकें बारे में अच्छे-से अच्छा और बुरे-से बुरा कहने वाले लोग मिल जायेंगे। मैत्रेयी का नाम भी अब इस सूची में जुड़ सकता है।

आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यास :

"कस्तूरी कुण्डल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" इन दो आत्मकथाओं में हमें मैत्रेयी के रचना-संसार का पिण्ड मिलता है। "स्मृतिदंश" से लेकर "अल्मा कबूतरी" तक के रचना-प्रसंगों की चर्चा इनमें उपलब्ध होती है। बाद के उपन्यासों में "त्रिया हठ" पुनर्पाठ है "बेतवा बहती रही" का, तो गुनाह-बेगुनाह में "फाइटर की डायरी" पर आधारित है। परंतु उपन्यास में व्यक्त विचारधारा स्त्रियों की पक्षधरता, उसमें व्यक्त स्त्री-विमर्श आदि के मूल में तो बही सबकुछ है जो उनकी आत्मकथाओं में कहीं-न-कहीं अभिव्यंजित हुआ है। अब हम उनके उपन्यासों पर क्रमशः विचार करेंगे इन दो आत्मकथाओं को केन्द्र में रखते हुए।

(1) स्मृतिदंश :

यह मैत्रेयी का प्रथम उपन्यास, बल्कि उपन्यासिका (लम्बी कहानी) है। जिसका प्रकाशन सन् 1990 में हुआ था। यह कथा-नायिका भुवन की राम-कहानी है जिसमें उसकी कथा-व्यथा का चित्रण करुणा और भावुकता के साथ किया गया है। मैत्रेयीजी को इसे लिखने की प्रेरणा सह-सम्पादक महोदय ने दी थी इसका जिक्र "गुड़िया भीतर गुड़िया" आत्मकथा में आया है। यथा-देखो तुम लम्बी कहानी लिख लेती हो, उपन्यासिका क्यों नहीं लिखतीं ?..... हाँ, छोटी सी ही, किताब छपेगी तो चर्चा होगी।"[80] और उसके बाद मैत्रेयी ने अपनी स्मृतियों को संजोकर यह भावुकतापूर्ण कृति की रचना की थी। डा.गोपालराय ने अपने "हिन्दी उपन्यास का इतिहास" में लिखा है कि "स्मृतिदंश और बेतवा बहती रही" दोनों ही कथा की दृष्टि से बहुत मार्मिक हैं, किसी भावुक पाठक की आंखो को अश्रुपूरित कर देने वाले। दोनों ही उपन्यासों में परंपरागत पुरुष समाज द्वारा स्त्री पर होने वाले अत्याचार का अंकन किया गया है। पर औपन्यासिक विजन और यथार्थ की गहरी समझ की दृष्टि से इनका विशेष महत्व नहीं है। दरअसल उपन्यासकार के रुप में मैत्रेयी की पहचान उनके "इदन्नमम" नामक उपन्यास से निर्मित हुई।"[81] स्मृतिदंश की भुवन उतनी ही भावुक और कमजोर है जितनी स्वयं मैत्रेयी उस समय थी। वह समय 1990 का था। यह उनके लेखनका संघर्षकाल था। इस रचना के संदर्भ में लेखिका

ने अपनी आत्मकथाओं में भी विस्तार से खास कुछ कहा नहीं है। अतः इतना ही कहा जा सकता है कि हमारे पितृसत्ताक समाज में विशेषतः ग्रामीण समाज में जो सामंतवादी मूल्य हैं और उनके चलते स्त्रियों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उनके साथ जो अन्याय और भेदभाव बरता जा रहा है उसका चित्रण लेखिका ने उस तरह से किया है जैसा कि तब तक लेखिकाएं करती थी और कदाचित् इसका दंश लेखिका स्वंय महसूस कर रही थी और इसीलिए शायद शीर्षक रखा था "स्मृतिदंश"। लेकिन इसकी भुवन ठीक उस तरह की नहीं थीं जैसा कि मैत्रेयी चाहती थीं, अतः उसकी भरपाई उसके पुनर्पाठ समान उपन्यास "अगनपाखी" में उन्होंने कर दी है।

(2) "बेतवा बहती रही":

"बेतवा बहती रही" के शीर्षक की प्रेरणा कदाचित् "धीरे बहो दोन" से लेखिका को प्राप्त हुई है। क्योंकि इसकी रचना के पूर्व उनके मार्गदर्शक सह-सम्पादक महोदय ने "धीरे बहो दोन" को पढ़ जाने का परामर्श दिया था।[82] इस उपन्यास से भी लेखिका को संतोष नहीं हुआ था। लिख तो दिया था भावुकता की रौ में, क्योंकि सह-सम्पादकजी तथा उनके जैसी सोच रखने वालों को "अबला जीवन" हाय तुम्हारी यही कहानी; "आंचल में है दूध और आंखो में पानी" वाली नारी-छवि ही पसंद है। यहाँ तक की नवभारत टाइम्स के तत्कालीन सम्पादक पंडित विधानिवास मिश्रजी ने भी अपनी सम्पादकीय में "बेतवा बहती रही" की भावात्मक छवि की सराहना की थी।[83] पुरुष मानसिकता स्त्री को हमेशा कोमल और भावुकता की छवि के रूप में ही देखना चाहती है, वह उसका सबला रुप नहीं "अबला" रुप हीं चाहते हैं ताकि उसका शिकार किया जा सके, शोषण किया जा सके। अतः मैत्रेयी प्रस्तुत उपन्यास की "उर्वशी" का चित्रण उसी रुप में करती है, परंतु उसके भीतर बैठी हुई कस्तूरी की आत्मा संतुष्ट नहीं थी। वे स्वयं महसूस करती हैं कि-"मैं अपने उपन्यास "बेतवा बहती रही" में उर्वशी के चरित्र और उसके पुरुषों से सम्बन्धों को ठीक से विकसित नहीं कर पाई। उपन्यास में उर्वशी का दुख-सुख नहीं, गली हुई करुणा है। मैं जानती हूं कि रेणु के पात्र अपने दुख में, मुश्किल में हंसते-हंसाते है। जैसे शोक को संगीत में बदल रहे हो। मगर "बेतवा बहती रही" की स्त्रियां जिन्हें डरकर रहना है, रोकर जीना हैं और इसी तरह मृत्यु तक का समय काटना है। वहाँ करुणा कलित ह्रदय की बातें हैं, आंसुओ की

झालरें हैं ।"[84] तस्वीर की मानों यही शोभा है । और "बेतवा बहती रही" की उर्वशी लेखिका के तस्वीरनुमा लगती है, यथार्थ या वास्तविक नहीं जो लेखिका ने अपने बुंदेलखण्ड के गांवो में देखी है । इस प्रसंग में मैत्रेयी अपने स्कूल के दिनों का एक प्रसंग बयान करती है स्कूल में "हाड़ी रानी" की बात निकलती है । हाड़ी रानी का पति युद्ध में जा नहीं रहा था, आखिर उसने अपना शीश काटकर थाली में रख दिया, तब वह युद्ध में चला गया । लोग वीरांगना मानते हैं, परंतु तब मैत्रेयी उसे वीरता की नहीं मजबूरी की मिसाल मानती है । यह बलिदान नहीं आत्महत्या की कहानी है । आत्महत्या इसलिए कि पति पत्नी के चरित्र की चिन्ता किए बिना निश्चिंत होकर युद्धभूमि में जा सके ।[85] इसी तरह हमारे यहाँ स्त्रियों की आत्महत्या या हत्या को त्याग और बलिदान का मुलम्मा चढ़ाकर पेश किया जाता है । "बेतवा" की उर्वशी भी उसी प्रकार की है, जब कि मैत्रेयी उसे बुंदेलखण्ड की एक सच्ची स्त्री - जिसमें मानवोचित प्रेम, सेक्स आदि के भाव हैं । - के रुप में चित्रित करना चाहती थीं । वस्तुतः हमारे सामंती संस्कारों में स्त्री को दो ही रुप में देखा जाता है । देवी और कुल्टा या वेश्या । यदि स्त्री पुरुष के कहे अनुसार चलती है, रुढ़ियों और परंपराओं का निर्वाह करती है तो वह देवी है और यदि नहीं तो कुल्टा या वेश्या है । मैत्रेयीजी ने अपनी आत्मकथा में बताया है कि वह स्त्री को उसके मानवीय रुप में देखना चाहती है और इसीलिए उसकी पूर्ति उन्होने त्रियाहठ में की है । मैत्रेयीजी "बेतवा" की उर्वशी के मरण का प्रायश्चित करना चाहती है । वह स्त्री के उस आंतरिक भाव को प्रकट करना चाहती है कि "उर्वशी कहे, पति का नहीं पति का पहली पत्नी से उत्पन्न बेटा मेरी उम्र का है, में उससे सम्भोग की इच्छुक हूं । उसे देखकर मेरी योनिकता जागती है ।"[86] मैत्रेयी रेणु की तस्वीर के सामने स्वीकार करती है कि "बेतवा बहती रही" लिखकर मैंने अन्याय नहीं, स्त्री के प्रति अपराध किया । अपनी कलम को कायर बनाया है ।[87]

इसी प्रकार की बात मुंशी प्रेमचंद ने एक स्थान पर निर्मला के मुंह से कहलवायी है - "पर न जाने क्यों उसे (मंसाराम को) अपने पास देखकर मेरा ह्रदय फूला न समाता था । इसलिए मैंने उससे पढ़ने का स्वांग रचा, नहीं तो वह घर में आता ही न था । यह मैं जानती हूं कि अगर उसके मन मे पाप होता, तो मैं उसके लिए सबकुछ कर सकती थी ।"[88] इस पर कृष्णा जब निर्मला को टोकती है कि वह कैसी बातें मुंह से निकाल रही है । तब निर्मला उससे कहती

है – "हाँ, हाँ, यह बात सुनने में बुरी मालूम होती है और है भी बुरी, लेकिन मनुष्य की प्रकृति को कोई नहीं बदल सकता। तू ही बता, एक पचास वर्ष के मर्द से तेरा विवाह हो जाए तो क्या करेगी ?"[89]

"बेतवा बहती रही" की विधवा उर्वशी का भाई अपने लालच के लिए एक बूढ़े के संग उसका पुनर्विवाह करा देता है। ऐसी स्थिति में "त्रिया हठ" की उर्वशी यदि अन्यथा सोचती है तो वही सही है। नारी का मानवीय रुप ऐसा ही होता है।

(3) इदन्नमम :

"गुड़िया भीतर गुडिया" में मैत्रेयीजी ने लिखा है कि "बेतवा बहती रही" की नायिका उर्वशी के मरण का प्रायश्चित वह करना चाहती थीं और उसी उपक्रम में इदन्नमम की रचना होती है जो मैत्रेयीजी को हिन्दी के शीर्षस्थ उपन्यासकारों की पंक्ति में ला खड़ा कर देता है। "बेतवा वहती रही" छपने के एक साल बाद ही इदन्नमम सामने इसलिए आया कि संस्कारों को लेकर मेरा मानसिक संतुलन बिगड़ने लगा। और इदन्नमम ने प्रमाणित कर दिया कि अब मैं पूरी तरह किसी साहित्यिक गुण्डे के गिरोह में चली गई हूं।"[90] मैत्रेयी के लेखन में "इदन्नमम" के प्रकाशन को हम एक "टर्निग पोइण्ट" कह सकते हैं। मैत्रेयी का मानों कायाकल्प हो गया है और उनका यह कायाकल्प ही शायद कइयों को चिढ़ाने लगा है। वस्तुतः यह मैत्रेयी के भीतर की कस्तूरी का जागना है। इस संदर्भ में वोल्टेयर का एक कथन स्मृति-पटल पर छा रहा है। - "IT IS NOT MORE SURPRISING TO BE BORN TWICE THAN ONCE; EVERYTHING IN NATURE IS RESURRECTION"[91]

अर्थात् एक बार नहीं अपितु दो बार जन्म लेना यह आश्चर्यजनक नहीं है; प्रकृति में यह सब होता ही है। मतलब कि मैत्रेयी के भीतर की गुड़िया ने जन्म लिया है।

इदन्नमम की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में मैत्रेयी ने लिखा है – "उर्वशी के बरक्स मुझे वह आठ-नौ वर्षीया लड़की याद आयी, जो एक ब्याह के उत्सव के दौरान कोठे के अंधेरे कोने में चुपचाप बैठी अपने घुटनों पर फ्रोक का घेर बार-बार फैलाती थी कि टांगें ढंकी रहे। वह मेरे सामने आई तो पूछा – "यहाँ क्यों ? बाहर बारात आ रही है।....." पुलिस आजै है। हमाये वारंट है।..... मैं चौंकी। और फिर वह केस और मैं..... (प्रेम कहानी नेहबंध)..... 1969 की

बात 1992 में याद आयी और फिर मेरा सफर खिल्ली (श्यामली), जुझारपुरा (सोनपुरा) एरच उरई मोंठ..... के लिए ।..... (यह) मन्दाकिनी थी या मैं थी ? लेखिका थी या "बेतवा बहती रही" की प्रायश्चितकर्ता ? अकुंठ जीवन, साहस के साथ व्यक्तित्व की तेजस्विता । ऐसा मैं नहीं कह रही, सुधी समीक्षकों और सजग पाठकों ने बताया ।"[92]

सन् 1994 के विश्व पुस्तक मेले में "इदन्नमम" को पुस्तक रुप में देखकर लेखिका अभिभूत हो गई थी । उसमें राजेन्द्र यादव की संक्षिप्त भूमिका "अप्प दीपो भव" के अंत में लिखा गया है - कामना करता हूं कि "विशिष्ट और महत्वपूर्ण" होने का बोध जगाने से पहले ही मैत्रेयी कुछ और इतना ही सहज लिख डालें सेमिनारों - गोष्ठियों में जगमगाते शहरी रचनाकार होने के प्रलोभनों से अपने को बचाए रखते हुए.....।"[93]

"इदन्नमम" के पीछे लेखिका की कितनी महेनत है इसका पता तो इस बात से चलता है कि पांच सौ पच्चीस पृष्ठों के लगातार सात ड्राफ्ट करने के बाद कृति का निर्माण हुआ था । परंतु जो सह-सम्पादक मैत्रेयी को लेखिका होने के गुर सिखा रहे थे, उनका ही मुंह फीका पड़ जाता है । होना तो यह चाहिये था कि वह "इदन्नमम" के प्रकाशन और उसके कारण बनती मैत्रेयी की पहचान से उनको प्रसन्नता होनी चाहिए थी, परंतु उसके विपरीत होता है । उनकी प्रतिक्रिया बड़ी तिक्त और कटु है -

"तुम्हारी जैसी मासूम औरतें साहित्य में आती है । हमसे जुड़ती हैं । जब हम उनको रहने के लिए साहित्य का यह मंदिर देते हैं, वे शुद्धता, पवित्रता और पूजा जैसी महान चीजों से उकताने लगती है । तुम भी उनमें से एक हो । जाओ, आगे बढ़ जाओ, उसी राह जिसके काबिल तुम हो । तुम जाओगी उन सभा-गोष्ठियों मेहफिलों में जहाँ साहित्य कम, शराब ज्यादा होती है । जहाँ साधना कम शागिर्दी (चापलूसी) के दौर चलते है । तुम जाओ, जीवन मूल्य जहाँ मनी और सेक्स है । सारी संवेदना सुरा-सुन्दरी से लिपटी हुई..... वहाँ रचनाधर्मी नहीं, माफिया डोनों से करना मुलाकात रात के अंधेरों में । "मछुआरे" और "धीरे बहो दोन" महाश्वेता की "हजार चौरसीवे की माँ" की ओर से कर लो बन्द कपाट और सुनो अट्टहास राजेन्द्र यादवों के / नामवरों की भेदती नजर तुम्हारी रचनात्मकता को कर डालेगी क्षत-विक्षत..... तुम इसी लायक हो । यह मैंने महसूस किया है, औरत आखिर माया, ठगिनी और विष का घट होती है, जिस पर मुंह मारने वाले जहाँ मिलते हैं, वह उधर ही चल देती है । अब न

नसीब हो तुम्हें कभी सोना-रुपा और कनाट प्लेस के छोटे-छोटे चायघरों के सुरक्षित रेस्टोरेंट । तुम जिन्दगी भर तरसो किसीके मोहक मिलन को और छटपटाओ मीठी प्रतिक्षा करने के लिए । वे दैत्य तुम्हें निकलने नही देंगे अपनी हंस गुफा से.....[95]

तो "गोडमधर" ने तो मैत्रेयी पर सीधे चोरी का ही आरोप लगा दिया ।[96] जबकि "नेहबंद" कहानी के रुप में मैत्रेयी यह कहानी पहले राजेन्द्र यादव को और सह-संपादक महोदय को "प्रेम कहानी विशेषांक" के लिए दे चुकी थी, जब गोडमधर से मैत्रेयी की मुलाकात भी नहीं हुई थी । इस संदर्भ में मैत्रेयी की टिप्पणी है – "गोडमधर शायद इस भाव से आहत है कि चीजें जहाँ पहुंच गई है, वहाँ मुझे अब उनकी जरुरत नहीं है ।"[97]

दूसरी तरफ मन्नू भंडारी है जो उज्जैन से पत्र लिखती है कि "इदन्नमम" को पढ़कर उसकी पीठ थपथपाने को मन करता है ।[98] "इदन्नमम" के कारण लेखक-लेखिकाओं, विशेषतः लेखिकाओं में, और "इदन्नमम" की जमीन जहाँ की है बुंदेलखण्ड के वे गांव और उनके लोगों में जो बावेला मचा उसके कारण डाक्टर साहब (मैत्रेयी के पति) भी कुछ नाराज हुए थे । इस बात को लेकर मन्नूजी का कहना था – "अरे, मैत्रेयी । लिखती रहो, लिखकर ही एक दिन खुद को प्रूफ कर दोगी कि डाक्टर साहब भी मान जाएंगे, उनकी पत्नी असल में क्या थी ।"[99]

उपन्यास को देशकाल वही है जो इन आत्मकथाओं में वर्णित है, अर्थात् बुंदेलखण्ड के झांसी, ग्वालियर, मुरेना, मोंठ, उरई के आसपास के गांव-खेड़े, क्योंकि कस्तूरी अपनी महिला-मंगल की नौकरी के कारण गांव-गांव डोलती रही और मैत्रेयी को पढ़ाई के कारण जिन गांवों में स्कूल-पाठशाला होती थी, वहाँ किसी परिचित या रिश्तेदारी में रहना पड़ता था । समय ब्रिटिश-शासन के अंतिम दौर से लेकर स्वाधीनता प्राप्ति और उसके कुछ वर्ष बाद तक का है । इनमें वर्णित जो पात्र हैं उनमें पुरानी पीढ़ी के कुछ लोग हैं जिनमें महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरु के विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है ।

उपन्यास की बोली-बानी बुंदेलखण्ड की है, यहाँ तक कि कहावत-मुहावरे, कुछ विशिष्ट शब्द-प्रयोग, तीज-त्यौहार, कुछ मान्यताएं, लोकगीत, शादी-ब्याह के गीत ये सब मिलकर उसे आंचलिकता का रुप देते हैं पर जैसा कि हम निर्दिष्ट कर चुके है "इदन्नमम" आंचलिक उपन्यास नहीं है । उपन्यास

में जो समस्याएं निरुपित हुई हैं, वे भी उसके समय को रेखांकित करने वाली हैं । इन समस्याओं में कौमी एकता की समस्या है कि किस तरह बाबरी-मस्जिद-ध्वंस के बाद गांवों का कोमी एखलास भंग हुआ है और हिन्दू और मुसलमानों में दरार पड़ गई है । पंचमसिंह दद्दा और चीफ साहब पक्के दोस्त हैं और बाबरी मस्जिद वाली घटना के बाद जो गांव में गुंडई और लंफगई चलती है उसमें अपनी जान की परवाह किए बिना दद्दा चीफ के साथ खड़े रहते है पर अंततः चीफ को गांव छोड़कर शहर जाना पड़ता है । अन्य समस्याओं में आरक्षण की समस्या, राजकीय नेताओं के नाकारा होते जाने की और माफिया तत्वों से सांठगांठ की समस्या, ठेकेदारों और राजनेताओं की माफियागीरी, आजादी के बाद खादी और खाकी के मिल जाने से पनप रहे नवधनिक वर्ग के लोगों में संस्कारहीनता की समस्या, गरीब और मजदूर स्त्रियों के यौन-शोषण की समस्या, दूसरे प्रदेश से आये हुए विस्थापित मजदूरों और उनके तमाम प्रकार के शोषण की समस्या, गांवों में फैलती बीमारियों की समस्या, बलात्कार और स्त्री-हत्या की समस्या, लोगों की नीयत के डोलते दूसरों की जमीनें धोखाधड़ी से हड़प लेने की समस्या जैसी समस्याओं का आकलन हुआ है जो उपन्यास में निरुपित देशकाल को स्पष्ट करने वाली सिद्ध होती हैं और इन सबका निरुपण उनकी आत्मकथाओं में मिलता है जिसका वर्णन हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में कर चुके हैं ।

उपन्यास की नायिका मन्दा है जो एक कमजोर लड़की से लौहसंकल्पिनी सबला नारी के रुप में परिवर्तित होती है । कौन है यह मंदा ? ब्याह के अवसर पर एक अंधेरे कोने में चुपचाप बैठी लड़की ? जिसका जिक्र लेखिका ने किया है । हाँ, कहानी तो लेखिका ने वहाँ से उठायी है जो “नेहबंद” के रुप में विकसित होते हुए “इदन्नमम” तक चली आई है । भले लेखिका कहे “यह मेरा नहीं है” । पर उस कमजोर लड़की को मन्दा बनानेवाली तो मैत्रेयी ही है । मैत्रेयी भी कमजोर भीरु महिला से एक ऐसी धांसू लेखिका हो जाती है कि पहले जो उनपे दया खाती थीं, वे अब उनकी ईर्ष्या करने लगीं । मंदा, बऊ (मंदा की दादी और सोनपुरा के जमींदार महेन्द्रप्रतापसिंह की माता), प्रेम (मंदा की मां), सुगना (मंदा की सहेली), कुसुमा भाभी, देवगढ़वारी पंचमसिंह की धर्मपत्नी), दारोगिन (विक्रमसिंह की पत्नी), मोदिन काकी आदि उपन्यास के नारी पात्र; और गनपत (बऊ का नौकर और महेन्द्रप्रतापसिंह का विश्वसनीय व्यक्ति), पंचमसिंह (दद्दा श्यामली के प्रतिष्ठित बुजुर्ग), मोदी, चीफ (अनवर

हुसैन - मोदी और चीफ दद्दा के परम मित्र है) गोविन्दसिंह कक्का, अमरसिंह (दद्दा के सबसे छोटे भाई जिनको परिवार में सब दाऊजी कहते है), मिठू कक्का, ढड़कोले चमार, श्यामलाल, अर्जुन, पन्नी माते, शकील (अनवरी बुआ का लड़का); कैलाशसिंह (मन्दा के दूर के रिश्ते के मामा जो बचपन में ही मंदा का बलात्कार करते हैं), डबल बब्बा (लखना डाकू), डा.मकरन्द (मकरन्द और मंदा की सगाई हुई थी जो बाद में टूट गयी पर मंदा और मकरन्द फिर भी परस्पर चाहते हैं, मकरन्द दद्दा के पुत्र विक्रमसिंह दरोगा का पुत्र है), रतन यादव, अभिलाखसिंह, जगेसर काका (सुगना के पिता) कोयलेवाले महाराज (पूर्वजीवन में पारीछा के प्रधान टीकमसिंह), द्वारिका कक्का, प्रधान कक्का राजा साहब (प्रदेश के विधायक) आदि स्त्री-पुरुष पात्रों के साथ ठकुराइन, अहल्या राऊतिन, लीला राऊतिन, गनेसी दद्दा पप्पू, डा.इन्द्रनील, भाईजी, भृगुदेव, दरोगा दीवान जैसे कई-कई पात्रों का संसार हमें प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। किन्तु ध्यान रहे ये सब औपन्यासिक पात्र हैं। इस तरह के ही लोगों के संपर्क में मैत्रेयी रही है। उनके नाम अलग हो सकते हैं। चीमनसिंह यादव के यहाँ तो मैत्रेयी पली-बड़ी है। मेवाराम मैत्रेयी के दादाजी रहे हैं जिनका चरित्र भी बड़ा उदार रहा है। चीमनसिंह यादव के बेटे मैत्रेयी को अपनी बहन मानते रहे हैं। तो “इदन्नमम” के पात्र कई-कई प्रकार के लोगों के संयोजन के निर्मित हुए है। कई पात्रों पर कई-कई लोगों की छायाएं मिल सकती हैं।

मन्दा का जो संघर्ष, उसमें जो जीवट और जूझारुपन है, जीवनमूल्यों का आग्रह है, उसे देखते हुए लगता है की कहीं तो उसमें मैत्रेयी आ गई है, कहीं कस्तूरी आ गई है। खेरापतिन दादी और उनके लोकगीत तो यत्र-तत्र सर्वत्र मिलेंगे। बहू का जो चरित्र है उसके कुछ रेशे तो कस्तूरी के मिलेंगे, पर कुछ रेशे कई ग्रामीण स्त्रियों के भी हो सकते हैं। पंचमसिह, मोदी, चीफ जैसे जो उदारमना बुजुर्ग हैं उनके रग-रेशे तो चीमनसिंह यादव, मेंवाराम, नम्बरदार, पटवारी साहब जैसे लोगों से मेल खाते हैं। रतन यादव, अभिलाखसिंह, जगेसर जैसे माफिया और गुण्डे भी गावोमें खूब मिल जाते हैं। कस्तूरी और मैत्रेयी दोनों ने अनुभव किया है कि ग्रामीण राजनीति अब ऐसे गुण्डा तत्वों के हाथों में जा रही है। बऊ और मन्दा की जमीन अभिलाखसिंह और गोविंदसिंह जैसे लोग छल-छदम और धोखे से हड़प लेते हैं, तो इस तरह के किस्से भी गांव-खेड़ों में होते हैं। “कस्तूरी कुण्डल बसै” में तथा “गुड़िया भीतर गुड़िया” में यह प्रंसग आया है कि स्वयं कस्तूरी यदि चोक्कस न रहती

और कस्तूरी की मृत्यु के समय यदि मैत्रेयी भावुकता में आकर घर बैठ जाती तो उनकी जमीन भी मामा हेतराम या उनके लड़के हड़प जाते । तो ये सारे जमीनी अनुभव भी यहाँ काम आए हैं ।

हमने “कस्तूरी कुण्डल बसै” तथा “गुड़िया भीतर गुड़िया” से क्रमशः और 30 विचार-सूत्र निकाले हैं जिनसे कस्तूरी और मैत्रेयी उभय के प्रेम, विवाह, रिश्ते, शिक्षा, स्त्री की पहचान, उसकी अस्मिता, स्त्री-विमर्श, रुढ़ि, परंपरा आदि विषयों पर विचार और चिंतन उपलब्ध होते हैं और उनसे ही उनकी विचारपरा निर्मित हुई है । “इदन्नमम” के पात्रों के रचाव में उसकी भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

मंदा के चरित्र के निर्माण में, जमीन छीन जाने पर कथा-वाचन करके जीवन-निर्वाह करना आदि में मैत्रेयी की वह शिक्षा काम आयी है जो उन्होंने गुरुकुल में हासिल की थी । गुरुकुल की शिक्षा के बाद कालेज-शिक्षा में भी मैत्रेयीजी ने संस्कृत लिया था और उसमें संस्कृत एसोशिएशन की सेक्रेटरी भी रही थी ।[100] अतः मन्दा की जो पृष्ठभूमि है, शिक्षा विषयक, उसमें मैत्रेयी की शिक्षा का दायित्व भी है ।

यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो व्यक्ति डरपोक भीरु व कमजोर होता है, यदि वह साहित्य के क्षेत्र में जाता है, तो जोरदार चरित्रों का निर्माण करता है और उसके द्वारा वह अपनी आकांक्षाओं की क्षति-पूर्ति करता है । मन्दा की निर्भीकता, उसका लौह-संकल्पिनी होना । आदि में कहीं न कहीं मैत्रेयी की भीतरी कमजोरी और भीरुता भी कारणभूत है क्योंकि “इदन्नमम” के प्रकाशन के पूर्व की मैत्रेयी कुछ ऐसी ही रही हैं । आल्फ्रेड हिचकोक बहुत ही डरपोक थे, पर उनकी फिल्में भयंकर रुप से डरावनी होती थीं ।

सगुना की जो कहानी है उसके निर्माण में शकुन की त्रासदी है,[101] जिसे हम पहले बता चुके हैं । कुसुमा भाभी और दाऊजी की जो प्रेमकहानी है उसके पीछे मैत्रेयी की यही सोच है कि यदि पुरुष अपने पति-धर्म का निर्वाह नहीं करता है तो स्त्री भी उसके लिए बाध्य नहीं है । कुसुमा पंचमसिंह दद्दा के भाई गोविन्दसिंह के सुपुत्र यशपाल की पत्नी है, पर धन-संपत्ति की लालच में दूसरी पत्नी ले आता है और कुसुमा भाभी की घोर उपेक्षा करता है । बऊ और मन्दा के साथ गांव-गांव डोलते हुए कुसुमा भाभी और दाऊजी, पंचमसिंह दद्दा के छोटे भाई अमरसिंह की आत्माएं ही नहीं शरीर भी मिलते हैं और जिसके

फलस्वरुप कुसुमा भाभी को गर्भ भी रहता है तब दद्दा ही कुसुमा भाभी के साथ न्याय करते हैं।[102]

मन्दा की मां प्रेम जब विधवा हो जाती है, जब मन्दा के पिता महेन्द्रप्रतापसिंह की हत्या हो जाती है, तब वह प्रेम रतन यादव के साथ भाग जाती है। यहाँ बऊ मन्दा की दादी और प्रेम की सास प्रेम को वेश्या, कुल्टा, बेड़िनी जैसी गालियां निरंतर सुनाती हैं और वह प्रेम को माफ नहीं कर पाती। इसका भी मनोवैज्ञानिक कारण है। बऊ स्वयं कम उम्र में विधवा हुई थीं, अतः जो विधवा दूसरे से विवाह कर लेती है, उससे वह घृणा करती है। उसके पीछे दमित वासनाजन्य "सैडिस्ट" ग्रंथि ही जिम्मेदार है। बऊ का यह जो चरित्र है वह कस्तूरी के जीवन से भी मेल खाता है। कस्तूरी भी कम उम्र में विधवा हो गयी थी।

कुसुमा भाभी, प्रेम, मंदा आदि के चरित्र में कई ऐसे रेशे हैं जिनका निर्माण या तो मैत्रेयी से हुआ है या उन महिलाओं से हुआ है जो उसके अनुभवार्जन काल में उसे मिली हैं। सती, यौन-शुचिता, पवित्रता, नैतिकता प्रभृति विषयों में जो विचार-धारा है उसमें कहीं कस्तूरी की सोच है तो कहीं मैत्रेयी की।

शैशवावस्था में मंदा पर उसके दूर के रिश्ते के मामा द्वारा जो बलात्कार होता है उसे भी कुसुमा भाभी बहुत ज्यादा गंभीरता से लेने से मना कर देती है - "इतनी बड़ी जिन्दगानी में अच्छा-बुरा घट जाता है बिटिया, उसके कारन मन में गांठ लगाने से क्या फायदा ? जो तुमने किया ही नहीं, उसके लिए अपने को दोसी क्यों मानना ?"[103] यहाँ कुसुमा भाभी के जो विचार है वे बलात्कार की इस घटना को एक नया आयाम देते हैं। कस्तूरी और मैत्रेयी दोनों के विचार यहाँ मिलते हैं। कस्तूरी भी ऐसी बातों को ज्यादा तुल नहीं देती थी। मां की नौकरी के कारण पढ़ाई हेतु मैत्रेयी को अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग किस्म के लोगों के साथ रहना पड़ा था और उसके साथ भी ऐसी छोटी-मोटी घटनाएं हुई थीं, अतः मन्दा थोड़े समय में ही नोर्मल हो जाती है और जिन्दगी में निर्ग्रथित स्थिति में बड़े-बड़े कामों को अंजाम देती है।

"इदन्नमम" तीन पीढ़ियों की कथा है। मैत्रेयी के पास भी तीन पीढ़ियों का अनुभव है। मैत्रेयी में जो ठोसपन है, कठोरता और निर्ममता है, वह उसे विरासत में कस्तूरी से मिली है। गीत उसे खेरापतिन दादी, कलावती चाची तथा ग्रामीण स्त्रियों के सहवास से मिले है। "इदन्नमम" उनकी "नेहबंध"

कहानी का विकास है जिसमें उन्होंने अपनी अनुभव-यात्रा से बहुत-कुछ जोड़ा है । अनुभव के साथ उनका व्युत्पत्ति-ज्ञान भी काफी समृद्ध है । उन्हें अपनी साहित्यिक परंपरा का ज्ञान है । अनेक देशी-विदेशी साहित्यकारों का अध्ययन उन्होंने किया है । रेणू की "कहन-रीति" को अंगीकृत किया है और इन सबसे इस महान मील-स्तम्भनुमा औपन्यासिक कृति का निर्माण हुआ है ।

(4) चाकः

मैत्रेयी पुष्पा का "चाक" उपन्यास सचमुच में चित्त को चाक कर देने वाला उपन्यास है । उसका प्रकाशन सन् 1997 में हुआ था, अतः असंदिग्धतया उसमें निरुपित घटनाएं सन् 1996 तक की हो सकती है । उपेन्द्रनाथ अश्क़ के प्रथम उपन्यास "सितारों के खेल" के संदर्भ में "हंस" (बनारस) ने लिखा था - "विश्व-कवि वाल्ट ह्विटमैन की दो अमर पंक्तियां "Comrade this his no book, who touches this touches the man",[104] ये पंक्तियां तो "सितारों के खेल" पर उद्धृत की गयी है; परंतु सच पूछा जाय तो इन पंक्तियों को "चाक" के संदर्भ में भी उद्धृत करने का मन हो जाता है । मनुष्य क्या है, उसका मन क्या है, उसकी अतल गहराइयों में क्या कुछ छिपा हुआ हो सकता है, वह क्या हमेशा एक-सा रहता है, या कभी ऊंचाइयों पर विहरता है, तो कभी खाइयों में जा गिरता है । उपन्यास के दो प्रमुख पात्र-सारंग और रंजीत के संदर्भ में हम ऐसा सोच सकते है । सारंग तो उपन्यास की नायिका है ही, रंजीत को नायक कह भी सकते हैं और नहीं भी । सारंग का पति होने के नाते उसे उपन्यास का नायक कहा जा सकता है, परंतु लगभग एक तिहाई उपन्यास की समाप्ति के बाद पृ.123 से उपन्यास में मास्टर श्रीधर प्रजापति का आगमन होता है और शेष उपन्यास के दो तिहाई हिस्से पर उसका प्रभाव रहता है । उसमें और सारंग में प्रेमी-प्रेमिका का रिश्ता बनता है । सारंग और रंजीत के मन मानो "चाक" पर घूमते हैं, श्रीधर स्थिर है । सारंग अपने पति रंजीत को बहुत चाहती है, परंतु झूठी महत्वाकांक्षा के चलते वह निरंतर नीचे गिरता जाता है और फलतः सारंग की आंखों से भी गिर जाता है ।

उपन्यास की कथा और पात्रों के संदर्भ में पूर्ववर्ती अध्याय में विस्तार से चर्चा हो चुकी है । अतः यहाँ मैत्रेयी की आत्मकथाओं के संदर्भ में उपन्यास पर कुछ चर्चा होगी । "पहल" के संपादक ज्ञानरंजन ने प्रस्तुत उपन्यास में लोकजीवन की महक को महसूसते हुए लिखा है - "जिस लोकजीवन से हमारी रचनात्मक धारा काफी पहले विमुख हो चुकी थी उसकी अनेक परतें मैत्रेयी

पुष्पा ने खोल दी हैं। मैत्रेयी पुष्पा को उनकी मामूली पर जबरदस्त स्त्रियों के कारण याद किया जाएगा।"[105]

जिन स्त्रियों का उल्लेख ऊपर ज्ञानरंजन कर रहे हैं वे स्त्रियाँ है - खेरापतिन दादी, लौंगसिरी बीबी, कलावती चाची, हुकमकौर और ढ़ेर सारी ग्रामीण औरतें जिनका जिक्र मैत्रेयी की दोनों आत्मकथाओं में अनेक स्थानों पर हो चुका है। खेरापतिन दादी के पास ढ़ेर सारे लोकगीत, कलारिन के गीत, शादी-ब्याह के गीत, खेल के गीत, गाली गीत और लोककथाओं का पिटारा है। कलावती चाची और लौंगसिरी बीबी भी इसमें कहीं पीछे नहीं है। मैत्रेयी की माताजी कस्तूरी चाहती थीं कि मैत्रेयी अपना ज्यादा से ज्यादा ध्यान पढ़ने में, विद्या हासिल करने में लगावे और इसलिए वह इन गंवारिन औरतों के पास ज्यादा न बैठे, लेकिन मैत्रेयी का ध्यान पढ़ने में तो कम रहता था इनके गीतों और लोककथाओं में ज्यादा रमता था। और यही सब पूंजी है मैत्रेयी की, उनके उपन्यासों की शक्ति और ताकत।

इस खेरापतिन दादी के बारें में मैत्रेयी लिखती हैं - "हमारे गांव की खेरापतिन दादी का तेवर अपना ही है, वह सिर्फ करुणा की ही नहीं, प्रतिरोधी स्वर भरे गीतों की लोक गायिका है। मुझे याद आए वे गीत, जिनके मर्म चले आ रहे रस्मों-रिवाजों में नहीं, अब बदलाव के तेवरों में खुलने लगे तो मन के मौसम बदल गए। गंवई शब्द-यात्रा में अनजाने पहलू सामने आए।..... मुझे क्या मालूम कि हमारी खेरापतिन दादी में ऐसी भावात्मक और कलात्मक क्षमता है कि सादा ग्रामीण बोली-बानी की लयबद्ध पंक्तियां बड़े से बड़े अवसाद का संसार रच देती हैं तो छोटे-छोटे वाक्यों से बड़े-बड़े अर्थ खोल देती हैं। क्या मैं इन गीत कथाओं के साथ अपनी पुस्तक में न्याय कर पाऊंगी ?"[106]

"गुड़िया भीतर गुड़िया" में ही मैत्रेयीजी ने बताया है कि किस प्रकार खेरापतिन दादी परंपरागत गीतों को नये जमाने के अनुरुप ढाल लेती थीं, क्योंकि उनका मानना था कि गीतों को यदि नया नहीं किया गया तो उनमें फ्फूंद लग जाएगी। इन्होंने त्रेतायुग की रामकहानी को नये सन्दर्भो में रखा। बाबा तुलसीदास की भी परवाह नहीं की। उन्होंने सीता-कथा से जोड़कर एक नया ढोला रचा -

"सीता ठाड़ी जनक दरबार, सुरिज जल दै रहीऽऽ ई...
सीता मांगनो होच सोई मांगि तपस्या पूरन है गयीऽऽ ई...
मैने मांगि कौसिल्या-सी सास, सुसर राजा दशरथ से

मैने वार मांगे सिरीराम, ननद छोटी भगिनी सी...

मैने मांग्यो अजुध्या को राज, गंगाजी मांगीनहाइबेकूं ।"[107]

खेरापतिन दादी की सीता कौशल्या-सी सास, दशरथ से ससुर, राम से पति, छोटी भगिनी-सी ननद मांगती है । यह सब तो परंपरागत है, पर वहीं उसमें एक बड़ा-सा झोल डाल देती है - खेरापतिन दादी की सीता सिर्फ वहीं नहीं रुक जाती । उसे तो अयोध्या का राज और नहाने -विहार करने समूची गंगा भी चाहिए । अभिप्राय यह कि स्त्री को भी संपत्ति में अधिकार मिलना चाहिए । जमीन-जायदाद में उसका हक होना चाहिए और गंगा-स्नान स्वतंत्रता का प्रतीक है । जिस मैत्रेयी ने इस प्रकार की खेरापतिन दादी को बचपन से अपनी सांसो में पिरोया हो वही रच सकती है सारंगनैनी को और वही लिख सकती है सारंग-श्रीधर की संवनन-कथा और मिलनोत्सव को ।

और यही खेरापतिन दादी रामकथा को भी नया विमर्श देती है । वह गांव की स्त्रियों को कहती है : "छोरियो", जलवायु और आकास (यहाँ कोई बर्तनी-दोष न निकाले, दादी लोकबोली में कहती है अतः यहाँ "आकाश" आकास हो जाता है और "दोष" दोस) के संग धरती की अभिलाषा रखने वाली औरत किसीकी मोहताज नहीं हो सकती ।..... छोरियो, इतना सब था सीता के पास तभी तो लछमन रेखा लांघ गयी । रावण आया, संग चली गई । सोने की लंका देखने की लालसा कौन-सी बैयर को नहीं होती ? बैयर तो सोने-चांदी के कील-कांटे से ही बहलाई गई है ।..... और सीता ने रावण की तसवीर बनाकर सास-ननद को दिखा दी कि अपने भइया को दिखा दे । अपने पति के दुश्मन रावण से ऐसी जान-पहचान तो लछमन रेखा लांघने वाली ही कर पाती है, क्योंकि वह प्रेम-प्रीति पर भरोसा रखती है, मार-काट पर नहीं जैसा कि पुरुष रखता है । (और दादी, सीता की अगिन परीक्षा ?) बेटी, सांच को अगिन में न तपाया जाए तो झूठ जिन्दा कैसे रहे ? बस, यही अगिन परीच्छा थी । नहीं तो आग की लपटों में बैठकर कोई जिन्दा बचा है ? हम तो यह जानते हैं कि या तो वह आग नहीं थी या फिर हाड़मांस की सीता नहीं थी । वैसे भी रामजी को सोने की सीता बनवाकर रखने की लत थी । अपनी महिमा और मर्दानगी की खातिर सोने की सीता आग में उतार दी हो और सोने की काया कुन्दन हो गई हो ।..... सांची बात तो यह है कि खिसियाकर रामजी ने सीता की अजुध्या छीन ली । गंगाजी हथिया लीं । पत्नी को देश निकाला दे दिया । लो, इसी बात पर रामजी से लवकुश लड़े । नाइंसाफी करने वाला उनका बाप था भी या नहीं

? सीता ने ऐसे पति का मुंह नहीं देखना चाहा । भूमि समाधि लेनी पड़ी । लो देख लो कि लवकुश ने रामजी को जलसमाधि दे दी । तुम बेटों को अपना अंस नहीं मान पाए तो बेटा तुम्हें बाप कैसे मानें ?..... वाह री, खेरापतिन दादी..... तुम औरत की कितनी-कितनी भूमिकाओं को बदलने की गुनहगार..... गांव के चरनसिंह बौहरे तुम्हारी पुरोहिताई छुड़वाने के लिए पंचायत करवा रहे थे तो ताज्जुब किस बात का ?”[108]

ऐसी खेरापतिन दादी की चेली मैत्रेयी अपनी मानस-संतान सारंग द्वारा “लछमन-रेखा” का उल्लंघन करवाती है, तो उसमें क्या ताज्जुब ?

और कलावती चाची ? अपनी बहन रेशम के हत्यारे डोरिया की पहलवानी को धूल चटाने के लिए सारंग अपने दूर के रिश्ते के जीजा कैलाससिंह ताड़फ्ड़ेवाले को आमंत्रित करती है । पर मनोवैज्ञानिक दृष्टया नपुंसक हो गए ताड़फ्ड़ेवाले में जब तक पुंसत्व लौट न आवे तब तक वह पहलवानी की लड़ाई कैसे जीत सकते है । अतः कैलाससिंह में पुंसत्व का प्राण फूंकने का काम कलावती चाची करती है और पुंसत्व लौट आने पर कैलाससिंह डोरिया को हरा देते है तब सारंग कलावती चाची का आभार मानने जाती है । अब सुनिये कलावती चाची की जबान में – “सारंग, वे लल्लू बड़ी देर में निरदंद भए । पर जब निरदंद हो गए तो समझ ले कि मेरी आंखो के अगारी पूरे पुरिख होकर ठाड़े हो गए । मइया इतनी खुस तो मै तब भी नहीं हुई थी, जब पहली बेर रिसाल के दादा ।... वे पुरिख और में लुगाई... मैंने उन लल्लू को छाती से चिपकाकर, हार और जीत आनंद में डूबो लिया । रस ही रस फिर तो ।”[109]

इस कलावती चाची का उल्लेख भी दोनों आत्मकथाओं में मिलता है । चरनसिंह बौहरे को खेरापतिन दादी की सेनापति कलावती चाची सुना देती है - “छिनट्टा तू नहीं बदला तो हम भी नहीं बदलेंगे क्या ?”[110] गांवों में खेल के गीत, गाली गीत में सबको परास्त करनेवाली कलावती चाची ही कह सकती है – “चल लुच्ची । हम जाटिनी तो जेब में बछिया धरे फिरती है । मन आया ताके पहर लिए । तेरी-मेरी खातिर क्या ? अए तो हम्बै । क्या पल्लौ (परलय) हो गई ?”[111] सारंग जब यह कहती है कि मेरी खातिर चाची तुमने यह सब किया ? सब उसके उत्तर में मुंहफट कलावती चाची उसे उपर्युक्त बात सुनाती है । शहराती लेखक और लेखिकाओं को स्त्रियों की ये दुनिया अज़नबी और विचित्र

लगे, पर जो गांव में रहे है, गांव की जिन्दगी को जिन्होंने बहुत करीब से देखा है उनके लिए स्त्रियों का यह आचरण सहज और स्वाभाविक रहेगा। असल में अनपढ़ और अशिक्षित-सी लगने वाली ये औरतें बड़ी तेज़-तर्रार होती हैं और सेक्स के मामले में भी वे खुली और "निरदंद" (निर्द्वन्द्व) होती है। इसी लिए प्रो.मैनेजर पांडे, प्रो.चन्द्रकान्त बांदीवड़ेकर, मनोहरश्याम जोशी, डा.वीरेन्द्र यादव, डा.राजेन्द्र यादव, डा.परमानंद श्रीवास्तव, डा.रोहिणी अग्रवाल जैसो को मैत्रेयी का ये संसार वास्तविक और यथार्थ लगता है; क्योंकि उसकी स्त्रियां मनुष्य है, देवी नहीं, सती-साध्वी नहीं, हाड़-मांस की बनी है, "देह धरी है तो देह का हक्क भी होता है।"[112] ऐसा कहने वाली और समझने वाली; क्योंकि मैत्रेयी प्रणबद्ध तरीके से कहती है – "मैं लिखूंगी, सिकुर्रा की स्त्रियां न मीरा हैं न महादेवी, वे हैं चन्दना और कलारिन गीत-कथाओं की स्त्रियां।"[113]

मैत्रेयी कहती हैं – "खेरापतिन दादी ने मेरे भीतर ये कथाएं उतार दी और कहा – ये कथा-कहानी नहीं हैं, गांव-भीतर, घर-भीतर के जंगलो में खुलनेवाली वे सच्चाइयां है, जिन्हें बैयर ही जानती हैं, क्योंकि वे उनके तन-मन और मांस खून से रची-बसी हैं। तू इन्हें कैसे बदलेगी ?"[114] मैत्रेयी का यह सवाल भी वाजिब है कि "हम जिस तरह जीते हुए दिखते हैं, ऐसे ही जीते भी हैं क्या ?[115] उत्तर होगा नहीं। हमारा भीतर-बाहर एक-सा नहीं है और कोई लेखिका यदि जीवन को उसी रुप में रखे तो कहर बरपा हो जाती है। इज्जतवालों की इज्जत चली जाती है। लेखिका यथार्थ ही कहती है कि "गांव में मेरी मां के दुश्मन सक्रिय हो जाएंगे, हर सच्चाई को झूठी साबित करने में लग जाएंगे ताकि मेरी लिखावट झूठी साबित हो और उन सबकी इज्जत बनी रहे, जो सरेआम औरतों की इज्जत उतारते हैं।"[116]

"इदन्नमम" की भांति "चाक" में भी मैत्रेयी ने उन पात्रों को उठाया है जिनसे वह परिचित हैं, कहीं कुछ नाम बदल दिए गए हैं। कलावती चाची का बेटा तो रिसाल ही है। "चाक" के थानसिंह सचमुच के मास्टर लालसिंह है और "चाक" के प्रधान फतेसिंह का असली नाम कुन्दनसिंह हैं। भंवर, गजाधर बाबा और श्रीधर वही हैं। लेखिका श्रीधर से पूछती है कि नाम बदलना होगा तुम्हारा, तो उसका उत्तर था कि नाम बदलने से चरित्र नहीं बदल जाते।[117]

जैसे "इदन्नमम" कहानी "नेहबंध" का विस्तार है, ठीक उसी तरह "चाक" मैत्रेयी की कहानी "फैसला" का विस्तार है । कहानी की नायिका बसुमती है और नायक वा खलनायक रनवीर है । यहाँ वे क्रमशः सारंग और रंजीत बनकर आए हैं । इस प्रकार कहानी को औपन्यासिक रुप देना यह प्रवृत्ति मटियानीजी में भी पायी जाती है, पर इस कला में मैत्रेयी का हाथ अधिक सधा हुआ हो ऐसा लगता है । "कस्तूरी कुण्डल बसै" तथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" (पूर्वदीप्ति द्वारा) में निर्दिष्ट किया गया है कि मैत्रेयी की प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा गुरुकुल में हुई है । यहाँ "इदन्नमम" तथा "चाक" की नायिकाएं क्रमशः मन्दा और सारंग भी गुरुकुल की छात्राएं रही है ।

"इदन्नमम" में मैत्रेयी दावा करती है कि यह मेरा नहीं है । "चाक" में भी नायिका सारंग, वास्तविक जीवन की सारंगनैनी है, परंतु लेखिका ने सारंग का चरित्र-चित्रण इस खूबी से किया है कि डाक्टर साहब (मैत्रेयी के पति) की भांति कइयों को लग सकता है कि कहीं यह मैत्रेयीजी तो नहीं ? "चाक" पढ़ने के बाद डाक्टर साहब कहते भी हैं – "बात यह है मेरी जान, किताब की सारंग, सारंग नहीं लगती, मुझे वह तुम लगती हो, एकदम तुम ।"[119]

इसके उत्तर में मैत्रेयी कहती है - "में सारंग हूं या नहीं हूं, तुमने खुदको रंजीत (सारंग के पति) के रुप में देख लिया है । एकनिष्ठ प्रेमी पति । विकास के सपने देखने वाला और उन्हीं ग्रामीणों के हाथों तबाह होनेवाला, जिनकी उन्नति के लिए पढ़-लिखकर गांव में ही रह गया ।"[120] इसके उत्तर में डाक्टर साहब कहते है - "हां, इसमें क्या शक है ? मेरी तरह ही श्रीधर को परसकर खिलानेवाला । तुम्हें मास्टर के नजदीक जाने से रोकने वाला । औरत के लिए खड़े खतरों से डरने वाला । तुम्हें ही पछाड़ने पर मजबूर होनेवाला... लिखा तो तुमने बहुत होशियारी से है डार्लिग, पर हम भी तुम्हारी रंगत पर नजर रखनेवाले है । माफ करना मेरी जान, बहुत कुछ ज्यादा सावधानी बरतने में हो जाता है ।"[121]

"इदन्नमम" के प्रकाशन के बाद जिन परिस्थितियों का निर्माण हुआ था उनसे मैत्रेयी जिस चिमनसिंह यादव के परिवार में बेटी की तरह रही उसे लेकर लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे । जुझारपुरा और खिल्ली में तलवारें तन गयी थीं और बिना पुलिस संरक्षण के मैत्रेयी का भी वहाँ जाना मुश्किल हो गया था । इन सबका विस्तृत वर्णन "गुड़िया भीतर गुड़िया" में किया गया है, तो

"चाक" के प्रकाशन के बाद लोग मैत्रेयी के चरित्र पर भी छींटाकशी कर रहे हैं, यहाँ तक कि डाक्टर साहब ने भी कहा था कि "चाक" में निरुपित सारंग मैत्रेयी ही है। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक दृष्टया देखा जाए तो लेखक वा कलाकार अपनी अधूरी इच्छा की पूर्ति अपने रचे पात्रों में करते हैं। कर्ता को भी अपना अधूरापन खलता है, अन्यथा यह क्यों कहा जाता कि - "एको हम बहु स्याम"। स्वयं मैत्रेयीजी ने इसका इकरार बड़े सांकेतिक ढंग से कर भी दिया है - "सारंग, तुम मेरा पीछा छोड़ो क्योंकि कलावादियों के किले में सेंध लगा नहीं सकती और उनके द्वार-दरवाजे मेरे लिए बन्द हैं। मेरी इमेज तुम जैसी औरतों की कथाओं ने मैली कर डाली।"[122] जहाँ "इदन्नमम" के कारण मैत्रेयी की सामाजिक जिन्दगी में दरारें आयीं, वहाँ "चाक" के कारण उनका वैयक्तिक जीवन दरकने लगा। डाक्टर साहब रुठे-रुठे और रुखे-रुखे से रहने लगे तो नवयुवा बेटी मोहिता का दाम्पत्य-जीवन भी खतरे में पड़ गया। "यह उपन्यास था और जिन्दगी मेरे आगे जलने लगी। सचमुच में अपनी पूरी ताकत लगाकर भी अपनी नवयुवा बेटी का दाम्पत्य नहीं बचा पायी।"[123]

मैत्रेयी के लेखन से नाराज लेखिकाओं, "गोडमधर" तथा अन्यों को यह सोचना चाहिए कि क्या लेखन में वे इस तरह के खतरों को उठाने के लिए तैयार हैं ?

(5) झूलानट :

दो बृहदकाय उपन्यासों के बाद यह एक लघु उपन्यास पर "नावक के तीर-सा" जो देखने में छोटा लगे पर गंभीर घाव करने वाला है। इसमें बुंदेलखण्ड की एक और बलूकी-बलवत्तर नारी शीलो को लेकर मैत्रेयी आयी हैं। मंदारुपी "चाक" से उतरी ये नारियां शुरु-शुरु में तो बड़ी कमजोर लगती हैं, पर पुरुष-सत्ता के बाणों से जब आहत होती हैं तो शेरनियों-सी दहाड़ने लगती हैं। सबल-सशक्त नारी पात्रों को देकर मैत्रेयी कदाचित् यह प्रमाणित करना चाहती हैं कि स्त्रियों को अपने हक की लड़ाई खुद लड़नी होगी। विशुद्ध नारीवादियों की तरह मैत्रेयी स्त्रियों को पुरुष के विरोध में नहीं खड़ी कर रहीं। उनका विरोध पुरुषों से नहीं है, बल्कि उनका साथ-सहयोग तो वह भी चाहती हैं। मैत्रेयी की लड़ाई पुरुष-सत्ता, पितृसत्ताक संस्थानों और फकत और फकत उनके हितों में बनाए विधि-विधानों और कायदों से है। स्त्री और पुरुष संसाररुपी रथ के दो पहिये हैं, फिर एक पहिया कमजोर कैसे हो गया ? अबला कैसे हो गया ? हम बातें तो बड़ी-बड़ी करते हैं, लेकिन हमारा व्यवहार ?

हमारा आचरण उसके अनुकूल क्यों नहीं होता ? "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते" कहनेवालें की यह कैसी नारी-पूजा है ? जब तक नारी उनके कहे पर चले, उनके इशारों पर कठपुतली की तरह नाचती रहे, उनके बनाए विधि-विधानों को मानती रहे तब तक तो वह देवी और जहाँ उस लीक से थोड़ी हटी कि सीधे आ गयी वेश्या, कुल्टा, बेड़िनी की कैटेगरी में। "झूलानट" की शीलो भी मैत्रेयी की तरह शुरुआती दौर में कमजोर, पर बाद में पति-पुरुष को भी भारी पड़ने लगती है। इतनी भारी कि उपन्यास के एक समीक्षक डा.खगेन्द्र ठाकुर ने तो शीलो के पति सुमेर को किसी शुमार में ही नहीं लिया है, यथा - "इस प्रकार तीन मुख्य पात्र मिलकर एक त्रिभुज बनाते हैं, ये पात्र हैं - शीलो, बालकिशन और मां। निःसंदेह शीलोवाली भुजा सबसे बड़ी और सबसे अधिक दबंग है।"[124]

अपनी आत्मकथा के दूसरे खण्ड "गुड़िया भीतर गुड़िया" में मैत्रेयीने जितना "इदन्नमम", "चाक" और "अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में लिखा है, उतना प्रस्तुत उपन्यास की रचना-प्रक्रिया पर नहीं लिखा है। केवल एक-दो स्थानों पर उसका जरा-तरा उल्लेख मिलता है। "चाक" के बाद जो पारिवारिक स्थितियां बनती है, उनके संदर्भ में मैत्रेयी कहती है – "प्रियतम, तुम्हारी दुनियाँ में सुख तो है, मगर घुटन उससे ज्यादा। सुविधा भी है, लेकिन सिकुड़े-संकरे दायरों के बन्धन..... सच, मेरे स्वभाव में परिवर्तन की बुरी लगन है, मैं तुम्हारे "विवाह लगन" के योग्य नहीं थी और न शायद मां बनने योग्य... अभी तो शुरुआत है, मोहिता का जीवन प्रभावित हुआ, आगे क्या होगा, जब शीलो, आभा और अल्मा आएंगी ? मुझसे वे छोड़ी न जाएंगी, पात्रों से बुरी तरह जुड़ी रहती हूं मै। ऐसी दीवानगी....."[125]

उपर्युक्त कथन में जो तीन स्त्री-पात्र हैं उनमें शीलो "झूलानट" की नायिका है, आभा "विजन" की और अल्मा "अल्मा कबूतरी" की। अभिप्राय यह कि "झूलानट" का यत्किंचित् उल्लेख उनकी आत्मकथा में उपलब्ध होते है। "यह तन जारों, मसि करों" ("गुड़िया भीतर गुड़िया" का एक अध्याय) में "अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया की बात है, पर प्रस्तुत उपन्यास का उल्लेख कम ही मिलता है।

उपन्यास की नायिका शीलो एक साधारण-सी लड़की है, न ज्यादा खूबसूरत, न ज्यादा बदसूरत। पर यौवन अपने आप में सौन्दर्य का एक अभिलक्षण माना जाता है। शीलो ज्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं है, बल्कि उसे

अनपढ़ ही कहना चाहिए । उसने न समाज-शास्त्र पढ़ा है, न मनोविज्ञान, पर ग्रामीण औरतों में जो सामान्य सूझ-बूझ होती है, वह गजब की होती है जिसके चलते वह पढ़े-लिखों को भी कई बार चारों खानों चित्त कर देती है । मैत्रेयी बुंदेलखण्ड के इन गावों को और वहाँ की "बैयर-बानियों को भली भांती जानती है, उनके साथ वह बहुत जल्दी बहिनापा स्थापित कर लेती हैं और उसके कारण ही उनको मन्दा, सारंग, शीलो, अल्मा जैसी औरतें मिल जाती हैं । प्रेमचंद कहते थे कि मैं अपने पात्र आलमारी की किताबों से नहीं उठाता हूं, जीवन के रंगमंच से उठाता हूं, ठीक यही बात मैत्रेयी, मटियानी और रेणु तथा नागार्जुन जैसे लेखकों पर लागू होती है । इस तरह शीलो भी मैत्रेयी की खोज है ।

बकौल राजेन्द्र यादव के मुहावरेदार, जीवंत और खुरदरी लगनेवाली भाषा की "गंवई ऊर्जा" मैत्रेयी का ऐसा हथियार है जो उन्हें अपने समकालीनों में सबसे अलग और विशिष्ट बनाता है... वह उपन्यास की शिष्ट और प्राध्यापकीय मुख्यधारा की इकहरी परिभाषा को बदलने वाली निर्दमनीय कथाकार हैं । अपनी प्रामाणिकता में उनका हर चरित्र आत्मकथा होने का प्रभाव देता है और यही उनकी कला-संपन्नता है ।..... "झूलानट" की शीलो हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में से एक है ।"[126] शीलो जैसी स्त्री को मैत्रेयी कैसे तलाश और तराश सकी उसका जवाब हमें उनकी आत्मकथाओं में विशेषतः "कस्तूरी कुण्डल बसै" में मिल सकता है क्योंकि कस्तूरी की दृष्टि से मैत्रेयी पढ़ रही थी, पर नहीं, मैत्रेयी गुन रही थी, अपनी अनुभव-पूंजी में इजाफा कर रही थी । इस प्रकार के चरित्र वही लेखिका उकेर सकती हैं जिसने उस प्रदेश की मिटटी से प्यार किया हो और जो वहाँ के धूल-धक्कड़ को मुहब्बत करती हो ।

डा.गोपाल राय ने कहा है कि उपन्यास में ऐसा कोई "विज़न" नहीं है जो हमें "इदन्नमम" या "चाक" में मिलता है, परंतु मेरे नम्र अभिमत में शीलो ने सुमेरबाबू जैसे पढ़े-लिखे कानून को जाननेवाले सरकारी मुलाजिम को धूल चटाकर वह विजन दे दिया है कि पुरुष यदि एक स्त्री के रहते दूसरी के साथ रहता है तो स्त्री भी दूसरे पुरुष के साथ रह सकती है । शीलो ने सुमेर को उसके ही हथियारों से मात किया है । देवर बालकिशन के साथ रहकर वह अपनी शारीरिक जरुरतों को भी पूरा कर रही है और एक तरह से सुमेर बाबू की जमीन-जायदाद पर भी कब्जा कर लिया है । सुमेर बाबू सरकारी नौकरी में

है, अतः ज्यादा चू-चपड़ नहीं कर सकते, इस बात का शीलो ने भरपूर फायदा उठाया है। सचमुच ही वह "गाय की खाल में बाघिन" प्रमाणित हुई है।

(6) अल्मा कबूतरी :

"गुड़िया भीतर गुड़िया" में "अल्मा कबूतरी" उपन्यास के बीज-प्रसंग का आलेखन हुआ है : "फिर भी मैं श्रीराम सेण्टर गई। "गुड़िया" संस्था द्वारा आयोजित वेश्याओं और बेड़नियों के नृत्य और गीतों ने मुझे खींच लिया। बदनाम बस्तियों की बदकार औरतें, उनसे मिलने की गुनहगार मैं, पति के सामने नहीं पड़ी। पड़ती भी कैसे... कार्यक्रम से लौटी तो मन में सारंग और कलावती चाची, कदमबाई और अल्मा नाचती आई। ढोलक की ताल और पांवों में पेंजनियां।"[128]

बहुत पहले लगभग सन् 1858 में डा.रांगेय राघव ने राजस्थान की करनट जन-जाति को लेकर "कब तक पुकारुं" नामक उपन्यास लिखा था।[129] लगभग उसी प्रकार का प्रयास मैत्रेयीजी ने "अल्मा कबूतरी" को लेकर किया है जिसमें उन्होंने बुंदेलखण्ड के एक जरायम पेशा और अपराधी जन-जाति "कबूतरा" जाति के लोगों के यथार्थ जीवन को चित्रित किया है।

"अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में आत्मकथा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में एक समूचा अध्याय - "यह तन जारों, मसि करों" (पृ. 253-281) - दिया गया है जिसमें लेखिका ने सिलसिलेवार ब्यौरा दिया है कि किस प्रकार वह बुंदेलखण्ड के एक गांव - खिल्ली मड़ोरा - की कबूतरा बस्ती में जाती है, एक बार नहीं कई-कई बार, शुरु में अपने भाई युवराज (चिमनसिंह यादव के बेटे) और बुद्वसिंह के साथ, कभी मिट्ठू कक्का के साथ, किस प्रकार वह सोबरन (दद्दा चिमनसिंह यादव का बेटा जो कज्जा से कबूतरा बन गया था, यही "अल्मा कबूतरी" का मंसाराम है)[130] को ढूंढ पाती है, सोबरन के कारण इस कज्जिन औरत पर कबूतरा पुरुषों और स्त्रियों को विश्वास बैठता है, किस प्रकार कबूतरा औरतें अपनी बोली-बानी के अर्थ छिपाती हैं, चिमनसिंह यादव के प्रयत्न कबूतरा लोगों की स्थिति में सुधार लाने के जिसके कारण बहुत-से लोग उनका ही विरोध करने लग जाते है, भूरी और चिमनसिंह की बातें, राणा (भूरी का लड़का) का प्रसंग, कदमबाई से भेंट और अन्ततः उपन्यास की नायिका अल्मा से मिलना, कबूतराओं के बारे में हर तरह की जानकारी प्राप्त करने के प्रयत्न, छोटी बेटी सुजाता द्वारा डा.नवल को पसंद

करना, डाक्टर नवल का छोटी जाति का होना, डा.नवल के प्रखर व्यक्तित्व से मैत्रेयी के विश्वास का बढ़ना, जिसके कारण अपनी अधूरी खोज - कबूतराओं के बारे में - को पूरी करना, सन् 2000 के विश्व पुस्तक मेला के अवसर पर "अल्मा" का छपकर आना, राजकमल प्रकाशन के प्रबंध निदेशक अशोक माहेश्वरी की इच्छा की "अल्मा" का लोकार्पण महाश्वेतादेवी से हो, मैत्रेयी के लेखकीय रुझान की तुलना महाश्वेतादेवी से होना, महाश्वेतादेवी तथा अजीत कौर की बेबाक तरफदारी मैत्रेयी के प्रति, मैत्रेयी के विरोधी खेमें की लेखिकाओं की टिप्पणी पर अजीत कौर का सनसनाता जवाब, "अल्मा" को सार्क लिटरेरी एवार्ड का मिलना, "उचिल्या" के लेखक लक्ष्मण गायकवाड से भेंट जैसे अनेकानेक प्रसंगो का आलेखन इस अध्याय में हुआ है । अल्मा कबूतरी के पात्रों और उसके वातावरण को समझने के लिए इस अध्याय का पढ़ना मैं अत्यन्त आवश्यक समझती हूं । इसमें किन-किन भय-स्थानों से लेखिका को गुजरना पड़ा है उसका भी ब्यौरा मिलता है ।

"अल्मा कबूतरी" एक अलग प्रकार का उपन्यास है । यह बुंदेलखण्ड की एक जन-जाति - कबूतरा - के संघर्षपूर्ण कटु यथार्थ की कहानी है । जिस प्रकार "लोरेन्स आफ अरेबिया" के अभिनेता ने उस फिल्म में वास्तविक अभिनय देने के लिए साढ़े तीन साल तक अरबस्तान के रेगिस्तानों में जीवन बिताया था, ठीक उसी प्रकार इस उपन्यास के प्रणयन के लिए मैत्रेयीजी कई-कई साल, बरस-महीने "खिल्ली-मड़ोरा" की कबूतरा बस्ती में गयी हैं, इस जन-जाति से सम्बद्ध तमाम साहित्य को उन्होंने खंगाला है, अभिप्राय यह कि जेइम्स केरी उपन्यास के लिए जिस प्रकार की खोज या रीसर्च की बात करते है, उससे मैत्रेयी रुबरु हुई हैं[131] और उसके पश्चात अपने तमाम नोट्स, दस्तावेज, गवर्नमेण्ट गेजेट के आधार पर अपनी रचनात्मक ऊर्जा की आंच देकर इस उपन्यास का सृजन किया है । अतः इसे हम "मधु कांकरिया के उपन्यास "सलाम आखिरी" की भांति एक शोधमूलक उपन्यास कह सकते है । मधुजी ने भी कोलकत्ता की वेश्याओं पर सर्वे करते हुए सोना गाछी, बहु बाजार आदि कोलकत्ता के रेड लाईट ऐरिया की खाक छानते हुए उक्त उपन्यास की रचना की है ।[132]

"तत्सम" उपन्यास की लेखिका राजी सेठ से जब मैत्रेयी ने अपने इस उपन्यास की योजना के बारें में बताया तो उन्होंने उस पर ठण्डा पानी डालते हुए कहा - "तुम लोग स्थूल को रचना बनाना चाहते हो, असल ज्ञान होता है

सूक्ष्म में ।"[133] मैत्रेयी जी को कुछ निराशा होती है, पर वह अपनी लगन और धुन की पक्की है । वह अपने भाई युवराज, तो कभी बुद्धसिंह, तो अक्सर मिट्ठू कक्का के साथ उन जन्मजात अपराधियों की ओर बढ़ने लगी, क्योंकि हमारे समाज की स्त्रियों के लिए उनके पास जाने का चलन नहीं है ।[134]

राजी सेठ द्वारा निरुत्साहित करने के बाद मैत्रेयी सोचती हैं - "जो कुछ ये लोग समझ रहे हैं, मेरा मकसद उससे अलग ही है । मुझे न अपना साहस प्रदर्शित करना है, न दार्शनिक की तरह ज्ञान बघारना है । मैं सोच रही थी, यदि ऊँगली इस किताब पर उठे तो मुझे डरना नहीं चाहिए । मैं अपनी मातृभूमि को कथानक बनाकर लिख रही हूं, मगर मां की गोद में बैठकर कलम नहीं चला रही । फिर भी जो इसे देखकर परेशान होंगे, मुझे लेखन से रोक नहीं सकते । यों भी यह देश तस्लीमा का बांगलादेश नहीं, जहाँ धार्मिक और राजनीतिक विषयों पर लेखन मौत के फतवे या देश निकाले के मंजर से गुजरता है, अगर वह कठमुल्लाओं और सरकारी आकाओं के मन का नहीं ।"[135]

शैलेश मटियानी ने कहीं लिखा है कि साहित्यकार यदि शोषित, दलित, पीड़ित वर्ग का न हो तो भी इन लोगों की ओर से लिखना वह उसका वाल्मीकि-धर्म है । अन्याय और अत्याचार को देखकर भी जो आंखों आड़े कान करले, वह दूसरा कुछ भी हो सकता है, साहित्यकार या कलाकार नहीं ।[136] यहाँ मेरी स्मृति में डा.पारुकान्त देसाई के निम्नलिखित वाक्य सूत्र-वाक्यों की तरह गूंज रहे है -"उपन्यासकार अपने समय के सच को मानवीय मूल्यों के साथ रखता है । मनुष्य और केवल मनुष्य की पहचान उसका एक मात्र लक्ष्य होता है । नोबल पुरस्कार विजेता चैक कवि जारोस्लाव सेईफर्त के शब्दों को यहाँ अप्रासंगिक न माना जाए - "यदि सामान्य मनुष्य ऐसे समय में (ऐसे समय से यहाँ उनका अभिप्राय यह है कि जब मनुष्यों पर जुल्म ढाए जा रहे हों) मौन रहता है तो उसमें उसकी कोई योजना हो सकती है, किन्तु ऐसे समय में यदि लेखक मौन रहता है तो वह झूठ बोल रहा है ।"[137] सेईफर्त महोदय कहते हैं कि ऐसे समय में लेखक का मौन रहना भी झूठ बोलना है, एक मानवीय अपराध है ।

कभी अंग्रेज शासकों ने अपनी राजकीय सुविधा हेतु कंजर, सांसी, नट, मदारी, सपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, बावरिय, कबूतरे - न जाने कितनी जन-जातियों के लोगों को असामाजिक, अपराधी, जन्मजात अपराधी करार

दिया था। आज़ादी के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरु ने कानूनन तो उसे दूर किया, पर हमारे जड़ पुलिस विभाग में और कई सरकारी महकमों में आज भी उनको अपराधी माना जाता है, इसे एक बहुत बड़ी विडंबना ही कहना चाहिए कि छः करोड लोग, किसी छोटे-मोटे देश की आबादी जितने लोग, अपराधी जातियों की सूची में है और कानून होने के बावजूद उनको सभ्य जातियों (तथाकथित) और मुख्यधारा के लोगों के साथ स्थापित नहीं किया जा रहा है। सदियों से वे सभ्य समाज के हाशिये पर है, और आज भी है। मैत्रेयीजी ने यदि इनमें से एक जन-जाति-कबूतरा-के लोगों को लिया है तो वह शाबाशियों की हकदार है, न कि निन्दा-मलामत की। हिन्दी साहित्य के तथाकथित कलावादियों को दरकिनार करते हुए मैत्रेयी कहती है -"युवजनों का शुक्रिया, जिन्होंने मुझे स्थापित समीक्षकों की दादागीरी से छुड़ा लिया।[138]

उपन्यास की कथा और चरित्रों के संदर्भ में पूर्ववर्ती अध्याय में विस्तार से बताया है, यहाँ सिर्फ यह कहना है कि अधिकांश पात्रों के नाम यथार्थ जीवन से ही लिए गए है, केवल मंसाराम के नाम को बदला गया, केवल "सोबरन" के नाम को बदला गया है। चिमनसिंह यादव का बेटा सोबरन उपन्यास का मंसाराम है। लगभग आधे उपन्यास में मंसाराम और कदमबाई के संघर्ष व द्वन्द पूर्व जीवन को चित्रित किया गया है। उसके बाद अल्मा के चरित्र को समसामयिक राजनीति से जोड़ा गया है। डाकू बेटाराम वाली मूठभेड़ में अल्मा का पिता रामसिंह बलि का बकरा बनता है। अल्मा अनाथ और निराधार हो जाती है। राणा भी उसे छोड़कर चला गया है। पुलिसों द्वारा वह कई-कई बार बलात्कृत होती है, पर "शिकार" होने की दीन अवस्था अपराध-बोध से मुक्त होकर वह अपने समुदाय के लोगों के लिए कुछ कर गुजरना चाहती है। ऐसे में विपक्ष के नेता सूरजभान और समाज-कल्याण मंत्री श्रीराम शास्त्री का संग उसे प्राप्त होता है। देह के जरिये ही वह वहाँ तक पहुंचती है। इस प्रकार अपनी कमजोरी को ही वह अपनी ताकत बना लेती है। रामसिंह की बेटी होने का कारण वह कुछ पढ़ी-लिखी भी है। सूरजभान और शास्त्रीजी की सोहबत के कारण वह राजनीतिक तिकड़मों, दल-छदमों, राजनीति की ताकत आदि को जानने-समझने लगी है। अतः शास्त्रीजी की हत्या के बाद वह सीधे चुनावी दंगल में कूद पड़ती है और उपन्यास के अंत में वह विधान सभा का चुनाव जीत जाती है उसके संकेत भी मिलते हैं। पिछ्डी जनजाति की उम्मीदवार होने के नाते बहुत संभव है कि उसे शायद मंत्री-पद भी मिले। अल्मा की इस परिणति

को डा.गोपालराय ने लेखिका द्वारा नारीवाद को "लहराने" का प्रयास कहा है ।[139] परंतु समसामयिक राजनीतिक समीकरणों को समझने वाले जान सकते है कि अल्मा की यह परिणति मुश्किल है पर असंभव तो कतई-कतई नहीं है । मायावती, उमा भारती, फूलनदेवी के उदाहरण हमारे सामने हैं । इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में भी मैत्रेयी ने अल्मा के रुप में एक जबरदस्त जोरदार नारी-पात्र हिन्दी उपन्यास को दिया है ।

खिल्ली-मड़ोरा की कबूतरा बस्ती में जाना, वहाँ की कबूतरा स्त्रियों को मिलना, उनको बोली-बानी को समझना कितना कठिन और जोखिमभरा है उसका विस्तृत ब्यौरा तो "यह तन जारौ मसि करो" वाले अध्याय में दिया गया है । केवल एक प्रसंग के जिक्र से ज्ञापित हो सकता है कि सम्भ्रान्त वर्ग की महिला के लिए यह कितना चुनौती भरा काम है । "कबूतर-संज्ञान" के अपने अभियान में वह एक बार कबूतरा युवक से मिलती है । उसने खूब शराब पी रखी थी । वह जिस अंदाज में मैत्रेयी से पेश आता है उसका वर्णन देखिए --

"री तू डर रही है?"

"हां ।"

"धत् कज्जिन । "वह भद्दी सी हंसी हंसा ।"

"लिख तू जल्दी लिख ।"

"जो कुछ लिखाया, अंत में उसका अर्थ समझाया कुछ ऐसे अंदाज में कि मेरी घिग्घी बंध गई । अपनी बदरंग पेंट की जिप खोली और खड़ा हो गया । अपना लिंग पकड़कर बोला – "फ्लां बोल का मतलब यह..." मैंने आंखें बन्द कर लीं ।

"री देख, नहीं तो ... और "कून्दा" जानती है? अपनी धोती ऊपर उठा । नंगी हो जा । दिखा कूंदा ।"[140]

उसके बाद मैत्रेयी ने लिखा है "निर्वस्त्र शिव सामने खड़ा है, जिसके हाव-भावों में बीभत्स-सा आनंद छाया है । बिलकुल ऐसे, जैसे अपनी औरतों के अपमान का जहरीला दर्द इसकी रगरग में लहरा रहा हो । वह आगे बढ़ता है । मेरी चीस, होंठ चीरकर फट पड़ती है ।

"है ऽऽऽ , तू कज्जा हो गया रे ….. "[141]

कबूतरा औरतों की भीड़ ने उसे सहारा देकर बिठा दिया था । कितनी ही देर बाद उन्हें होश आया । वहीं पर एक बीस वर्षीय कबूतरा युवती से मैत्रेयीजी

मिलती है, यथा - "अल्मा नाम की बीस वर्षीय लड़की में मै इस तरह गुंथ गई कि ..... उसके कन्धे पर सिर रखकर ..... एक जुट भेंट, अपने लिए थी या उसके लिए ? याकि अपनी सभ्यता के लिए, जिसमें नरसंहार और औरत की चीड़फाड़ का जरुरी तत्व शामिल हो गया है, यही सभ्यता सारे देश में फैल गई है ।[142]

उपर्युक्त विवरण में "है, तु कज्जा हो गया रे ....." यह जो वाक्य आया है, ध्यान देने योग्य है । यहाँ वे कबूतरा औरतें यह चाहती हैं कि यह कबूतरा युवक जो व्यवहार कर रहा था एक अनजान "कज्जा" स्त्री के साथ, वह कबूतरों को शोभा नहीं देता । ऐसा व्यवहार तो "कज्जा लोग" करते हैं कबूतरी स्त्रियों के साथ । कितना बड़ा व्यंग ? असभ्य और अपराधी कौन है ? गुनहगार कौन है ? ऐसे कई सवाल यहाँ उठते हैं । और अंत में जिस "नरसंहार" का उल्लेख किया है, उसका इशारा "गुजरात के सन् 2002 के नरसंहार" से प्रतीत होता है ।

संक्षेप में यही कथा है "अल्मा कबूतरी" के निर्माण की, सृजन की । उसके प्रकाशन पर राजेन्द्र यादव की यह टिप्पणी बड़ी सार्थक और सटीक है: "अल्मा कबूतरी" से पहले यदि ऐसा कुछ ध्यान में आता है तो कर्नल स्लीमैन की पुस्तक -- "अमीर अली ठग की आत्मस्वीकृतियां" । इसके बाद रांगेय राधव का नटों पर लिखा उपन्यास "कब तक पुकारुं?" भी इसमें शामिल किया जा सकता है । ये अलग तरह की, अलग समाजों की रचनात्मक अभिव्यक्तियां है । इन्हीं के संदर्भ में कहता हूं की उभरती हुई शक्तियों से जुड़ना क्या हमेशा संपादकीय पक्षपात या अपराध होता है? "अल्मा कबूतरी" को में मैत्रेयी के लेखन का महत्वपूर्ण मोड़ मानता हूं, क्योंकि उसने हिन्दी समीक्षकों को अजीब पसोपेश में डाल दिया है ।"[143]

अन्य उपन्यास :

"अल्मा कबूतरी" के पश्चात दूसरे पांच उपन्यास आते हैं । "अगनपाखी" (2001), "विजन" (2002), "कही ईसुरी फाग" (2004), "त्रियाहठ" (2005) और "गुनाह-बेगुनाह" (2011) । इनमें नये उपन्यास तीन है – विजन, कही ईसुरी फाग और गुनाह-बेगुनाह । "अगनपाखी" और "त्रियाहठ" क्रमशः उनकी उपन्यासिका "स्मृतिदंश" और लघु उपन्यास "बेतवा बहती रही" के पुनर्पाठ है । "कस्तूरी कुण्डल बसै" और "गुड़िया भीतर गुड़िया" उनकी आत्मकथाएं है जो

क्रमशः 2002 और 2008 में प्रकाशित हुई है। परंतु "गुड़िया भीतर गुड़िया" में सन् 2002-2003 तक की घटनाएं वर्णित है। उसके अंतिम अध्याय "हम न मरहिं संसार" में राजेन्द्र यादव के "अमृत महोत्सव" (75 वां जन्मदिवस) का उल्लेख हुआ है। अतः इस आत्मकथा में "अल्मा कबूतरी" की रचना-प्रक्रिया का उल्लेख तो मिलता है, पर उसके बाद के उपन्यासों की कोई खास चर्चा नहीं मिलती है। अगर आत्मकथा का तीसरा खण्ड आता है, तो उसमें इन उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया का उल्लेख कदाचित् मिले। फिलहाल तो "अगनपाखी" शब्द का उल्लेख एक स्थान पर इस तरह आया है – "हां, इस टूटन का रुप अगनपाखी के राख हो जाने जैसा है।"[145] और उसकी नायिका डा.आभा का भी उल्लेख-मात्र हुआ है - "अभी तो शुरुआत है, मोहिता का जीवन प्रभावित हुआ, आगे क्या होगा, जब शीलो, आभा और अल्मा आएंगी।"[146]

इसका अभिप्राय यह है कि इन उपन्यासों कि रुपरेखा मैत्रेयीजी के मस्तिष्क में आकार ले रही थी। हमारे शोध-प्रबंध का विषय है : "मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन"। अतः प्रस्तुत अध्ययन में हमने अपनी चर्चा को "अल्मा कबूतरी" तक सीमित रखा है। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बाद में आनेवाले उपन्यासों - जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है - का स्पिरीट भी वहीं रहेगा। इन उपन्यासों की आत्मा का सृजन तो कस्तूरी और मैत्रेयी इन दो महिलाओं द्वारा हुआ है। कस्तूरी क्या है, उसका संघर्ष, जीवट और जिजीविषा क्या है उसे हमने व्याख्यायित किया है और बाद में इसी कस्तूरी से मैत्रेयी नामक "गुड़िया" किस तरह से बाहर आयी है और कैसे-कैसे नारी पात्रों का निर्माण किया है उसे भी हम देख चुके हैं। इन उपन्यासों में "विजन" और "गुनाह-बेगुनाह" का देशगत (स्थानगत) परिवेश थोड़ा अलग है। "विजन" में नगरीय परिवेश है और "गुनाह-बेगुनाह" में हरियाणा है। इन दोनों के देशगत परिवेशों पर विचार करें तो "विजन" का परिवेश तो प्रकारान्तर से आत्मकथा में आ गया है क्योंकि सन् 1972 में डाक्टर साहब और मैत्रेयी दिल्ली आ जाते हैं और डाक्टर साहब "एम्स" में थे, फलतः मेडिकल जगत की जमीनी हकीकत से लेखिका राफ्ता-राफ्ता अवगत होती है। हरियाणा वाला अनुभव बाद के समय का है, अर्थात् सन् २००३ के बाद का। लेकिन इन सभी उपन्यासों में जो विचारधारा

अभिव्यंजित हुई है, वह कस्तूरी और मैत्रेयी के जीवनानुभवों की खराद पर चढ़कर हुई है । इसलिए प्रस्तुत अध्याय में हमने इन दोनों आत्मकथाओं से निःसृत कतिपय विचारसूत्र दिए है, जो मैत्रेयी के समग्र साहित्य को समझने के लिए कारगर हो सकते हैं ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन के उपरान्त हम निम्नलिखित निष्कर्ष तक सहजतया पहुंच सकते हैं -

(1) "विजन" और "गुनाह-बेगुनाह" इन दो उपन्यासों को छोड़कर, अन्य उपन्यासों का देशगत परिवेश बुंदेलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों से हैं । इन गांवों से मैत्रेयी का बड़ा ही नजदीकी और भावपूर्ण सम्बन्ध रहा है ।

(2) मैत्रेयी के उपन्यासों का कालगत परिवेश काफी विस्तृत है । ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर से लेकर, स्वतंत्रता-प्राप्ति का दौर, उसके कुछ शुरुआती वर्षों का दौर, नेहरु शासन, इन्दिरा गांधी का दौर, बांग्लादेश के निर्माण वाला दौर, आपातकाल, इन्दिरा की हार, बाद में पुनः सत्ता के सूत्रों को सम्हालना, बाबरी-मस्जिद ध्वंस आदि घटनाओं का उल्लेख मैत्रेयी की इन दो आत्मकथाओं में भी हुआ है और उपन्यासों में भी । भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय की विभीषिका और बाबरी-मस्जिद ध्वंस के बाद के परिणामों से सम्बद्ध घटनाओं का आलेखन "इदन्नमम" और "चाक" इन दोनों उपन्यासों में हुआ है । "कही ईसुरी फाग" में गुजरात के नर-संहार का उल्लेख मिलता है । "गुनाह-बेगुनाह" में "खाप पंचायतों" और "ओनर-कीलिंग" की घटनाओं का भी यथार्थ चित्रण हुआ है । कहना न होगा कि इनका उल्लेख इनकी आत्मकथाओं में भी हुआ है ।

(3) समसामयिक राजनीतिक घटनाओं के चित्रण में लेखिका का अभिगम प्रगतिवादी जीवन-मूल्यों से संपृक्त रहा है ।

(4) भुवन, उर्वशी, मन्दा, सारंग, शीलो, आभा, अल्मा, रजरु, इला आदि मैत्रेयी की नायिकाओं में हमें जो संघर्ष, जीवट, जिजीविषा और जूझारुपन मिलता है वह कस्तूरी और मैत्रेयी के जीवनानुभवों का परिणाम है ।

(5) ये नायिकाएं शुरु में कमजोर प्रतीत होती है । एक हद तक वे पुरुष के आश्रय-सुख में पलना चाहती है, परंतु पुरुषों के अन्याय और अत्याचार

की जब इन्तिहां आ जाती है, तब ये सिर उठाती है और फिर अपनी तमाम शक्ति के साथ, तमाम युक्तियों-प्रवृतियों के साथ संघर्ष करती है और पुरुष सत्ता को धूल चटाती हैं ।

(6) इन नायिकाओं के सृजन से मैत्रेयी का स्त्री-विमर्श प्रत्यक्ष होता है । मैत्रेयी पुरुषों को स्त्री के शत्रु के रुप में नहीं देखती, बल्कि वह तो चाहती है कि स्त्री-पुरुष परस्परे पूरक बनकर चलें । उनमें बराबरी का भाव होना चाहिए । पति-पत्नी में भी दासी-मालिक वाला भाव न होकर मैत्रीभाव होना चाहिए ।

(7) मैत्रेयी की नायिकाएं हर हाल में मानवीय मूल्यों की पक्षधर है । अन्याय और अत्याचार के खिलाफ वे खड़ी होती हैं । उनका यह अभिगम दृष्टिसंपन्न और सर्वांगपूर्ण है । ऐसा नहीं कि एक स्थान पर, स्त्री के पक्ष में, वह प्रगतिवादी-मानवतावादी हों, और समाज के दूसरे वर्ग जिसके साथ अन्याय होता हो उसके प्रति यथास्थितिवादी रवैया अपनाती हों । उनकी नायिकाएं जातिवादी संकीर्णता की भी विरोधी होती हैं । दलितों के प्रति उनका रवैया संवेदनापूर्ण पाया जाता है ।

(8) मैत्रेयी की नायिकाएं कस्तूरी और मैत्रेयी का सम्मिश्रण हैं । न देवी, न कुल्टा, अपनी मानवीय शक्तियों और कमजोरियों के साथ । उनमें प्रेम है, काम-भाव है, और इसके लिए कहीं दुराव-छिपाव नहीं है । मैत्रेयी जहाँ स्त्री-पुरुष के शारीरिक मिलन का वर्णन करती हैं तो उसमें, उस दृश्य में, आकण्ठ, डूबकर । ऐसे दृश्य हमें "इदन्नमम", "चाक", "झूलानट", "अल्मा कबूतरी", "अगनपाखी" आदि सभी उपन्यासों में मिलते हैं । इनकी तुलना "कस्तूरी कुण्डल बसै" में वर्णित मैत्रेयीजी और डाक्टर साहब के प्रथम मिलन दृश्य से करें तो बात अधिक स्पष्ट हो जाती है ।

(9) मैत्रेयी का स्त्री-विमर्श स्वच्छंदता और स्वैराचार को बढ़ाना देनेवाला बिलकुल नहीं है । उच्छृंखलता को उसमें कोई अवकाश नहीं है । "चाक" की सारंग अपने पति रंजीत को बेइन्तिहां चाहती है, और उन दोनों को लेकर प्रसन्न-दाम्पत्य के कुछ अच्छे चित्र भी उपन्यास में मिलते हैं, परंतु रंजीत जब अन्याय और अत्याचार का दामन थामने लगता है और गलत जीवन-मूल्यों से जुड़ने लगता है, तब सारंग को उससे वितृष्णा होने लगती है । उसका श्रीधर के प्रति समर्पण उसी भाव

का द्योतक है। ठीक उसी तरह "झूलानट" की शीलो भी अपने पति को अनुकूल होने की ओर अनुकूल बनाने की हर संभव कोशिश करती है, परंतु जब उसमें सफल नहीं होती जब उसे ज्ञात होता है कि उसके पति ने शहर में किसी दूसरी स्त्री को रख लिया है तब वह अपने देवर से सम्बन्ध बांधती है।

(10) मैत्रेयी का अपने पात्रों के साथ जो जुड़ाव है, विशेषतः "चाक" की सारंग के साथ जो समानता दिखती है, उससे किसीको इस निर्णय पर पहुंचने की छूट नहीं मिल सकती कि मैत्रेयी के अपने जीवन में इस प्रकार का कोई स्खलन होगा। दोनों आत्मकथाओं को खंगाल जाने पर कहीं भी इस प्रकार का कोई उल्लेख मिलता नहीं है। मैत्रेयी और डाक्टर साहब में लाख लड़ाई-झगड़े हुए होंगे, अनबन हुई होगी, व्यंग्य-वर्षा हुई होगी, असहमतियां रही होंगी, पर डा.शर्मा में जो एक अद्‌भुत अनुकूलन साध लेने की कला है, उसके चलते दोनों के दाम्पत्य के जीवन में उस प्रकार कोई बात नहीं आ पायी है। दोनों आत्मकथाओं में डाक्टर साहब का "जानम, जानम" ही गूंजता रहा है।

(11) मैत्रेयी जी प्रारंभ में डरपोक और भीरु रही है, कमजोर रही है, परंतु शनैः शनैः ही उनका आत्मविश्वास बढ़ता गया है जिसे हम "गुड़िया भीतर गुड़िया" के अंत भाग में महसूस करते हैं, ठीक उसी प्रकार उनकी नायिकाओं के साथ भी हुआ है। शुरु में कमजोर पर बाद में प्रचंड और शक्तिमान।

(12) मैत्रेयीजी के बुजुर्ग पात्रों में पंचमसिंह दददा (इदन्नमम), गजाधर बाबू (चाक) आदि गांधीयुग के संस्कारों से युक्त प्रतीत होते हैं; क्योंकि मैत्रेयीजी के दादाजी मेवाराम, पालक पिता चिमनसिंह यादव, नम्बरदार जैसे कुछ उदारमना बुजुर्ग पात्रों का अनुभव मैत्रेयी को हुआ है।

(13) लोकबोली, लोकगीत, फाग, शादी-ब्याह के गीत, तीज-त्यौहार के गीत, लोगों के रीति-रिवाज और मान्यताएं इन सबका यथार्थ चित्रण मैत्रेयी में मिलता है क्योंकि उनके पास खेरापतिन दादी, कलावती चाची, इसुरिया, लौंगसिरी बीबी आदि का संपर्क-लाभ है।

(14) राजनीति का अपराधीकरण, माफियागिरी, गुण्डागर्दी, खादी और खाकी का मिल जाना और दोनों का अपराधीकरण, साम्प्रदायिक ताकतों का बढ़ना, खाप पंचायतो के अमानवीय फतवे, नव जागरण की चेतना का

मिटते जाना जैसी बातों की चिन्ता मैत्रेयीजी को खाये जा रही है जिसे हम उनके उपन्यासों में देख सकते हैं।

(15) उनके उपन्यास ही नहीं, उनके समग्र साहित्य को बेहतरीन तरीके से समझने के लिए उनकी ये दो आत्मकथाएं स्रोत-सामग्री का काम करती है।

=×=

: सन्दर्भानुक्रम :

(1) कस्तूरी कुण्डल बसै : मैत्रेयी पुष्पा : पृ. 308।

(2) दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : मैत्रेयी पुष्पम : पृ. 341।

(3) से (5) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 345, 345, 341।

(6) हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं : डा.सरजूप्रसाद मिश्र : पृ. 120।

(7) से (24) : दृष्टव्य : कस्तूरी कुण्डल बसै : पृ. 13, 14, 19, 24, 25, 33, 34-37, 40, 43, 44-45, 46-57, 134, 135-150, 151-207, 208-240, 241-260, 261-290, 291-332।

(25) से (34) : कस्तूरी कुण्डल बसै : पृ. क्रमशः 187, 195, 225, 242, 250, 288, 296, 297, 309, 303।

(35) दृष्टव्य : कस्तूरी कुण्डल बसै : भूमिका से।

(36) गुड़िया भीतर गुड़िया : "निवेदन" से।

(37) वही।

(38) हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं : पृ. 126।

(39) से (43) : दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 211, 222, 220, 334, 334-337।

(44) हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं : पृ. 128।

(45) से (60) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 134, 140-141, 149, 155, 160-161, 18, 25, 41, 47, 59, 63, 67, 74, 82, 94, 111।

(61) से (80) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 119-120, 128, 172, 179, 191, 197, 205, 206, 215, 248, 251, 257, 259, 263, 273, 286, 301, 305, 306, 179।

(81) हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा.गोपालराय : पृ. 389।

(82) दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 179।

(83) से (87) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 214, 213, 214, 215, 215 ।

(88) निर्मला : प्रेमचंद : पृ. 102 (89) वही : पृ. 102 ।

(90) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 215 ।

(91) टाइम्स ओफ इण्डिया : दिनांक 1-1-2013 ।

(92) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 216 ।

(93) इदन्नमम : मैत्रेयी पुष्पा : भूमिका से तथा गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 217 ।

(94) से (99) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 217, 218-219, 220, 221, 224, 225 ।

(100) कस्तूरी कुण्डल बसै : पृ. 190 ।

(101) दृष्टव्य : वही : पृ. 197 ।

(102) से (103) : इदन्नमम : पृ. क्रमशः 139, 107 ।

(104) सितारों के खेल : उपेन्द्रनाथ अश्क : प्रकाशकीय से ।

(105) चाक : मैत्रेयी पुष्पा : द्वितीय मुखपृष्ठ से ।

(106) से (108) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 231, 239, 240 ।

(109) चाक : पृ. 104 ।

(110) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 241 ।

(111) चाक : पृ. 104 ।

(112) इदन्नमम : पृ. 105 ।

(113) से (117) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 241, 241, 232, 232, 232 ।

(118) दृष्टव्य : कहानी : फैसला : मैत्रेयी पुष्पा : प्रतिनिधि कहानियां : मैत्रेयी : पृ. 13-26 ।

(119) से (123) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 251, 251, 252, 242, 247 ।

(124) “मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य” : सं. डा.दया दीक्षित : पृ. 32 ।

(125) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 248 ।

(126) झूलानट : मैत्रेयी पुष्पा : भूमिका से ।

(127) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा.गोपाल राय : पृ. 389 ।

(128) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 233 ।

(129) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा.त्रिभुवनसिंह : पृ. 762 ।

(130) दृष्टव्य : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 265 ।

(131) जोयस कैरी : राइटर्स एट वर्क : फर्स्ट सीरिज (1958) : पृ. 60 ।

(132) लेख - "देहबाजार और नारी-विमर्श" : डा.किशोरसिंह राव : ग्रन्थ – "हिन्दी महिला कथाकारों के साहित्य में नारी-विमर्श : सम्पादक द्वय : डा.दिलीप मेहरा तथा डा.प्रतीक्षा पटेल : पृ. 308-312 ।

(133) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 254 ।

(134) और (135) : वही : पृ. क्रमशः 254, 254 ।

(136) : मेरी तैतीस कहानियां : शैलेश मटियानी : भूमिका से ।

(137) "हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास" : डा.पारुकान्त देसाई : भूमिका से ।

(138) गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. 281 ।

(139) दृष्टव्य : हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा.गोपाल राय : पृ. 390 ।

(140) से (146) : गुड़िया भीतर गुड़िया : पृ. क्रमशः 277, 277, 278, 282, 333, 246, 248 ।

===== ××××× =====

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

: सप्तम् अध्याय :

: उपसंहार :

सत्य का मार्ग वीरता का मार्ग है, वहाँ कायर व्यक्ति का काम नहीं है । साहित्य की यात्रा भी सत्य की यात्रा है । हालांकि वहाँ मध्यमार्गियों ने "साहित्य" के "सत्य" को "शिवम्" और "सुन्दरम्" से संपृक्त करके उसे सबके लिए ग्राह्य बनाने का यत्न किया है । जबकि यह भी उतना ही सत्य है कि "सत्य" सबके लिए ग्राह्य हो ही नहीं सकता । जो साहित्य या कला को जीवन के लिए मानते हैं वे सत्य के उस निर्भ्रान्त रूप को लेकर चलते हैं और जो "कला कला के लिए" वाले हैं, वे "सत्य" को उस रुप में रखते हैं, जहाँ उन्हें किसीके विरोध से टकराना नहीं पड़ता । सूक्ष्म, शास्त्रीय-सम्मत, इन्हें क्या खतरा हो सकता है । खतरा तो वहाँ आता है जहाँ साहित्य में विचार, विचार धारा या जीवन-दृष्टि का समावेश होता है । और इसीलिए रहस्यवादी कबीर किसीको परेशान नहीं करते । षडचक्र कुण्डलिनी, ध्यान, योग भला इनसे किसीको क्या बैर हो सकता हैं? परंतु क्रान्तिकारी विचारधारा को लेकर चलने वाले "कबीर" से तो कुछ न्यस्त हितवाले लोगों को खतरा ही खतरा महसूस होगा । मूर्तिपूजा, मन्दिर-मस्जिद, विधि-विधान, रुढ़ि-परंपरा, शास्त्र इत्यादि का विरोध होगा तो कइयोंका तो धन्धा ही बन्द हो जायेगा, उन्हें तो अपना अस्तित्व ही खतरे में नज़र आयेगा ।

अन्धविश्वासों को पालने के लिए, अन्धविश्वासों की खेती के लिए तो ऐसा समाज चाहिए जो हंमेशा नशे में चूर रहता हो, जो सोचना-विचारना ही न चाहता हो, जो सोचने विचारने के काम को एक विशिष्ट वर्ग को सौंपकर निश्चिन्त और निर्द्वन्द होकर सो जाना चाहता हो । कुंभकर्ण सोता रहेगा तभी तो रावण राज्य करेगा । इसलिए उन्होंने एक ऐसे धर्म की खोज की जहाँ संशय, तर्क, प्रश्न, अंग्रेजी में कहें तो रीज़निंग को फिजूल की, बेकार की चीज समझा जाता हैं । जिस संशय प्रश्न से विज्ञान का विकास हुआ, उसे ही "आत्मा" के विनाश का कारण बता दिया गया ।

समाज का ढांचा ही ऐसा कृत्रिम है, आरोपित है, कि मनुष्य को सिवाय हताशा के और कुछ हासिल नहीं हो सकता । विश्व में कहीं भी समानता नहीं है, शान्ति नहीं है, न्याय नहीं है, विवेक नहीं है । धनिक ज्यादा धनिक हो रहे हैं, गरीब ज्यादा गरीब । अमीरी और गरीबी में जमीन-आसमान का अंतर पैदा हो

गया है। नैतिकता और अनैतिकता दोनों बेमानी होते जा रहे हैं। लोग अगरचे अनैतिक आचरण करते हैं, तब भी उनकी पूजा-अर्चना होती है। धनवान धनवान हीं नहीं स्रोतवान भी हो जाते हैं। ऐसे ढांचे के खिलाफ यदि कोई आवाज़ उठाना चाहे, विद्रोह करे, तो ऊपर शिखर पर विराजमान मंडली उसे चुप करा देती है। कोई न्यायालय भी उसकी सहायता नहीं कर सकता क्योंकि इन सहस्त्र-स्रोत-स्वामियों ने उनको भी खरीद लिया होता है। ऐसे में विचारवान व्यक्ति स्वयं को अकेला, अलग-थलग, अज़नबी और "आउटसाइडर" समझने लगता है। वह स्वयं को समाज में "मिसफिट" समझने लगता है।

हम बातें बड़ी-बड़ी करते हैं। न्याय की, धर्म की, समानता की, शांति की, संतोष की, समूचे विश्व को अपना परिवार बताते है, स्त्रियों को माता देवी और शक्ति का स्रोत बताते है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" और जाने क्या-क्या ? बातें, सिर्फ बातें, खोखली बातें, व्यवहार में, आचरण में कुछ और। पूरा विश्व हमारा परिवार। पर पीडितों के प्रति, दलितों के प्रति, स्त्रियों के प्रति हमारे व्यवहार में गैर-बराबरी, अन्याय और अत्याचार।

ऐसे में कला की, सौन्दर्य और रूप की, सूक्ष्म की बातें करना और लिखना खतरापूर्ण कतई-कतई नहीं होता। मैं ऐसे एक विद्धान को जानती हूँ जो गुजरात में बोलते है तो उनके सूर और स्वर बहुत सध-सध कर लगाते हैं, और वे ही जब लखनऊ या कलकत्ता में किसी वाम रूझान वाले जल्से में बोलते हैं तो उनके सूर और स्वर अलग-अलग प्रकार के होते हैं। ऐसे लोग बहुत सुख और आराम से रह सकते हैं। उन्हें कोई विष नहीं देगा, न उन्हें सूली पर चढ़ाया जाएगा, न गोली से मारा जाएगा। उसके सर कलाम करने का फतवा कोई नहीं देगा, उसे अपने वतन से बेदखल भी नहीं होना पड़ेगा। तकलीफ तो उनको होती है या उनको दी जाती है जो सहमतियों की आरती नहीं उतारते हैं, जो विराधी प्रवाहों में चलने और तैरने का हौंसला रखते हैं। जो स्थिति साधकर कहीं पक्षकार तो कहीं तटस्थ हो जाते हैं, ऐसे लोगों को कोई खतरा नहीं उठाना पड़ता।

मैं ऐसा लिख रही हूं क्योंकि सन् 1990 के बाद की एक समकालीन हिन्दी लेखिका जो हिन्दी साहित्य गगन में धूमकेतु की तरह धंस आयी हैं। उनके संदर्भ में मैंने अपना यह शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। हाँ जी, मै अपनी आलोच्य लेखिका मैत्रेयी पुष्पा की बात करती हूँ।

मैत्रेयी पुष्पा इस समय हिन्दी साहित्य में सबसे ज्यादा पढ़ी जानेवाली, विस्तृत पाठक-वर्ग को प्रभावित करने वाली, प्रतिज्ञाबद्ध या प्रणबद्ध होकर नारी-विमर्श में नारी के हक में, उसकें अधिकारों के लिए, मानवीय जीवन मूल्यों के लिए, एक विचारधारा को लेकर चलने वाली लेखिका है । प्रेमचंद ने ग्रामीण स्त्रियों पर लिखा था, पर स्त्रियों के गाँव के गाँव ले आनेवाली लेखिका तो मैत्रेयी है । और विचित्रता तो देखिए । समकालीन लेखिकाओं का एक समूचा वर्ग लामबद्ध होकर उसके खिलाफ मोर्चा साध खड़ा हो गया है । डा.निर्मला जैन हो, या मृदुला गर्ग, या चित्रा मुदगल, चन्द्रकांता, कमलकुमार, मैत्रेयी को खारिज़ करने के लिए आमादा । पर दूसरी ओर डा.रोहिणी अग्रवाल हैं, राजेन्द्र यादव हैं, कमलेश्वर हैं, मनोहर श्याम जोशी हैं, डा.वीरेन्द्र यादव हैं, प्रोफेसर मेनेजर पांडेय हैं, अजीत कौर हैं, महाश्वेतादेवी हैं, मन्नू भण्डारी हैं, डा.परमानंद श्रीवास्तव हैं, डा.वेदप्रकाश अमिताभ हैं, डा. अर्जुन चौहाण हैं, प्रो.शिवकुमार हैं, प्रो,पारुकांत देसाई हैं, अर्चना वर्मा हैं, गिरिराज किशोर हैं, डा.काशीनाथ सिंह हैं और डा.नामवरसिंह हैं जो मैत्रेयी के लेखन की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं और उन्हें इस दौर की एक महत्वपूर्ण और बड़ी लेखिका मानते हैं ।

हैदराबाद से गोरखनाथ तिवारी ने पत्र लिखा था – मैत्रेयी जी, दो साल से मेरे दिल में हलचल थी । उपन्यास पढ़े, आत्मकथा पढ़ी । सोच लिया शोध करना है इन्हीं पुस्तकों पर... पी-एच.डी. करुँगा । मेरे प्रोफेसर टी. मोहनसिंह समस्त छात्रों से कहते है - मैत्रेयी पुष्पा के किसी एक उपन्यास को अपने विषय-क्षेत्र में रखो, क्योकि वे बीसवीं सदी की सबसे प्रसिद्ध ग्राम्य-जीवन पर लिखने वाली एकमात्र उपन्यासकार हैं । जो उनका उपन्यास नहीं पढ़ेगा, पी-एच.डी. की डिग्री लेकर क्या करेगा ? (गुड़िया भीतर गुड़िया, पृ.330) जो बात प्रोफेसर टी. मोहनसिंह के मन में थी, लगभग वैसी ही बात हमारे विश्व-विधालय के भूतपूर्व प्रोफेसर डा.पारुकान्त देसाई के मन में थी । यद्यपि वह निवृत हो चुके थे पर प्रबुद्ध छात्रों से मिलना-मिलाना उनके स्वभाव में था । अतः एक संगोष्ठी के दौरान औपचारिक बातचीत में मैंने उनसे अपनी जिज्ञासा प्रकट की कि मैत्रेयी पर काम करना हो तो किस विषय पर हो सकता है । उन्होंने बताया कि मैत्रेयी के कथा-साहित्य में वस्तु, पात्र, समस्याओं को लेकर तो कई जगह काम हो रहे हैं परंतु तुम यदि सचमुच में इस विषय को लेकर गंभीर हो तो मैत्रेयी की आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में काम हो सकता है । उसके बाद मैडम डा. शन्नो पांडेय से कई-कई बैठकों के उपरान्त “मैत्रेयी पुष्पा की

आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यास साहित्य का अध्ययन" विषय पर मेरा नाम पंजीकृत हो गया दिनांक 19-11-2008 को और अब लगभग चार साल के उपरान्त शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने जा रही हूँ।

साहित्य जगत के कुछ समीक्षक इस अवधारणा के विपरीत हैं कि किसी कृति-विशेष या किसी लेखक-लेखिका पर काम करने के लिए उसके जीवन के वैयक्तिक पक्षों से रुबरु होना चाहिए। उनकी अवधारणा है कि उससे वस्तुलक्षी या कृति-लक्षी तटस्थ दृष्टि को व्याघात पहुंचता है । वे बहुउदृत एलियट के मत की भी बात करते है कि रचनेवाले कलाकार/कथाकार और भुगतने वाले प्राणी में फासला होना चाहिए और यह फासला जितना हो ज्यादा होगा, कलाकार उतना ही बड़ा माना जाएगा । लेकिन इसे समझने के लिए भी तो कलाकार के जीवन को जानना पड़ता है । चेखोव कहा करते थे कि कहानी कहने के लिए एक छोटा सा सूत्र हाथ आ जाए तो वह उस पर पूरी रचना का संयोजन कर सकते थे। मैत्रेयी ने मंदा और सारंग की रचना की तो कितना उन वास्तविक पात्रों में होगा और कितना मैत्रेयी ने उसमें जोड़ा उसे जानने के लिए भी यदि हम उनके जीवन से रुबरु होते हैं तो वह मामला बड़ा दिलचस्प हो सकता है। उपन्यास के अनेकानेक आलोचकों ने कहा है कि उपन्यास उसके रचयिता के प्रत्यक्ष और वास्तविक जीवनानुभवों का आकलन है। वह जीवन पर की गई टिप्पणी है । ऐसी स्थिति में यदि हम किसी लेखक या लेखिका के जीवनानुभवों से रुबरु होते है तो उसकी रचनाओं के रसास्वादन में हमें और भी सहूलियत रहती है । पश्चिम में तो इस प्रकार के कई अध्ययन हुए है । कई लेखकों व कवियों की डायरी या जीवनकथा या आत्मकथा इत्यादि उपलब्ध हो रहे हैं और उनको केन्द्र में रखते हुए उनकी रचनाओं का अध्ययन-अनुशीलन भी हो रहा है । "राइटर्स एट वर्क सीरिज़ फर्स्ट" तथा " राइटर्स एट वर्क सीरिज़ सेकण्ड" तथा "रिल्के की डायरी", "शब्दों का मसीहाः सार्त्र" तथा "कामू : वह पहला आदमी" , "लियो टोल्सटोय की पत्नी की डायरी के कुछ पन्ने" आदि इस प्रकार की रचनाएं है । लगभग अस्सी के दशक में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से एक किताब आयी थी – मेरा हमदम मेरा दोस्त" – उसमें राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, मन्नू भण्डारी इत्यादि ने एक दूसरे के सम्बन्ध में लिखा है जो उन-उन लेखकों को समझने के लिए सहायक हो सकता है । "मैं इनसे मिला" (पदमसिहं "कमलेश") में भी हिन्दी के कई लेखकों के साक्षात्कार व संस्मरण है। प्रेमचंद की दो जीवनियाँ उपलब्ध है -

कलम का मजदूर (मदन गोपाल) और "कलम का सिपाही" (अमृतराय)। इन दो जीवनियों के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद के कथा-साहित्य का अनुशीलन तो हमारी विश्वविद्यालय में ही डा.लीना चौहाण के द्वारा हो चुका है। अतः मैत्रेयीजी की दो आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनके उपन्यासों का यह अध्ययन भी शोध-अनुसंधान के नये क्षितिजों का उद्घाटन करेगा ऐसी मेरी धारणा अकारण नहीं है।

शोध-प्रबंध में युक्तियुक्त विश्लेषण को केन्द्रस्थ रखते हुए उसे निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया है ---

(1) प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश

(2) द्वितीय अध्याय : हिन्दी आत्मकथा परिभाषा, विभावना और विकास।

(3) तृतीय अध्याय : "कस्तूरी कुण्डल बसै" का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

(4) चतुर्थ अध्याय : "गुड़िया भीतर गुड़िया" का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

(5) पंचम् अध्याय : मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

(6) षष्ठ अध्याय : आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में मैत्रेयी के उपन्यासों का विश्लेषण एवम् मूल्यांकन।

(7) सप्तम् अध्याय : उपसंहार।

मेरा शोधकार्य मैत्रेयी पुष्पा की जिन रचनाओं पर आधृत हैं, उनमें स्पष्टतया दो साहित्यिक विधाओं का समावेश होता है – उपन्यास और आत्मकथा। अतः शुरु के दो अध्याय क्रमशः उपन्यास और आत्मकथा से सम्बद्ध हैं। प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश" में हिन्दी उपन्यास से जुड़े हुए कतिपय महत्वपूर्ण मुद्दों की पड़ताल करने का यत्न किया है। हिन्दी उपन्यास का उद्भव तो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नवजागरण की चेतना के वाहक के रुप में हुआ था, परंतु उसे पहचान मिली मुंशी प्रेमचंद के द्वारा। फलतः प्रायः सभी इतिहासकारों ने प्रेमचंद के उस मेरुदण्डीय अवदान को परिलक्षित करते हुए उपन्यास की विकास-यात्रा के विभिन्न सोपानों की बात करते हुए प्रेमचंद के नाम को केन्द्र में रखा गया है, यथा – पूर्वप्रेमचंदकाल (सन् 1878-1918), प्रेमचंदकाल (सन् 1918-1936), प्रेमचन्दोत्तरकाल (सन् 1936-

अधावधि) । प्रेमचन्दोत्तरकाल को पुनः स्वाधीनता-पूर्वकाल (सन् 1918-1947), स्वातंत्र्योत्तरकाल (सन् 1947-1960), साठोत्तरी काल (सन् 1960-1985) और समकालीन उपन्यास (सन् 1985-अधावधि) आदि उप-कालखण्ड़ों में विभक्त किया गया है। हिन्दी उपन्यास के इस एक सौ पैतीस वर्षीय फलक में नाना औपन्यासिक प्रवृत्तियां, जैसे सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, समाजवादी उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, व्यंग्य उपन्यास, पौराणिक उपन्यास, साठोत्तरी उपन्यास, समकालीन उपन्यास, आदि-आदि उपलब्ध हो रही हैं। "साठोत्तरी" और "समकालीन" में काल-विषयक अवधारणा भी शामिल है, पर यह भी उतना ही सच है कि केवल साठ के बाद की या पच्चासी के बाद की रचना होने मात्र से उन्हें साठोत्तरी वा समकालीन नहीं कहा जा सकता, उनमें क्रमशः साठोत्तरी या समकालीन चेतना भी होना लाजमी है। उपन्यास की परिभाषा के निष्कर्ष रुप में कहा गया है कि यथार्थधर्मिता ही उपन्यास का प्राणतत्व है। दूसरे इसी अध्याय में शुरु से लेकर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों तक के सीमा-चिन्ह रुपी उपन्यासों को भी रेखांकित किया गया है। इन उपन्यासों में सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान (प्रेमचंद); विराटा की पदमिनी, मृगनयनी (वृन्दावनलाल वर्मा); जय सोमनाथ, वैशाली की नगरवधू, वयं रक्षामः (आचार्य चतुरसेन शास्त्री); फागुन के दिन चार, घण्टा (पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र"); गिरती दीवारें, गर्म राख (उपेन्द्रनाथ अश्क); परख, त्यागपत्र, मुक्तिबोध, दशार्क (जैनेन्द्र); शेखर एक जीवनी भाग 1-2, नदी के द्वीप (अज्ञेय); जहाज का पंछी, प्रेम और छाया (इलाचन्द्र जोशी); अमृत और विष, बूंद और समुद्र (अमृतलाल नागर); टेढ़े मेढ़े रास्ते, प्रश्न और मरीचिका (भगवती चरण वर्मा); मैला आंचल, परती परिकथा (रेणु); सारा आकाश, कुलटा, शंह और मात (राजेन्द्र यादव); तीसरा आदमी, डाक बंगला, कितने पाकिस्तान (कमलेश्वर); अंधेरे बन्द कमरे (मोहन राकेश); वे दिन (निर्मल वर्मा); मित्रो मरजानी, सूरजमुखी अंधेरे के (कृष्णा सोबती); अठारह सूरज के पौधे, बैसाखियों वाली इमारत (रमेश बक्षी); मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी); आपका बण्टी, महाभोज (मन्नू भंडारी); आधा गाँव, दिल इक सादा कागज़ (डा.राही मासूम रज़ा); जल टूटता हुआ, सूखता हुआ तालाब (डा.रामदरश मिश्र); अलग-अलग वैतरणी, नीला चांद (डा.शिवप्रसाद सिंह); राग दरबारी (श्रीजाल शुकल); प्रेम अपवित्र नदी (लक्ष्मीनारायण लाल); काला जल (शानी), धरती

धन न अपना (जगदीशचन्द्र); पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका? (उषा प्रियंवदा); मुर्दाघर (जगदम्बाप्रसाद दीक्षित); चित्त कोबरा, उसके हिस्से की धूप (मृदुला गर्ग); बेघर (ममता कालिया); पतझड़ की आवाजे, बंटता हुआ आदमी (निरुपमा सेवती); नावें, सीढ़ियां (शशिप्रभा शास्त्री); तत्सम (राजी सेठ); कलिकथा : वाया बायपास (अलका सरावगी), अनारो (मंजुल भगत), मुझे चांद चाहिए (सुरेन्द्र वर्मा), काशी का अस्सी (काशीनाथ सिंह), सात आसमान (असगर वज़ाहत), पीली आंधी (प्रभा खेतान), ठीकरे की मंगनी, शाल्मली (नासिरा शर्मा); सलाम आखिरी (मधु कांकरिया); आवां (चित्रा मुद्‌गल) इत्यादि की गणना कर सकते है। यहाँ तक कि औपन्यासिक यात्रा के उपन्यास हमने मैत्रेयीजी के उपन्यासों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है क्योंकि उन उपन्यासों का विस्तृत विश्लेषण तो हमारे शोध-प्रबंध का लक्ष्य ही है।

जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है हमारा कार्य मैत्रेयी के उपन्यासों पर है, पर उनका अनुशीलन उनके द्वारा प्रणीत दो आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में करने का हमारा उपक्रम है । अतः द्वितीय अध्याय में हमने आत्मकथा-विषयक विविध मुददों की पड़ताल की है। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में इस विधा पर बहुत कम विवेचन हुआ है। आत्मकथाओं की विविध परिभाषाओं के प्रकाश में उसके मुख्य अभिलक्षणों को उकेरते हुए आत्मकथा और जीवनी या जीवन-चरित्र का अंतर; रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोतार्ज आदि रुपों से उसके अन्तर्सम्बन्ध, उसकी शक्ति-सीमा, आत्मकथा-लेखन के भयस्थान जैसे मुददों की यहाँ पड़ताल की गई है। तदुपरांत हिन्दी आत्मकथा की विकास-यात्रा, उसके प्रमुख सोपान, नेताओं-समाजसुधारकों और साहित्यकारों की आत्मकथा के संक्षिप्त विवरण के उपरान्त समकालीन हिन्दी दलित लेखकों की आत्मकथाओं तथा समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं के संक्षिप्त ब्यौरे प्रस्तुत किए गए है। समकालीन दलित लेखकों की आत्मकथाओं में "अपने अपने पिंजरे" (डा.मोहनदास नैमिशराय), "जूठन" (ओमप्रकाश वाल्मीकि), "दोहरा अभिशाप" (कौशल्या बैसन्त्री), "तिरस्कृत", "संतप्त (सूरजपाल चौहाण); "झोंपडी से राजभवन तक" (माताप्रसाद), "मेरा सफ़र मेरी मंजिल" (डा.डी.आर. जाटव), नागफणि (रुपनारायण सोनवणेकर), "एक भंगी उपकुलपति की अनकही कहानी" (प्रो.श्यामलाल),

“मेरा बचपन मेरे कंधे पर” (श्यौराजसिंह बेचैंन) तथा “मुर्दहिया” (प्रो.तुलसीराम) प्रभुति के संक्षिप्त विवरण दिए गए है ।

समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में “जो कहा नहीं गया” (कुसुम अंसल), “लगता नहीं है दिल मेरा” (कृष्णा अग्निहोत्री), “पिंजरे की मैना (चन्द्रकिरण सौनरेक्सा), “अन्या से अनन्या” (डा.प्रभा खेतान), “हादसे” (डा.रमणिका गुप्ता), “दोहरा अभिशाप” (कौशल्या बैसन्ती), “एक कहानी यह भी” (मन्नू भंडारी) प्रभुति आत्मकथाओं की संक्षिप्त चर्चा करते हुए मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथाओं – “कस्तूरी कुण्डल बसै” तथा “गुड़िया भीतर गुड़िया” – तक उस यात्रा को पहुंचाया गया है । प्रस्तुत अध्याय में इन दो आत्मकथाओं पर बहुत संक्षेप में विचार किया गया है, क्योंकि परवर्ती अध्यायों में उनका विस्तृत ब्यौरेवार विश्लेषणात्मक अध्ययन हम करने वाले है ।

तृतीय और चतुर्थ अध्याय में हमने क्रमशः “कस्तूरी कुण्डल बसै” तथा “गुड़िया भीतर गुड़िया” विस्तृत विश्लेषणमूलक अध्ययन किया है । “कस्तूरी कुण्डल बसै” में मैत्रेयीजी की माताजी कस्तूरी के जीवन संघर्ष, उनके जीवट, उनकी जिजीविषा, उनके नारीवादी स्वतंत्र विचार, शिक्षा-विषयक उनकी लगन, स्वतंत्र भारत में “महिला मंगल योजनाओं” के अंतर्गत स्त्रियों के विकास और उनके सशक्तीकरण के उपाय, मैत्रेयी की शिक्षा के लिए किए गए उनके प्रयत्न, शिक्षा के ही कारण ममता को दरकिनार कर बिटिया को अलग-अलग जगह अलग-अलग लोगों के यहाँ उनके ही भरोसे पर छोड़ना जैसी कई बातो का विवरण मिलता है जिससे कस्तूरी के दृढ़ मनोबल का परिचय हमें मिलता है । कस्तूरी की कथा का प्रारंभ ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर और स्वाधीनता संग्राम के महात्मा गांधी के आंदोलन की भूमिका में होता है । उस समय लगान वसूली के लिए किसानों पर अमानुषी अत्याचार होते थे । उसके त्रास से नजात पाने के लिए कस्तूरी को बेचा गया था । उनकी शादी महज एक सौदा था । कस्तूरी को इसकी कसक आखिर तक रहती है । विवाह के बाद मैत्रेयी का जन्म होता है और उसके कुछ समय बाद ही कस्तूरी के पति हीरालाल की मृत्यु हो जाती है । अपने खेत-खलिहान संभालते हुए कस्तूरी का पढ़ने का फैसला, ससुर मेवाराम का सहयोग, शिक्षा के बल पर सरकारी नौकरी पाना, उसके द्वारा कई निराधार विधवा स्त्रियों का उद्धार, मैत्रेयी की शिक्षा पर अधिक बल देना, बरअक्स इसके मैत्रेयी का पढ़ने में ज्यादा ध्यान न होना, पढ़ाई के कारण मैत्रेयी को अलग-अलग गाँवो में दूसरों के संरक्षण में छोड़ना

जैसी अनेक घटनाओं का यहाँ आलेखन हुआ है । इस प्रकार यह आत्मकथा कस्तूरी की जीवनी और मैत्रेयी की आत्मकथा ठहरती है । इसमें मैत्रेयी का शिक्षा-विषयक संघर्ष, कस्तूरी का अपनी नौकरी का संघर्ष, मैत्रेयी का विवाह-संघर्ष और उसके एक बच्ची होने तक की कथा वर्णित है । कस्तूरी चाहती थी कि मैत्रेयी खूब पढ़े, अधिकारी बने और "पावर और पोजिशन" हासिल करे; दूसरी ओर मैत्रेयी विवाह करके गृहस्थी बसाने के सपने देख रही थी । यहाँ मां हारती भी है और जीतती भी है । मैत्रेयी के विवाह में कस्तूरी की हार थी, परंतु बिना दहेज के केवल शिक्षा के बल पर डा.शर्मा जैसे हीरे-से दामाद को पाना उनकी जीत थी । यहाँ वैचारिक सोच में कस्तूरी मैत्रेयी से भी आगे निकल जाती है,

चतुर्थ अध्याय "गुड़िया भीतर गुड़िया" के विश्लेषण को लेकर है । इसका कथापट सन् 1972 से 2003 तक विस्तृत है । कस्तूरी अपनी और महिला मंगल की अपनी सहयोगी स्त्रियों की नौकरी के लिए संघर्ष करती है, जेल तक जाती है, अंततः उनको तथा कुछेक पढ़ी-लिखी स्त्रियों को नव-विकसित परिवार कल्याण योजना के तहत नौकरी में रखा जाना है, परंतु कस्तूरी जहाँ भी जाती है वहाँ के अधिकारीयों, डाक्टरों और नर्सों के लिए सर-दर्द साबित होती है क्योंकि कस्तूरी को भ्रष्टाचार और बेईमानी से सख्त नफ़रत है जबकि आजादी के बाद सरकारी महकमों में भ्रष्टाचार की बेल-लता खूब लहलहा रही है । इस प्रकार अंत तक संघर्ष करती हुई, मानव-मूल्यों के लिए लड़ती हुई, जूझती हुई कस्तूरी की मृत्यु होती है (पृ.126) । बेटी के दामाद डा.सुभाष ही माताजी को अस्पताल ले गये थे । तब तक मैत्रेयी के तीन बेटियां हो चुकी थीं । दो के विवाह भी हो गये थे । उनके पति भी डाक्टर ही थे । इस प्रकार ये आत्मकथाएं स्त्री में गुंथी हुई स्त्री की तीन पीढ़ियों की कथा है जिन्हें एक औरत ही आगे ले जा रही है । "गुड़िया भीतर गुड़िया" में मैत्रेयी और डाक्टर का दिल्ली आना, मैत्रेयी और डाक्टर में निरंतर चलते रहने वाले संघर्ष, कलह, लडाई-झगड़े, समझौते, मैत्रेयी की बेटियों के उच्च-शिक्षा, तीनों बेटियों का डाक्टर होना, बेटियों के ही आग्रह पर मैत्रेयी का साहित्य-जगत में आने के प्रयास, जिसके फलस्वरुप "गुड़िया" के भीतर से एक दूसरी "गुड़िया" (लेखिका मैत्रेयी पुष्पा) का निकलना, शुरुआती संघर्ष, एम्स की मेडिकल दुनिया, साहित्य जगत में भी चलने वाली धांधलियां, छल-छदम् आदि का

ब्यौरेवार आकलन हुआ है । ऐसा लगता है कि यह जो "गुड़िया" के भीतर से दूसरी "गुड़िया" निकली है वह कस्तूरी का ही मानो पुनर्जन्म है ।

कई बार जीवन मे संयोग का भी बड़ा महत्व प्रतीत होता है । डाक्टर साहब का अलीगढ़ से दिल्ली आना, मैत्रेयी का इल्माना से मिलना, "गोडमधर" के कारण मैत्रेयी का साहित्यिक कार्यक्रमों में जाना, इसी उपक्रम में मैत्रेयीजी का मन्नूजी से मिलना और अंततः राजेन्द्र यादव से मिलना, ये सब इसी प्रकार के संयोग है । बेटियां ही मैत्रेयी को प्रेरित करती है । शुरुआती संघर्ष में कुछ कविताएं, कहानियां, "स्मृतिदंश" (उपन्यासिका), "बेतवा बहती रही" (लघु उपन्यास) मैत्रेयी की जमा-पूंजी थी । पर मैत्रेयी को मैत्रेयी बनाने वाले तो रेणु और राजेन्द्र यादव है । कई-कई बार रिजेक्ट होने के बाद मैत्रेयी की "सेंध" कहानी हंस में प्रकाशित होती है "जमीन अपनी अपनी" शीर्षक से । मानों साहित्य के आकाश में "सेंध" लग गई । "स्मृतिदंश" और "बेतवा बहती रही" प्रकाशित हो चुके थे पर कथा-साहित्य के लिए आवश्यक "विजन", जीवन-दृष्टि का उनमें अभाव था । राजेन्द्र यादव ने मैत्रेयीजी को जो मार्गदर्शन दिया, अपनी जमीन से जुड़ने की जो बात बतायी, अपनी जड़ों को तलाशना और जड़ों की ओर लौटना जो सिखाया उसके कारण मैत्रेयीजी में वह औपन्यासिक विजन आया । उन्होनें जीवनानुभवों की अपनी पूंजी को टटोला - खंगाला और पाया कि यहाँ तो मानो खजाना गड़ा है ।

"इदन्नमम" वह उपन्यास है जिससे मैत्रेयीजी की पहचान बनती है । जो कार्य "मैला आंचल" मे रेणु के लिए, "अंधेरे बन्द कमरे" ने मोहन राकेश के लिए, "त्यागपत्र" ने जैनेन्द्र के लिए "सारा आकाश" ने राजेन्द्र यादव के लिए किया था, वही कार्य "इदन्नमम" ने मैत्रेयी के लिए किया । एक सामान्य लेखिका से समकालीन लेखिकाओं की प्रथम पंक्ति में वह विराजमान हो जाती है । इसके बाद मैत्रेयी पीछे मुड़कर नहीं देखती । एक के बाद एक जबरदस्त उपन्यास - चाक, झूला नट, अल्मा कबूतरी, अगनपाखी, त्रियाहठ, विजन, गुनाह-बेगुनाह । इनमें से "अल्मा कबूतरी" तक के उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया की चर्चा "गुड़िया भीतर गुड़िया" में हुई है । "झूला नट" और "अगनपाखी" के जरा-तरा उल्लेख मिलते है । इन उपन्यासों के कारण मैत्रेयीजी "लाईम लाईट" में आ जाती है । "अल्मा" पर तो उन्हें सार्क लिटररी एवार्ड मिलता है । कई प्रकार के एवार्ड और सम्मान-लगातार लगातार । फलतः वह कई समकालीन लेखिकाओं के लिए हसद का सबब बन जाती है, दूसरी ओर बहुत

से दिग्गज समीक्षकों तथा पाठकों के विराट समुदाय की ओर से उनका स्वागत होता है ।

पांचवे अध्याय में हमने उनके उपन्यासों का विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । उनके उल्लिखित उपन्यासों में "विजन" को छोड़कर शेष का देशगत या स्थानगत परिवेश ग्रामीण या कस्बाई है । ये गाँव और कस्बे बुंदेलखंड के है । अतः बुंदेलखंड की एक सशक्त लेखिका के रुप में मैत्रेयीजी जानी जाती है । "गुनाह-बेगुनाह" का परिवेश हरियाणा का है । "विजन" में जहाँ "मेडिकल जगत" की विद्रूपताओं और विसंगतियों को उकेरा गया है, वहाँ "गुनाह-बेगुनाह" में पुलिस-जगत की विद्रूपताओं और विसंगतियों को उखेरा गया है । "अल्मा कबूतरी" में उन्होंने बुंदेलखंड की कबूतरा जाति के नग्न यथार्थ को चित्रित किया है । इस प्रकार हर उपन्यास में एक नयी जमीन, नया विषय और नये क्षितिजों की तलाश मानो मैत्रेयी की फितरत में शामिल है ।

सहस्त्राधिक वर्षो से धर्म, शास्त्र, रुढियों, रीतिरिवाजों, परंपराओं के नाम पर स्त्री को लाचार, कमजोर, विवश और अबला बना दिया गया है । अतः मैत्रेयी स्त्री-सशक्तिकरण की मुहिम को लेकर चली है । उन्होंने अपने उपन्यासों में एक से बढ़कर एक धांसू, दबंग नायिकाएं दी है । मन्दा, सारंग, शीलो, आभा, नेहा, अल्मा, इला और समीना । "स्मृतिदंश" की भुवन और "बेतवा बहती रही" की उर्वशी वही छायावादी अपने आंसुओं से संधिपत्र लिखने वाली कमजोर नायिकाएं थीं; परंतु उनके पुनर्पाठ "अगनपाखी" और "त्रियाहठ" की क्रमशः भुवन और उर्वशी कमजोर नहीं है । अपने अपराध का परिशोध मैत्रेयी ने यों कर लिया है ।

अंतिम षष्ठ अध्याय में हमने पुनः उक्त उपन्यासों को मैत्रेयीजी की आत्मकथाओं के प्रकाश में छानने और खंगालने का काम किया है । इनमें से जैसा कि उपर निर्दिष्ट किया गया है, "अल्मा कबूतरी" तक को उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया का लेखा-जोखा तो "गुड़िया भीतर गुड़िया" में हो गया है । अतः "अल्मा" तक के उपन्यासों की चर्चा हमने उक्त दो आत्मकथाओं के संदर्भ में की है, पर उनके अन्य उपन्यासों की प्रवृति और प्रकृति भी उसीके अनुरुप है । उन उपन्यासों में निरुपित जीवन-दृष्टि, स्त्री-विमर्श के आयाम और उनका "स्पिरिट" तो वहीं है जो कस्तूरी और मैत्रेयी के अनोखे संयोग से बना है । आत्मकथाओं में निरुपित देशकाल भी प्रायः वही है । बुंदेलखंड के गाँव और कस्बे । समय ब्रिटिश शासन के अंतिम दौर से इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ के

प्रथम दशक का । प्रमुख घटनाओं में स्वतंत्रता-प्राप्ति, भारत-पाकिस्तान विभाजन, विभाजन में समय की लोमहर्षक दरिन्देपन से भरपूर अमानुषी घटनाओं की त्रासदी, कौमी दंगे और भयंकर मार-काट, पंचवर्षीय योजनाएं पंचशील की बातें, सन् 1962 का चीनी हमला, हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे और भावना की चिन्दी-चिन्दी, उसी आघात में पंडित नेहरु की मृत्यु, थोड़े समय के लिए लाल बहादुर शास्त्री का प्रधानमंत्री होना, भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारत की फतह, उसी सिलसिले में हुई ताश्कंद-वार्ता में शंकास्पद स्थितियों में शास्त्रीजी का निधन, श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रधानमंत्री होना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, बांगलादेश के निर्माण में बंगबंधु मुजिबर रहमान को साथ देना, विश्व-राजकारण में इन्दिरा का छा जाना, लौह-महिला का बिरूद, इलाहाबाद कोर्ट में राजनारायण से हारने के बाद आपातकालीन स्थिति की घोषणा, कई नेताओं और बुद्धिजीवियों को जेल में ठूंस देना, रेणु की जेल-यात्रा और निधन, बाद में हुए चुनावों में इन्दिरा गांधी और संजय गांधी की जबरदस्त हार, सत्ता की बागडोर जनता-पार्टी के पास आना, पर कुछ ही समय में इन्दिराजी का पुनः सत्ता में आना, एक विमान-दुर्घटना में संजय गांधी की मौत, भिंडरानवाले का खालिस्तान के लिए आंदोलन, गुजरात का नव-निर्माण का आंदोलन, आरक्षण विरोधी आंदोलन, अपने ही दो पंजाबी गार्ड द्वारा इन्दिरा गांधी की हत्या, सिख विरोधी जनाक्रोश, राजीव गांधी के नेतृत्व में चुनाव, सदभावना लहर के कारण कांग्रेस को 2/3 से ज्यादा की बहुमती, राजीव गांधी की हत्या, केन्द्रीय अस्थिरता का राजकारण; पी.वी.नरसिंहमाराव के बाद देवगौड़ा, आइ.के.गुजराल, चन्द्रशेखर आदि का प्रधानमंत्री होना; बोफोर्स कांड, वी.पी.सिंह का मंडल आयोग, अड़वाणी की रथयात्राएं, बाबरी-मस्जिद-ध्वंस कांड, आतंकवादी प्रवृतियों का बढ़ना, बाजपेयी की भाजपा सरकार, गुजरात का कुख्यात नरसंहार प्रभुति का आलेखन मैत्रेयीजी ने इन दो आत्मकथाओं में किया है और इनका चित्रण उनके उपन्यासों में भी कहीं-न-कहीं हुआ है ।

स्वतंत्रता के बाद गाँव भी राजनीति की चपेट में आ जाते हैं । राजनीति की काली छाया हर क्षेत्र में फैल जाती है । शिक्षा तक उससे अछूती नहीं रह पाती । पंचायत तक के चुनावो में राजनीति आ जाती है । नवजागरण की चेतना लुप्त हो जाती है और पुनः पुराने मानव-विरोधी मूल्य तुल पकड़ने लगते है । गाँवो में भी माफियागीरी, गुण्डागर्दी, नवधनिकों की बदतमीजियां, ठेकेदारों में अत्याचार और जोर-जुल्म, मर्दवादी सोच के कारण ग्रामीण स्त्रियों पर भी

अत्याचार, जमीन-जायदाद के झगड़ो में हत्याएं, स्त्रियों के बलात्कार और जलात्कार, कौमी-एकता में दरार जैसी घटनाओं ने ग्रामीण जीवन को भी खत्म कर दिया है । "राग दरबारी" के लेखक श्रीलाल शुकल के शब्दों में स्वातंत्र्योत्तर गाँव अपने हरामीपन में पूरी तरह से पग गया है । इन सबका चित्रण मैत्रेयीजी ने नारी-विमर्श की अपनी स्वतंत्र दृष्टि के साथ किया है ।

मैत्रेयीजी का नारी-विमर्श पुरुष बनाम स्त्री का नहीं है । वह स्त्री-पुरुष उभय को समाज का आवश्यक अंग मानती है । संसाररुपी रथ के दो पहिये है स्त्री-पुरुष । एक-दूसरे के दुश्मन नहीं । उनमें मैत्री भाव होना चाहिए, बराबरी होनी चाहिए, दोस्ताना संबंध होने चाहिए । मैत्रेयीजी के नारी पात्र एक हद तक, एक सीमा तक अत्याचार और अन्याय बर्दाश्त करते है, पर जब इनकी इन्तिहां हो जाए तब वह डटकर उनका मुकाबला करती है । फिर अन्याय करने वाला उसका पति ही क्यों न हो । योनिशुचिता और सती-सम्बन्धी उनके विचार भी परंपरा से मेल नहीं खाते । जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री-पुरुष में समानता होनी चाहिए । लड़के-लड़कियों का भेद मिटना चाहिए, बेटियों को भी मां-बाप की संपत्ति में बराबर का हक मिलना चाहिए, हर क्षेत्र में आगे बढ़ने की सुविधाएं बेटियों को भी मिलनी चाहिए, खाप-पंचायतों की दादागीरी खत्म होनी चाहिए, वयस्क युवक-युवतियों को वोट का अधिकार ही नहीं अपने जीवन-साथी के चुनाव का अधिकार भी मिलना चाहिए । संक्षेप में मैत्रेयीजी कहीं भी गैर-बराबरी, शोषण, अत्याचार, अन्याय, मानव-विरोधी जीवनमूल्य आदि की तरफदारी नहीं करती है ।

ऐसा कहा जाता है कि प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में ग्रामीण स्त्रियों का चित्रण किया था, मैत्रेयी उन स्त्रियों को गाँव में ले आई है । मतलब कि उन्होनें स्त्रियों के गाँव के गाँव मानो बसा दिए हैं । दूसरी बात यह है कि मैत्रेयी का अपने पात्रों के साथ गजब का तादात्म्य होता है । ऐसा लगता है कि परकया प्रवेश की प्रक्रिया द्वारा वह उन पात्रों में रस-बस जाती है । अशोककुमार के लिए ऐसा कहा जाता है कि जब-जब उन्हें कोई विशिष्ट चरित्र-रोल करना होता था, वह दिनों-महिनों उन चरित्रों में खोए रहते थे । भले मैत्रेयी की ये नायिकाएं काल्पनिक हैं, पर उन जैसी स्त्रियों को, लड़कियों को वह मिली जरुर है । कुछ उनसे, कुछ अपने जीवनानुभवों से, कुछ कस्तूरी से और कुछ उस दूसरी "गुड़िया" से लेकर मैत्रेयी ने अपने नारी पात्रों का सृजन किया है । अतः उनके उपन्यासों और कहानियों पर बात करते हुए, उनकी इन दो

आत्मकथाओं की पठन-यात्रा एक दिलचस्प अनुभव हो सकती है । जो केवल मैत्रेयी के साहित्य को पढ़ते है वे तो भाग्यशाली है ही, पर जो इन आत्मकथाओं के साथ उनको पढ़ते है, वे तो परम भाग्यशाली कहे जायेंगे ।

जहाँ तक मेरा संज्ञान है मैत्रेयी पर इस प्रकार का कार्य अद्यावधि हुआ नहीं है । कुछ इसी प्रकार का शोधकार्य प्रभा खेतान के उपन्यासों पर भी हो रहा है और हमारे विश्वविधालय से ही हो रहा है । इस प्रकार के कार्य उन सभी लेखकों तथा लेखिकाओं पर हो सकते हैं जिनकी आत्मकथाएं या जीवनियां प्रकाशित हुई है या जिन पर कई सारे लोगों ने संस्मरण या रेखाचित्र लिखे है । मैत्रेयी के समग्र साहित्य को लेकर भी कार्य हो सकता है । उनकी इन आत्मकथाओं के परिप्रेक्ष्य में उनकी कहानियों और अन्य विधाओं को लेकर भी कार्य हो सकता है ।

अंत में दुश्यन्तकुमार की गज़ल के दो शेर मैत्रेयीजी के संदर्भ में प्रस्तुत कर रही हूँ ---

"हो गयी है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए ;
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए ।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं ;
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए ।"

कामना करती हूँ कि साहित्य के हिमालय से कोई मैत्रेयी जैसी, महाश्वेतादेवी जैसी, महादेवी जैसी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम और अजीत कौर जैसी गंगाएं निकलकर स्त्री और दलित की पर्वत-सी पीर को पिघला दें और यह जो सामंतवादी शोषणोंन्मुखी ढांचा है उसकी सूरत को बदल दें ।

*****

परिशिष्ट

।। ग्रन्थानुक्रमणिका ।।

★ परिशिष्ट - (1) : उपजीव्य ग्रन्थों की सूची :

(1) अगनपाखी : मैत्रेयी पुष्पा : राजकमल प्रकाशन : 2001 ।
(2) अल्मा कबूतरी : मैत्रेयी पुष्पा : रा. प्र. : 2000 ।
(3) इदन्नमम् : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : द्वितीय संस्करण-2004 ।
(4) कही ईसुरी फाग : मैत्रेयी पुष्पा : पहला संस्करण-2004 ।
(5) कस्तूरी कुण्डल बसै : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : सं-2002 ।
(6) गुड़िया भीतर गुड़िया : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : सं-2008 ।
(7) गुनाह-बेगुनाह : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : प्र.सं-2011 ।
(8) चाक : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : सं-1997 ।
(9) झूलानट : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : सं-2004 ।
(10) त्रिया हठ : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : सं-2005 ।
(11) प्रतिनिधि कहानियां : मैत्रेयी पुष्पा : किताब घर : सं-2008 ।
(12) बेतवा बहती रही : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : सं-1993 ।
(13) विज़न : मैत्रेयी पुष्पा : राज. प्र. : सं-2002 ।

★ परिशिष्ट - (2) : सहायक-संदर्भ-ग्रन्थ सूची (हिन्दी) :

(1) अन्या से अनन्या : डा.प्रभा खेतान : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : सं-2007 ।
(2) आपबीती-जगबीती : संदीप भूतोड़िया : राजकमल : सं-2010 ।
(3) अंधेरे बन्द कमरे : मोहन राकेश : राजकमल : सं-तृतीय-1972 ।
(4) आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि : डा.रामदरश मिश्र : अभिनव प्र. दिल्ली : प्रथम सं-1975 ।
(5) आधुनिक साहित्य : आचार्य नंददुलारे वाजपेंयी : भारती भण्डार इलाहाबाद : चतुर्थ संस्करण : संवत्-2022 ।
(6) आधुनिक हिन्दी उपन्यास : खण्ड-1 : संपादक डा.भीष्म साहनी, डा.रामजी मिश्र तथा डा.भगवतीप्रसाद निदारिया : राजकमल द्वितीय संस्करण-2010 ।
(7) आधुनिक हिन्दी उपन्यास : खण्ड-2 : संपादक डा.नामवरसिंह : राजकमल, दिल्ली : प्रथम संस्करण-2010 ।

(8) आधी आबादी का संघर्ष : आलेखन-ममता जैतली, श्रीप्रकाश शर्मा : राजकमल, दिल्ली : पहला संस्करण-2006 ।
(9) आधुनिक हिन्दी कालजयी साहित्य : सं डा.अर्जुन चव्हाण : राधाकृष्ण, दिल्ली : प्रथम संस्करण-2002 ।
(10) आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा.पारुकान्त देसाई : चिंतन प्रका. कानपुर : सं-1994 ।
(11) आधुनिक हिन्दी उपन्यास में नारी के विविध रुपों का चित्रण : डा.अजहर ढेरीवाला : चिंतन प्रका. : सं-2001 ।
(12) आगामी अतीत : कमलेश्वर : तुर्कमान गेट, दिल्ली : सं-1976 ।
(13) इमरतिया : नागार्जुन : राजपाल, दिल्ली : सं-1968 ।
(14) उपन्यासकार अश्क : सं. डा.इन्द्रनाथ मदान : नीलाभ प्र. इलाहाबाद : सं-1960 ।
(15) उपन्यास का काव्यशास्त्र : डा.बच्चनसिंह : राधाकृष्ण, दिल्ली : सं-2008 ।
(16) औरत के हक में : तसलीमा नसरीन : वाणी प्रका, दिल्ली : सं-2001 ।
(17) औरत होने की सजा : अरविन्द जैन : विकास पेपर बैक्स, गांधीनगर, दिल्ली : सं-1994 ।
(18) औरत : अस्तित्व और अस्मिता : अरविन्द जैन : राजकमल, दिल्ली : सं-2009 ।
(19) कलम का सिपाही : अमृतराय : हंस प्रका, इलाहाबाद : सं-1962 ।
(20) कबिरा खड़ा बाजार में : व्यंग्य-निबंध : डा.पारुकान्त देसाई : रोमा प्रका, बड़ौदा : सं-1981।
(21) काव्य के रुप : डा.गुलाबराय : आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली : सं-1975 ।
(22) कुछ विचार / : प्रेमचंद / सरस्वती प्रेस, बनारस : सं-1946 ।
(23) गोदान : प्रेमचंद : सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद : सं-1966 ।
(24) चिन्तनिका : डा.पारुकान्त देसाई : सूर्य-भारती प्र. दिल्ली : सं-1995 ।
(25) छाया मत छूना मन : हिमांशु जोशी : राजकमल, दिल्ली : सं-1977 ।
(26) धरती धन न अपना : जगदीशचन्द्र : राजकमल, दिल्ली : सं-1972 ।
(27) नदी फिर बह चली : हिमांशु श्रीवास्तव : हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी : सं-1976 ।
(28) निबंध-निलय : सं डा.सत्येन्द्र : लोकभारती, इलाहाबाद : सं-1980 ।
(29) निर्मला : प्रेमचंद : सरस्वती प्रेस, दिल्ली : सं-1999 ।
(30) नोबेल प्राइज़ विजेता साहित्यकार : ठाकुर राजबहादुरसिंह : राजपाल, दिल्ली : सं-1967 ।
(31) प्रेमचंद और उनका युग : डा.रामविलास शर्मा : राजकमल : सं-1975 ।
(32) प्रेमचंद और गोर्की : सं डा.शचिरानी गुर्टू : राजकमल : सं-1955 ।
(33) बिजली के फूल (काव्य संग्रह) : डा.पारुकान्त देसाई : रोमा प्र, बड़ौदा : सं-1980 ।
(34) बैसाखियोंवाली इमारत : रमेश बक्षी : अक्षर प्र, दिल्ली : सं-1966 ।

(35) भाषा विज्ञान : डा.भोलानाथ तिवारी : किताबमहल, दिल्ली : सं-1987 ।

(36) मानसमाला (दोहा-संग्रह) : डा.पारुकान्त देसाई :कृष्णा प्र. जयपुर : सं-1988 ।

(37) मध्यप्रान्त और बरार में आदिवासी समस्याएं : डबल्यू.वी. ग्रिन्सन : अनुवाद- संजीव माथुर : राजकमल, दिल्ली : सं-2008 ।

(38) मुर्दाघर : जगदम्बाप्रसाद दीक्षित : राधाकृष्ण, दिल्ली : सं-1974 ।

(39) मुझे चांद चाहिए : सुरेन्द्र वर्मा : राधाकृष्ण, दिल्ली : सं-2004 ।

(40) भारतीय सामाजिक समस्याएं : डा.एम. एल. गुप्ता, डा.डी. डी. शर्मा : साहित्य भवन-आगरा : सं-1987 ।

(41) भारतीय समाज तथा संस्कृति : डा. एम. एल. गुप्ता, डा.डी. डी. शर्मा : साहित्य भवन-आगरा : सं-1986 ।

(42) मैत्रेयी पुष्पा : तथ्य और सत्य : सं डा.दया दीक्षित : सामयिक बुक्स, नई दिल्ली : सं-2010 ।

(43) मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन : डा.शोभा यशवंते : विकास प्र, कानपुर : सं-2009 ।

(44) मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में मानवीय संवेदना : डा.सुमा वी. राव : लोकप्रकाशन गृह, दिल्ली : सं-2010 ।

(45) यथार्थवाद : डा.शिवकुमार मिश्र : मेकमिलन कंपनी, दिल्ली : सं-1975 ।

(46) युगनिर्माता प्रेमचन्द्र तथा कुछ अन्य निबंध : डा.पारुकान्त देसाई : रोमा प्रकाशन, बड़ौदा : सं-1983 ।

(47) राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल : राजकमल, दिल्ली : सं-1973 ।

(48) विवेक के रंग : डा.देवीशंकर अवस्थी : भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली : सं-1978 ।

(49) वे दिन : निर्मल वर्मा : राजकमल : सं-1968 ।

(50) शब्दों का जीवन : डा.भोलानाथ तिवारी : राजकमल : सं-1990 ।

(51) शब्दों का सफ़र - पहला पड़ाव : डा.अजित वड़नेकर : राजकमल : सं-2011 ।

(52) शैलेश मटियानी के आंचलिक उपन्यास : डा.प्रेमकुमारी : भावना प्रकाशन, दिल्ली : सं-1992 ।

(53) समय के निकष पर मोहन राकेश का रंगकर्म : डा.आभा गुप्ता ठाकुर : विश्वविधालय प्रकाशन, वाराणसी : सं-2008 ।

(54) समीक्षायण : डा.पारुकान्त देसाई : सूर्य-भारती प्रकाशन, दिल्ली : सं-1994 ।

(55) सलाम आखिरी : मधु कांकरिया : राजकमल प्रकाशन : सं-2004 ।

(56) सूरजमुखी अंधेरे के : कृष्णा सोबती : राजकमल : सं-1974 ।

(57) सूखे सेमल के वृन्तों पर : डा.पारुकान्त देसाई : दर्पण प्रकाशन, लखनऊ, भोपाल : सं-1999 ।

(58) साहित्यानुशीलन : डा.शिवदानसिंह चौहान : राजकमल : सं-1960 ।

(59) सेवासदन : प्रेमचंद : सरस्वती प्रेस, बनारस : सं-1964 ।

(60) समकालीनता और साहित्य : डा.राजेश जोशी : राजकमल : सं-2010 ।

(61) स्त्री चिन्तन की चुनौतियां : डा.रेखा कस्तवार : राजकमल : सं-2006 ।

(62) स्त्री लेखन : स्वप्न और संकल्प : डा.रोहिणी अग्रवाल : राजकमल : सं-2011 ।

(63) "हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा" : डा.रामदरश मिश्र : राजकमल : सं-1968 ।
(64) हिन्दी उपन्यास पर पाश्यात्य प्रभाव : डा.भारतभूषण अग्रवाल : ऋषभचरण जैन एवं संतति, दिल्ली : सं-1971 ।
(65) हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन : डा.एस. एन. गणेशन : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली : सं-1967 ।
(66) हिन्दी उपन्यास का इतिहास : डा.गोपालराय : राजकमल : सं-2002 ।
(67) हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद : डा.त्रिभुवनसिंह : हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, वाराणसी : संवत-2054 ।
(68) हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : चिंतन प्रका, कानपुर : सं-2002 ।
(69) हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन : चिंतन प्रका, कानपुर : सं-2010 ।
(70) हिन्दी के दलित चेतना संपन्न उपन्यास : डा.एम. एस. परमार : चिंतन प्रका, कानपुर : सं-2010 ।
(71) हिन्दी के प्रयोगधर्मी उपन्यास : डा.इन्दुप्रकाश पाण्डेय : हिन्दी बुक सेण्टर, दिल्ली : सं-2008 ।
(72) हिन्दी के अधुनातम नारी उपन्यास : डा.इन्दुप्रकाश पाण्डेय : हिन्दी बुक सेण्टर, दिल्ली :सं-2004 ।
(73) हिन्दी महिला कथाकारों के साहित्य में नारी विमर्श :सं. डा.दिलीप मेहरा, डा.प्रतीक्षा पटेल : क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली : सं-2012 ।
(74) हिन्दी कथा साहित्य के नये आयाम : डा.मनीषा ठक्कर : चिंतन प्रकाशन, कानपुर : सं-2012 ।
(75) हिन्दी के प्रतीक नाटक : बदलती दिशाएं : डा.शन्नो पाण्डेय : भवदीय प्रकाशन : अयोध्या-फैजाबाद : सं-1999 ।
(76) हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चनसिंह : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली : सं-1997 ।
(77) हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी : संवत-2018 ।
(78) हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा.नगेन्द्र : मयूर पेपर बैक्स, नोएड़ा, दिल्ली : सं-1995 ।
(79) हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डा.पारुकान्त देसाई : कृष्णा प्रकाशन, जयपुर : सं-1993 ।
(80) हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली : डा.अमरनाथ : राजकमल : सं-2009 ।
(81) "हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य" : अज्ञेय : ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली : सं-1968 ।
(82) हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि : डा.सुरेश अग्रवाल : अशोक प्रकाशन, दिल्ली : सं-1994 ।

(83) हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा.सोनटक्के : चिंतन प्रकाशन, कानपुर : सं-2002 ।

(84) हिन्दी में आदिवासी जीवन-केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन : डा.बी. के. कलासवा : शान्ति प्रकाशन, रोहतक : सं-2009 ।

(85) हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं : डा.सरजूप्रसाद मिश्र : अमन प्रकाशन, कानपुर : सं-2011 ।

★ **परिशिष्ट - (3) : सहायक ग्रन्थ सूची (अंग्रेजी) :**

(1) ए शोर्ट हिस्टरी आफ इंग्लिश लिटरेचर : आईफोर ईवान : द इंग्लिश लैंग्वेज़ बुक : बोम्बे : 1970 ।

(2) एन एबीझेड आफ लव : इंगे एण्ड स्टेनहेगलर : नेविल स्पीअरमैन, लंडन : 1960 ।

(3) एन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ लिटरेचर : डबल्यू. एच. हडसन : ज्योर्ज जी. हेरप : लंडन : 1942 ।

(4) एन आउटलाइन हिस्ट्री आफ इंग्लिश लिटरेचर : डबल्यू. एच. हडसन : वी. आई. पब्लिकेशन्स, बोम्बे : 1963 ।

(5) आस्पेक्ट्स आफ नोवेल : ई. एम. फारर्स्टर : ए पेनग्विन इण्ट्रोडक्शन एडिशन : 1970 ।

(6) कोम्पेक्ट औक्सफर्ड रेफरेन्स डिक्शनरी : ओक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयोर्क-लंडन : 2001 ।

(7) "इंग्लिश लिटरेचर : इट्स बैकग्राउण्ड एण्ड डेवेलोपमेन्ट :" : बी. आर. मल्लिक : एस. चांद एण्ड कंपनी, दिल्ली : 1969 ।

(8) इल्लूस्ट्रेटेड आक्सफर्ड डिक्शनरी : एडिटर डेल्ला थोम्पसन : आक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयोर्क : 2011 ।

(9) मेमोरिज़ एण्ड पोरट्रेट्स : स्टीवेनसन : कोलिन्स एण्ड सन्स : लंडन : 1962 ।

(10) नोवेल एण्ड द पिपल : राल्फ फोक्स : फोरिन लैंग्वेज़ पब्लिशिंग हाउस : मोस्को : 1956 ।

(11) ओक्सफर्ड ए-झेड आफ इंग्लिश युसेज़ : एडिटर-जेरेमी बटरफिल्ड : इण्डियन एडिशन : आक्सफर्ड युनि. प्रेस : न्यू डेल्ही : 2010 ।

(12) सेमिनार ओन क्रिएटिव राइटिंग-इण्डियन लैंग्वेजिज : एडिटर-कमलेश्वर : एकेडैमी पब्लिकेशन्स, डेल्ही : 1972 ।

(13) द लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचंद : मनोहर बंदोपाध्याय : पब्लिकेशन डिविज़न-गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया : डेल्ही : 1990 ।

(14) द सेकण्ड सेक्स : सीमोन द बोउवार : ट्रान्सलेटेड एण्ड एडिटेड : एच. एम. पसले : विन्टेज़ पब्लिकेशन, लंडन : 1997 ।

(15) द राइटर्स एट वर्क - फर्स्ट सिरिज़ : सैकर एण्ड बर्ग : लंडन : 1958 ।
(16) द टेकनिक आफ मोडर्न इंग्लिश नोवेल : शिशिर चट्टोपाध्याय : पिपल पब्लिशिंग हाउस : डेल्ही : 1970 ।
(17) द न्यू इंग्लिश डिक्शनरी : आक्सफर्ड युनि. प्रेस : लंडन : 1962 ।
(18) द राइज़ आफ नोवेल : इवान वाट : युनि. आफ केलिफोर्निया : 1957 ।
(19) द बुक आफ लव : डा.डेविडेल्विन : न्यू इंग्लिश लायब्रेरी : लंडन : 1974 ।

★ **परिशिष्ट - (4) : कोश-ग्रन्थ इत्यादि :**

(1) उर्दू-हिन्दी शब्दकोश : संकलनकर्ता-मुहम्मद मुस्तफा खां : उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ : 1992 ।
(2) ग्रीस पुराण कथा-कोश : कमल नसीम : राजकमल : दिल्ली : 2008 ।
(3) चैम्बर्स अंग्रजी-हिन्दी शब्दकोश : संपादक-डा.सुरेश अवस्थी तथा डा.श्रीमती इन्दुजा अवस्थी : एलाइड पब्लिशर्स : 1988 ।
(4) नालन्दा विशाल शब्द-सागर : संपादक-श्रीनवलजी : आदीश बुक डेपो : दिल्ली : 1988 ।
(5) भारतीय साहित्यकोश : डा.नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस : नयी दिल्ली : 1981 ।
(6) भारतीय मिथक कोश : डा.उषापुरी विधावाचस्पति : नेशनल पब्लिशिंग हाउस : 1986 ।
(7) संस्कृत-हिन्दी कोश : डा.वामन शिवराम आप्टे : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स : 1987 ।
(8) हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश : खण्ड-1 तथा 2 : डा.हरदेव बाहरी : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली : 2006 ।
(9) हिन्दी साहित्यकोश : खण्ड-1 तथा 2 : संपादक - डा.धीरेन्द्र वर्मा : ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी : संवत-2020 ।
(10) हिन्दी पर्यायवाची कोश : डा.भोलानाथ तिवारी : प्रभात प्रकाशन, दिल्ली : 2006 ।

★ **परिशिष्ट - (5) : पत्र-पत्रिकाएं :**

(1) अनभै सांचा / त्रैमासिक / : संपादक-द्वारिकाप्रसाद चारुमित्र : 148, कादम्बरी, सेक्टर-9 : रोहिणी, दिल्ली ।
(2) आलोचना / त्रैमासिक / : प्रधान संपादक-डा.नामवरसिंह : राजकमल, दिल्ली ।

(3) कथादेश : मासिक : सं. हरिनारायण : सहयात्रा प्रकाशन : सी-52 / झेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली।

(4) गुजरात समाचार : गुजराती दैनिक पत्र : बड़ौदा।

(5) टाइम्स आफ इण्डिया : अंग्रेजी दैनिक पत्र : बड़ौदा-अहमदाबाद।

(6) नया पथ : मुरली मनोहरप्रसाद सिंह : 42, अशोक रोड : नयी दिल्ली।

(7) प्रकर / पुराने अंक / : दिल्ली।

(8) परिशोध : पंजाब युनि., चंदीगढ़।

(9) प्रेरणा : सं. अरुण तिवारी : भोपाल।

(10) पाखी : सं.प्रेम भारद्वाज : नोएड़ा, दिल्ली।

(11) वर्तमान साहित्य : सं. डा.नमिता सिंह : अलीगढ़।

(12) वीणा : सं. डा.विनायक पांडेय : इन्दौर।

(13) समयातंर : सं. पंकज बिष्ट : दिलशाद गार्डन, दिल्ली।

(14) हंस : सं. डा.राजेन्द्र यादव : अक्षर प्रका. प्रा. लि. : 2/36 अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली।

(15) क्षितिज / गुजराती / : सं. डा.सुरेश जोशी : नवलकथा विशेषांक : बड़ौदा।

★★★★★

मैत्रेयी पुष्पा के साथ गुजारे हुए कुछ अविस्मरणीय पल